महाकवि आचार्य ज्ञानसागर विरचित

लघुत्रयी-मन्थन

(सुदर्शनोदय महाकाव्य, दयोदय चम्पू एवं समुद्रदत्त चरित्र काव्यों पर सम्पन्न राष्ट्रिय संगोष्ठी में पठित शोध पत्रों का संकलन)

दि. 22, 23, 24 जनवरी 1995

(संगोष्ठी स्थल : सेठ चम्पालाल रामस्वरुप नशियाँ, ब्यावर)

प्रकाशक

सकल दिगम्बर जैन समाज, ब्यावर

एवं

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र

सेठजी की नशियाँ, ब्यावर (राज)

प्रेरक प्रसग चारित्र-चक्रवर्ती पू दिगम्बराचार्य महाकवि ज्ञानसागरजी महाराज के प्रशिष्य एवम् श्रमणपरम्परोन्नायक, दुर्धर तपस्वी सन्त शिरोमणि पू आचार्य विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य, तीर्थक्षेत्र समुद्धारक, आगम के प्रामाणिक एवम् सुमधुर प्रवचनकार, युवामनीषी आध्यात्मिक एवम् दार्शनिक सन्त पू मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी महाराज तथा सघस्थ पू क्षु गभीरसागरजी महाराज एवम् पू क्षु श्री धैर्यसागरजी महाराज व ब्र सजय भैय्या के ब्यावर शीत-प्रवास-योग के मङ्गलमय अवसर पर "लघुत्रयी" काव्यो पर आयोजित आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रिय संगोष्ठी दि 22, 23, 24 जनवरी 1995 ।

कवरमोनो फोटो मुनि श्री सुधासागरजी महाराज व लघुत्रयी ग्रन्थो के कवर

संस्करण . प्रथम 1995

प्रतियाँ 2100

मूल्य 70/- (रू सत्तर मात्र)

प्राप्ति स्थान

☆ **आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र**
सेठ जी की नशियाँ, ब्यावर (राज)

☆ **श्री ऐ पन्नालाल दि जैन सरस्वती भवन**
सेठ जी की नशियाँ ब्यावर (राज)

☆ **श्री दिगम्बर जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्र**
मन्दिर सघीजी, सागानेर जि जयपुर (राज)

मुद्रक

निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टर्स
पुरानी मण्डी, सुभाष गली
अजमेर ✆ **422291**

"लघुत्रयी-मन्थन"

पावन प्रेरणा एव मगल आशीर्वाद :

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ससंघ

सम्पादक

डॉ जयकुमार जैन
सिद्धान्त शास्त्री, साहित्याचार्य
एम ए , पी एच डी
मुजफ्फरनगर (उ प्र)

पं अरुणकुमार शास्त्री
सिद्धान्त शास्त्री, व्याकरण-जैन दर्शनाचार्य
एम ए (सस्कृत व हिन्दी)
ब्यावर (राज)

सगोष्ठी सौजन्य

प श्री प्रकाशचन्द्र जैन स्मृति निधि, ब्यावर (राज)

प्रकाशन सौजन्यता

☆ प श्री प्रकाशचन्द्र जैन स्मृति निधि, ब्यावर (राज)

☆ श्रीमान् शान्तिलालजी कमलकुमारजी कासलीवाल (ओरियण्ट ट्रांस)

☆ श्री दिगम्बर जैन समिति, ब्यावर

☆ श्री कल्याणमलजी घेवरचन्दजी छाबडा, ब्यावर

प्रकाशक

☆ सकल दिगम्बर जैन समाज, ब्यावर (राज)

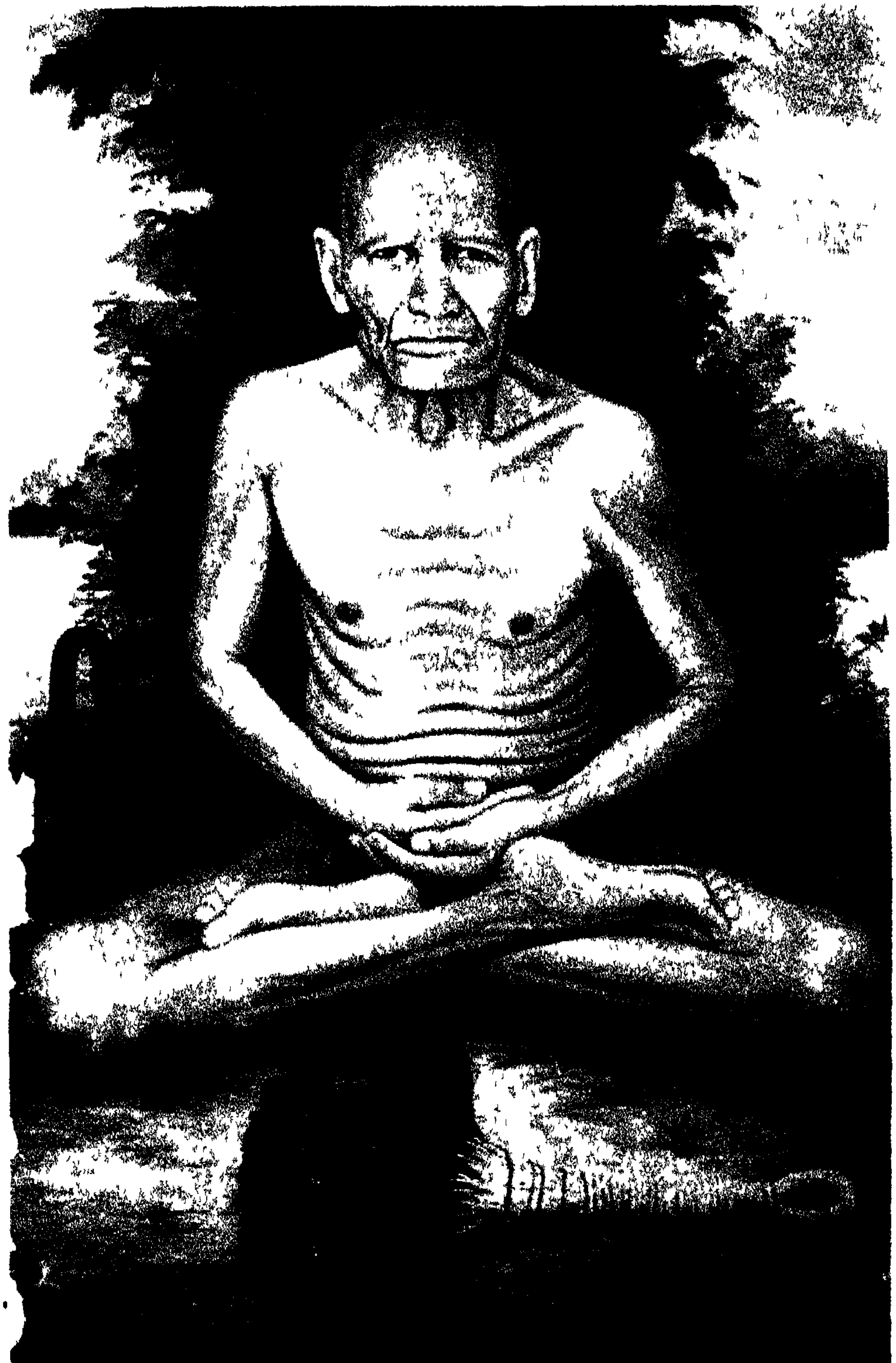
☆ आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर (राज)

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

महाकवि प्रशस्ति

काव्याम्बरे वाग्गरिमागरीयो-
भूरामले भास्वति भास्करेऽस्मिन् ।
स्वल्पज्ञता-मण्डित-पण्डिताभा :,
तिरोहितास्ते कवितारवृन्दा: : ।।

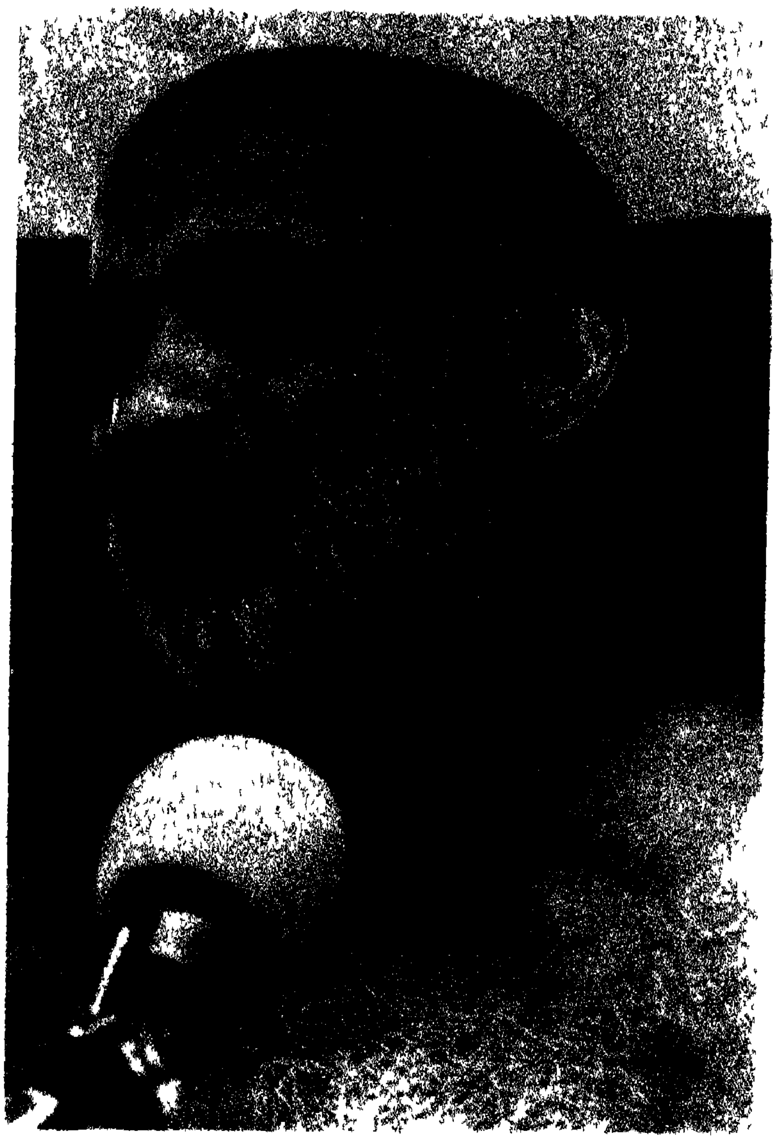
- मुकुन्दशरणस्य



महाकवि चा च पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज



पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज



महामनीषी, तीर्थसमुद्धारक, ओजस्वी, सरस प्रवचनकार
आध्यात्मिक मुनि श्री सुधासागरजी महाराज



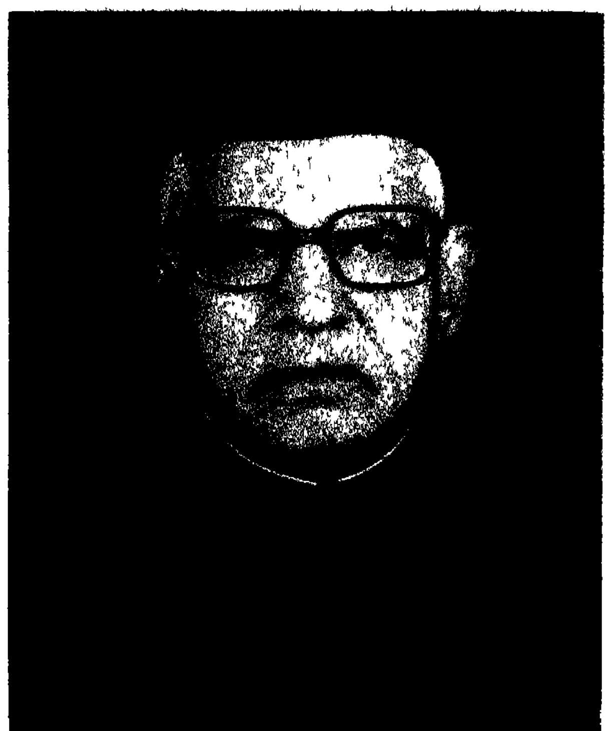
पू क्षु श्री गम्भीरसागरजी महाराज



पू क्षु श्री धैर्यसागरजी महाराज



श्री सजय भैय्या



श्री प्रकाशचन्द्र जी जैन ब्यावर

विषयानुक्रमणिका

शुभसंदेश

आया नगर खतौली से मै, देखा नगर ब्यावर ।
धन्य हुआ दर्शन को पाकर, मुनि श्री सुधा के सागर ।।
न देखी न सुनी हुई है, गोष्टी इस नगरी मे ।
लगता है अब समा गया है, सागर इक गगरी मे ।।

डॉ कपूरचंद जैन
खतौली

शुभ संदेश

ब्यावर मे पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज के ससघ पदार्पण से जैन समाज मे बड़ी जागृति आई है । इस अवसर पर आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की लघुत्रयी (सुदर्शनोदय, दयोदय, समुद्रदत्त चारित्र) पर आयोजित 'आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रीय सगोष्ठी' वस्तुत' एक श्लाघनीय प्रयास है । इस सगोष्ठी में अनेक विद्वानो द्वारा विविध शोधपत्रो का प्रस्तुतीकरण बहुत ही अच्छा रहा है । इन शोधपत्रो मे आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की उक्त ग्रन्थत्रयी से निकाले गये अमृतरस का पान विद्वज्जनो ने तो किया ही है । किन्तु इस अवसर पर ब्यावर की जैन समाज ने जिस ढग से प्रारम्भ से अन्त तक जिस उत्साह से अमृतपान किया है, वह उनकी जैनधर्म के प्रति अटूट आस्था का भी प्रतीक है ।

इस सगोष्ठी मे मुनिश्री के सान्निध्य और उनकी समय पाबन्दी से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ । उनके इस महिमामयी व्यक्तित्व को मैं पुन -पुन नमोऽस्तु करता हूँ ।

दिनाक 24 01 95

डॉ कमलेशकुमार जैन
वरिष्ठ प्राध्यापक - जैनदर्शन
सस्कृतविद्या धर्मविज्ञान सकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005

शुभ संदेश

इसे मै अपने जीवन का महान् सौभाग्य समझता हूँ कि मुझे ब्यावर नगर मे दिनाक २२, २३, और २४ जनवरी १९९५ को सम्पन्न हुई, लघु त्रयी आचार्य श्री ज्ञानसागर राष्ट्रीय सगोष्ठी मे एक पत्र वाचक के रूप मे सम्मिलित होने का सुअवसर मिला । इस गोष्ठी मे विविध दिशाओ से समागत विद्वद्गोष्ठी गरिष्ठ मनीषियो की ज्ञानगगा मे अवगाहन का अवसर तो मिला ही साक्षात् तीर्थराज रूप मुनिश्री ज्ञानसागर की अमृतवाणी से अपनी आत्मा को कृतार्थ करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ । गोष्ठी के आयोजको का सौजन्य अतिथि परायणता, धर्मनिष्ठा और कर्मठता प्रशसनीय रही । सर्वत्र सुव्यवस्था का साम्राज्य था। मुझे ही नही जहॉ तक मै समझता हू मेरे किसी भी साथी को किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं है । इस प्रकार की गोष्ठियो मे आयोजनो मे सम्मिलित होने का भूयो भूय अवसर मिले, यह मेरे जीवन का काम्य है ।

श्रीकान्त पण्डेय
वरिष्ठ प्राध्यापक
सस्कृत विभाग
दिगम्बर जैन कालेज
बडौत (मेरठ)

शुभ सन्देश

व प भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागरजी) रचित काव्य लघु-त्रयी (सुदर्शनोदय दयोदय, समुद्दत्त चरित्र) पर आयोजित आ भा विद्वद्गोष्ठी मे सम्मिलित हो विद्वानो के विविध-विषयाश्रित स्वमुखोद्गीर्ण विचार सुनने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। इस सगोष्ठी के सप्रेरक आचार्य पू सुधासागरजी की अमृतवाणी ने स्वर्णिम अवसर को सौरभान्वित कर मनो-वैचारिक सकीर्णता को सर्व-काल के लिए सुदूर किया । भारत का अवश्य अहोभाग्य सिद्ध होगा यदि सभी सन्त तथा कथित सकीर्ण धार्मिक उन्माद से भारतीय जीवन को पथ भ्रष्ट न होने दे । पारस्परिक सद्भावना परम्पराओ से सुदीर्घजीवी रहे । इसके लिए न केवल भारत के अपितु सम्पूर्ण विश्व के मानव को आचार्य ज्ञानसागरजी के द्वारा निर्देशित काव्य-पथ का अनुसरण करना होगा।

शुभमस्तु

मुकुन्दशरण उपाध्याय
व अ सस्कृत
सनातन धर्म प्र स विद्यालय
ब्यावर (राज)

शतशः पुण्य नमन !



ज्ञान भारिल्ल

कभी-कभी सद्भाग्य स्वय ही घर आ जाता है-
जैसे कोई रक सहज ही निधि पा जाता है,
यह कुछ पूर्वजन्य के पुण्यो का ही फल होगा-
स्वय 'सुधासागर' पिपासु को अमृत पिलाता है ।

ऐसे ही इस नगरी का सौभाग्य जाग आया,
जैसे कोई सूर्य रोशनी के घट भर लाया
अन्धकार से घिरे मानवो के उर-अन्तर मे -
भक्तिभाव का, प्रेम धर्म का सागर लहराया ।

मै सामान्य मनुज सागर को अजंलि मे भर लूँ ?
अपने जनम-जनम को इस क्षण धन्य-धन्य कर लूँ ?
यह जो अमृतमय बादल छाया आकाशो पर
इससे झरता अमृत आत्मा के घट मे भर लूँ ?

मैं तो केवल कर सकता हूँ शतश पुण्य नमन,
और पूज सकता हूँ मुनिवर के सौभाग्य-चरण,
इतना भी सद्भाग्य सृष्टि मे किसको मिलता है ?
इतना भी कर पाऊँ तो तिर जाए यह जीवन ।

चकित, स्तब्ध हूँ - ऐसी सौम्य मूर्ति भी होती है ?
कैसे सृष्टि अमूल्य रत्न की माल पिरोती है ?
दर्शन है आनन्द, नमन है सब पुण्यो का फल -
और देशना आत्मा का सब कालिख धोती है ।

सपर्क "शोभा"
2/53, चम्पानगर, ब्यावर

भाव सुमन



धन्य है, यह ब्यावर की धरती जहाँ ऐसे तपस्वी मुनि श्री सुधासागरजी महाराज पधारे हैं । वैसे तो पहले भी कई मुनि भी पधारे हैं ब्यावर मे, लेकिन उत्कृष्ट प्रतिभा एवं प्रवचन में सम्मोहन शक्ति आप में ही देखने मे आई है, आप जैसे निडर एव तपस्वी एव तत्व ज्ञानी साधु के दर्शन करने एव प्रवचन सुनने के लिये जी तडफता रहता है, "कब सुबह के 8 15 बजे और कब प्रवचन सुनने को मिले ।"

शायद मैं पहली बार आत्म विश्वास से कह सकता हूँ कि ऐसी **Pindrop silence** कभी और किसी अन्य प्रवचन मे नही आई एव अपार समूह आपको सुनने के लिये बैचेन रहता है, आपका एक घटे का प्रवचन ऐसा लगता है जैसे स्वर्ग मे ही बैठे हो । प्रवचन सुनने के बाद सारा दिन आनन्दमय रहता है ।

ब्यावर शहर के बाजारो मे एव गलियो में आपकी चर्चा कई बार सुनने मे आई, सबने मुक्त कठ से यही कहा कि हमने पहली बार ऐसे चमत्कारिक मुनि श्री को सुना है ।

प्रवचन केवल जैन धर्म तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि समस्त भारत के धमो का भी उल्लेख समय-समय पर आता रहता हे, बडे मजे की बात तो यह है कि प्रवचन मे केवल जैनी ही नही आते बल्कि दूसरे भी काफी सख्या मे प्रवचन लाभ लेने आते हे । ज्यादा कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, और भगवान् से यही प्रार्थना है कि आपके बताये हुए मार्ग पर चलने का प्रयत्न करे । आपके यहा से विहार करने के बाद ब्यावर की जनता को खास तौर से दिगम्बर समाज को कैसा दु.ख और तड़फन होगी वह ईश्वर ही जाने ।

डी सी सोगानी
(Dr. D C.Sogani, Beawar)

भावांजलि

धर्मचन्द मोदी,

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

सर्वभक्षी भौतिकवाद के अधिकाधिक विकास के चमत्कारी प्रभाव से विश्व मे अनेक अघटित घटनाओ और विचित्र परिस्थितियो का उदय हो गया है । ऐसे विकराल समय में विपत्तियो से व्यथित मानव सुख-शान्ति की खोज के लिये विशेष रूप से चिन्तित है । आज क्रूरता की वारुणी पीने वाले मूर्च्छित और मरणासन्न ससार को वीतराग प्रभु की करुणा-रस पूरित सजीवनी की आवश्यकता है जो इस मार्ग पर प्रवृत्त प्राचीन भारतीय सस्कृति के प्रतीक सत, ऋषियों, मुनियो के सान्निध्य से ही सम्भव है । सौभाग्य है इस अहिंसामयी भारत देश का जहाँ यत्र-तत्र ऐसे महामनीषी दृष्टिगोचर हो रहे है । इन मनीषियों में चतुर्थ कालीन साधुता की क्रियाओ को अमली जामा पहनाने वाले 22 वर्ष पूर्व ब्यावर की पावन धरती पर चातुर्मास योग धारण कर अपने तप-त्याग और ज्ञानाराधना से भौतिकवाद के चुगल में फसे व्यक्तियो को आध्यात्मिकता का रसास्वादन कराने वाले परम् संयमी सतशिरोमणी प्रात स्मरणीय आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य परम् पूज्य श्री सुधासागरजी महाराज का ससघ राजस्थान की पवित्र धरती पर इस वर्ष प्रथम बार मगलमय पदार्पण हुआ । मुझ भक्त को भी विख्यात आतिशय क्षेत्र पदमपुरा पर कुछ समय के लिये दर्शन एवं आशीर्वचन सुनने कर सौभाग्य प्राप्त हुआ । देश की भव्य एव सास्कृतिक धरोहर से युक्त महानगरी जयपुर के निकट सांगानेर मे जो अपनी कलात्मक विशेषताओ मे प्रसिद्ध है, शुभागमन हुआ । आपके सान्निध्य मे सम्पन्न विविध धार्मिक आयोजनो से जन जन मे आध्यात्मिक चेतना का स्रोत प्रवाहित हुआ । सागानेर के सघीजी के प्राचीन मन्दिर जी की गुफा में विराजित मूर्तियो का समय पूर्व जन साधारण के दर्शनो के लिये गुफा के बाहर लाकर एक सातिशय मांगलिक दृश्य उपस्थित कर चमत्कृत कर दिया । यह प पूज्य महाराज श्री की महान् साधना एव जिनेन्द्रभक्ति का प्रतिफल था । आपके प्रभावक व्यक्तित्व मे प्रभावित जनता अपने-अपने क्षेत्रो मे सघ के पधारने के लिये विनती करने पहुँचने लगी। परम् पुण्योदय मे अजमेर जिले को सौभाग्य प्राप्त हुआ, जहाँ ऐसे महामनीषी के चातुर्मास का योग प्राप्त हुआ । अजमेर के करीब 5 मास के प्रवास काल मे ऐसे ऐतिहासिक आयोजन व धर्म प्रभावना हुई, जिसका जितना भी वर्णन किया जावे कम है । चातुर्मास काल मे समय-समय पर ब्यावर-नसीराबाद, किशनगढ, केकडी पीसागन आदि की धर्म प्राण जनता अपने-अपने नगरो की ओर बिहार करने हेतु प्रार्थना करने पहुँचती रही। लेकिन ब्यावर नगर का पुण्योदय हुआ, जब सघ ने 5 जनवरी, 95 को इस ओर बिहार किया । दिनाङ्क 14 जनवरी, सास्कृतिक पर्व मकर सक्रान्ति की शुभ बेला पर आप का मगलमय पदार्पण हुआ और यह धर्म नगरी धन्य हुई । आपके शुभागमन की घडी पर आत्मविभोर निवासिया ने नगर को दुल्हन की तरह सजाया तथा स्थान-स्थान पर तोरण द्वारो मे सुसज्जित बाजार के वातावरण से ऐसा लग रहा था मानो आध्यात्मिकता की अलोकिक शक्ति भौतिकवाद को चुनौती दे रही हो । हजारो नर-नारियो की भव्य शाभा यात्रा साय 3 बजे से चम्पालाल रामस्वरूप की नशियाँ मे पहुँचकर भक्ति सभा मे परिवर्तित हुई । कृतज्ञ जन समुदाय ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर अपनी कृतज्ञता प्रगट की । तत्पश्चात् परम् पूज्य महाराज श्री के आशीर्वचनो से ऐसी ध्वनि प्रगट हुई और ऐसा आभास हुआ मानो अमावस्या की रात्रि के गहन अनधकार को दूर करने के लिये प्राची से स्वर्ण पुरुष प्रगट हुआ हो ।

इसी दिन से अब तक नियमित रूप से प्रात 8 30 से 9 15 तक धारावाहिक प्रवचन हो रहे है । शलाका पुरुषो की जीवन शैली के आधार पर आगमानुसार प्रवचनो का प्रवाह श्रोताओ को आत्मविभोर कर देता है । आपके सुधामय शब्दों में गम्भीरता, रोचकता तथा दुलार व डाट फटकार का अनुपातिक समिश्रण रहता है जो जीवन मे उन्नत विचारो को उतारने के लिये कटिबद्ध कर देता है । प्रवचनो मे साम्प्रदायिकता की किंचित् भी गध न होते हुये मात्र मानवता

व नैतिकता का तेज चमकता है । यही कारण है कि ब्यावर की जनता दुर्व्यवसनों को छोड़ने के लिये तथा गलत रूढिवादी प्रथाओं से मुक्ति पाने हेतु आगे कदम बढा रही है ।

दिनांक 22-23-24 जनवरी, 95 को ब्यावर नगरी विशेष धन्य हुई जब इस सदी के महाकवि चारित्र शिरोमणि अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी परम् पूज्य महाकवि, आचार्य श्री ज्ञान सागरजी महाराज (पूर्व ब्रह्मचारी प भूरामलजी) के महाकाव्यों पर अखिल भारतीय विद्वानों की सगोष्ठी हुई, जिसमें विभिन्न प्रदेशो से करीब 20 विद्वानो ने भाग लिया । इस ऐतिहासिक आयोजन ने ब्यावर के इतिहास में और स्वर्ण पृष्ठ अकित किये । विद्वानो ने ब्यावर की गौरवमय परम्पराओ एवं स्थानीय व्यवस्थाओं को मुक्तकण्ठ से प्रशसा की । स्थानीय समाज ने उच्चकोटि के जैन अजैन विद्वानो के समागम से अपने आपको गौरवान्वित महसूस किया । इसी गोष्ठी के परिणामस्वरूप महाकवि परम् पूज्य ज्ञानसागरजी जैसे उद्भट विद्वान् और चारित्र उन्नायक की स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने हेतु उनके पूर्व ब्रह्मचारी समय के पंडित भूरामलजी शास्त्री की एक मूर्ति निर्माण का सकल्प किया । यह कार्य श्री शान्तिलालजी प्रकाशचन्दजी गदिया, एव श्री चिरजीलालजी राजकुमार जी पहाडिया के सौजन्य से हो गया है । इसी स्थान पर संगमरमर की फर्श एव रेलिग लगाने का उत्तरदायित्व श्री भेरूलालजी काला ने लेकर कार्य प्रारम्भ कर दिया है ।

परम् पूज्य महाराज श्री के सान्निध्य मे एक शुभ घडी और आई जब दि जैन पंचायती नशिया मे 22 वर्षों से अपूर्ण और अब अस्त-व्यस्त जम्बूद्वीप रचना का महाराज श्री ने अवलोकन किया । यह अपूर्णता समाज को भी खटक रही थी, लेकिन कुछ नहीं सूझ रहा था । जिस जिनालय की भावना से इसे किया जाना था, उसी दृष्टि से गुरुवर ने प्रेरणा दी ओर त्रिमूर्त्ति भगवान आदिनाथ - बाहुबली भगवान व भरतजी) का निर्माण कराकर नूतन वेदी मे विराजमान करने का सुझाव दिया । महाराज श्री की सद्प्रेरणा मे प्रेरित होकर सर्व श्री रतनलाल कटारिया धर्मचन्द मोदी खेमराज रावका ने अपनी ओर से एक-एक मूर्ति निर्माण कराने की उत्कण्ठा व्यक्त की । वेदी बनवाने की श्री चिरजीलालजी राजकुमार जी पहाडिया ने स्वीकृति दी । इस पर समाज ने विधिवत् महाराज श्री के समक्ष अपनी स्वीकृति प्रदान की तथा चारो उक्त महानुभावो का मालार्पण कर सम्मानित किया । त्रिमूर्त्ति का आदेश जयपुर के शिल्पी को दे दिया गया है । वेदी का शिलान्यास विधिवत् दिनाङ्क 4 फरवरी का हो गया है तथा निर्माण कार्य चालू है । महाराज श्री के प्रवचनो के प्रभाव मे रात्रि मे धार्मिक शिक्षण केन्द्र की जिमे वृद्ध युवा बाल वर्ग ज्ञानार्जन कर सके, श्री प प्रकाशचन्द्र जैन ट्रस्ट के सौजन्य से स्थापना हुई । जिसका सचालन सरलस्वभावी सेवा भावी, युवा विद्वान प अरुणकुमार जी शास्त्री द्वारा हो रहा है ।

परम् पूज्य मुनि श्री सघ के ब्यावर प्रवास के दौरान धार्मिक गतिविधियो का सकलन इस स्मारिका मे विस्तृत रूप से किया जा रहा है तथा आध्यात्मिक विकास मे गति प्रदान हेतु सामग्री सकलित की जा रही है, जो निश्चित रूप से समीचीन मार्ग को प्रशस्त करने मे सहायक सिद्ध होगी । ब्यावर की जैनाजैन जनता परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज व सघस्थ क्षुल्लक श्री गम्भीरसागरजी व धैर्यसागरजी के सर्वोदयी विचारो से प्रभावित होकर जीवन मे सरसता, सरलता, और नैतिकता की भावना जागृत करने हेतु सकलित हो रही हैं ।

परम् पूज्य महाराज श्री के चरण कमलो में सविनय नमोस्तु ।

धर्मचन्द मोदी
ब्यावर

❑ ❑ ❑

दिगम्बरर्षीणां स्वरूपम्

लेखक - महाकवि भूरामल शास्त्री

धरैव शय्या गगनं वितान, स्वबाहुमूल तदिहोपधानम् ।
रविप्रतीपश्च निशासु दीप· शमी स जीयाद् गुणगह्वरीप ।।
भिक्षैव वृत्तिः करमेव पात्र, नोद्दिष्टमन्नं कुलमात्मगात्रम् ।
यत्रैव तिष्ठेत् स निजस्य देश·नैराश्यमाशा मम सम्मुदे स ।।
हारे प्रहारेऽपि समानबुद्धिमुपैति सम्पद्विपदो समृद्धि· ।
मृत्यु पुनर्जीवनमीक्षमाण पृथ्वीतलेऽसौ जयतादकाण ।।
ज्ञानामृतं भोजनमेकवस्तु, सदैव कर्मक्षपणे मनस्तु ।
दिशैव वास स्थितिरस्ति येषा नमामि पादावहमाशु तेषाम् ।।
स्त्रैणं तृण तुल्यमुपाश्रयन्त शत्रु तथा मित्रतयाऽऽह्वयन्त ।
न काञ्चने काञ्चन चित्तवृत्तिः प्रयान्ति येषामवृथा प्रवृत्ति· ।।
हृषीक सन्निग्रहणैक वित्ता स्वभावसम्भावनमात्रचित्ता ।
दिवानिश विश्वहिते प्रवृत्ता नि.स्वार्थत संयमिनो नुमस्तान् ।।

(महाकवि ब्र भूरामल शास्त्री)

पृथ्वी ही जिनकी शय्या है आकाश ही चादर निज ब्राहुयुगल ही तकिया रात्रि मे चन्द्रमा दीपक,ऐसे प्रशान्त स्वभाव के धारक गुण-गरिष्ठ साधुजन चिरकाल तक जीवें ।

अयाचित भिक्षा ही जिनके उदरपूर्ति का साधन है कर ही जिनके पात्र 'अनुद्दिष्टभोजी' शरीर ही जिनका परिवार,जहा बैठे वही जिनको देश, निराशा मे ही आशावान् ऐसे साधु-परमेष्ठी मेरे हर्षवर्धक हो ।

जो हार और तलवार मे, सम्पत्ति और विपत्ति में जीवन और मृत्यु मे समदृष्टि रखने वाले साधुजन पृथ्वीतल पर सदा जयवन्त रहे ।

ज्ञानामृत ही जिनका भोजन, कर्मक्षपण मे ही जिनका मन उद्यत है, दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं उन साधु-परमेष्ठियो के चरणों में मेरा 'नमोऽस्तु' स्त्रियों में तृणवत् निस्सारता में शत्रु में भी मित्ररूपता, स्वर्णादि मे अनासक्ति रखने वाले साधु की सभी प्रवृत्तियाँ प्राणिमात्र के कल्याण हेतु होती हैं ।

इन्द्रिय-निग्रह ही जिनका धन हैं, आत्मस्वभाव में ही जो लीन, दिन-रात नि स्वार्थ विश्वकल्याण में जो संलग्न हैं, ऐसे संयमी साधुपरमेष्ठी को हमारा नमोऽस्तु ।

(सुदर्शनोदय 9/1-611)

प्रस्तुति - राजेन्द्र गगवाल

बा ब्र प भूरामल शास्त्री (आ ज्ञानसागरजी)

महाकवि का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

प्रस्तुति - राजकुमार पहाडिया

छाबडा गोत्रोत्पन्न श्रेष्ठी श्री मान चतुर्भुज जी धर्मपत्नी घृतवरी देवी के सत्सस्कार सम्पन्न परिवार मे राजस्थान प्रान्त के सीकर जिलान्तर्गत राणोली ग्राम में 1891 ई सन् में महाकवि भूरामल शास्त्री का जन्म हुआ । बाल्यकाल मे ही पिताश्री का साया उठ जाने से अनेक सकटो का सामना करते हुए भूरामल ने वाराणसी स्थित स्याद्वाद महाविद्यालय में शास्त्री कक्षा पर्यन्त अध्ययन कर अनेक शास्त्रो मे पारगमिता प्राप्त की । अध्ययनोपरान्त आप की आलौकिक प्रतिभा से 4 महाकाव्यो सहित चम्पूकाव्य खण्डकाव्य एवम् सिद्धान्त व अध्यात्म विषयक अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ टीका ग्रन्थ उद्‌भूत हुए । महाकवित्व से मण्डित इस महान् सरस्वती साधक ने कालजयी साहित्य मन्दिर का निर्माण किया तथा बालब्रह्मचारी रहकर उस पर चारित्र कलशारोहण हेतु विक्रम सवत् 2004 ई सन् 1947 मे ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण कर वि स 2012/ई स 1955 में क्षुल्लक ज्ञानभूषण नाम को भूषित किया । एव वि स 2014/ई सन् 1957 मे ऐलक दीक्षा धारण की । वि स 2016/ई सन् 1959 मे खानियाँ जी जयपुर मे आचार्य शिवसागर महाराज के प्रथम शिष्य के रूप मे दैगम्बरी दीक्षा धारण कर साधुपरमेष्ठी पद पर अधिष्ठित हाकर यथानाम तथा गुणयुक्त "ज्ञानसागर" नाम को धन्य करते हुए जगत् पूज्य हो गये। तथा फाल्गुन कृष्णा 5 वि स 2025/ ई सन् 1969 मे नसीराबाद मे आचार्य परमेष्ठी पद पर विराजमान हो गये । एवम् 20 अक्टूबर 1972 मे उक्त नगर मे 'चारित्र चक्रवर्ती' उपाधि से अलकृत हुए । जीवन का अन्तकाल निकट जानकर अपने प्रतिभाशाली प्रथम शिष्य युवामनीषी विद्यासागर जी महाराज को मार्गशीर्ष कृष्णा 2, वि स 2029/22 नवम्बर 1972 मे आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित कर नसीराबाद नगर मे ही स्वय के शिष्य के ही निर्यापकाचार्यत्व मे आगमानुकूल सल्लेखना-पूर्वक 6 मास 10 दिन तक क्रमश अन्नादिक का त्याग करते हुए अन्तिम 4 दिनो तक चतुर्विध आहारो का पूर्ण त्याग, कर ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या वि स 2030 दिन शुक्रवार दि 1 जून 1973 को 10 बजकर 50 मिनिट पर पार्थिव शरीर को छोडकर समाधिस्थ हो गये ।

भगवान् महावीर की दिगम्बर परम्परागत आचार्य कुन्द कुन्दाम्नायानुसार रत्नत्रयधारी ज्ञान-ध्यानतपो युक्त आत्मानुभवी परमविशुद्ध भावलिङ्गी सन्त महाकवि आ ज्ञानसागर जी महाराज के चरणो मे त्रिकाल त्रिलोक के भव्य जीवो का कोटिश नमोऽस्तु ।

महाकवि ब्र. पं. भूरामल शास्त्री (आ. ज्ञानसागर) का कृतित्व

प्रस्तुति -सन्तोष कासलीवाल "टीटू"

संस्कृत–साहित्य

(1) जयोदय महाकाव्यम्	(28 सर्गों में मूल श्लोक 3074 स्वोपज्ञ सस्कृत हिन्दी टीका युक्त)
(2) वीरोदय महाकाव्यम्	(22 सर्गों में मूल श्लोक 994, स्वोपज्ञ संस्कृत (6 सर्गों पर) एवम् हिन्दी टीका सहित)
(3) सुदर्शनोदय-महाकाव्यम्	(सर्ग -9, मूल श्लोक-481, स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित)
(4) भद्रोदय महाकाव्यम् (समुद्रदत्त चरितम्)	(सर्ग-9 मूलश्लोक-344, स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित)
(5) दयोदय चम्पू	(लम्ब-7 मूल स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित)
(6) सम्यक्त्वसार-शतकम्	(मूलश्लोक 104 स्वोपज्ञ हिन्दी टीका)
(7) मुनिमनोरञ्जनाशीति	(मूल श्लोक- 81)
(8) भक्ति संग्रह	(15 भक्तियो के श्लोक 101)
(9) हित-सम्पादकम्	(मूलश्लोक-159, हिन्दी टीका सहित)

हिन्दी–साहित्य

(10) भाग्य परीक्षा	(838 पद्य)
(11) गुणसुन्दरवृतान्त	(597 पद्य)
(12) पवित्र मानव जीवन	(193 पद्य)
(13) ऋषभचरित्र	(814 पद्य)
(14) कर्तव्य पथ प्रदर्शन	(82 कथाएं)
(15) सचित्त-विवेचन	(गद्यात्मक)
(16) सचित्त विचार	(गद्यात्मक)
(17) सरल जैन विवाह-विधि	(सम्कृत-हिन्दी गद्यपद्यात्मक)
(18) इतिहास के पन्ने	(हिन्दी निबन्ध)

टीकादि ग्रन्थ

(19) समयसार (आ कुन्दकुन्दकृत)	(हिन्दी विशेषार्थ-सहित)
(20) रत्नकरण्डश्रावकाचार	('मानव धर्म' नामक हिन्दी टीका)
(21) विवेकोदय	(समयसार की प्रसिद्ध गाथाओ पर गद्यपद्यात्मक हिन्दी व्याख्या)
(22) स्वामी कुन्दकुन्द एव सनातन जैन धर्म	(आ कुन्दकुन्द का ऐतिहासिक चित्रण)
(23) तत्त्वार्थ-सूत्र-महाशास्त्र (उमास्वामी कृत)	(बृहद् हिन्दी टीका)
(24) प्रवचन-सार (आ कुन्दकुन्दकृत)	मूलग्रन्थ पर सस्कृत-हिन्दी-पद्यानुवाद सहित हिन्दी टीका ।)
(25) शान्तिनाथ-पूजन-विधान	(सम्पादन)
(26) देवागम स्तोत्र	(पद्यानुवाद - अप्राप्त)
(27) नियम सार	(पद्यानुवाद - अप्राप्त)
(28) अष्ट पाहुड़	(पद्यानुवाद - अप्राप्त)

महाकवि चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बराचार्य ज्ञानसागर की शिष्य-प्रशिष्य-पट्टिका

प्रस्तुति - शान्तिलाल कासलीवाल

शिष्यवृन्द

मुनिश्री विद्यासागर (पट्टाचार्य), मुनिश्री विवेकसागर, मुनिश्री विजयसागर, मुनिश्री विनयसागर, ब्र पन्नालालजी एवम् ब्र वनवारी लाल को सल्लेखनापूर्वक मुनि-दीक्षा, क्षु पार्श्वसागर, क्षु सन्मतिसागर,

शिष्यानुशिष्य वृन्द (आ विद्यासागरजी द्वारा स 2051 तक दीक्षित)

मुनि समय सागर योग सागर, नियमसागर, क्षमासागर, सुधासागर, ममता सागर स्वभावसागर, समाधिसागर, सरल सागर, प्रमाणसागर, आर्जवसागर, मार्दवसागर, उत्तमसागर, पावनसागर, चिन्मयसागर, पवित्रसागर, सुखसागर ।

ऐलकगण

नि शकसागर, अभयसागर, निर्भय सागर रयणसागर, अक्षय सागर, अपूर्वसागर, सम्पूर्णसागर, प्रशान्तसागर, नम्र सागर, निश्चयसागर, सिद्धान्तसागर, वात्सल्य सागर, पूर्वसागर, उदारसागर, सम्यक्त्वसागर, ।

क्षुल्लकगण

गभीरसागर, धैर्यसागर, चन्द्रसागर, नयसागर, चारित्रसागर,

आर्यिका

आ विशालमती, विज्ञानमती, विद्युतमती, (श्री विवेकसागर द्वारा दीक्षित) आर्यिका गुरुमती, दृढमती मृदुमती तपोमती, सत्यमती, जिनमती, गुणमती, पावनमती, ऋजुमती, निर्णयमती, उज्ज्वलमती प्रशान्तमती, आदर्शमती चिन्तनमती, पूर्णमती, साधनामती धारणामती, अकलकमती, 'आगममती, नम्रमती, विलक्षणमती, वैराग्यमती, निकलकमती, स्वाध्यायमती, प्रशममती, सहजमती, मधुरमती, प्रसन्नमती भावनामती, प्रभावनामती, विमलमती शुक्लमती, विनम्रमती, पुगणमती, निर्वेगमती, अनुगममती, अनन्तमती, निर्मलमती, सिद्धातमती, अतुलमती, सवेगमती, चिन्तनमती, पूर्णमती, कुशलमती, विशुद्धमती, अधिगममती, केवल्यमती, शुभ्रमती, साधुमती, विपुलमती, एकत्वमती, अन्तरमती, अनुनयमती, अक्षयमती, अखण्डमती, अनुपममती, अनुत्तरमती, अतिशयमती, आनन्दमती, दुलर्भमती, अविचलमती, अनुग्रहमती, आलोकमती, अपूर्वमती, अनर्घ्यमती, अनुभवमती, अमन्दमती, अभेदमती ।

❑ ❑ ❑



जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का निःस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥



अनावरण से पूर्व पूज्य मुनिवर सुधासागर जी के चरणों में नमन करते हुए प्रो. रञ्जन सूरिदेव, पटना



आचार्य ज्ञानसागर जी के चित्र का अनावरण करते हुए डॉ. श्री रञ्जन सूरिदेव पटना



सगोष्ठी-मङ्गलकलश की स्थापना करते हुए श्री मूलचन्दजी राजेन्द्र कुमार जी पहाड़िया



सगोष्ठी-दीप प्रज्वलन करते श्री राजकुमार पहाडिया



महाकवि ब्र. भूरामल के सांस्कृतिक अवदान को निरुपित करते हुए मुनि पुङ्गव श्री



पूज्य मुनिवर सुधासागर जी के मुखारविन्द से ज्ञानामृत पान करते श्रोता गण के मध्य नगर के गणमान्य नागरिक–गण



संगोष्ठी में समागत विद्वद्गण मुनिश्री सुधासागर जी महाराज से निर्देशन प्राप्त करते हुए



पूज्य मुनिवर सुधासागर जी महाराज से धर्म–सुधा श्रवण करते हुए अपार जनसमूह के मध्य महिलावृन्द



संगोष्ठी में शोध पत्र प्रस्तुत करते वाराणसी के डॉ कमलेश कुमार जैन



संगोष्ठी संयोजक पं अरुण कुमार जी शास्त्री का सम्मान करते हुए श्री शान्तिलालजी कासलीवाल कमल रांवका आदि



उज्जेन के डॉ श्री रुद्रदेव जी त्रिपाठी का सम्मान करते हुए समिति के अध्यक्ष श्री सजन कुमार जी रानीवाला



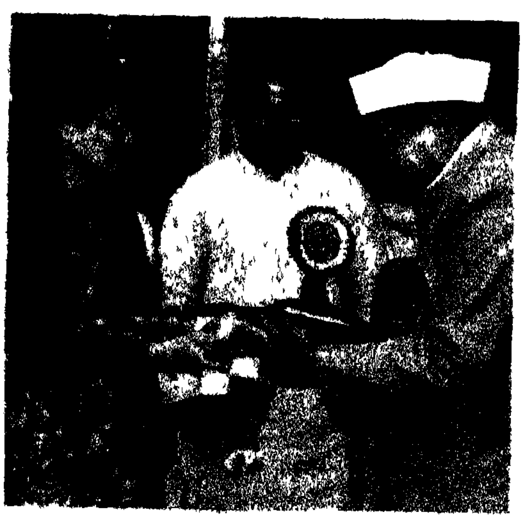
संगोष्ठी संयोजक डॉ जयकुमार जैन मुजफ्फर नगर का सम्मान करते हुए श्री राजेन्द्र गंगवाल



पृज्य मुनि श्री संगोष्ठी में शोध-पत्रों की समीक्षा करते हुये



जिनवाणी सेवक विद्वानो के सम्मान समारोह में आर्शीवाद प्रदान करते हुए पूज्य मुनिपुङ्गव श्री



डॉ कोकिला सेठी का सम्मान करते हुए राजकुमार बड़जात्या एवम् कमल रांवका



महाकवि ब्र भूरामल स्टेच्यू स्थापना हेतु शिलान्यास विधि करते हुए

श्री शान्तिलाल जी गदिया, श्री राजकुमार पहाडिया साथ में पं अरुण कमार जी

सम्पादकीय

इस चराचर जगत् मे दृश्यमान/अदृश्यमान सकल घटनाचक्रों के अलैकिक-निरुपण के साथ हिताहित की कमनीय शिक्षा प्रदान करने का समर्थ माध्यम साहित्य है । सत्साहित्य हमारे तन-मन को हल्का कर हमें उस लोक मे विचरण कराता है जहाँ हम छल, द्वेष, ईर्ष्या, आदि असद्भावो से दूर होकर काव्यानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर मे निमग्न हो जाते हैं । साहित्यकार शब्दार्थ की वीणा से ऐसे हार्दिक तार छेडता है, कि पाठक का मन-मयूर नर्तन में निमग्न अपने अन्तस् के सकल कालुष्य का प्रक्षालन कर लेता है । कवि के काव्य ससार के माहात्म्य का वर्णन करते हुए ने कहा है ।

"अपारे काव्य ससारे, कविरेक. प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्व, तथेद परिवर्तते ।।

इस अपार काव्य रूप ससार में कविरूप प्रजापति अपनी काव्य प्रतिभा से रुचिशील ऐसे विश्व का निर्माण करता है, जहाँ पाठक अपने मिथ्या-स्वत्व का विसर्जन कर देता है । साहित्यकार की रमणीयार्थ प्रतिपादक जो सुललित रचनाएँ साहित्य-सदन के निर्माण के साथ यदि आत्मिक वैभव का वितान भी करती हैं और मोक्ष-महल के सोपान का भी सृजन करने में समर्थ होती हैं वे रचनाएँ सत्साहित्य की कोटि में आती हैं । साहित्य साधना से आत्मसाधना करने वाले कविर्मनीषी जगत् में अत्यल्प ही हैं । ऐसे ही कवियों में आत्मवैभव के विस्तारक रससिद्धि महाकवि ब्र भूरमल शास्त्री साहित्याकाश मे एक दैदीप्यमान चन्द्रवत् द्योतित हुए हैं जिन्होंने स्वत प्राक् पाच शताब्दियो से जैन काव्य सृजन परम्परा के अनावृत कपाटो को उद्घाटित किया है । इन्हीं महाकवि ने आनन्द स्नातस्वी काव्यो के साथ धर्म-दर्शन एवम् सिद्धान्त के चोबीस महनीय ग्रन्थों का प्रणयन किया एवम् साहित्याकाश मे जैन सस्कृति की पताका लहराती ।

महाकवि क्रान्तद्रष्टा थे, उनकी उक्तियाँ रुढिवादियो तथा स्थिति पालको को रास नहीं आयीं अत इस महान् प्रज्ञापुरुष को और इनकी कृतियों को सम्मान नहीं मिल सका और लम्बे समय तक प्राजल, निर्मल शब्दार्थ के प्रणेता महाकवि के साहित्यिक अवदान का इतिहास में समुचित अंकन नहीं हो सका सम्भवत महाकवि की बहुमूल्य एवम् युग को नवीन दिशा दिखाने वाली रचनाएँ भी किसी अन्धकार मे विलुप्त हो जाती यदि सन्त शिरोमणी आ विद्यासागर जी महाराज एवम् उनके शिष्य युवामनीषी मुनिवर्य श्री सुधासागर जी के भाव महाकवि ब्र भूरामल शास्त्री के साहित्योद्धार नहीं होते। यथा यदि मल्लिनाथ न होते तो कालिदास को, यदि आ अमृतचन्द्र एवम् आ जयसेन नहीं होते तो आ कुन्द कुन्दकुन्द को, एन्जिल और लेनिन नहीं होते तो कार्ल मार्क्स को, युग और एडलर नहीं होते तो फ्रायड को कौन जानता, उसी तरह यदि आज पू आचार्यवर्य विद्यासागर जी महाराज एवम् पू मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज समाज को सबोधित/सप्रेरित नही करते तो सभवत. जैन परम्परा के अनेकानेक विलुप्त आचार्यों व उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियो की तरह महाकवि ब्र भूरामलजी शास्त्री एवम् उनकी कृतियाँ भी काल के गाल मे समा जाती। परन्तु साहित्य जगत के एवम् जैन समाज के ही सद्भाग्य ही है, जिससे हमे महाकवि मिले तो उनकी रचनाओ को प्रसारित/प्रकाशित करने वाले प्रकाशपुञ्ज परमपुरुष मुनिश्री भी मिले, जिनके तप· सम्पन्न परमप्रतापी मङ्गल आशीष एवम सप्रेरणा से पूरे देश में आज महाकवि ब्र भूरामलजी (आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज) की अमृत कुम्भी रचनाओं पर समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जैन/अजैन सकल सुरभारती-समीक्षक मूर्धन्य विद्वान् अनुशीलन एवम् चर्चाओ मे निरत हैं । पुज्यश्री के सकल आशीर्वाद से आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की काव्यात्मक प्रतिभा व सकल कृतित्व को उजागर करने हेतु बहुआयामी शोध-अनुसधानो के गति मे तेजी आयी है ।

जैन धर्म-दर्शन एवम् सस्कृति के महान् प्रसारक, प्रचारक और सरक्षक इतिहास-पुरूष युवामनीषी, आध्यात्मिक सन्त पूज्य मुनिश्री की मङ्गलमयी प्रेरणा से श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सांगानेर में महाकवि ब्र भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर) साहित्य पर अ भा विद्वत् सगोष्ठी हुयी, जिसमें महाकवि भूरामल के सकल गन्थो पर शोधालेखों का वाचन किया गया एवम् विद्वत्समुदाय द्वारा महाकवि विरचित सकल साहित्य के प्रकाशन की आवश्यकता अभिव्यक्त की गयी

एवम् यह भी सुझाव दिया गया कि महाकवि की एक-एक स्थान पर पृथक्-पृथक् संगोष्ठी का आयोजन हो, ताकि उनके सकल ग्रन्थवर्णित तत्त्वों पर व्यापक चर्चा हो सके । अत परम् पूज्य मुनि प्रवर सुधासागर जी महाराज के अजमेर चातुर्मास के अवसर पर मुनिश्री के आशीष से उन्हीं के मङ्गलमय सान्निध्य में 'वीरोदय' महाकाव्य पर अ भा विद्वत् संगोष्ठी की आयोजना हुयी ही, इसके अतिरिक्त महाकवि ब्र भूरामल (आचार्य ज्ञानसागर) विरचित सभी चौबीसों ग्रन्थों के प्रकाशन का व्ययसाध्य एवम् समयसाध्य गुरुतर कार्य भी अजमेर की दानवीर समाज के सौजन्य से सम्पन्न हुआ। अजमेर की वीरोदय विद्वत्-संगोष्ठी में आचार्य ज्ञानसागर शब्दकोश निर्माण, ज्ञानसागर साहित्य पर शोधरत शोधछात्र को अपेक्षित सहायता प्रदान करने तथा दिसम्बर मास में आचार्य ज्ञानसागर की 'लघुत्रयी' पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजन का निर्णय लिया गया और संयोजन-भार हम दोनों को सौंपा गया ।

महाराज श्री का अजमेर में चातुर्मास चल रहा तथा अजमेर के निकटवर्ती किशनगढ़, केकड़ी, मालपुरा, नसीराबाद, कुचामन आदि स्थानो के साथ ब्यावर नगर के भी श्रावकगण अपने-अपने स्थानो पर मुनिश्री पदार्पण, सगोष्ठी हेतु आशीर्वाद प्रदान करने के निवेदन के साथ श्रीफल अर्पित कर रहे थे । परन्तु महाकवि की रचनाओं को जिस नगर की त्रिमूर्ति पं श्री हीरालाल शास्त्री, पं श्री प्रकाशचन्द्र जी जैन एवम् रतनलाल कटारिया के प्रबन्धन में गठित 'ज्ञान सागर ग्रन्थमाला' द्वारा प्रकाशित किया गया, जिस नगर में प पू मुनिवर के गुरु सतशिरो मणि आ विद्यासागर जी महाराज का आचार्यावस्था का प्रथम चातुर्मास हुआ, जिस नगर में जैन विद्या की प्राच्य पाण्डुलिपियों का विशाल पुस्तकालय श्री ऐ पन्नालाल दि जैन सरस्वती भवन है, उस नगर भाग्य और भी ज्यादा तब जगे, जबकि चातुर्मास पश्चात् विहार हेतु पूज्य मुनिवर के चरण ब्यावर की बढ़ गये । ब्यावर समाज को पूज्यश्री से सगोष्ठी हेतु आशीर्वाद भी मिल गया । अल्प समय में विद्वानों को स्थान की सूचना प्रदान की गयी ।

परम् पूज्य आचार्य श्री विरचित 'लघुत्रयी' ग्रन्थों के गहन गंभीर आलोकन पूर्वक आलेखित वैदुष्यपूर्ण निबन्धों/ शोध-पत्रों के वाचन के साथ उनकी व्यापक चर्चा की गयी । महाकवि की तीनों काव्यमयी कृतियों पर लिखित ये निबन्ध साहित्याध्येताओं के लिये अत्युपयोगी है । अत इनके प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव की गयी । गोष्ठी के दिन वाले सभी सत्रों में लेखों के वाचन एवम् चर्चा के पश्चात् पू मुनि श्री के समाधान परक एवम् जनसामान्य में उत्कृष्ट साहित्य अध्ययन की रुचि जागरण करने वाले प्रवचन होते थे । निबन्ध संकलन की गरिमा एवम् उपादेयता बढ़ाने की दृष्टि से हमारे विनम्र निवेदन पर पूज्यश्री ने उन प्रवचनों के सारांश को बिना किसी नोट्स या टेप के आश्रय से लिपिबद्ध कर दिया, यह पूज्य मुनिवर की अपूर्व मेधा का ही कमाल है । उक्त प्रवचन सारांशों को 'सत्र-समीक्षण' शीर्षक के अन्तर्गत दिया गया है ।

संगोष्ठी का आयोजन ब्यावर नगर में हुआ अत. इस नगर की धार्मिक सस्थाओ एवम् जिन मन्दिरो का विवरण भी प्रदान किया गया आशा है यह विवरण आगामी काल में सनद का काम दे सकेंगे ।

'लघुत्रयी मन्थन' शीर्षक ज्ञान अनुशीलन ग्रन्थ के प्रकाशन में प श्री प्रकाशचन्द जैन स्मृति निधि, ब्यावर, श्रीमान् शान्तिलाल कमल कुमार कासलीवाल, (फर्म ओरियन्ट ट्रांसपोर्ट), श्री दिगम्बर जैन समिति, ब्यावर, श्रीमान् कल्याणमल घेवरचन्द छाबड़ा, ब्यावर आदि ने आर्थिक सौजन्य प्रदान किया है, अतः स्मृति-निधि के निष्पादनकर्त्ता श्रीमान् मजनकुमार रानीवाला, श्री शान्तिलाल गदिया श्री राजकुमार बड़जात्या, श्री कैलाशचन्द सौगानी एवम् समिति सभी सदस्य गण व सभी सहयोगी धन्यवाद के पात्र हैं ।

निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टस् ने अल्पसमय में ग्रन्थ को सुन्दरतापूर्वक मुद्रित किया, जिसके लिये मुद्रक श्री जितेन्द्र पाटनी (पिन्टू) को मङ्गल कामनाएँ । जिनकी पावन प्रेरणा, आशीर्वाद एवम् सान्निध्य से सारस्वत महायज्ञ सहज-सम्पन्न हो जावें, उन समर्थ गुरुवर मुनिपुंगव श्री सुधासागरजी महाराज को सादर नमन ।

डा. जयकुमार जैन
261/3 पटेल नगर, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर

अरुणकुमार शास्त्री
श्री ऐ पन्नालाल दि जैन सरस्वती भवन, नशियाँ, ब्यावर

संगोष्ठी प्रतिवेदन

राजस्थान की धर्मप्राण नगरी ब्यावर में सेठजी चम्पालालजी रामस्वरूपजी की नसियाँ में परमपूज्य सन्तशिरोमणी आचार्य विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य परमपूज्य 108 सुधासागरजी महाराज, पूज्य क्षु. गंभीरसागरजी महाराज एवं पूज्य क्षु धैर्य सागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में दिनाङ्क 22, 23, 24 जनवरी 1995 को आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रीय सङ्गोष्ठी का भव्य आयोजन हुआ, जिसमें आचार्य श्री द्वारा विरचित सुदर्शनोदय, समुद्रदत्तचरित एवं दयोदयचम्पू इन तीन काव्यो के विविध पक्षों पर भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध दो दशक से भी अधिक विद्वानो ने शोधपत्र वाचन एवं चर्चा-परिचार्चा के माध्यम से समोजोपयोगी जिनागम प्रतिपादित तथ्यों को प्रस्तुत किया । इस सङ्गोष्ठी में सात सत्रों की समायोजन हुई, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

प्रथम् सत्र

संगोष्ठी का प्रथम सत्र दिनाङ्क 22 10 95 को प्रात 8 बजे से पूज्य मुनिश्री एव क्षुल्लक द्वय के सान्निध्य में डॉ अशोककुमार जैन, लाडनू के मंगलाचरण से प्रारंभ हुआ । इस सत्र की अध्यक्षता डॉ शीतलचन्द जैन जयपुर ने की तथा संयोजन के दायित्व का निर्वाह पं अरुणकुमार जैन शास्त्री, ब्यावर ने किया व मगल कलश की स्थापना उदारमना श्रीमान् मूलचन्दजी पहाड़िया, ज्ञानदीप प्रज्वलन श्री चिंरजीलालजी पहाडिया तथा चारित्र चक्रवर्ती आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के चित्र का अनावरण उद्‌भट विद्वान् डॉ श्री रंजन सूरिदेव, पटना के द्वारा किया गया । संगोष्ठी की उपयोगिता के सम्बन्ध में संगोष्ठी के संयोजक डॉ जयकुमार जैन एवं प अरुण कुमार जैन शास्त्री ने वक्तव्य दिया तथा समागत विद्वानो का अभिनन्दन किया । अन्त में परमपूज्य मुनिवर सुधासागरजी महाराज के मगलमयी प्रवचन हुए तथा जिनवाणी की स्तुति के साथ सत्र का समापन हुआ ।

द्वितीय सत्र

द्वितीय सत्र का प्रारंभ अपराह्न 1 30 बजे से ससघ मुनिश्री के पावन सान्निध्य में डॉ कमलेश कुमार जैन वाराणसी के मंगलाचरण से हुआ । इस सत्र की अध्यक्षता प्रख्यात मनीषी डॉ रुद्रदेव त्रिपाठी, उज्जैन ने तथा संयोजन डॉ कपूरचन्द जैन खतौली ने किया । सर्वप्रथम श्रीमती प्रेमकान्ता, श्रीमती मुन्नी, सुश्री नीरु ने संस्कृत में रचित स्वागत मान तथा डॉ सुशील पाटनी अजमेर ने हिन्दी मे रचित स्वागतगीत द्वारा अतिथि मनीषियो का स्वागत किया । आयोजक समिति की ओर से श्री धर्मचन्दजी मोदी ब्यावर ने स्वागत वक्तव्य दिया । इसके बाद डॉ जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर ने अभ्यागत विद्वानों का परिचय दिया तथा दि जैन समिति के सदस्यों वं समाज के गणमान्य महानुभावो ने विद्वानों का हार्दिक स्वागत किया। इस सत्र में डॉ शीतल चन्द जैन जयपुर ने ''सुदर्शनोदय एव दयोदय में अणुव्रत विवेचन'' डॉ कमलेश कुमार जैन वाराणसी ने 'सुदर्शनोदय का महाकाव्यत्व' डॉ रमेशचन्द, जैन बिजनौर 'सुदर्शनोदय का काव्यात्मक वैशिष्ट्य' विषय पर शोधपत्रो का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ त्रिपाठी ने पठित शोधपत्रो की समीक्षा का हमारी दृष्टि में सुदर्शन का द्वय, हृदय में दया का उदय तथा आचरण में समुद्रदत्त चरित्र के नायक भद्रोमित्र आ जाये, यही गोष्ठी की सफलता होगी । अन्त में पूज्य मुनिश्री सुधासागर जी महाराज का मगल प्रवचन हुआ ।

तृतीय सत्र

23 01 95 को प्रात 8 बजे ससघ मुनि की के पावन सान्निध्य में डॉ कपूरचन्द जैन खतौली के मंगलाचरण से प्रारम्भ हुआ । इस सत्र की अध्यक्षता प्राचार्य निहालचन्द जैन बीना ने तथा संयोजन युवा विद्वान् डॉ सुरेन्द्र भारती बुरहानपुर ने किया । ज्ञानदीप का प्रज्वलन डॉ डी सी सोगानी साहब ने किया । इस सत्र में डॉ जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर ने 'लघुत्रयी में प्रतिपादित सामाजिक जीवन' डॉ अशोककुमार जैन लाडनू ने 'सुदर्शनचरित्र सम्बन्धी साहित्य एवं सुदर्शणचरित्र तथा सुदर्शनोदय का तुलनात्मक अध्ययन और डॉ कोकिला सेठी जयपुर ने 'लघुत्रयी में नारीपात्रों का वैशिष्ट्य' विषय पर शोधपत्रों का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य में प्राचार्य निहालचन्दजी ने सत्र में पठित आलेखों की समीक्षा की। अन्त में पूज्य महाराज श्री का मांगलिक प्रवचन हुआ, जिसमें हमे दहेज जैसी ज्वलन्त समस्या के निराकरण हेतु संकल्पित होने की प्रेरणा मिली ।

चतुर्थ सत्र

दिनाङ्क 23 01 95 को ससंघ मुनिश्री के सान्निध्य में चतुर्थसत्र का प्रारंभ श्री कमल जैन रांवका के मंगलाचरण से हुआ एव दीप प्रज्वलन श्री सुशीलचद जी सा बाकलीवाल ने किया । इस सत्र की अध्यक्षता मूर्धन्य विद्वान् डॉ रमेशचन्द जैन, बिजनौर तथा संयोजन डॉ कमलेशकुमार जैन, वाराणसी ने किया । इस सत्र में प्राचार्य निहालचन्द जैन बीना ने विश्व की ज्वलन्त समस्याएं लघुत्रयी के परिप्रेक्ष्य में' डॉ श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत ने 'लघुत्रयी में सैद्धान्तिक अनुशीलन' तथा डॉ, फलूचन्द प्रेमी से सुमुद्रदत्तचरित

में प्रतिपादित श्रावकाचार' विषयों पर शोध अलेखो का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य मे त्याग की महिमा बताते हुए डॉ रमेशचन्द्र जैन ने सत्र में पठित शोध-पत्रों की समीक्षा की । तदनन्तर पूज्य सुधासागर जी महाराज के मगलमयी प्रवचन के साथ सत्र का समापन हुआ ।

पचम सत्र

दिनाक 23/01/95 को रात्रि में 7 बजे से पञ्चम सत्र डॉ सुरेन्द्र भारती के मंगलाचारण से प्रारंभ हुआ । इस सत्र की अध्यक्षता डॉ फूलचन्द प्रेमी वाराणसी ने तथा सयोजन डॉ श्रेयासकुमार जैन बडौत के किया । इस सत्र में डॉ श्रीकान्त पाण्डेय बडौत ने 'दयोदयचम्पू का काव्यगत वैशिष्ट्य' युवा विद्वान डॉ सन्तोषकुमार जैन सीकर ने 'लघुत्रयी में जैनेतर प्रसग, डॉ भागचन्द जैन भास्कर ने 'लघुत्रयी में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति तथा डॉ कपूरचन्द जैन खतौली ने 'संस्कृत जैन चम्पूकाव्य और दयोदयचम्पू' विषयों पर शोधपत्रो का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य मे डॉ प्रेमी ने शोध आलेखो की समीक्षा करते हुए युवा विद्वानो की समस्याओं के निराकरण हेतु समाज का आह्वान किया ।

षष्ठ सत्र

दिनाक 24/1/95 को प्रात 8 बजे से पूज्य मुनिश्री एव क्षुल्लकद्वय के पावन सान्निध्य मे षष्ठ सत्र का प्रारम्भ डॉ श्रेयासकुमार जैन के मगलाचरण से हुआ ।

मगलद्वीप प्रज्वलन श्री अशोककुमार जी पहाडिया ने किया । इस सत्र की अध्यक्षता डॉ भागचन्द जैन भास्कर नागपुर ने की तथा सयाजन डॉ अशोक कुमार जैन लाडनू ने किया । इस सत्र में डॉ सुरेन्द्र भारती बुरहानपुर ने 'सुदर्शनोदय की पात्रयोजना वहतकाव्य के समुद्रदत्त डॉ श्रीरंजनसूरिदेव पटना ने 'लघुत्रयी शब्दालंकार' विषयों पर अपने मार्गभित आलेखो को प्रस्तुत किया। सुधासागर जी महाराज के मगलमयी प्रवचन हुये । उन्होंने सबको वर्तमान सुधारने की प्रेरणा दी, क्योंकि अतीत में तो सबमे कालिमा थी ।

समापन सत्र

दिनाक 24/1/95 को अपराह्ण 1 30 बजे से समापन सत्र का प्रारम्भ श्री धर्मचद मोदीके मंगलाचरण मे हुआ। मगलदीप प्रज्वलन श्री मान् प्रीतमकुमारजी देवेन्द्रकुमारजी फागीवाला ने किया । इस सत्र की अध्यक्षता डॉ श्रीरजनसूरि देव पटना तथा सयोजन दोनो संगोष्ठी संयोजको ने सयुक्त रूप से किया । इस सत्रमें श्री प अरुणकुमार शास्त्रीने अपना शोधपत्र 'सुदर्शनोदय मे दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया तथा श्री पंच मूलचन्द जी लुहाडिया सा किशनगढ ने समुद्रदत्त जी के मालिक तत्त्व विवेचन पर अपना वक्तव्य दिया ।

चर्चा परिचर्या

चर्चा परिचर्चा मे श्री के सी सोगानी, श्री मुकुन्दशरण उपाध्याय श्री धर्मचन्द जी मोदी, श्री महावीरप्रसादजी अजमेर जोधपुर, श्री सुरेशचन्द पारीक श्री मूलचन्द सा लुहाडिया श्री खेवरचन्द जी ब्यावर, श्री प दयाशकर जी शास्त्री श्रीकान्त जी रावका श्री मित्रसेन श्री हीरालाल कोठारी अजमेर आदि प्रबुद्ध मनीषियो ने भाग लेकर इस सगोष्ठी की गरिमा बढाई, वे सब धन्यवाद के सुपात्र हैं ।

कृतज्ञता ज्ञापन

इस सारस्वत समाराह (राष्ट्रीय-विद्वत् सगोष्ठी) के आयोजनार्थ श्री प प्रकाशचन्द्र जैन स्मृति निधि ब्यावर तथा श्री दिगम्बर जैन समिति ने सौजन्य प्रदान किया, अत हम स्मृति निधि के ट्रस्टी श्रीमान् सजनकुमारजी सा रानीवाला, श्री शान्तिलालजी गदिया, श्री राजकुमारजी बडजात्या एव श्री कैलाशचन्दजी सोगानी तथा समिति के अध्यक्ष श्री सजनकुमराजी रानीवाला उपाध्यक्ष श्री शान्तिलालजी कासलीवाल, महामत्री श्री कैलाशचन्दजी बडजात्या, मन्त्री श्री कमलकुमार रांवका, समारोह सयोजक श्री धर्मचन्दजी मोदी सहित समस्त पदाधिकारी एवम् समिति के सभी सेवाभावी सदस्य-गण कोटिश साधुवाद के पात्र हैं ।

पं प्रकाशचन्द्र जैन स्मृति निधि के उक्त ट्रस्टी महानुभावो, श्री शान्तिलालजी कमलकुमारजी कासलीवाल (फर्म-ओरियन्ट मेलस्पीड ट्रासपोर्ट) श्री कल्याणमल जी छाबडा के औदार्य से इस महनीय ग्रन्थ का प्रकाशन सभव हुआ, अत आप सबके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा कर्त्तव्य है ।

संगोष्ठी में सभागत विद्वानो के सुन्दर आतिथ्य के लिये श्रीमान् ताराचन्दजी बडजात्या परिवार के सदभाव प्रशंसनीय हैं।

सगोष्ठी विषयक विविध व्यवस्थाओं में ब्यावर नगर के सेवाभावी परिश्रमी युवकों की सेवाये स्मरणीय रहेगी, इनमें प्रमुख हैं सर्व श्री कमलकुमार गगवाल, राजेन्द्रजी गगवाल, मा सा घनश्याम जी जैन, सुशील जैन व सन्तोष कासलीवाल, 'टीटू' एवम् श्री जितेन्द्र गगवाल । ''पचमकाल में युवकवृन्द ही धर्म की गाडी खींचेगे'' चन्द्रगुप्त मौर्य के इस स्वप्नफल को साकार करेंगे ।

इसके अतिरिक्त कृतज्ञता-ज्ञापन उन अनाम मित्रो के नाम जिन्होंने इस सारस्वत-प्रासाद बनने के बजाय नींव के पत्थर बनने में अपनी सच्ची सहभागिता प्रदान की । **संयोजक**

डॉ जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर   अरुणकुमार जैन (शास्त्री) ब्यावर (राज)

सत्र-समीक्षण

चेतन एवम् अचेतन कृतियों के रचयिता

(संगोष्ठी में प्रथम सत्र पर पू. मुनिवर श्री द्वारा प्रवचन एवं चर्चा समाधान)

पू. मुनिप्रवर श्री सुधासागरजी महाराज

आज गोष्ठी का प्रथम सत्र प्रारम्भ चल रहा है जिसमें राजस्थान के शाहंशाह के कृतित्व को विद्वान अपनी प्रतिभा से समाज के सामने उद्घाटित करेंगे। एक राजनीतिक बादशाह होता है, जो अपनी राजनीति से साम दण्ड भेद नीतियों से रणनीति तैयार कर स्व पर का संहार करता हुआ तलवार के भय से दूसरों को झुकाता है लेकिन एक होता है ज्ञान का बादशाह जो साहित्य के बल पर स्व और पर के अनुशासन का मार्ग प्रशस्त करता है। साहित्य का अर्थ यह होता है कि जिसमें स्व और पर का हित निहित हो। आचार्य ज्ञानसागर (महाकवि भूरामल) ऐसे ही "शब्द साहित्य" के बादशाह थे जिनकी लेखनी के इशारे पर शब्द नर्तन करते थे और शरणागत हो उनकी ज्ञान-प्रतिभा के अनुसार अनुचरण करते हुए काव्यगत विषय में यथा-स्थान सहजता से विराजमान हो जाते थे। इसलिये इनकी कृतियों में जहाँ साहित्यिक दुरुहता दृष्टिगोचर होती हैं, वहीं सरल शब्दों का प्रयोग अर्थ के गाम्भीर्य को सहजता से पाठक को अवगत करा देता है। इनकी कृतियों में ओज प्रसाद और माधुर्य गुण पाठक को पदे पदे दृष्टिगोचर होती है तथा रजो एवम् तमो गुण की हेयता तथा सतो गुण की उपादेयता उपसंहार में नियम से दृष्टिगोचर होती हैं।

भोग और योग की संगति को एक साथ स्थापित करना एक म्यान में दो तलवारों की स्थापना जैसा असम्भव प्रतीत होता है। भोगी व्यक्ति की शब्द साधना चेतना शून्य होती है।

वे तो कागजी घोड़ों पर मात्र पुस्तकीय ज्ञान को आधार लेकर दौड़ते हैं। लेकिन जब वही शब्द एक योगी की जीवन्त साधना से साधित होते हैं तब अनुभव के रस में पड़ कर शब्द पर्याय अचेतन होते हुए भी चित चमत्कार रूप परिणत होकर पर को साधर्यता का रसास्वादन कराते है। जैसे पद दलित मृत्तिका कुशल कुम्हार की हस्त दक्षता से / संयोग से मंगलकलश का रूप धारण कर मानव के उत्तमांग पर विराजमान होने की योग्यता से अलंकृत हो जाती है।

महाकवि भी एक योगी थे उन्होंने साहित्य साधना के साधक बनने के लिये आजीवन बाल ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार किया था और उन्होंने अपनी सारी ऊर्जा को साहित्य साधना में परिवर्तित करके समाज के सामने 24 शास्त्रों का प्रकाश पुंज प्रस्फुटित किया। सन 1947 पर राष्ट्रीय पक्ष की दृष्टि से विचार करते हैं तो उसी सन् में हमारा भारत देश परतंत्रता पाश से मुक्त होकर स्वतंत्रता को प्राप्त हुआ था और इसी सन् में महाकवि ने ज्ञान साधना को महायज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित करने हेतु जो दर्शनानुसार सप्तम प्रतिमा अर्थात ब्रह्मचर्य प्रतिमा को अंगीकार कर इंद्रियों की दासता से मुक्त होकर आत्मिक स्वतंत्रता को प्राप्त किया था। इस स्वतंत्रता के प्राप्ति के बाद आत्मा कहीं स्वतंत्रता की आड़ में स्वच्छन्द विचरण न करने लग जाय इसलिये आप श्री ने अपने जीवन को साहित्य सृजन (विधान) की सीमाओं के तहत अपने जीवन को प्रवाहित करने का उपक्रम चलाया। जैसे देश स्वतंत्र होने के बाद देश में स्वच्छन्दता व अराजकता न फैल पाये इसलिये विधान तैयार किया गया जिसका प्रतीक गणतंत्र दिवस (संविधान दिवस) है। स्वतन्त्रता दिवस अगर सत्य है और उस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये गणतंत्र दिवस एक प्रहरी के रूप में माना जाता है। उसी प्रकार महाकवि ने ब्रह्मचर्य व्रत लेकर स्वतन्त्रता हासिल करने के बाद इस स्वतन्त्रता की रक्षा करने हेतु 4 4 महाकाव्य संस्कृत हिन्दी काव्य रचकर एवम् पूर्वाचार्य प्रणीत अनेक ग्रन्थों को अनुदित एवं सम्पादित करके अपने जीवन को गणतंत्र

मय बनाया । इसी के परिणाम स्वरूप आगे जाकर उन्होंने दिगम्बरत्व जैसे असिधारा व्रत को धारण कर अन्त में आगमानुकूल 6 मास 10 दिवस की सल्लेखना क्रमश एवं अन्त में चार दिनों तक चतुर्विध आहार का त्यागकर कषाय एवं काय को कृश करते हुये समीचीन रूप से आत्मा का लेखन शोधन करके समाधि को प्राप्त किया । जैन शास्त्रों में कहा है कि जो सल्लेखना पूर्वक मरण करता है, वो 2-3 भव या अधिक से अधिक 7-8 भव धारण कर नियम से शुद्धत्व/सिद्धत्व रूप शाश्वत पद को प्राप्त कर लेता है ।

साहित्य शब्द का यदि शाब्दिक अर्थ दृष्टि में रखते हैं, तो आचार्य ज्ञानसागर ने चैतन्य और जड़ रूप शब्द 2 प्रकार से साहित्य का सृजन किया और दोनों प्रकार के साहित्य से प्राणी मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ है । चैतन्य कृति से तो सभी परिचित हैं, जिन्हे आचार्य विद्यासागरजी के नाम से जाना जाता है, महाकवि ने इस चैतन्य कृति को रचकर इस कलिकाल रूपी अमावस्या की निशा में मानो चन्द्रमा को उदित कर दिया है । इस कृति की रचना से समाज का कितना बड़ा उपकार हुआ है । इसका वर्णन कहा नहीं जा सकता । मैं जो आज आपकी समाज में रत्नत्रय को धारण करके बैठा हूँ, मो यह इन्हीं महाकवि द्वारा सृजित चैतन्य कृति से प्रसूत कृति हूँ ।

अचेतन काव्यो के सम्बन्ध मे तो विद्वान लोग आपको इन 3 दिनों मे बतायेंगे कि महाकवि के ग्रन्थों से कितना बड़ा उद्धार/उपकार हुआ है ।

जब मैंने महाकवि का साहित्य पढा, तब एक विकल्प मेरे मन में आया, कि इतने बडे महान साहित्यकार के कृतित्व का इतने वर्षों तक आदर क्यों नहीं हुआ समाज और विद्वानो ने इसका प्रचार प्रसार क्यो नहीं किया । मैं तो यही मानता हूँ कि भारत एव भारतवासीयो का यह स्वभाव है कि ये महान व्यक्ति के मरणोपरांत उसके नाम को पद्म भूषण या भारत रत्न जैसी उपाधियो से विभूषित करते हैं ।

दूसरी मिशाल जैन इतिहास में देखने को मिलती है कि कुन्द-कुन्द स्वामी जब हुए उस समय उनका इतना प्रभाव नहीं था , और कुन्द-कुन्द स्वामी को लगभग 1000 वर्षों तक किसी ने भी उनको समझने का प्रयास नहीं किया, और न ही किसी ने उसके साहित्य को सिर पर उठाकर उसके अर्थ गाम्भीर्य को भव्य जीवो के लिए प्रचारित प्रसारित किया । तदुपरान्त 1000 साल के बाद अमृतचन्द सूरि एव जयसेन स्वामी ने उनके साहित्य सागर में गोते लगाकर रत्नो को निकला तथा आत्म ख्याति एव तात्पर्य वृति नाम की टीकाओ की डोरी के माध्यम मे इनकी गाथाओं रूपी रत्नों से गुथित कर हार बनाकर भव्य मुमुक्षु जीवो को पहिनाकर उनके आध्यात्मिक जीवन को अलकृत करते हुए इस जगत् मे अध्यात्म का ध्वजारोहण कर कुन्द-कुन्द के व्यक्तित्व को "कुन्द-कुन्द आम्नाय" के रूप मे स्थापित किया । आज वर्तमान मे कुन्द-कुन्द का इतना महत्त्व ज्ञात हो रहा है कि हर दिगम्बर अपने आप को कुन्द-कुन्द आम्नायानुसार कहकर गौरवान्वितता का अनुभव करता है । ऐसी ही कुछ स्थिति महाकवि के सम्बन्ध में भी प्रतीत होती है । जिस समय इन्होंने काव्यो की रचना की, उस समय समाज ने इन काव्यो का कोई बहुमान नहीं किया, और न ही उनके जीवन काल में विद्वानो ने उनके साहित्य को मथन करने का प्रयास किया, उनके मरणोपरात आज कई वर्षों बाद विद्वान लोग इनके साहित्य सागर में से रत्न निकालने के लिए प्रयासरत हैं । पचासो विद्वानो से विगत 3 गोष्ठियों में (सागानेर, अजमेर, ब्यावर) सैकड़ों लेख लिखने के बावजूद भी यही महसूस कर रहे हैं कि इनके साहित्य सागर में तो इतने रत्न भरे हैं, कि ऐसी गोष्ठियाँ यदि कई वर्षों तक निरन्तर चलती रहे तो भी पूर्ण खजाना नहीं निकाला जा सकता । जिन 3 ग्रन्थों पर लघुत्रयी नाम से गोष्ठी की जा रही है । इस सम्बन्ध में डॉ रजन सूरि जी का कहना है कि यह लघुत्रयी नहीं, यह तो बृहत्त्रयी है । वस्तुत सत्य ही है कि ज्ञान सागर के साहित्य में नवीन शब्दों का प्रयोग एवं शब्द प्रयोग की कला के माध्यम से कथा वस्तु को काव्यत्व के रूप में प्रस्तुत करने में शब्द साधना के चमत्कार को प्राप्त करने में सिद्ध साधकता को प्राप्त होते हैं ।

आचार्य ज्ञानसागर (ब्र भूरामल) समन्तभद्र स्वामी की विचारधारा का अनुकरण करते हुए प्रतीत होते हैं, प्राय लेखक ने अपने काव्यो में कहीं न कहीं किसी न किसी रुप मैं समन्तभद्र को जरुर याद किया है। जिस प्रकार समन्तभद्र स्वामी ने आदर्श गुणों को धारण करने वाले निम्न जाति के जीवो को ही प्रासंगिक करके पतितो को भी उद्धार करने का मार्ग प्रशस्त किया । जैसे सम्यग्दर्शनादि गुणों में अञ्जन, चोर, शूकर, आदि-2, इसी प्रकार आ , ज्ञानसागरजी महाराज

की विचारधारा थी कि शुद्र कुल में जन्म लेने से कोई शुद्र नहीं हो जाता है । और उच्च कुल में जन्म लेने से कोई उच्च नहीं हो जाता। उच्चता और नीचता तो आचरण पर आधारित होती है ।

लघुत्रयीं में ही देखिए उच्चवर्णी राज्य श्रेष्ठी गुणपाल सेठ अधर्मी सिद्ध होता है । वहीं दूसरी और दयोदय मे मृगसेन जैसा नीचगोत्री धीवर अहिंसा व्रत को धारण कर प्रंशसा का पात्र बनता हैं । सुदर्शनोदय महाकाव्य में मनोरमा का जीव पूर्व भव में धोबिन (रजक) की पर्याय मे क्षुल्लिका के व्रत को धारण करती है, और भी अन्य उदाहरण महाकवि ने प्रस्तुत किये है जैसे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न कपिला ब्राह्मणी एवं राज्यकुलोत्पन्न अभयारानी अपने दुष्कृत्यों के कारण दुनिया में निन्दा का पात्र बनती हुई दुर्गति को प्राप्त होती है, दुनिया में जो भी गत्यागति होती है, वह अच्छे और बुरे आचरण के अनुसार होती है । अर्थात् जिसका आचरण अच्छा हैं, वह उच्च कुलीन माना जायेगा, जिसका आचरण खराब हैं, वह नीच कुलीन माना जायेगा ।

जैन शास्त्रों एवं वैष्णव शास्त्रों को पढने के बाद भी यही प्रतीत होता है कि वर्ण व्यवस्था जो हमारे भारत वर्ष में बनाई गयी थी वह आचरण के आधार पर बनाई गयी थी ' जन्मना जायते शुद्र '' गीता का यह वाक्य इसी बात को सिद्ध करता है । आज जो वर्ण के अहंकार में आकर, धर्म का बंटवारा कर देशमें जो सांप्रदायिकता की दीवारे उठाई जा रही है । यह प्राचीन ऋषिमनीषीयों एवं, शास्त्रों की भावना पर कुठाराघात ही है । आज देखा जाता है कि ब्राह्मण अपने आप को वैष्णव धर्म का ही अधिकारी मानने लगे और वैश्य वर्ण में उत्पन्न वैश्य अपने आप को जैन धर्म का अधिकारी मानने लगे । कहा जाता है कि ब्राह्मणों को जैन शास्त्रों ने उच्च स्थान नहीं दिया, तो मैं कहना चाहूँगा कि महापुराण में स्पष्ट कहा गया है कि तीनों वर्णों मे ब्राह्मण वर्ण उच्च हैं, ओर पूज्य की कोटि मे आता है। वहा पर यह भी हिदायत दी है, कि मात्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने से प्रशंसनीय नहीं हैं । बल्कि किसी भी कुल में व किसी भी वर्ण में जन्म लेने वाला व्यक्ति यदि अपने जीवन मे अहिंसा,सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, व्रत एव 3 गुण 4 शिक्षाव्रत इन 12 व्रतो को धारण कर लेता है, वही यथार्थ ब्राह्मण हैं । ऐसा ब्राह्मण उच्चता को कोटि में आता हैं

इससे सिद्ध होता है कि जैन शास्त्रों मे चारो वर्णों को आचरण शुद्धि के आधार पर जैनत्व से चिह्नि किया जा सकता है अर्थात उन्हें जैन कहा जा सकता है । जैन कोई जाति नहीं हैं बल्कि त्याग तपस्या वे मूर्च्छा और वासनाओ को पराजित करने वाली साधक दशा का नाम है ।

दयोदय मे महाकवि ने मृगसेन धीवर एव धीवरण को वेदो का ज्ञाता सिद्ध करके उन पतितो का कितना बडा उद्धार किया है, जिन पतितो के कानो मे यदि वेदो के शब्द अनायास पड जाते थे तो वेदो पर अधिकार करने वाले धर्म के ठेकेदारों द्वारा लोहा पिघला कर कानों मे डाला जाता था, ऐसे धीवर भी वेदो के ज्ञाता होते हैं, यह बात लेखक ने सिद्ध करके अपनी भारतीय सस्कृति की विशालता को प्रदर्शित करते हुए अहकारवादिता एव कूपमण्डूकता को नष्ट किया है, ये तीनो ग्रथ वस्तुत. प्रत्येक श्रावक को पठनीय है ।

अणु से महास्कन्ध

(द्वितीय सत्र समीक्षण)

(संगोष्ठी के द्वितीय सत्र पर पूज्य मुनिवर श्री द्वारा प्रवचन एवम् चर्चा समाधान)

- पू मुनिवर्य श्री सुधासागरजी महाराज

आज गोष्ठी का दूसरा सत्र चल रहा है । इस सत्र में पहला लेख सुदर्शनोदय महाकाव्य एवं दयोदय चम्पू में अणुव्रत विवेचना पर वाँचा गया अणुव्रत का अर्थ होता है, छोटा व्रत- इसके दो भेद हैं -एक शाब्दिक दूसरा रूढ ।

शाब्दिक का अर्थ - जैसे (दयोदय में) मृगसेन धीवर ने सम्पूर्ण सकल्पी हिंसा का त्याग न करके मात्र जाल में जो प्रथम मछली के प्राणों की रक्षा का सकल्प किया था ।

दूसरा रूढ अर्थ है कि जैन शास्त्रानुसार चरणानुयोग ग्रन्थो में पंच पापो का स्थूलता पूर्वक त्याग करना अणुव्रत कहते हैं

(1) अहिंसाणुव्रत का अर्थ है कि संकल्पी हिंसा का त्याग करना । अर्थात् अहिंसाणुव्रत धारी संकल्प पूर्वक त्रस जीवो की विराधना तो करेगा ही नहीं, बल्कि निष्प्रयोजन स्थावर हिंसा भी नहीं करेगा ।

(2) सत्याणुव्रती हमेशा सत्य बोलने का प्रयास करता हैं उसमें भी ऐसा सत्य नही बोलता जिससे दूसरे जीवो के जीवन एवं आजीविका का विनाश हो ।

(3) अचौर्याणुव्रती बिना दी हुई दूसरे की वस्तु को ग्रहण नहीं करता ।

(4) ब्रह्मचर्याणुव्रतधारी अपनी पत्नी को छोडकर संसार की समस्त स्त्री को मा- बहिन एवं पुत्री के समान मानता है।

(5) अपरिग्रह अणुव्रतधारी दसों प्रकार के परिग्रहो को सीमित कर इच्छाओ को सीमित करता हैं ।

इन पाचो अणुव्रतो को धारण करने वाले को आगम मे अणुव्रती कहा जाता है, अथवा इन्हीं पाँच अणुव्रतों के साथ तीन गुणव्रत दिग्व्रत, देशव्रत अनर्थदण्डव्रत तथा चार शिक्षाव्रत सामायिक प्रोषधोपवास भोगोपभोग, अतिथि सम्विभाग को मिला देने पर बारहव्रतो को अगीकार करने वाले को अणुव्रती कहा जाता हैं अथवा इन बारह व्रतो सहित क्रमश सामायिक प्रोषधोपवास सचित त्याग, दिवा मैथुन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, अनुमति त्याग परिग्रह त्याग एव उद्दिष्ट भोजन का त्याग रूप प्रतिमा धारण करता है वह अणुव्रती कहलाता है अथवा करणानुयोग की विवक्षा मे दूसरी प्रतिमा से लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका एवं आर्यिका भी आ जाती है । आर्यिकाओ को उपचार से महाव्रती की संज्ञा प्राप्त होने के बावजूद भी पचमगुण स्थान ही इनका रहता है तथा प्रत्याख्यानावरणी कषाय का वेदन आर्यिका को क्षुल्लक, ऐलक के समान होता है परिग्रह (साडी) के सद्भाव होने से ।

उपरोक्त समस्त प्रकार के (ऐलक क्षुल्लक को छोडकर) अणुव्रतों की रूपरेखा इस लघुत्रयी मे प्रतिपादन की गई है । जहा तक ग्यारह प्रतिमाओ का सवाल हैं, तो लेखक ने मुनि सुदर्शन द्वारा देवदत्ता वेश्या को उपदेश के रूप मे ग्यारह प्रतिमाओ का स्पष्ट वर्णन है जिसे लेख वाचक को अपने लेख मे दर्शाते हुए "सुदर्शनोदय मे वर्णित ग्यारह प्रतिमाओ का स्वरूप एव आगम मे वर्णित प्रतिमाओ के स्वरूप मे क्या अन्तर है" यह बताना चाहिए था । क्योंकि इसमे अन्तर है । समयाभाव के कारण मे अपने प्रवचनो मे इस अन्तर को अभी प्रदर्शित नही कर पा रहा हू । मात्र सकेत लेख वाचक को दे रहा हूँ ।

सुदर्शनोदय मे दो बार पचाणुव्रतो का वर्णन आया है । सुदर्शन के पिता जब दीक्षा लेते है उस समय सुदर्शन भी दीक्षा लेने का भाव करता है । लेकिन मुनिराज से कहता है कि मेरा मन इस मनोरमा के परस्पर प्रेम मे रमा हुआ है । तब वही मुनिराज सुदर्शन और मनोरमा के परस्पर प्रेम के कारण पूर्व भवो का सस्कार बताते हुए उनके पूर्व भवो का वर्णन करते है । इन्हीं भवो के वर्णन मे मनोरमा का जीव जब धीवरी की पर्याय मे था तब आर्यिका की संगति से क्षुल्लिका बन कर पचाणुव्रत की पालना करता है । पचाणुव्रत का वर्णन यहा पर किया गया है तथा यही मुनिराज जब पूर्व भवो को बताने के बाद दम्पति को पचाणुव्रत का उपदेश देते है, तब भी काव्य मे पचाणुव्रतो का वर्णन यहा पर किया है । इन दोनो प्रसगो में वर्णित अणुव्रतो मे परस्पर अन्तर है । इस अन्तर के लिये लेखवाचक को अपने लेख मे दर्शाना चाहिये था तथा अभी प्रश्न आया था सुदर्शन के जीवन मे मात्र ब्रह्मचर्याणुव्रत (स्वदार सतोष रूप) था ऐसी बात नही है । सुदर्शनोदय काव्य मे स्पष्ट कहा है कि पचाणुव्रत का उपदेश मुनिराज से सुनकर दम्पती ने ... कह कर उन कथित समस्त व्रतो को स्वीकार किया था । हा, सुदर्शन को या किसी भी पात्र को स्पष्ट रूप से गुणव्रत या शिक्षाव्रतो को ग्रहण करते हुए नहीं दिखाया है । अष्टमी चतुर्दशी को जरूर सुदर्शन प्रोषधोपवास पूर्वक श्मशान में जरूर प्रतिमा योग धारण करता था । इस आचरण के परिशेष न्याय से निर्णय कर सकते है कि सुदर्शन 12 व्रतो का धारी था ।

इसी प्रसग मे विचारणीय विषय है कि इस काव्य मे क्षुल्लिका को मात्र एक साडी को तथा एक भाजन पात्र रखने का विधान किया है । साडी के अलावा अलग से एक और दुपट्टा रखने का विधान नही किया है । लेकिन वर्तमान मे क्षुल्लिकाए दुपट्टा रखती है । एक प्रसग सद्धांतिक यह कि क्षुल्लिका द्वारा पचाणुव्रत लेने के बाद भी उसके

सम्यग्दर्शन सहिता, पंचमगुण स्थान रूप भाव-व्रत नहीं था क्योंकि क्षुल्लिका मरण कर स्त्री पर्याय में (मनोरमा के रूप में) जन्मती है और सम्यग्दृष्टि स्त्री पर्याय में नहीं जन्मता । क्षुल्लिका को तो देवपर्याय का ही बंध होना चाहिए था। मनुष्यायु का का बंध कैसे हो गया। भले ही भाव-व्रत नहीं थे । द्रव्य व्रता के साथ भी देवायु का ही बध होता है। यदि किसी जीव को पहले से आयु का बंध हो जावे तो उसके व्रत लेने के परिणाम नही होते । यह विषय विचारणीय है । वाचक को इस शोधपूर्ण विषय के सबन्ध में भी लेख मे सकेत करना चाहिये था ।

एक प्रश्न अभी द्विदल के सबन्ध मे आया था इसका अभिप्राय जो मैंने, गुरुमुख से सुना ह, उसी के अनुसार बताता हूँ ।

दही एव छाछ के साथ दो दल वाले अनाजों का मिश्रण करके भक्षण करना अभक्ष्य माना गया है । सुदर्शनादय में भी जो प्रसंग आया हे । वहा मूल श्लोक में कच्चा दूध एव दही के साथ द्विदल बताया ह ऐसे द्विदल का मुख में लालारस मे सयोग हो जाने पर त्रस जीवों की उत्पत्ति होती हैं ।

इस प्रकार इस काव्य मे और भी अनेक छोटे छोटे नियमो को गृहस्थ के लिए पालन करने के सकेत किया हैं।

दूसरा लेख सुदर्शनोदय का काव्यात्मक वैशिष्ट्य पर वाँचा गया हे, इस लेख मे वाचक को स्पष्ट करना चाहिये कि काव्यात्मक वैशिष्ट्य मे उनका अभिप्राय क्या ह । वाचक ने काव्य गत सभी विषयो को अपने लेख मे गर्भित कर लिया है । जिससे यह लेख काव्यात्मक वैशिष्ट्य को मुख्यता नहीं दे पाया है । इस लेख को सुनने के बाद ऐसा लगा जसे काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा हो । समीक्षात्मक अध्ययन मे सभी पहलुओ पर प्रकाश डाला जाता हे । काव्यात्मक वैशिष्ट्य मे तो काव्य की जो आत्मा है उसे प्रकट किया जाता ह । अथात काव्य की विधानुसार अग अगीभाव का वैशिष्ट्य प्रदर्शित होना चाहिये । अन्य समस्त विषयो का ले लेने से शीर्षक के अनुसार लेख की गरिमा मे ह्रासता दृष्टिगोचर होती ह । वैसे लेखान्तर्गत विषयवस्तु प्रामाणिक एव परिश्रम साध्य एव विद्वत्ता पूर्ण है ।

तीसरा लेख सुदर्शनादय का महाकाव्यत्व पर वाँचा गया- लेखक ने सुदर्शनादय का महाकाव्य के कथित लक्षणो के आधार पर इस काव्य का महाकाव्य सिद्ध किया है । जिस पर एक शका की गई थी कि क्या सुदर्शनोदय मे महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण हे तो -सबन्ध में म कहना चाहगा कि काव्य के समस्त लक्षण उसमे विद्यमान है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से है कि महाकाव्य के लक्षणा के सबन्ध मे मतैक्य नहीं है किसी ने महाकाव्य के लक्षण उन्तालीस गिनाये ह तो किसी ने अठारह गिनाये । एक नीति है कि जहा पाच साहित्यकार एकत्रित होते हैं वहा 6 परिभाषाये बनती ह। अब यहाँ विचारणीय विषय है कि किस परिभाषा को प्रमाणित माना जावे तो फिर उन सभी परिभाषाओ को एकत्रित कर औसत निकाला जाता है कि किस किस बात पर सभी सहमत है उसे मूलाधार मान लिया जाता है तथा जो भिन्नता पाई जाती है । उक्त सबन्ध में कहा जाता है कि यह अमुक व्यक्ति का मत है ।

अत कहना होगा कि यदि लक्षणो के औसत को ध्यान मे रखकर सुदर्शनादय को देखते है तो सम्पूर्ण लक्षण उसमे है। और यदि किसी विशिष्ट साहित्यकार के लक्षणो को लेकर अध्ययन करते है तो दुनिया मे आज तक ऐसा महाकाव्य नहीं लिखा गया है । जिसमे सभी लक्षण एक साथ घटित होते हो ।

सम्यक अर्थ पुरुषार्थ एवम् वासनिक प्रतिरोध

(तृतीय सत्र समीक्षण)

(सगोष्ठी के तृतीय सत्र पर मुनि श्री द्वारा प्रवचन चर्चाओ का समाधान)

पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

आज गोष्ठी का तीसरा सत्र चल रहा है उसमे लेखको मे सामाजिक जीवन पर लेख वाचा गया है । इस लेख के विषय मे ज्ञात होता हे कि कवि साहित्यकार बाद मे होता है उससे पहले तो वह सामाजिक व्यक्ति होता है ।

प्रत्येक कवि किसी न किसी सामाजिक विचार धारा या परिस्थिति से जुड़ा रहता हैं । लेखनी में भी वह प्रभाव आता हैं जैसे कवि राजस्थान का होने के कारण से बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीति से व्यथित था तभी महाकवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि कुमार अवस्था का उल्लघन करने पर ही कन्या को विवाह के योग्य मानी गई है तथा विवाह के पूर्व वर की परीक्षा करने का सकेत दिया है । लेख वाचक ने लघुत्रयी में जो आश्रम व्यवस्था का जिक्र किया है वह मात्र इसी सबन्ध में आया है । शेष कहीं भी आश्रम व्यवस्था के प्रति लेखक की उत्सुकता आश्रम शब्द के प्रति पाठको को दृष्टिगोचर नहीं होती है । अस्तु ।

वास्तविक कवि वही है, जो सामायिक पर्यावरण से सवेदित हो उसके परिणामों एव दुष्परिणामो को प्रकट करे जैसे लघुत्रयी कार सामाजिक युवा शक्ति की अकर्मण्यता को अर्थात् परधनापेक्षी होकर जीवन जीने वाले वैश्य पुत्रो को ललकारते हुए यहाँ तक कह दिया कि अपने पिता के धनाश्रित होना वैश्य पुत्रों को शोभा नहीं देता जो दूसरो के टुकड़ो पर अपना पेट पालता है, वह श्वान के समान है, तो मैं इसी प्रसंग पर आपको आज की ज्वलंत दानवी समस्या दहेज के सबन्ध में कहना चाहता हू कि अपनी स्त्री के पिता की सम्पत्ति दहेज के रूप हडपने वाले तो मेरी दृष्टि में सुअर के समान हैं । ठीक ही है पिता की सम्पत्ति पर तो कानून न अधिकार भी है फिर भी लेखक श्वान की उपमा दे रहे हैं फिर ससुर की सम्पत्ति पर तो कानूनन भी नियामक अधिकार नहीं है बल्कि दहेज लेने वाला कानूनन अपराधी है। ऐसे व्यक्ति को सूअर के समान कहने मे अतिशयोक्ति नहीं होगी । आज दहेज दानव हमारे समाज में अपने पैरों से मध्य वर्ग की गरीब कन्याओं को रोद कर आत्म हत्या करने को मजबूर कर रहा है । कई बहुओं को इसी दहेज के कारण जिन्दा जला दिया जाता है । ध्यान रखना चाहिये जिस दहेज को तुमने लिया है वह आपके ऊपर ऋण है, उसे चुकाना पडेगा । बैल, नौकर आदि बन कर चुकाना पडेगा । एक डाकू वह जो छुपकर रात में डाका डालता है लेकिन यह तो महान डाकू है जो दिन दहाडे दहेज माग कर लूट लेता हैं, दहेज एक बिगडा हुआ शब्द है । मूल शब्द देहज अर्थात् जो देहज से उत्पन्न वस्तु (कन्या) को देता है, वह दहेज है । कहने का अर्थ है कि दहेज को लेने का अर्थ है दहेज से विवाह किया है न की देहज से । आज सभी नियम करो कि दहेज नहीं लेगे तथा पर सम्पत्ति के आश्रित नहीं रहेंगे ।

खून पसीने की मिलेगी तो खायेगें नही तो यारो हम भूखे ही सो जायेगे ।

इस पक्ति को ध्यान मे रखते हुए अर्थ पुरुषार्थ करने का प्रयास करना चाहिये । इस प्रकार सामाजिक जीवन के सबन्ध में ओर भी अनेक बाते लघुत्रयी में हैं ।

दूसरा लेख इस सत्र मे जैन शास्त्रोमे वर्णित सुदर्शन कथा एव सुदर्शनोदय पर वाचा गया । इस सबन्ध मे मैं यही कहना चाहूगा कि प्रत्येक कवि किसी कथा को जब व्यक्त करता है तो द्रव्य क्षेत्रकाल भाव को ध्यान मे रखता है । आज से हजार साल पहले लिखने वाले किसी लेखक की जीवन एव सामाजिक शैली जिस प्रकार की थी वह आज की शैली से भिन्न होगी ही होगी । इस भिन्नता के साथ लेखक कथा को परिवर्तित न करे तो कथाकार रूढिक माना जायेगा तथा वह कथा तात्कालिक समाज के दोषो को निकलने मे कारण नहीं बन पायेगी । अत कुछ परिवर्तन जरूरी और विचारणीय हो जाते हैं । ऐसे परिवर्तन लघुत्रयी मे है । जैसे मृगसेन धीवर एव घटा धीवरनी मे वेदो के सबन्ध में परस्पर कथोपकथन करना, वेश्या एव अभयारानी द्वारा सैद्धान्तिक विषय को काम शास्त्र का उपमेय बनाना आदि विषय कवि की स्वतन्त्र चिंतन धारा को प्रभावित करते हैं । सामाजिक धर्म के ठेकेदारो के ज्ञानमद की मिथ्या अहकारिता पर चोट पहुचाते हैं । इसके बाद लेख वाचा गया था लघुत्रयी ने नारी पात्रो का वैशिष्ट्य नारी अनादि काल से चर्चा का विषय रही है । लघुत्रयी के अध्ययन मे पता चलता है कि इसमें नारी की विशेष नाटकीय भूमिका आलेखित है । समुद्रदत्त चरित्र में नारी कौशल को प्रदर्शित किया गया है कि राजा जिस कार्य मे समर्थ नहीं हो पाया उस कार्य मे रानी अपनी बुद्धि विशिष्टता के कारण लुटे हुए भद्र मित्र के रत्नों को वापिस दिलवा देती है । यहा यह दलील गलत सिद्ध होती है कि नारी की अक्ल चोटी मे होती हैं । समुद्र दत्त चरित्र पढते समय तो ऐसा लगता है कि नारी के अक्ल तो चोटी की होती है । विष को विषा बनाने वाली नारी इसी काव्य मे अपनी बुद्धि मे चमत्कृत होती है, बुद्धि कौशल का लेकिन दयोदय के उस प्रसग को पढने पर यह दलील सत्यार्थ का रूप ले लेती है ।

दयोदय चम्पू में नारी के बिना विचारे निर्णय लेने के दुष्परिणामों को बताया गया है । नारी के क्रोध की तीव्रता उसको विवेक के स्तर से नीचे गिरा देती है । ठोकर खाकर पश्चाताप करना नारी का स्वभाव है । ऐसी बात को ध्यान में रखकर ही कहा है कि नारी की अक्ल चोटी में होती है ।

घण्टा धीवरी पति द्वारा मछली मारकर न लाने का कारण उसकी मजबूरी जानकर भी उसे घर से बाहर निकाल देती है जिससे मृगसेन धीवर को खण्डहर देवकुल में धर्मशाला में रात्रि व्यतीत करनी पड़ती है । परिणाम स्वरूप उसका सर्प डसने से मरण हो जाता है । बाद में धीवरनी अपने अविवेक पर पश्चाताप करती है तथा पति के अहिंसा व्रत का अनुकरण करती हुई उसकी भी उसी सर्प के डसने से मृत्यु हो जाती हैं । यदि पहले ही थोड़ा सा विवेक से काम लेती तो शायद पति तथा स्वय को अकाल मरण से बचा सकती थी ।

सुदर्शनोदय में नारी की तीव्रकामवासना का चित्रण दृष्टिगत होता है । जैन सिद्धान्त में भी पुरुष की काम वासना घास की अग्नि के समान क्षणिक कही है लेकिन स्त्री की काम वासना कपडे की अग्नि के समान दीर्घकाल तक निरन्तर अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है बाहर से सीधी सादी सरल दिखती हैं, लेकिन नारी के अन्दर काम वासना रूपी गरल का सागर हिलौरे भरता रहता है ।

कुन्दकुन्द स्वामी ने भी स्त्री को स्वभाव से माया चारी कहा है मुहावरा भी इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि- "स्त्रियश चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्य " । यह मुहावरा सुदर्शनोदय मे वर्णित नारियों पर पूर्ण रूप से लागू होता है । अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए कपिला ब्राह्मणी एव अभयारानी, स्वादर सतोष व्रतधारी सुदर्शन को अपने तिरिया चरित्र में फसा कर अपनी काम वासना की पूर्ति करना चाहती है, लेकिन अपने षडयंत्र में सफलता हासिल नहीं कर पाती है, मुहंकाला ओर हो जाता है । इस प्रसग से तिरिया चरित्र फैलाने वाली स्त्रियो को सबक सीखना चाहिए । देवदत्ता वेश्या तो सुदर्शन मुनि को अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए पडगाहन जैसी पवित्र क्रिया से त्रिया चरित्र को चरितार्थ करना चाहती है । स्त्री जब किसी के प्रति मोहित होती है तो उसके चरणों की धूल बनने को तैयार हो जाती हैं ।

लेकिन जब उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है तो अपने प्रेमी का सिर तक काटने को तैयार हो जाती है जैसे अभयारानी सुदर्शन पर मोहित थी अपना प्यार प्रदर्शित कर रही थी लेकिन जब अपनी काम वासना की पूर्ति नहीं हुई तो वही रानी उसे त्रियाचरित्र फैला फैलाकर शूली पर चढवा देती है । इन सब प्रसंगो को सुनकर जनमानस को शिक्षा लेना चाहिए कि किसी पुरुष को स्त्री के मोहपाश मे नही फसना चाहिए । न ही किसी स्त्री को पर पुरुष पर मोहित होना चाहिए ।

विश्व की ज्वलन्त समस्याओं का सैद्धान्तिक समाधान

(चतुर्थ सत्र समीक्षण)

(सगोष्ठी के चतुर्थ सत्र पर मुनि श्री द्वारा प्रवचन एवं चर्चा समाधान)

- पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

चतुर्थ सत्र में विश्व की ज्वलत समस्याए लघुत्रयी के परिप्रेक्ष्य मे वाचा गया । इस विषय को ध्यान मे रखकर जब लघुत्रयी को पढते है तो ऐसा लगता है कि मानो ये तीनो काव्य विश्व की ज्वलत समस्याओ को सामने रखकर ही उन्हें सुलझाने के लिए ही कवि ने रचना की हो । बेरोजगारो की समस्याओं को कितनी सरलता से सुलझा दिया कि प्रत्येक पुरुष को परिश्रम करके धनार्जन करना चाहिए । आज देश मे चोरिया होती है एक दूसरे के धन को डकार जाते हैं पर धन हरण के दुष्ट परिणाम सत्यघोष के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करके दिखाया । आज हर व्यक्ति अपने स्वार्थ एव अहम् के लिए सगों की भी हत्या करने की घटनाए प्रतिदिन देखने को मिलती हैं । इसका समाधान गुणपाल सेठ की जीवन लीला का दर्दनाक दृश्य प्रस्तुत करके ऐसे निर्दयी व्यक्तियो पर हिदायत है । इसी प्रकार हिंसा झूठ चोरी

कुशील (बलात्कार) परिग्रह इन पापो की समस्यो से समाज जकडा हुआ हैं । इनका निराकरण करने के लिए इन काव्यो में इनके दुष्परिणामा को व्यक्त कर इनमे दूर रहने को कहा है । वाचक को इन पंच पापो के निराकरण के उपाय अपने लेख मे दर्शाना चाहिए थे ।

वाचक ने एड्स की तरफ तो सकेत किया ही है कि यदि सुदर्शन के चरित्र का सारा विश्व अनुसरण कर ले तो एड्स जैसा महारोग दुनिया से पलायन हो सकता है । इसी प्रकार साप्रदायिकता के विद्रोह का समाधान करते हुए कहा है दयोदय में कि लोग कहते दिगम्बर मुनि का स्वरूप बताकर साम्प्रदायिकता की भडकती आग में मानो पानी डाल दिया गया है।

दूसरा लेख लघुत्रयी मे सैद्धान्तिक अनुशीलन विषय पर था । सैद्धान्तिक विषयो को पूर्ण रूप से लिपिबद्ध नहीं किया बल्कि जो इस लेख के विषय नही थे उसे अति विस्तार से ले लिया गया है । उन विषयो ने लेख के शीर्षक का अनुसरण नहीं किया है जिससे लेखक की योग्यता मे किञ्चित् न्यूनता आ गई है ।

लघु त्रयी मे सैद्धान्तिक विषय प्रचुर मात्रा मे है । जैसे द्रव्य सिद्धि सर्वज्ञ का स्वरूप कर्म सिद्धान्त अनेकान्त स्याद्वाद निमित्त उपादान, सृष्टि कर्ता अकर्ता ईश्वर सिद्धि आदि इनमे से वाचक ने अपने लेख मे कुछ को तो लिया ही नहीं है ।

उपासना पद्धति एव आचार पद्धति का लेख मे विस्तार कर दिया गया है जो वाचक का विषय ही नहीं था। अतः वाचक को अपने लेख मे उन महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक विषयो को और जोड देना चाहिए जो छूट गये हैं ।

तीसरा लेख समुद्र दत्त चरित्र मे प्रतिपादित श्रावकाचार पर प्रस्तुत किया गया समुद्रदत्त चरित्र मे कही भी पात्रो का सकल्प पूर्वक व्रतो का ग्रहण करते हुए नहीं दिखाया गया है जैसा कि दयोदय एव सुदर्शनोदय मे दिखाया गया है । भद्र मित्र को सत्यवादी निर्लोभी स्वधन सतोषी एव दानशील स्वभाव वाला बताया है । यह पचाणुव्रतधारी था कि नही इसका कोई उल्लेख नही है । लेख वाचक ने जो 6 आवश्यक गिनाये हैं उनका वर्णन कृति मे गृहस्थ के कर्तव्य के रूप मे स्पष्ट हो आये है । काव्यकार के कुछ पात्रो को उस ढग से प्रस्तुत किया है कि उस समय के कुछ लोग स्वभावत अपना कर्तव्य मानकर नैतिकता के नाते 6 आवश्यक आदि व्रतो का पालन करते थे ।

मुनि गिरि चन्द्र के उपदेश से प्रभावित अशनिघोष हाथी अणुव्रत अंगीकार करते दिखाया है उसे एक माह के उपवास के बाद पारणा करते हुए बताया गया है । आर्यिका रामदत्ता राजा पूर्ण चन्द्र को सम्बोधित करती है तब वह पूर्ण चन्द्र दानशील एव अर्हन्त भक्ति मे प्रवृत्त होता है ।

चन्द्रपुर के पुरवासी स्वभाव से गृहस्थोचित शीलादि व्रतो का पालन करने वाले बताया गया । इस काव्य के पठन पाठन से यह शिक्षा लेना चाहिए कि एक गृहस्थ को स्वभावत नैतिकता के नाते अपना जीवन यापन करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति के गवाक्ष

(पचम एव षष्ठ सत्र समीक्षण)

(सगोष्ठी के पचम एव षष्ठ सत्र पर मुनि श्री के प्रवचन एव चर्चा समाधान)

पू मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

आज तो सभी का एक साथ समीक्षण करना है क्योंकि गोष्ठी के मंच से म उपस्थित हो या दिगम्बर साधु मुनि से मान पूजा पाकर तो स्थान पर रहते हैं । स्थान से स्थानान्तरित नहीं होते । अत मैं अपने निर्धारित स्थान पर बैठे बैठे तो मन रमा था । एक वाचक जी दयोदय का [illegible] विषय को व्यक्त करते हुए कहा था कि दया [illegible] का मूल भाव अहिंसा है । इसलिये उसका नाम अहिंसोदय होना चाहिए । इस सबध मे यही कहना चाहूँगा कि अहिंसा कोई भाव नहीं है । अहिंसा तो क्रिया है । दया भाव है । इसलिये काव्य का यही नाम दया है । क्या

की रोचकता भी एक मुनिराज के अन्दर दया जागने पर अहिंसा का उपदेश देते है, यहाँ जो अहिंसा का उपदेश दिया है वह दयाभाव के कारण दिया है, दयाभाव से रहित अहिंसा, अहिंसा नहीं मानी जाती दयाभाव वाले से यदि हिंसा भी हो जाती है फिर भी अहिंसक माना जाता है जैसे आपरेशन करते समय डॉ से कोई मर गया तो भी डॉ को मारने वाला नहीं कहा जाता क्योंकि उसने ऑपरेशन बचाने के लिए किया था । भय एवं मोह आदि से हिंसा नहीं करना अहिंसा नहीं है । बिल्ली अपने बच्चे का पालन उन्हीं पजा से करती है जिन पजा से वह चूहे को मारती है बच्चो की हिंसा नहीं करते हुए भी उसे धर्म शास्त्रो में अहिंसक नहीं कहा । इसी प्रकार भयादि के साथ लगा लेना।

दयोदय चम्पू काव्य मे खलनायक गुण सेठ को दयाविराधी निर्दयी बताया है स्वय हिंसा नही करता है लेकिन निर्दयता के कारण काव्य नायक निरपराधी होकर भी निष्प्रयोजन उसके प्रति विनाशक भाव रख कर निर्दयता की चरम सीमा भी पार कर जाता है ।

इन समस्त कथोपकथनो से सिद्ध होता है कि काव्य अगीभाव दया है इसलिये इसका दयोदय नाम उपयुक्त है ।

दूसरा लेख लघुत्रयी मे भारतीय सस्कृति पर प्रस्तुत किया गया । जिसे सुन कर श्रोताओ को अनेक शकायें हुई। सस्कृति के नाम से क्या क्या विषय लिया जा रहा लेख इस बात को स्पष्ट नहीं किया गया । वेदों मे दिगम्बर मुनि की सिद्धि अर्हत की सिद्धि लेखान्तर्गत अप्रासगिक मानी जावेगी इस विषय को यदि वैदिक सस्कृति की सिद्धि के लिए ले लिया जाता तो भी अश रूप मे प्रासगिक माना जाता । भारतीय सस्कृति का विषय लघुत्रयी मे आमूलचूल भरा है यह लेख पूर्ण रूप से सशोधित होना चाहिए । दूसरी मुख्य शका थी कि वेश्या क्या आहार या पडगाहन कर सकती है। इस बात को लेखवाचक के प्रस्तुत करने के ढग से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वेश्या द्वारा मुनियो को आहार दान देने की सस्कृति उस समय थी जिसे काव्य मे दर्शाया गया है । काव्यगत इस विषय को पुन वाचक को अच्छी तरह पढना चाहिए वहा वेश्या ने पडगाहन छल पूर्वक किया है । वेश्या का छद्म वेष श्राविका का था । अत श्रोताओं को स्पष्ट जान लेना चाहिए कि वेश्या द्वारा दान क्रिया का समर्थन इस काव्य मे नही है । काव्य मे ही क्या किसी भी जैन ग्रन्थो मे नहीं है । वेश्यावृत्ति छोड देने पर अर्थात् यह निन्द्य कार्य छोड देने पर तो वेश्या आर्यिका भी बन जाती है । लेख वाचक को इसे भारतीय संस्कृति की परम्परा कहना चाहिए था कि वेश्या यदि वेश्यावृत्ति छोड देती है तो आर्यिका जैसे पूज्य पद को प्राप्त करने का अधिकार रखती है । जसे देवदत्ता वेश्या द्वारा आर्यिका दीक्षा लेने का उल्लेख सुदर्शनोदय एव दयोदय चम्पू मे वसन्तसेना वेश्या का आर्यिका दीक्षा लेना बताया है ।

एक और प्रश्न आया था कि उस समय सूतक की परम्परा नही थी क्या ? क्योकि सुदर्शन के जन्म पर उसका पिता वृषभदत्त जैन मदिर जाकर अभिषेक पूजन करता है । इस सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता है कि सूतक व्यवस्था एक सामाजिक व्यवस्था है जो समय समय पर लुप्त एव प्रगट होती रहती है वर्तमान मे जो सूतक की परम्परा चल रही है उसे स्वीकार करना चाहिए इससे पवित्रता बनी रहती है । जिनसेन स्वामी ने महापुराण मे 53 क्रियाओ के वर्णन मे कहा है कि सन्तान उत्पत्ति के 12 वे दिन अर्हन्त भगवान की पूजन करके परिवार वालो को बच्चे का नामकरण सस्कार करना चाहिए अत सूतक की वर्तमान परम्परा को सस्कृति तो नहीं कहा जा सकता लेकिन एक मर्यादित अच्छी परम्परा जरूर कहा जा सकता है ।

तीसरा लेख लघुत्रयी में जैनेतर प्रसग पर बाचा गया । जयसेन स्वामी ने कहा है कि किसी विषय को समझने एव समझाने के लिए शब्दार्थ, आगमार्थ, नयार्थ मतार्थ एव भावार्थ में चार विधाये आवश्यक हैं । ये चारो सिद्धान्तो का ज्ञाता लेखक था महाकवि की प्रत्येक कृति मे मत मतान्तर की सापेक्षता दृष्टि गोचर होती है इस में लेखक की साम्प्रदायिक निरपेक्षता भी परिलक्षित होती है । वहीं पर लेखक की निर्भीकता निष्पक्षता का स्पष्ट दर्शन होता है । अर्हत मत को एवं दिगम्बरत्व को वेद बाह्य कहने वालों की मिथ्या धारणा का निराकरण किया है । अर्थात् वेदो द्वारा अर्हत मत एवं दिगम्बर को वेद में भी उच्चता की प्रामाणिकता प्रदान कर सम्यक् मार्ग के रास्ते मे आये हुये साम्प्रदायिकता के काँटें साफ कर दिये हैं ।

तीसरा लेख सस्कृत जैन चम्पू काव्यों में दयोदय चम्पू का वैशिष्ट्य प्रस्तुत किया है । वाचक ने सभी चम्पूओं का अलग-अलग परिचय दिया है । लेकिन यदि वहीं पर दयोदय चम्पू का प्रत्येक चम्पू के साथ तुलनात्मक वैशिष्ट्य प्रस्तुत करते जाते तो अति श्रेष्ठ होता अत. इस लेख को व्यवस्थित करके प्रकाशित किया जावे ।

आज प्रभात कालीन सत्र में बाँचे गये लेख वाचकों की अति परिश्रम साध्यता को प्रगट करते हैं। सुदर्शनोदय की पात्र योजन एवं लघुत्रयी का भाषागत वैशिष्ट्य तथा लघुत्रयी में शब्दालंकार ये तीनों लेख पूर्ण प्रामाणिक और अपने शीर्षक के अनुसार पूर्ण विषय को सिद्ध करने वाले सिद्ध होते हैं । तीन दिन से बन रहे इस मन्दिर पर आज इन तीनों लेखों ने कलशारोहण कर दिया है ।

ज्ञान एवम् ज्ञानी का सम्मान

(समापन सत्र समीक्षण)

(संगोष्ठी के समापन सत्र पर पू मुनि द्वारा प्रवचन एवं चर्चा समाधान)

पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

समापन सत्र आज चल रहा है इसमें सुदर्शनोदय में दार्शनिक विवेचन पर गोष्ठी संयोजक पं अरुण कुमार शास्त्री द्वारा अपने लेख का साराश बाँचा गया । महाकवि दार्शनिक तो थे ही उनके ग्रन्थो में पदे पदे दार्शनिकता परिलक्षित होती है ।

इस गोष्ठी में बाँचे गये लेख, खोजपूर्ण थ सभी विद्वानो ने बहुत परिश्रम करके अपनी ज्ञान प्रतिभा का परिचय दिया है। इसी प्रकार यदि विद्वान् महाकवि के ग्रन्थों में गोता लगाते रहे तो नियम से अलौकिक निधियों को इन ग्रन्थो से निकाल कर साहित्य जगत् को एक अमूल्य खजाना इन गोष्ठियों के माध्यम से सौंप सकेगे । इस गोष्ठी में कुछ नयी-नयी युवा प्रतिभाओं ने भी अपनी प्रतिभा को उजागर किया है ।

आज इस गोष्ठी के दौरान एक बात कहना चाहूंगा ब्यावर वालो से कि अनेक नगर ऐसे हैं जो विद्वान् को पाने के लिए तरसते हैं । ब्यावर का तो बहुत बडा सौभाग्य है कि अरुण कुमार जैसा युवा विद्वान जिसका हिन्दी, सस्कृत एव अग्रेजी भाषाओं पर व्याकरणात्मक एव साहित्युक अधिकार है । बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान यहाँ पर स्थाई रूप से रह रहा है । लेकिन मैं आप लोगों का दुर्भाग्य ही मानूगा कि ऐसे विद्वान का ये समाज ज्ञानार्जन के रूप में उपयोग नहीं कर पा रहा है । मेरी एव विद्वानो की भावना है कि ब्यावर गोष्ठी की ब्यावर वालों को स्थाई उपलब्धि तभी मानी जावेगी जब युवा एव प्रौढ़ लोगो की पाठशाला यहां चालू कर दी जावे । अन्य स्थानो पर हम कह नहीं पाते क्यों कि विद्वान कहा से लायें । विद्वान मिल भी जावे लेकिन विद्वान को समाज उपयुक्त वेतनमान नहीं दे पाती है। लोग कहते हैं कि आज विद्वान नहीं है मैं कहता हूँ कि विद्वान का वेतनमान यदि ये समाज सरकार के अनुसार देने लग जावें तो विद्वानो की कमी नहीं रहेगी । प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति मजबूर होकर सरकार की नौकरी करता है । ये विद्वान आपके सामने बैठे हैं यदि सरकारी नौकरी नहीं कर रहे होते तो आपकी समाज क्या इनके परिवार का भरण-पोषण के योग्य वेतन दे सकती थी । नहीं, अत आप लोग अच्छा वेतन देकर उनके पारिवारिक धनाभाव की पूर्ति करके, उनसे ज्ञानार्जन करो । धार्मिक ज्ञान के बिना लौकिक ज्ञान नकटी के श्रृगार के समान है महत्त्व हीन प्रतीत होता है । अत धार्मिक ज्ञान बढ़ाओं । ज्ञान प्राप्त करने के लिये अतीत में अकलंक निष्कलंक जैसे जवान बालको ने प्राणो की आहुति देकर ज्ञानार्जन करने का प्रयास किया था । ऐसा इतिहास हम सब को विदित है ।

इस गोष्ठी मे आ ज्ञानसागर जी के साहित्य के सम्बन्ध में जो विद्वानो नें निर्णय लिया है कि भारत के मूर्धन्य विद्वानो से लगभग पचास विषयो पर अलग-अलग 200-300 पृष्ठो के शोधात्मक लेख लिखाये जावे । यह बहुत सराहनीय कार्य है । इस कार्य के लिए मेरा साधुवाद और जो समाज ने महाकवि भूरामल का स्मारक बनाने का निर्णय लिया है तथा आज समस्त विद्वान एव दातार उसका शिलान्यास करने जा रहे हैं । उसके लिए भी मेरा आशीर्वाद ।

॥ महावीर भगवान की जय ॥

सुदर्शनोदय चन्द्रिका

लेखक.- श्री सुधासागरजी महाराज

कवि दो प्रकार के होते हैं एक तो वह जो अपने काव्य का नायक काल्पनिक बनाकर कल्पना की उड़ान भरते रहते हैं । किसी सत्यार्थ व्यक्तित्व को आधार बनाकर उसे ही अपनी अलकारिक काल्पनिक योजना से सुसज्जित करते रहते हैं । आदरणीय ज्ञानसागर जी म्हाराज एक ऐसे ही महाकवि थे, जिन्होंने जितने भी महाकाव्य लिखें उन सभी के नायक सत्यार्थकता की कोटि मे जीने वाले हैं । ऐसे कवि की बुद्धि पतग के समान होती है, जैसे पतग उड़ान भरती है आकाश मे लेकिन एक डोरी के माध्यम से पृथ्वी पर खडे व्यक्ति से सम्बन्ध बनाये रखती है । यदि वह पतंग यह सम्बन्ध न बनाये तो वह अधिक समय तक आकाश में उडान नहीं भर सकती और कुछ ही समय के बाद वह जमीन में आकर धूल मे पड़ी हुई दिखेगी । पतग का आनन्द तो तभी आता है, जब पृथ्वी पर खड़ा हुआ मानव अपनी अंगुली के इशारे पर डोर के माध्यम से पतग को दिशा निर्देश देता रहे । इसी प्रकार कवि जब अपनी कविता का नायक सत्यार्थ बनाता है तो उसकी कवित्व शक्ति स्वतन्त्र तो होती है लेकिन स्वच्छंद नहीं हो पाती । अपनी कल्पना के अनुसार काव्य के नायक को ढालना सरल होता है । लेकिन नायक के आदर्श चरित्र के अनुसार अपनी कल्पना को ढालना बहुत कठिन होता है । अस्तु ।

आचार्य ज्ञानसागर महाराज अर्थात् ब्रह्मचारी भूरामल ने अपनी कवित्व शक्ति को प्रकट करने के लिए पौराणिक, ऐतिहासिक महापुरुषो के जीवन को ही आदर्श माना है । लेखक का ऐसा मानना है कि जब किसी काव्य का नायक उज्ज्वल चरित्र वाला सत्यार्थ होता है, तब ऐसे काव्य नाटक के चरित्र चित्रण से कवि की कवित्व शक्ति सत्यार्थ होता है, तब ऐसे काव्य नायक के चरित्र चित्रण से कवि की कवित्व शक्ति अतिशयता को प्राप्त हो जाती है, ऐसा वीरोदय महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कहा है । तथा सुदर्शनोदय मे भी यही भाव प्रकट किया है ।

इस सुदर्शनोदय महाकाव्य में एक ऐसे उज्ज्वल चारित्र के धारी महापुरुष सेठ सुदर्शन के जीवन चरित्र से सम्बन्धित रगारग घटनाओ को अपनी कवित्व शक्ति से प्रकट किया है । इस महाकाव्य मे एक ओर वीतरागता आध्यात्मिकता एव पुरुष का आदर्श प्रकट होती है तो दूसरी ओर स्त्री की वासना एव छल प्रपच की वीभत्सता प्रकट होती है अर्थात एक ओर वासना के दहकते अगारो की आग दूसरी ओर उस आग मे बैठा हुआ काव्य नायक जिसका आग बाल भी बाका नहीं कर पा रही है । गृहस्थों एव मुनियों के लिये इस महाकाव्य के नायक का चारित्र अनुकरणीय है ।

ब्रह्मचारी महाकवि भूरामल जी शास्त्री अर्थात मेरे गुरुणाम् गुरु आचार्य ज्ञानसागर महाराज द्वारा रचित है इस महाकाव्य मे प्रसग एव कुलमूल श्लोक 481 है तथा स्वपक्ष हिन्दी टीका सहित लिखा कि इस काव्य में जैन धर्मानुयायी सुदर्शन श्रेष्ठि का जीवनवृत वर्णित है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का वर्णन इस काव्य में मुख्य रुप से समाविष्ट किया गया है । इस सुदर्शनोदय महाकाव्य का मैने समीक्षात्मक अध्ययन किया है । उसे ही उसी रूप में यहा प्रस्तुत किया जा रहा है । इस लेख मे चारित्रिक, आध्यात्मिक, आगमिक, सैद्धान्तिक एवं नैतिक प्रंसगो को ही समीक्षा का विषय बनाया जा रहा है ।

वीरवाणी की उपासना एवं प्रभाव

महाकाव्यकार ने मगलाचरण के प्रथम श्लोक में वीर भगवान की वीरवाणी का प्रभाव बताते हुए कहा है कि जब मुझ जैसे अल्पज्ञ को वीर वाणी के प्रभाव से कवित्व शक्ति की प्राप्ति हो गई है तो ऐसी वीर वाणी संसारी जीवों को संसार सागर से पार उतारने वाली होवे । इसकी उपासना उत्तम बुद्धि वाले उच्चकुलीन विद्वानों ने की है । (इसी का अर्थ श्लेष रूप में निकालते हुए कहा है कि मृगसेन धीवर जैसे नीच कुलीन लोगो ने भी उपासना की है । यहा

इन दोनो प्रसगो को युगल रूप मे देखने पर ज्ञात होता है कि लेखक इस बात को प्रकट करना चाहता है कि वीर वाणी मे नीच, उच्च का भेद नहीं होता है इस वाणी को तो नीच उच्च सभी जन सुन सकते है और अपने जीवन मे अनुकरण कर प्राणी मात्र के जीवन का कल्याण कर सकते है ।

वर्तमान में जो वीरवाणी जातीयता मे बध गयी है, यह लेखक को इष्ट नहीं है । तभी तो धीवर जैसे मत्स्य भोजी नीच कुलीन व्यक्ति को भी वीर वाणी का उपासक बनाकर अहिसा का बीजारोपण करने का अधिकार दिया है । यहा मृगसेन धीवर द्वारा भगवान महावीर की उपासना कराई है अत लेखक के कथनानुसार मृगसेन धीवर भगवान महावीर के बाद हुआ है । और यह बात भी मेरी दृष्टि मे सिद्ध होती है कि लेखक ने इस महाकाव्य के पहले दयोदय चम्पू लिखा हो क्योकि मृगसेन धीवर की कथा उसी दयादय चम्पू मे आयी है ।

लेखक के गुरु

लेखक के गुरु का स्मरण करते हुए कहा है कि जो गुरुदेव भवकूप मे पडे जनो के उद्धार करने के लिए एकमात्र बुध है और चिदानन्द समाधि के सिन्धु है । उनके गुण का स्मरण का ही एक मात्र जिसके हस्तावलम्बन है, मेरे इस काव्य पथ मे उनके प्रसाद से प्रशस्त गति हो ।।२।।

यहा लेखक ने किसी गुरु का नाम प्रकट नहीं किया बल्कि एक गुरु के अदर जिस प्रकार के गुण होने चाहिए उन गुणो का स्मरण करके उनका प्रसाद चाहा है ।

ग्रथ की लोकप्रियता

ग्रथ की लोकप्रियता एव अपनी लघुता बताते हुए लिखा है कि पूर्व आचार्यों द्वारा लिखित ग्रथो में वर्णित कथा के आधार पर ही मैं बालक इस कथा को लिखने को उद्यत हुआ हू । इस वर्तमान काल मे मुझ जैसे अज्ञ पुरुष के द्वारा वर्णन किये जाने वाले इस चरित्र के पठन श्रवण में उत्तम पुरुषो की अच्छी रुचि होगी कि नही ऐसी शका तो मेरे मन मे है भी नही क्योंकि प्रचण्ड ग्रीष्मकाल मे यदि किसी सरोवर मे कोई अत्यल्प कमल दृष्टिगोचर हो तो उस पर भ्रमर और भी अधिक स्नेह दिखलाते हैं । ।।3।।

अर्थात कवि का अभिप्राय है कि यह पचमकाल ग्रीष्मकाल के समान है बुद्धि में शुष्कता है उसके बावजूद भी कोई महाकाव्य लिखने का प्रयास करता है तो विद्वान लोग उसकी प्रशसा करेगे ही । अर्थात यहा अपनी अल्पज्ञता प्रकट करते हुए कवि ने काव्य को लोकप्रिय बताया है

इस काव्य की वही पुरुष गाल फुलाकर , चिढ कर निन्दा करेगा जो कविता लिखने मे षण्ड' नपुसक होगा। अर्थात् कविता करने मे असमर्थ होगा अन्य लोग तो मेरे पुरुषार्थ की प्रशसा ही करेगे । ।।४।।

खल लोगो द्वारा की गयी निन्दा को उपादेय मानते हुए लेखक ने कहा है कि सुकवि की वाणी रूपी गाय को जीवित रहने के लिए जिस प्रकार सत्पुरुषो की दया रूपी दूर्वा (हरी घास) की आवश्यकता होती है लेकिन उसे और अधिक प्रसन्न करने के लिए दूर्वा मे खल का (खलीका) समागम आवश्यकता होता है क्योंकि खल के अनुशीलन से गाय और पुष्ट होती हुई अधिक दुधारु हो जाती है । उसी प्रकार दुष्ट पुरुष द्वारा काव्य मे दोष दिखाने के कवि की वाणी भी निर्दोष और आनन्द वर्द्धक हो जाती है । जैसे चन्द्रमा की किरणें अधकार को मिटाने वाली और अमृत को बरसाने वाली होती है, उसी प्रकार सुकवि की वाणी अज्ञान को हटाकर मन को प्रसन्न करने वाली होती है । फिर भी चकवा पक्षी के समान कुछ लोग उससे अप्रसन्न ही रहते हैं । शेष सब लोग प्रसन्न रहते हैं तो यह बुरे-भले लोगो का अपना अपना स्वभाव है । ।।5।।

द्वीप एव देश

द्वीपो में जम्बूद्वीप का वर्णन करते समय लिखा है कि जिसका नाम ही बुद्धिमानो के लिये आनन्द को देने वाला है, जो सब द्वीपो का अधिपति बनकर सबके मध्य मे स्थित है ओर जो सुमेरु रूपी मुकट को मस्तक पर धारण किये हुए है । ऐसा प्रसिद्ध द्वीप ही जम्बू द्वीप है ।

यह जम्बूद्वीप अनादिकाल से स्वत सिद्ध बना हुआ है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का स्वाभाविक समुत्पत्ति स्थान हैं । विचारशील जनो के द्वारा जिसके सदा ही गुण गाये जाते हैं ऐसा यह जम्बूद्वीप पुण्यरूप लक्ष्मी का मंगल द्वीप सदृश प्रतीत होता है । ॥6॥

जम्बूद्वीप के वर्णन के साथ साथ कहा है कि इसी सर्ग मे भरत क्षेत्र मे तिलक के समान शोभायमान होने वाला आर्यखड है ओर इस आर्य खण्ड मे गंगा और सिन्धु के अन्तराल मे आर्य जनो का निवास होने के कारण पवित्र देश माना गया है । और इसी आर्य खंड में अंग का नाम देश है । जिसमे श्री मान् एव धीमान् लोग निवास करते हैं । ॥7॥

इसी अग देश में चम्पापुर नाम की नगरी है जो आकाश को स्पर्श करने वाले विशाल कोट से वेष्टित है । जहां पर मदिरा को छोड़कर सुधा (अमृत) को पीने वाले लोग हैं, जहां पर स्वर्ग के आकार जीव जन्म लेते हैं । आदि आदि अनेक प्रकार से लेखक ने चम्पापुर नगरी का वर्णन किया है । ॥8॥

देशो का वर्णन करते हुए लेखक ने आठवे सर्ग के अन्त मे एव नौवे सर्ग के प्रारम्भ मे पाटलिपुत्र ॥पटना॥ का नाम भी लेखक ने किया है ।

वनस्पतिया, पहाड, समुद्र एव नदिया

सुदर्शनोदय महाकाव्य मे लेखक ने पेड पौधो के नाम आलिखित करते हुए लिखा है कि आम, जामुन, नारगी आदि उत्तम फलो से लदे हुए वृक्ष आर्य खण्ड में पाये जाते है । ॥9॥

पलाश के वृक्ष (ढाक) का नाम प्रथम सर्ग के 33 वे श्लोक में अलकार रूप से वर्णन किया है । कल्पवृक्ष का नाम भी लेखक ने पहले सर्ग मे 20 वे श्लोक में तथा दूसरे सर्ग के 15 वे श्लोक मे उपमा अलकार के रूप मे लिया है । वश (बास) के वृक्ष को भी एव लताओ का वर्णन भी आलकारिक ढग से दूसरे आदि अधिकारो में किया है । शैवाल (काई) का प्रसग दूसरे अध्याय के सातवे श्लोक में उपमा अलंकार के रूप में नाम आलेखित किया है । कमल का वर्णन भी लेखक ने बहुत बार अपने काव्य मे किया है । मकरन्द शब्द दूसरे अधिकार के 3रे श्लोक मे प्रयोग किया है । आक के पुष्प एव आम्र पुष्प का वर्णन सुदर्शन के गर्भ मे आने पर माता के पच स्वप्न के फल की यथार्थता बताते हुए वृषभ सेठ ने कहा है कि क्या आक वृक्ष के पुष्प समान आम्र पुष्प भी कभी निष्फल होते है अर्थात् फलदायी होते है । यहा आक वृक्ष की उत्प्रेक्षा आम पुष्प से की है । मुक्ताफल उपमा भी लेखक ने दूसरे अधिकार मे की गई है । सहस्रदल कमल का वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है कि विध्याचल के सरोवर में एक सहस्रदल कमल खिला हुआ था । ॥10॥

इस प्रकार पांचवें सर्ग के पहले श्लोक में गुलाब पुष्प तदुल कमल कुंद चम्पा चमेली आदि के वर्णन भी महाकाव्य मे उपमेय है । मृदुचन्दन, मलयागिरि चन्दन, कृष्णागुरु चदन का वर्णन भी पाचवे सर्ग में आया है ।

छठवे सर्ग मे अजन जाति के वृक्ष के उद्यान का वर्णन एव केसर एव नाग केसर (पुन्नाग) मदन फल, वर्णन वसन्त ऋतु के वर्णन में लेखक मे प्रासंगिक किया है और भी वनस्पतियो के नाम भी इस काव्य मे आये हैं ।

पहाडों का वर्णन करते हुए लेखक ने दूसरे अधिकार के 24 वें श्लोक में सुदर्शन की मां के स्वप्न में सुमेरु का स्वप्न दर्शन कराया है और दूसरी बार सर्ग में सुदर्शन की श्मसान मे प्रतिमायोग के समय खड्गासन नग्न मुद्रा को सुदर्शन मेरु के समान अकम्प बताया है । तीसरे सर्ग के सातवें श्लोक में उपमा अलंकार के रूप में हिमवान् पर्वत

का भी उल्लेख किया है । जिस समय सेठ सुदर्शन के जन्म पर सेठ जिनाभिषेक के जल की कटोरी में लेकर घर लौट रहा था उस समय लेखक ने कल्पना की है कि मानो पदम सरोवर वाला हिमवान् पर्वत ही चल रहा हो । इसी सर्ग में 46 वें श्लोक में मनोरमा के पिता साराश्दव्त सेठ को सुदर्शन का पिता वृषभदास हिमालय के समान गुणवान बताता है । आगे चतुर्थ अधिकार में विन्ध्याचल शब्द आया है वहा सुदर्शन के पूर्वभव के भील की पर्याय का निवास स्थान बताया है । भील पर्याय का निवास स्थान होने से यह विध्याचल पर्वत ही माना जा सकता है । और भी लेखक ने यत्र-तत्र किसी विशेष पर्वत का नाम लेकर सामान्य रुप से पर्वत शब्द का प्रयोग कई स्थानो पर अलकार के रूप में किया है ।

नदियो का वर्णन करते हुए गगा, सिन्धु नदियो का नाम पहले अधिकार में 14 वे श्लोक में आया है और अन्य स्थानो पर मात्र नदी, सरिता, आदि शब्द का प्रयोग किया है । नाम विशेष वाली नदियो का प्रयोग नहीं किया है ।

सरोवरो का उल्लेख करते हुए लेखक ने दूसरे अधिकार के 9 वे एव 33वें श्लोक मे मानसरोवर का उल्लेख उपमा अलकार के रुप मे किया है । अन्य स्थानों पर सागर, एव समुद्र का सामान्य उल्लेख आया है । आगे सागर का वर्णन करते हुए महाकवि ने क्षीर सागर की उपमा के रूप में ग्रहण करते हुए लिखा है कि सुदर्शन की मां ने क्षीर सागर के समान स्वच्छ श्वेत चादर से आच्छादित शय्या पर लेटे हुए पच स्वप्न देखे ॥11॥ सातवे सर्ग के 14वे श्लोक में भी ध्यानस्थ सुदर्शन से दासी ने कहा था कि तुम क्षीर सागर के समान उज्जवल कोमल शय्या पर अभयमती रानी के साथ आनन्द का अनुभव करो इसके बाद अन्य अधिकारों मे सागर सिन्धु समुद्र उदधि आदि नाम सामान्य रूप मे यथायोग्य स्थान पर आये हैं ।

पशु पक्षी

पशु पक्षियो का वर्णन करते हुए महाकवि ने गाय बछडा एव भैसों आदि धन धान्य से परिपूर्ण आर्य खण्ड बतलाया है ॥12॥ दूसरे सर्ग मे भी सेठ वृषभदास को गाय भैसों का स्वामी कहा है चौथे अधिकार के 26 वे श्लोक मे कहा है कि सुदर्शन पूर्वभव में जब ग्वाले की पर्याय में था । तब एक दिन वह गाय भैसो को चराने जगल मे गया था तब एक भैस किसी सरोवर में घुस गई / मृगराज का वर्णन करते हुये लेखक ने उपमा के रूप मे कहा है जैसे पर्वतराज पर मृगराज विराजते हैं वैसे ही जिनालयो के शिखरो पर चारो ओर सिहो की मूर्तियाँ बनी हुई थी । ॥13॥ मीन का वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है कि राजा की चेष्टा मीन के समान हो जाती है चातक पक्षी का भी इसी प्रसग मे नाम आया है तथा दूसरे अध्याय मे 50 वे श्लोक में भी मूसलाधार वर्षा को बरसते देखकर चातक पक्षी अति प्रमोद को प्राप्त होता है चातकी का वर्णन करते हुये लेखक ने 7वे अधिकार के 17 वे श्लोक मे कहा है कि जैसे चिरकाल से प्यासी चातकी आकाश मे प्रकट हुये नव सजल मेघ को देखकर अत्यन्त आनन्दित होती है। 6 वे सर्ग में जल के बिना तडफती मछली के समान रानी की दशा हो जाती है, यह उल्लेख आया है ।

साप का वर्णन करते हुये लेखक ने कहा है कि सेठानी के केश पाश काले सर्प के समान लम्बे एव काले थे, तीसरे सर्ग के 28वे श्लोक में भी रोगी को सर्प की उपमा दी है तथा इसी प्रसग मे गरुड के समान रोगो से दूर रहने वाला कहा है सुदर्शन को हंस हसी को प्रासगिक करते हुये इस महाकाव्य मे कहा है कि वृषभदास सेठ की सेठानी के मानस रूप मानसरोवर मे निवास करने वाली राजहसी के समान शुद्ध भावो की धारक थी ।

तीसरे सर्ग के 3 श्लोक में कहा है कि हस के द्वारा सरोवरी शोभित होती है उसी प्रकार सुदर्शन को गोद में लिये सेठानी सुशोभित हो रही थी ।

सातवें सर्ग में भुजग के रूप मे सर्प का नाम आया है । 8वे अधिकार मे भी गरुड का नाम आया है । कमलनी ओर कुमुदनी का प्रसग 6 सर्ग 20 वे श्लोक में इस प्रकार आया है कि दासी अभया रानी से कहती है कि तुम सूर्य जैसे प्रतापी राजा की कमलनी जैसी प्रिया होकर के भी श्वेत कर्ण वाले चन्द्रमा के समान श्वेत वस्त्रधारी उस सुदर्शन की कुमुदनी के समान म्लान मुख वाली रानी हो गई थी ।

पहले सर्ग में 43वे श्लोक में भी शलभ नाम के जन्तु का भी आया है ।

दूसरे अधिकार में कहा है कि मकरन्द को सूंघने जैसे मेरा मन भ्रमर जैसा उत्कंठित हो रहा है और इसी भ्रमर का प्रयोग करते हुये लेखक ने 34 वें श्लोक मे वृषभदत्त को मुनि के चरण कमलो को भ्रमर बताया है, मयूर और मयूरनी का प्रसग लाते हुये इस काव्य में लिखा है मेघो की गर्जना सुनकर जैसे मयूर व मयूरनी अति प्रमोद को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार सेठ सेठानी भी मुनिराज की वाणी सुनकर प्रमोद को प्राप्त हुए । चौथे अधिकार के 14 वें श्लोक में कहा है कि अश्विनी मास को पाकर जैसे मयूर मौन भाव को अगीकार करता है और अपने सुन्दर पुच्छ पंखों को नोच-नोंच कर फेक देता है उसी प्रकार मुनिराज का निमित्त पाकर वृषभदास सेठ समस्त वस्त्राभूषण को उतारकर मुनि पदवी को प्राप्त कर लेता है, गजराज का प्रसग लेते हुये लेखक ने गुण रूपी मुक्ता फलों से युक्त उन्नत वश वाले उस सेठ ने गजराज के समान महान दान से सारी पृथ्वी को पूरित करते हुये दानवीर होने की महिमा को प्राप्त किया।

कुक्कर के प्रसग लाते हुये इस महाकाव्य के चौथे अधिकार के 18 वे श्लोक में सुदर्शन की पूर्व पर्याय कुक्कर (कुत्ते) के रूप में बताया है ।

कोकिल पक्षी का नाम भी बसन्त ऋतु मे उसकी कुहू-कुहू की बोली के रूप में दिया गया है । बिल्ली चूहा का उल्लेख 7वें सर्ग के 5 वें श्लोक मे इस प्रकार किया है कि अब तो महारानी मुझ पर ऐसे टूटकर गिरेगी जैसी भूखी बिल्ली चूहे पर टूटती है इस प्रकार लेखक ने ताम्रचूड (मुर्गा) चिडिया, खगगण आदि पशु-पक्षियो के नाम यथायोग्य स्थानों पर प्रासगिक किये हैं । हालाकि पशु पक्षियों का वर्णन पशु-पक्षियों के वर्णन की दृष्टि से नहीं किया गया है बल्कि अपने काव्य की कविता रूपी विधा वधू को अलकारिक करने के लिए प्रयोग किया है एक ही पशु-पक्षी का नाम कई बार भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रसग को लेकर भी आया है पुनरावृत्ति के कारण उनको गोण कर दिया है इस लेख मे ।

ज्योतिष एवं ज्योतिर्लोक

सुदर्शनोदय महाकाव्य मे ज्योतिष सम्बन्धी प्रसंग को लाते समय लिखा है कि आर्य खड के अंग देश के ग्राम पचाग से प्रतीत होते थे । हिन्दी व्याख्या में कहा है कि जैसे ज्योतिषियो का पचाग तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पाच बातो मे युक्त होता है उसी प्रकार इस देश के ग्रामवासी लोग सदा भोजन, वस्त्र, पशुपालन, कृषिकरण, सादा रहन-सहन, रूपी पांच बातों को सद व्यवहार मे लाते थे । उस ग्राम में चारो ओर गोचर भूमि थी जो कि पचाग के ग्रह गोचर को स्मरण कराती थी । ॥14॥

सुदर्शन के गर्भ मे आने के नौ मास पूर्ण होने पर पुण्यमयी शुभ बेला मे जबकि सभी ग्रह अपनी-अपनी उत्तम राशी पर उपस्थित थे । उस सती जिनमति सेठानी ने एक पुत्र को जन्म दिया । जैसे कि पूर्व दिशा प्रकाशमान सूर्य को उत्पन्न करती है । ॥15॥

ज्योतिष का प्रसग लाते हुए लेखक ने कहा है कि उत्तम लग्न मुहूर्त के समय मनोरमा और सुदर्शन नाम वाले दोनो का विवाह महोत्सव बडे भारी समारोह के साथ सम्पन्न हुआ । ॥16॥

ज्योतिर्लोक का वर्णन करते हुए इस काव्य मे लिखा है कि चम्पापुर नगरी सर्व ओर से ज्योतिर्लोक के समान प्रतीत होती है, क्योंकि जैसे ज्योतिर्लोक में अभिजात नक्षत्र होता है उसी प्रकार उस नगर का राजा पराऽभिजित अर्थात शत्रुओ को जीतने वाला था । आकाश में जैसे कृतिका नक्षत्र होता है, उसी प्रकार उस नगर के निवासी सभी लोग सत् प्रकृति के थे अर्थात उत्तम कार्य को करने वाले थे । जैसे ज्योतिर्लोक में पुष्य नक्षत्र होता है । वसे हो उस नगर में रहने वाली समस्त स्त्रियां शुभ लक्षणो से सुसज्जित थी । अर्थात् "ना वपुसि अप्रशस्ता " थी अर्थात शरीर मे भद्दी और असुन्दर नहीं थी । ॥17॥

चन्द्र और सूर्य को प्रासगिक करते हुए प्राय सभी अधिकारों में उपमा के रूप मे ग्रहण किया है चन्द्रमा का दूसरा नाम दूसरे अधिकार के तीसरे श्लोक में कलाधर भी दिया है ।

जैसे स्वाति नक्षत्र की बिन्दु को अपने अन्दर धारण कर समुद्र की शीप सुशोभित होती है वैसे ही मोक्षगामी पुत्र को अपने गर्भ मे धारण कर वह सेठानी परम शोभा को प्राप्त हो रही थी । यहा स्वाति नक्षत्र का वर्णन उपमा के रूप मे ग्रहण किया है । ॥18॥

बालक सुदर्शन शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के भांति दिन पर दिन बढने लगा । इसी चन्द्रमा के सम्बन्ध मे लेखक ने कहा है कि चद्र के चले जाने से नक्षत्र भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं । ॥19॥ इसी प्रकार इसी पाचवें सर्ग के 18 वे श्लोक में कहा है कि जैसे राहु से ग्रसित चन्द्रमा हतप्रभ हो जाता है, उसी प्रकार कपिला ब्राह्मणी का मुख हो गया ।

खनिज धातु एव रत्न

रत्नों मे हीरक मणि के समान राजा शत्रुओ के सिरो पर वज्रपात करने वाला था तथा हिन्दी भावार्थ में रत्नाकर का अर्थ किया है जैसे समुद्र मे मोतियो, चन्द्रकान्त मणियो, हीरा पन्ना आदि जवाहारात का भंडार होता है, उसी प्रकार चम्पापुर नगर था । ॥20॥

दूसरे अध्याय के तीसवे श्लोक मे भी कहा है कि जिस प्रकार खनिजो मे हीरा पन्ना, जलज मे सीप-मोती प्राणिज मे गज मुक्ता यह तीन प्रकार के रत्न प्रसिद्ध हैं । उसी प्रकार मे आध्यात्मिक जगत् मे प्रसिद्ध सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तीन महारत्न हैं ।

लाल मणी का वर्णन करते हुए कहा है कि बालक के दोनो कानो मे लाल मणि के कुण्डल पहनाये ॥21॥

पारसमणि का उल्लेख करते हुए भी कहा है कि पारस पाषाण का युग पाकर लोहा भी सोना बन जाता है उसी प्रकार संत जनो के सयोग मे प्राणियो का भी अभीष्ट फलदायी महान पद शीघ्र मिल जाता है । देखो वह नीच कुलीन धोबिन भी आर्यिकाओ के समागम से क्षुल्लिका बनकर कुलीन पुरुषो द्वारा पूजनीय बन गयी । ॥22॥

स्वर्णाधिक सिक्को का वर्णन करते हुए लिखा है कि वृषभदास सेठ स्वर्णाधिक मुद्राओ से सयुक्त होते हुए भी जडाशय अथात मूर्ख नहीं था । ॥23॥

मुद्रिका का भी प्रसग लाते हुए कहा है कि जिनमति सेठानी मुद्रिका के समान सुवृत्त थी । ॥24॥

पौराणिक, ऐतिहासिक एव महापुरुष

पौराणिक पुरुष - पौराणिक पुरुषो में प्रथम श्लोक मे मंगलाचरण के रूप मे वीर प्रभु को स्मरण किया है और दूसरे नम्बर पर पहले अधिकार के 35 वें श्लोक में वासपूज्य स्वामी का स्मरण करते हुए लेखक ने लिखा है कि यह चम्पापुर नगरी पहले से ही बहुत पुण्यशालिनी थी फिर भी 12 वें तीर्थकर श्री वासूपूज्य के शिवपद प्राप्त होने मे और अधिक पूज्य हो गयी ओर चम्पापुर नगरी के धातृवान नामक राजा का काल बताते हुए प्रथम अधिकार के 45 वे श्लोक में कहा है कि यह राजा आज से अढाई हजार वर्षों के पहले भगवान् महावीर स्वामी के समय हुआ है । वीर भगवान् का नाम 9 वे सर्ग के 93 वें श्लोक मे भी लिया गया है । निर्वाण संवत् बताते हुए । पौराणिक पुरुष मे पार्श्वनाथ भगवान् का उल्लेख करते हुए 9 वे सर्ग के 90वें श्लोक में कहा है कि जिनका शरीर तमाल पत्र के समान श्याम है और इसी अग के रग समान काला साप जिनका चरण चिह्न है । जो जितेन्द्रिय पुरुषो के मुख्य माने गये हैं । ऐसे पार्श्वनाथ हमारे पापों का क्षय करें । इसी सर्ग में नेमीनाथ भगवान का उल्लेख करते हुए लिखा है कि राजुलपति भगवान् नेमीनाथ तुम सबकी रक्षा करे जिनकी यश महिमा काम बाधा से दूर रखती है उनकी कृपा से यह काव्य आप लोगों के लिए शोभा बढाता हुआ विराजमान रहे ।

पौराणिक पुरुषों का वर्णन करते हुए राम का प्रसंग भी लाते हुए लेखक के चौथे अधिकार में लिखा है तथा छठवें अधिकार में सती का लक्षण बताते हुए कहा है कि सीता सती राम के साथ दुखदायी वन में विचरण करने पर भी सुखी थी ।

पौराणिक पुरुषो में कृष्ण का प्रसग लाते हुए लिखा है कि जैसे पुरुषोत्तम कृष्ण के वाहन गरुडों से आश्रित रहने वाले जीव सर्पों से अस्पृष्ट रहते हैं । ऐसा अष्टम अधिकार मे कहा है तथा इसी अधिकार मे पुरुषोत्तम श्री कृष्ण भी नाग शय्या पर सोते थे । इसी प्रसग मे कहा है कि कृष्ण को कंस का महारक कहा है ।

रावण का प्रसग भी इस काव्य मे इस प्रकार आया है कि सती सीता राम के साथ वन के कष्ट सहन करने पर भी रावण के प्रलोभन में नहीं आयी । ऐसा छठे सर्ग मे कहा है ।

पौराणिक पुरुषों के साथ अन्य महापुरुषों का नाम उल्लेख करते हुए काव्य नायक सेठ सुदर्शन को अन्तिम कामदेव बताया है, जो भगवान् महावीर स्वामी के समय हुये थे । ॥25॥

पशुपति अर्थात रुद्र का नाम उल्लेख करते हुए लिखा है कि जिस माया मे फसकर रुद्र अपने शरीर मे भस्म लगाकर पशुपति को प्राप्त हो गये और विष का भक्षण किया । ऐसा अष्टम सर्ग मे कहा है ।

ऐतिहासिक पुरुषों मे राजा बलि का नाम आलेखित करते हुए लिखा है कि बलि राजा का नगर पाताल लोक तो सदा ही विषधर सर्पो से व्याप्त होने के कारण अधम है ॥26॥ सुदर्शन के पिता वृषभदास सेठ, एव मनोरमा के पिता समुद्रदत्त सेठ ये दोनो राजा भी ऐतिहासिक पुरुषो के अन्तर्गत आयेंगे जिनका नाम इस काव्य में कई स्थानो पर लिया गया है ।

सातवे सर्ग में राजा नरपाल का नाम भी उल्लेख किया है, ऐतिहासिक नारियो में काव्यनायिका मनोरमा खलनायिका कपिला ब्राह्मणी अभया रानी का उल्लेख इस महाकाव्य में लेखक ने कई जगह विशिष्ट रूप मे वर्णित किया है ।

काव्य नायक सुदर्शन की मा जिनमति का भी दूसरे अधिकार मे उज्ज्वल चरित्र वर्णित किया है ।

कृष्ण की पत्नी सत्यभामा का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा है कि नारायण की पटरानी होने के बावजूद भी उसे अनेक दुःख भोगने पड़े ऐसा अष्टम सर्ग में कहा गया है ।

सामान्य पुरुष

सामान्य पुरुष मे लेखक ने इस महाकाव्य मे अग्रेजो का प्रसग लाते हुए कहा है कि जैसे चन्द्रमा के चले जाने से नक्षत्रगण भी दृष्टिगोचर नही होते है वैसे ही श्वेत वर्ण वाले अग्रेज के चले जाने से इस समय भारतवासियो मे अक्षत्रियपना अर्थात् कायरपना नही दिखायी दे रहा है । अर्थात अंग्रेजों के अभाव मे भारतीय व्यक्ति साहसी हो गये हैं । पाचवे सर्ग के प्रारम्भ मे ऐसा उल्लेख किया है और भी अन्य स्थानो पर सामान्य पुरुषो के नाम अल्प सख्या मे इस काव्य मे आये है।

देव देविया

देव देवियो मे शची एव इन्द्र का नाम उल्लेख करते हुए कहा है कि शची के स्वामी इन्द्र का स्वर्गलोक जो आकाश मे स्थित है वह पूर्ण रूप से देवो से भरा हुआ है । ॥27॥

तीसरे सर्ग में इन्द्र का स्मरण किया है और लिखा है कि सेठ वृषभदास अपने पुत्र सुदर्शन के रूप को जन्म के समय देखकर तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ तो वह सोचता है कि यदि मैं भी इन्द्र के समान हजार नेत्र बना लेता तो अपने पुत्र के रूपामृत का पान कर लेता । ॥28॥

शारदा देवी का नाम उल्लेख करते हुए कहा है कि परमागम के पारगामी इस सुदर्शन के द्वारा कदाचित मैं पराजित ना हो जाऊं ऐसे विचार से ही शारदा देवी विशेष अध्ययन के लिये पुस्तक को सदा हाथ में धारण करती हुई चली आ रही है । ॥29॥

पूतना राक्षसी को उपमा के रूप में ग्रहण करते हुए कहा है कि धात्रीवान राजा के शोक संताप को नष्ट करने वाली अभयमति रानी पूतना राक्षसी के समान थी । ॥ 30॥

बाजार विनिमय

सुदर्शनोदय महाकाव्य में चम्पापुर के नगरों के बाजारों का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा है कि चम्पापुर नगर के बाजार विश्वलोचन कोष के समान सर्वसम्पत्ति से सम्पन्न थे अर्थात जैसे विश्लोचन कोष है वैसे ही वहा का बाजार संसार भर के नेत्रो द्वारा देखा जाता था अर्थात संसार भर के लोग वहा पर क्रय विक्रय के लिये आते थे । जैसे विश्लोचन कोष शब्द ज्ञान से मनुष्य को शीघ्र व्युत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार वहां का बाजार खरीदने योग्य वस्तुओ मे खरीददार को शीघ्र सम्पन्न कर देता था । जैसे यह कोष एक-एक शब्द के अनेक-अनेक अर्थ से परिपूर्ण है, वैसे ही वहा का बाजार एक-एक जाति के अनेक द्रव्यो से भरा हुआ था । जैसे इस कोष में अनेक अध्याय, वर्ग आदि हैं वैसे ही उस नगर के बाजारो के भी अनेक विभाग थे तथा वहा के राजमार्ग भी बहुत अधिक लम्बे चौड़े थे ॥31॥

वर्णित विषय वर्तमान बाजार विनिमय वालो को अनुकरणीय है । प्रथम तो यह लेखक का अभिप्राय है कि बाजारो में ग्राहक के योग्य ही हर वस्तु उपलब्ध होनी चाहिए तथा खरीददार को माल शीघ्र उपलब्ध होना चाहिए जिससे ग्राहकों एव दुकानदारो को मोल भाव करने में समय नष्ट न करना पडे तथा लेखक यह भी कहना चाहते है कि बाजार अलग अलग होना चाहिए जिससे निश्चित वस्तुयें खरीदने वाला ग्राहक सुगमता से आवश्यक वस्तु खरीद सके ।

आज वर्तमान में यह समस्त व्यवस्थायें अव्यवस्थित नजर आती है, एक ही बाजार में अनेक वस्तुए मिलना अर्थात् अलग-अलग मार्केट नहीं होना ग्राहको को ठगने हेतु अधिक मूल्य बताना यह अनियमिततायें अव्यवस्थाये लेखक को देखने मे आई तभी उन्होनें चम्पापुर के बाजारो का उल्लेख किया । इसी प्रसग मे राजमार्ग बाजारो मे अलग होते थे, जिसे आज की भाषा में बाई पास बोलते हैं ठीक भी है । यदि राजमार्ग बाजार मे से हो जायेगा तो फिर बाजार मे वाहनो की बाहुल्यता हो जाने से क्रय-विक्रय मे दिक्कत पडती और अनेक प्रकार की दुर्घटनाओ की भी सभावना होती है ।

बाजार के अन्तर्गत वस्तु विनिमय के लिये मुद्रा का उद्धार करने वाला चम्पापुर के राजा धात्रिवाहन ने स्वर्णाधिक मुद्राओ का सिक्को का चलाने का यश प्राप्त किया । ॥32॥

यहा पर दो बातें ध्यान देने योग्य हैं कि एक ओर तो धात्रिवाहन राजा भगवान् महावीर के समय में हुआ तो उस समय सिक्को को चलाने वाला धात्रिवाहन माना गया । हिन्दी व्याख्या के अनुसार स्वर्ण सिक्कों के आगे आदि शब्द लगाया है तो और भी अन्य धातु के सिक्के उस समय चलते थे । इस लोक मे तथा हिन्दी व्याख्या मे मुद्रा उद्धारक राजा धात्रिवाहन को कहा है तो इससे यह भी सिद्ध होता ह कि मुद्राओ का प्रचलन भगवान् महावीर के भी बहुत पहले से था । लेकिन स्वर्णाधिक धातुओ की कमी के कारण से बीच में बद हो गया हो और राजा धात्रीवाहन के कोष में स्वर्णाधिक की अधिक मात्रा होने से उन्होंने फिर से स्वर्णाधिक मुद्राओ का प्रचलन किया होगा तभी उन्हें मुद्रा उद्धारक कहा गया ।

बाजार का प्रसग लाते हुए काव्य मे लिखा गया है कि जिस समय सुदर्शन मनोरमा पर मोहित होता है, लेकिन अपने इस मोह की दशा को प्रकट नहीं करता है तब सुदर्शन का मित्र कहता है कि हे सुदर्शन समुद्र के समान विशाल राजमार्ग वाले बाजार मे जाती हुई तुमने मनोरमा को देखा है, जिस कारण से तुम्हारा मन विक्षिप्त हो रहा है । ॥33।

साधु सन्तों के नाम

साधु सन्तों का नाम उल्लेख करते समय महाकाव्य मे श्री धराचाय को विश्वलोचन कोष का रचयिता बताया है । ॥34॥

सेठ सेठानी स्वप्न के फल पूछने के लिए जिन मंदिर मे विराजित मुनिराज केपास जाते हैं । यहां मुनिराज का नाम लेखक ने उल्लेख नहीं किया ॥135॥ इस प्रसंग से यह भी सिद्ध होता है कि भगवान् महावीर के समय अर्थात सेठ सुदर्शन के समय मुनिराज जिनालय में निवास करते थे।

चौथे सर्ग में कहा है कि एक दिन चम्पापुर के उपवन मे एक ऋषिराज पधारे थे उन ऋषिराज की बदना हेतु वृषभदास सेठ गया तथा ऋषिराज से धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद प्राप्त करता हुआ उन्हीं से दीक्षा ग्रहण कर लेता है यहा भी ऋषिराज का नाम प्रकट नहीं किया गया । ॥36॥ यहीं मुनिराज सुदर्शन के पूर्वभव बताते हैं और इस वर्णन के अन्तर्गत ऋषिराज ने बताया कि जब तू ग्वाले की पर्याय में था तब तूने जगल मे रात्रि के समय एक मुनिराज की शीतकाल मे सेवा की थी और उन्होंने तुझे णमो अरिहंताण मत्र दिया था । जिसको जापते हुए तेरा मरण हुआ ओर वहा से मरकर यहा तू सेठ सुदर्शन नाम का पुत्र हुआ ऐसा वर्णन सुदर्शनोदय के चौथे अधिकार मे आया है । आगे लेखक ने प्रसिद्ध शास्त्रकारों के नामो का उल्लेख करते हुए छठे सर्ग मे बसन्त ऋतु के वर्णन मे कहा है कि जिस प्रकार लताये भ्रमरों से गुजायमान रहती है उद्यान का वर्णन करते हुए कहा है कि उस शास्त्र रूपी उद्यान मे सदा प्रेम पूर्वक मेरी दृष्टि सलग्न रहे । जिस उद्यान मे तत्त्वार्थ सूत्र जैसे नाम वाले उत्तम वृक्ष विद्यमान है, जिसकी मृदुल शुभकारी छाया है जिसकी अनेको शाखाए चारो ओर फेल रही हैं उसके अधिगम के लिए मेरा मन सदा उत्सुक रहता है । जिस तत्त्वार्थ सूत्र पर अत्यन्त ललितपत्र वाली श्री पूज्यपाद स्वामी रचित सर्वार्थसिद्धि करीवृति है जिसे अत्यन्त मन विचार करके आत्मसात करके अतुल चमत्कर वाली महाव्रती (राजावार्तिक) श्री अकलक देव ने रची है । जो कि निर्दोष बुद्धि वाले विद्वानो द्वारा ही अध्ययन के योग्य है । इस प्रकार यह महाशास्त्र अनेक टीकाओ एव अध्यनकर्ताओं से व्याप्त रहता है। जिस प्रकार एक वृक्ष अनेक टीकाओ एव अध्ययनकर्ताओ से व्याप्त रहता है । जिस प्रकार एक वृक्ष अनेक पुष्पमयी लताओं ओर पक्षियो मे व्याप्त रहता हे । जिस श्रुत उद्यान मे श्री जिनसेनाचार्य से रचित महापुराण रूप महापादप भी विद्यमान हे जा कि दिगन्त व्याप्त कीर्तिमय हे कि जिसमे असी, मसी आदि गृहस्थो के षट्कर्मों के आचार- विचार का वर्णन है । उस श्रुत उद्यान मे सर्वज्ञ प्रतिपादित, सर्वकल्याणकारी शिवमार्ग की समतभद्राचार्य द्वारा प्रणीत सूक्तिया भी विद्यामान हैं । और शिवायन आचार्य रचित सयमधारियो के लिए भगवती माता के समान भगवती अराधना शिवमार्ग को दिखा रही है। ऐसे शास्त्र रूपी उद्यान मे मेरी दृष्टि सदा संलग्न रहे । उपर्युक्त वर्णन से स्वाध्याय बधुओ के लिए महाकवि ने अलग समय मे विभिन्न विषयो का ज्ञान अर्जित करने के लिए उपरोक्त कुछ ग्रन्थो के नाम बताये हैं । वर्णित ग्रन्थो को पढने पर स्वाध्याय बधुओ को दर्शन, सिद्धान्त आचार, एव जीवन का उपसहार किस प्रकार से करना चाहिए । इन समस्त बातो का ज्ञान उन्हें उपरोक्त शास्त्रों को पढने से हो सकता है ।

सातवे सर्ग मे लेखक ने कहा हे कि आज इस कलिकाल रूपी रात्रि मे भी क्वचित् कदाचित अज्ञान को हरने वाले ओर धर्म का प्रकाश करने वाले शान्ति से विधायक शान्ति सागर जैसे आचार्य का जन्म हो जाता हे तो वे अज्ञान रूपी लुटेरो मे ज्ञान रूपी धन की रक्षा करते हैं । आठवे सर्ग मे काव्य नायिका विमल वाहन नाम के मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं । ओर चौथे सर्ग मे काव्य नायक जब मुनिदीक्षा धारण कर लेता हे ता वहां पर सुदर्शन मुनि को निमित्त बनाकर उनकी चर्या का वर्णन किया है । जो वर्तमान मुनियो को शक्ति प्रमाण अशरूप में तो ग्रहण करना ही चाहिए ।

कलिकाल

कलिकाल का चित्रण करते हुए लेखक ने सातवें सर्ग मे लिखा है कि अहो । बडा आश्चर्य ह कि देखते ही देखते बहुत ही शीघ्रता से घनघोर अंधकार को फैलानी वाली यह कलिकाल रूपी रात्रि आ गयी । जहा पर कि आत्मा को बलदायक विद्या का प्रचार करने वाले ज्ञानी महर्षि रूप सूर्य की सत्ता अस्तगत हो गया है तथा रात्रि में जैसे कमल मुद्रित हो जाते हे और उन पर भौरे नहीं रहते वैसे ही आज श्रावक लोगो की सख्या भी बहुत कम हो गयी है जो थोड़ी बहुत है वह भी देवपूजा आदि षट्कर्मों के परिपालन मे उत्साह रहित हो रही है । जिस प्रकार रात्रि मे पक्षी

समूह गमन संचार आदि से रहित होकर निष्क्रिय बना हुआ बैठा रहता है, उसी प्रकार कलिकाल रूपी रात्रि में ब्राह्मण वर्ग अपनी धार्मिक क्रियाओ का आचरण छोडकर निष्क्रिय हो रहे हैं । रात्रि में जैसे चोरी,जारी आदि कार्यों की वृद्धि होती है और जगत में खेद भय आदि बढ जाते है, उसी प्रकार काल रूपी रात्रि में नाना प्रकार के पापों की वृद्धि हो रही है। और लोग जिन नाना प्रकार के दुखो को उठा रहे हैं उन्हे मैं आप भाइयों से क्या कहू रात्रि मे पथिक जैसे दिग्भ्रम को प्राप्त हो जाता है और अपने गतव्य मार्ग को भूल जाता है वेसे ही आज प्राणी धर्म के विषय मे विमूढ हो रहा है । अर्थात् सारी पृथ्वी किकर्तव्यविमूढ हो रही है । जैसे रात्रि मे अधकार का नाशक, और शान्ति का विधायक चन्द्रमा होता है, वैसे ही आज कलिकाल रूपी रात्रि मे अधकार नाशक शान्ति विधायक शान्तिसागर जैसे आचार्य का जन्म हुआ ।

प्रेम और वासना का महायुद्ध

इस शीर्षक के अन्तर्गत इस महाकाव्य के उस प्रसग को मैं प्रासगिक करना चाहता हूं जो एक आदर्श आर्य नारी एव पुरुष की दाम्पत्य जीवन की आदर्शता प्रकट करता है तथा दूसरी ओर वासना से भरे हुये मानवीय नारी की विकृति का प्रदूषण प्रकट करता हे । आदर्श दाम्पत्य जीवन का सूत्रपात करते हुए सुदर्शनोदय काव्यकार ने इस काव्य मे लिखा हे कि सेठानी द्वारा सुदर्शन के गर्भावतरण के समय जो पचस्वप्न देखे उनका फल अपने पति के पास जाकर हाथ जोडकर, नमस्कार करके पूछने की इच्छा व्यक्त की। पत्नी के हाथ जोडकर नमस्कार करने के बाद ही सेठ ने आशीर्वाद रूपी वचन माला समर्पण की। ॥37॥ यहा पर एक आर्य आदर्श स्त्री को किस प्रकार पति की विनय करते हुए उनसे बातचीत करना चाहिए यह चित्रण किया है । तथा यहीं वृषभदास एव जिनमति सेठानी भी उन्हीं स्वप्नो के फल जिनालय मे स्थित मुनिराज के पास पूछने जाते है तब रानी अपने स्वप्न स्वय न कहकर पतिदेव को आगे कर उनके मुख मे ही मुनिराज के सामने प्रकट कराती है । ॥38॥

यहाँ पर पत्नी की पति के रहते हुए आदर्शता प्रकट की है कि पति के उपस्थित रहते समय अन्य के समक्ष स्वय का नहीं बोलना चाहिए । आजकल स्त्रिया तो जब कहीं बाहर जाती है और बाहर किसी से बातचीत करना हो तो पति तो बेचारा चुपचाप खडा रहेगा और पत्नी पति के समक्ष ही अन्य पुरुषो से वार्तालाप करती हुई देखी जाती है । ऐसी महिलाओ के लिए इस महाकाव्य मे वर्णित जिनमति सेठानी के आदर्श से शिक्षा ग्रहण करना चाहिए । पत्नी के प्रति पति उत्तरदायित्व का प्रकट करते हुए लेखक ने लिखा है कि सुदर्शन का जन्म होते ही सेठ वृषभदास भक्ति पूर्वक जिनालय मे जिनेन्द्र देव का अभिषेक लाकर पुत्र एव उनकी माता के ऊपर क्षेपण करता है ऐसा वर्णन तीसरे सर्ग मे पाचवे एव बारहवे श्लोक मे आया है। इसी तीसरे सर्ग मे जब वह सुदर्शन बडा हो जाता है तब वह सागरदत्त की पुत्री मनोरमा से मानसिक रूप से मोहित होता है और मनोरमा सुदर्शन पर मानसिक रूप से मोहित होती है तो दोनो के माता- पिता दोनो का विवाह सस्कार कर देते है । यहाँ पर गृहस्थ को यह शिक्षा मिलती है कि पुत्र पुत्री का एक दूसरे के प्रति अनुराग भाव उत्पन्न होने पर ही जीवन सबन्ध आदर्श एव कलह रहित हो सकता है, अत मातांओ पिताओ के लिए भी पुत्र पुत्री की भावनाओ का ध्यान रखते हुए विवाह सबन्ध करना चाहिए अन्यथा आजकल देखा जाता है कि शादी होने के कुछ दिन बाद दाम्पत्य जीवन खटाई मे पड जाता है ।

दाम्पत्य जीवन मे परस्पर प्रेम होने का कारण अर्थात मनोरमा एव सुदर्शन का परस्पर प्रेम होने का कारण सुदर्शन के पिता को दीक्षा देने वाले गुरु ने पूर्वभव के परस्पर स्नेह को कारण बताया है । अर्थात् पूर्वभव में दोनो जीव भील भीलनी की पर्याय में एक दूसरे के प्रति अनुरक्त थे । इसी के परिणामस्वरूप मनोरमा और सुदर्शन आदर्श दम्पती हुए। ऐसा चतुर्थ अधिकार मे वर्णन है । यही दम्पती अपने पिता के गुरु से एक साथ 'ओम्' कहकर अणुव्रत अगीकार करते हैं । ॥39॥

यहा गृहस्थ स्त्री पुरुषो को इस प्रसग मे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि व्रत नियम, सयम आदि के सम्बन्ध मे एक विचार एक आचार होने से भव भव तक परस्पर प्रेम की धारा बहती रहती है । इस एक आचार विचार को

इस महाकाव्य मे वर्णित किया है कि सुदर्शन ने स्वदार-संतोष व्रत एवं मनोरमा ने स्वपुरुष सतोष व्रत पालन करने का परिणाम यह निकला कि कपिला ब्राह्मणी द्वारा सुदर्शन को अपनो मोह जाल में फँसाने का प्रयास करती है तब भी सेठ सुदर्शन उसके मोह जाल में न फसकर अपने स्वदार संतोष व्रत की रक्षा करता है । ऐसा पाचवें सर्ग मे कहा गया है । तथा इसी सबन्धित सेठ सुदर्शन पर अभय रानी मोहित हो जाती है और सुदर्शन को पर्व के दिन प्रतिमायोग धारण करते समय दासी के द्वारा उठवा लेती है, अपने महलो मे । और अनेक प्रकार की उनसे आलिंगन आदि काम चेष्टायें करती है, लेकिन सेठ सुदर्शन स्वदार संतोषीव्रती होने के कारण अर्थात अपनी स्त्री के अलावा अन्य स्त्रियों को मां, बहन, पुत्री के समान मानता था, इसलिए वह अभयरानी के मोहजाल मे नहीं फसा तथा इस व्रत के चमत्कार स्वरूप सूली भी सिंहासन के रूप मे परिवर्तित हो गयी तथा देवताओ ने जय जयकार की । यहा आदर्श दम्पत्तियो को इस प्रकार की शिक्षा लेना चाहिए कि स्त्री को अपने पति के अलावा समस्त पुरुषो को पिता एव भाई, पुत्र के समान मानना चाहिए और पति को अपनी पत्नी के अलावा समस्त स्त्रियो को मा, बहन, पुत्री के समान मानना चाहिये तभी आदर्श दाम्पत्य जीवन कहला सकता है । आज का भौतिकवादी भौतिक युग स्त्री और पुरुष के अन्दर वासना का साम्राज्य यहा तक स्थापित कर रहा है कि स्त्री पर पुरुष को देखकर और पुरुष पर स्त्री को देखकर वासनित हो जाते हैं और अपने-अपने आदर्श दाम्पत्य जीवन मे वासना रूपी कोढ के कीडों को उत्पन्न कर लेते हैं, परिणामस्वरूप दोनों के प्रेम वात्सल्य में आग लग जाती है । फलत हसती खेलती जिन्दगी राख हो जाती है ।

एक आदर्श कुलीन स्त्री के लक्षणो के सबन्ध मे बताते हुए लेखक ने अभयरानी की दासी के द्वारा रानी को सुदर्शन पर मोहित होने के समय इन लक्षणो का वर्णन करते हुए कहा है कि हे सती, कुलीन नारियो के तो निज पति ही सर्वस्व होता है । उन्हे पर पुरुष से क्या प्रयोजन है। देखो चन्द्रमा कलक सहित है फिर भी कुमुदनी उसे ही देखकर प्रसन्न होती है । सूर्य सतापित करने वाला है फिर कमलनी उसे ही देखकर विकसित होती है । सीता राम के साथ वन में विचरण होने से दुखी थी फिर भी रावण के सौंदर्य मोह रूपी जाल मे नही फसी । अत शीलवती स्त्रियो का जीवन जाए तो जाये पर अपने पतिव्रत धर्म से च्युत नही होती । अधिक कहने से क्या पतिव्रता स्त्री को स्वप्न मे भी पर पुरुष से राग नही करना चाहिए । इस सम्बोधन के बाद रानी जब नहीं समझती है तब वह सुदर्शन रूपी आदर्श पुरुष के लक्षणो का बखान करती है कि महारानी वह पुरुष भूलकर के भी पर स्त्री के पास नहीं जाता। वह विद्वान ऐसा अनुचित राग करके विपत्ति मे क्या पडेगा क्योंकि अति दुलभता से प्राप्त अपनी यश पूर्ण मणि को क्या खायेगा। दूसरो के द्वारा छोडे गये भोजन जूठन को कुत्ता भले ही खाये किन्तु भला मनुष्य तो उसकी ओर दृष्टि नहीं डालता। वैसे ही परभुक्त कलत्र की ओर वह महापुरुष भी दृष्टिपात नहीं करता । कुकर्म कितने ही छुपकर किया जाये वह तो अपना वायु के समान शीघ्र ही प्रसारित हो जाता है । इस प्रकार का आदर्श स्त्री पुरुषो का वर्णन लेखक ने छठे सर्ग मे किया है ।

इसी सर्ग मे अभयरानी की वासना की चरम सीमा का प्रकट करते हुए कहा है कि स्त्री की जब वासना भर दबाती है तब वह धार्मिक ग्रन्थो मे कथित विषय को भी अपनी वासना पूर्ति के समर्थन मे व्यक्त करती है। जैसे रानी दासी से कहती है कि अरी पण्डिते तूँने मनु स्मृति को नहीं पढा है उसमे कहा है कि यदि पति परदेश गया हो अथवा नपुसक पति हो शारीरिक दोष हो स्त्री मासिक धर्म को धारण कर रही हो और उसका पति उपस्थित नही हो तो अपनी इच्छानुसार किसी भी पर पुरुष को स्वीकार कर सकता है । क्या द्रोपदी पचभर्तारी होकर भी सती नही थी । वासनायुक्त रानी सीता के सबध मे कहती है कि सीता जैसा चरित्र तो मात्र एक जनमनरजन करने वाला है यह पृथ्वी भी तो एक स्त्री है वह क्या कभी एक ही पुरुष की बनकर रही है वह भी प्रबल शक्तिशाली पुरुष की भार्या बनकर रहती है उसी प्रकार स्त्री को भी किसी एक पुरुष की बनकर नहीं रहना चाहिए किन्तु किसी भी बलवान पुरुष की भार्या बन कर रहना चाहिए । आगे यह रानी वस्तु स्वभाव के अनेकान्त धर्म को अपनी वासना की पुष्टि मे प्रस्तुत करती हुई कहती है कि वस्तु का धर्म रूप है अर्थात् कोई भी कथन एकान्त रूप नहीं है । उत्सर्ग मार्ग के साथ अपवाद मार्ग का भी विधान पाया जाता है । एक वेश्या से उत्पन्न पुत्र पुत्री कालान्तर मे स्त्री पुरुष (पति पत्नी) बन गये ।

और उनसे उत्पन्न अपनी दादी अर्थात् वेश्या के वश मे हो गये ऐसा 18 नाते की कथा मे आता है । कुल मिलाकर इस महाकाव्य में रानी ने अनेकान्त धर्म द्वारा अपनी वासना की सिद्धि कर दासी को अपने अनुकूल बनाकर पर पुरुष सुदर्शन को अपने षड्यंत्र मे फसा लेती है । लेकिन सुदर्शन एक आदर्श पति की आदर्शता प्रकट करता है अर्थात् रात भर रानी द्वारा सेठ सुदर्शन के साथ काम चेष्टा की लेकिन रानी सेठ सुदर्शन को विकृत नहीं कर पायी क्योंकि वह तो स्वदार सतोष व्रती था, मनोरमा से ही अनुरक्त रहता था । इस प्रकार के सातवे सर्ग मे आदर्श पुरुष का लक्षण लेखक ने बताया है । "मनोरमा और सुदर्शन का आदर्श प्रकट करते हुए लेखक ने कहा है कि सेठ जब दीक्षा लेने लगा तब मनोरमा कहती है कि मुझ कुलीन वशजा नारी के लिए तो तुम्हारे सिवाय आनन्द का कारण और कौन पुरुष हो सकता है इसलिए में तुम्हारे सयोग को छोडने को समर्थ नहीं हूँ । अत जो तुम्हारी गति सो हमारी गति तुम साधु बनने जा रहे हो तो मैं भी तुम्हारे चरणो के समीप ही आर्यिका बनूगी । ॥40॥

इस प्रकार अनेक अनेक रूपो मे इस महाकाव्य मे एक ओर आदर्श दाम्पत्य प्रेम की सुगधि सुभाषित होती है तो दूसरी ओर पर पुरुष की लम्पटता मे सनी हुई वासना युक्त दुर्गंध सृष्टि के आदर्श मे प्रदूषण पैदा करती है ।

चैत्य चैत्यालय

इस सुदर्शनोदय महाकाव्य मे चम्पापुर नगरी का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है कि इस नगर के जिनालय पर्वत के समान प्रतीत होते थे । जैसे पर्वत उन्नत एव विशाल होते हैं वैसे ही वहा के जिनालय अति उत्तुंग एव विस्तृत थे । जैसे पर्वतो पर मृगराज विराजते हैं वैसे ही उन मदिरों की शिखरो पर चारो ओर सिह की मूर्तिया बनी हुई थी। शिखरो की ऊँचाई इतनी थी कि मानो पृथ्वी और आकाश को मापने के लिए मापदण्ड हो । ॥41॥

यहा यह सिद्ध होता है कि भगवान् महावीर के समय नगरो के मध्य मे जिनालय होते थे, जो मनुष्यो के रहने वाले मकानो से अति ऊँचे होते थे लेकिन आज तो मदिर नीचे रह गये और मकानो के खड ऊँचे हो गये ।

चम्पापुर के जिनालय मे वृषभदास एव जिनमति सेठानी स्वप्नो का फल पूछने के लिए जाती है, जहा पर मुनिराज विराजमान थे । ॥ 42॥

फिर जब सुदर्शन का जन्म होता है तब वृषभदास सेठ इसी जिनालय मे जाकर अभिषेक एव पूजन करता है। यहा वर्तमान सामाजिक परम्परा के अनुसार पुत्र जन्म के बाद तो सूतक परम्परा चलती है जिसमे अभिषेक पूजन पाठ वर्जित किया जाता है लेकिन यहा पर वृषभदास सेठ ने पुत्र जन्म के तुरन्त बाद ही अभिषेक किया तथा बाद मे पूजन आदि कर गधोदक को घर भी लाया क्या उस समय सूतक की परम्परा नहीं थी या थी तो फिर वृषभदास ने क्यो स्वीकार नहीं किया प्रश्न विचारणीय है ।

इसी चम्पापुर के जिनालय के सम्बन्ध मे कहा है कि मदिर मे जब सुदर्शन पूजन करता है और इसी मन्दिर मे आयी हुई सागर दत्त की पुत्री मनोरमा का पिता वृषभदास के पास अपनी पुत्री का सुदर्शन के साथ विवाह का सम्बन्ध रखता है तब श्री जिनराज का दास हर्षित हो उठता है । ॥44॥

जिनालय का वर्णन करते हुए महाकवि ने लिखा है कि जब सेठ सुदर्शन पूर्व भव मे ग्वाले की पर्याय में था उस समय उसने एक बार तालाब में सहस्र दल कमल देखा और उसे तोडने को जैसे ही गया तो आकाशवाणी हुई कि इस कमल को सबसे बडे आदमी को देना तब उस कमल को उसने वृषभ सेठ को दिया व सेठ ने अपने से बडे राजा को जानकर उसको दिया व राजा ने अरहन्त भगवान् को बडा मानता था । अत वह स्वय के साथ सेठ एव बालक को ले जाकर जिनालय मे बडे महोत्सव के साथ उस कमल को जिन बिम्ब के आगे चढवा देता है । इसी बालक को ग्वाले की पर्याय मे मुनिराज के द्वारा "णमो अरिहताण" ऐसा मत्र ग्वाले को मिला था । ॥46॥

जिनदेव का प्रसंग लाते हुए लेखक ने आगे और कहा है कि सुदर्शन व मनोरमा दोनो एक दूसरे के गुणों में अनुरक्त रह कर प्रतिदिन अरहंत देव की पूजा करके पात्रों को नवधा भक्ति पूर्वक दान देते थे । ॥47॥

इसी प्रसंग मे लेखक ने प्रभातकाल होते ही अपनी भावना व्यक्त की है कि प्रभातकाल कह रहा है कि अहो भाई, निद्रा को छोड़ो, देखो, प्रभात काल हो गया है, जन्म मरण रूप भव भय को दूर करने वाले श्री जिनवर भास्कर के उदय से पापबहुल रात्रि इस शुभ चेष्टा वाले भारत भूतल से ना जाने किधर भाग गयी है। देखो, ब्राह्मण लोग स्नान आदि से निवृत्त होकर देव पूजन के लिये कमलो को तोड रहे हैं । आओ भाईयो आओ, हम लोग सब मिलकर श्री जिनवर की पूजन को चलें । हमारे कर्तव्य का स्मरण कराने वाली श्री जिनमुद्रा को अपने नयनो मे अवलोकन करें। "जल-चदन-तदुल-पुष्प आदि सामग्री को शोधबीन कर अपने माथ ले चले और श्री जिनवर की पूजन करके अपने इस मनुष्य जीवन को मफल बनावें । पूजन से पूर्व "जिन भगवान् का अभिषेक करके पाप मल धोने वाले और अतिशय पवित्र श्री जिन गन्धोदक को हम सब स्वय ही भक्ति भाव से अपने सिर पर धारण करें ।" यहा जो लोग अभिषेक के स्थान पर प्रक्षाल का प्रयोग करते हैं और यह कहते हैं कि प्रक्षाल तो मात्र प्रतिमा की मफाई के लिए किया जाता है तो यहां लेखक ने स्पष्ट किया है कि श्री जिन भगवान का अभिषिक्त जल तो पापमल को धोने वाला अतिशय पवित्र गन्धोदक होता है, जो भक्ति भाव मे अपने सिर पर धारण करना चाहिए ।

"शिवपद की प्राप्ति के लिए हम लोगो को अपने उत्तमाग को अर्थात् सिर को श्री जिन के चरण कमलो में रखें अर्थात् उन्हें साष्टाग प्रणाम करे ।" यथाशक्ति भगवान् के सदगुणो का गुणगान करके हम भी गुणी जनों मे गणना के योग्य बन जावे । भूरामल का अर्थात लेखक का यही निवेदन है ।

यह उपरोक्त वर्णन पाचवें सर्ग की प्रभात कालीन राग सस्कृत मे रचित भजन मे कहा है । आगे इसी सर्ग में रसिक नाम राग मे लेखक कहते हैं कि हे मित्र जिनवर की वीतराग मुद्रा का दर्शन कर निज नयनो को सफल करो। देखो राग द्वेष रहित यह वीतराग मुद्रा कितनी शात दिखायी दे रही है जिसकी तुलना इस भूतल पर अन्यत्र सुलभ नहीं है । हमारा यह सौभाग्य है कि ऐसी दुर्लभ प्रशान्त मुद्रा के दर्शन हमे सुलभ नहीं है । पहले तो निजराज ने इस भू मण्डल पर राज्य शासन किया । जनता को त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ) के सेवन रूप मोक्ष मार्ग को बतलाया। तदन्तर भोगो से उदास हो राज पाट को त्यागकर पद्मासन बैठकर नासा दृष्टि रखकर अपनी आत्मा मे तल्लीन होकर योग मार्ग बतलाया । इनकी वीतराग मुद्रा भोग और योग के अन्तर को स्पष्ट प्रकट कर रही है। जिन भगवान् की यह मूर्ति जो पद्मासन से अवस्थित है, हाथ पर हाथ रख निश्चल विराजमान है। जो संसारी जनों को यह बतला रही है। कि आत्म बल के आगे अन्य सब निष्फल है। अत हे भाई यदि तुम शाति चाहते हो तो सब सासारिक सम्बन्धो को तिलाजली देकर इसके समीप आओ और इसकी सेवा उपार्जना करके अपना जीवन सफल बनाओ । यहा लेखक ने जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा एव दर्शन का वास्तविक स्वरूप प्रकट करने का प्रयास किया है ।

आगे इसी सर्ग मे काफी होलिका राग मे कहा है कि श्री जिन भगवान् की पूजन का कब सौभाग्य प्राप्त हो कि जब मैं गगा में निर्मल जल को स्वर्ण घट मे भर लाऊ और जिन मुद्रा के चरणो मे विसर्जन कर अपने कर्म कलक बहाऊ । कब मैं मलयागिरी चदन लाकर, कपूर केसर के साथ घिस कर उसे जिन मुद्रा के चरणो मे विसर्जन करूँ ताकि मेरे सर्व विघ्न विनष्ट हो जाये । कब मै मोतियो के समान उज्ज्वल तदुलो का जिन मुद्रा के सामने पुज लेकर स्वर्ग लक्ष्मी का एव मोक्ष लक्ष्मी का पति बनू । कब मैं कमल कुद चमेली, चम्पा आदि के सुगंधित पुष्प लाकर विध्वकारी विनय भाव से जिन मुद्रा के चरणो मे अर्पण करु । कब मैं षट् रसमयी नाना प्रकार के व्यजन अमृत पिड को लेकर जिन मुद्रा के आगे अर्पण करु । जिससे कि मैं भूख के वश मे न रहू । कब मै शुद्ध घृत, कपूर या रत्नमय दीपक लाकर जिन मुद्रा के आगे जलाऊ । जिससे कि मेरे मन मदिर के अधकार का विनाश होकर ज्ञान का प्रकाश हो । कब मैं कृष्णा गुरु चंदन कर्पूरादिक युक्त दशाग धूप जलाकर जिन मुद्रा के आगे सुवासना करूँ । जिससे अदृष्ट छाया को कर्म प्रभाव से दूर करूँ । कब मैं आम, नारगी, पनस केला आदि उत्तम फल उदार भाव से जिन मुद्रा के आगे

समर्पण करूं । जिससे की मेरी असफलता का विनाश हो और प्रत्येक कार्य मे सफलता प्राप्त हो । कब मैं जल चन्दन अक्षत नेवेद्य, दीप, धूप फल को एकत्रित कर अर्घ्य बनाकर जिन मुद्रा के आगे अर्पण कर मोक्ष पद प्राप्त करूँ । महाकाव्य के लेखक कहते हैं कि इस प्रकार जिन नाथ की प्रतिमा की पूजा विधान कर मनुष्य नाना प्रकार की आकुलता-व्याकुलता का विनाश कर सब प्रकार के उत्सव को प्राप्त कर लेता है । यहा लेखक ने भगवान् की अष्ट द्रव्य से पूजन करने का विधान किया है और वर्तमान में "लोग यह कहते हैं कि यह चढाना नहीं चाहिए, यह चढाना चाहिए"। इस विवाद का लेखक ने आठो द्रव्यो का नाम गिना कर उलझे हुए विवाद को सुलझाकर समाज के ऊपर बहुत बडा उपकार किया है । कई लोग कहते है कि भूरामल ब्रह्मचारी अर्थात् ज्ञान सागर तेरा पथी समर्थक थे । लेकिन सुदर्शनोदय महाकाव्य की इस वर्णित अष्ट द्रव्य की पूजन सामग्री की नामावली से स्पष्ट सिद्ध होता है कि लेखक न तो तेरा पथी न बीस पथी थे, वह तो शुद्ध आगम पथी थे । जो आगम मे अष्ट द्रव्य के नाम गिनाये है, उन्ही को लेखक ने यथावत रूप मे इस काव्य मे वर्णित कर दिये है । क्योंकि लेखक अपनी मनगढन्त सामग्री को रचकर आगम विरुद्ध कथन करके ज्ञानावरण कर्म का बंध नहीं करना चाहते थे । ऐसा मेरा विचार है ।

इसी सर्ग मे लेखक ने कहा है कि हे देव मैं सदा तुम्हारे चरणो की सेवा करता हूँ । अपने कर्तव्य का पालन कर मे भव्यपना स्वीकार करूँ ऐसा मे चाहता हू । हे उत्तम ज्ञान के भण्डार श्री भगवान् आपकी प्रवृत्ति सहज ही भक्तो के दुखो को दूर करने वाली और सुख देने वाली है इसलिए हे कृपानिधान श्री जिनदेव मुझ दुखिया की भी विनती सुनो और हे स्वामी । मेरी जन्म मरण की बाधा को हरकर मुझे भी सुखी करो । हे मन मर्यादा से रहित भगवान आपकी सेवा भक्ति करके क्या अनेक लोगो ने अभिलषित वर नहीं पा लिया है अर्थात पाया ही है । अब मुझ अभागो की बारी है सो हे गुणो के भडार, महादान के देने वाले क्या मे अब अभीष्ट वर को प्राप्त नहीं करूँगा अर्थात करूँगा।

जिनेन्द्र देव की महिमा बताते हुए कहते है कि हे केवलज्ञान रूप परम ज्योति के ज्ञान मने इस भू मण्डल पर अनेक देवो को देखा है बहुत बार उनकी सेवा स्तुति भी की है लेकिन जेसा निस्पृह परोपकार वृत्ति आपकी है वह उनमे नही पायी गयी । आप सूर्य के समान तेजस्वी निष्काम हैं आप जीवो के अन्तरतम का हरण करने वाले है । अत आपके समान कोई नही ।

हे जिनश । अन्य सब देव आपकी प्रशंसा करने वाले हैं अतएव मुझे वो उत्तम प्रतीत नही होते । किन्तु स्वावलम्बन का उपदेश देने वाले है सहज जात स्वाभाविक वेष के धारक जिनेन्द्र आप ही शान्ति का देने वाले है आपकी शिक्षा परीक्षा प्रधान है अर्थात आपका उपदेश है कि किसी के कथन को बिना सोचे समझे मत मानो किन्तु सोच समझ कर परीक्षा करके अंगीकार करो ।

लेखक कहते है कि हे जिनदेव । आपकी सौम्य मुद्रा को देखकर उतना प्रमोद होता है जैसे निर्धन को धन मिल जाने पर भूखे को भोजन मिल जाने पर चन्द्रमा की चाँदनी को देखकर चकोर पक्षी को शान्ति और आनन्द मिलता है । हे जिनवर । तुम्हारी छवि निर्दोष है । संसार मे ऐसा कोन प्राणी है जिसे काम रूपी दावाग्नि ने भस्म कर दिया है । हम देखते हैं कि दुनिया मे जितने भी देव हैं वे शास्त्र आदि लिये हुए हैं । शीत से बचने के लिए वस्त्र भूख से बचने के लिये भोजन, दरिद्रता से बचने के लिए धन आदि इकट्ठा करते है । मात्र आप ही ऐसे हैं जो भय भूख शीत एवं धनादि की तृष्णा से रहित है । अरहन्त भगवान की यह निर्दोष मुद्रा हमे पापो से बचावे तथा समस्त जन मानस की रक्षा करे । इस निर्दोष मुद्रा का अवलोकन करने से स्वर्ग की लक्ष्मी ललना को प्राप्त होती है । अर्थात संसार की समस्त माया आपकी किंकरणी (दासी) बन जाती हैं ।

जिन मुद्रा का दर्शन करने से आकुलता समाप्त होकर कुलीनता प्रकट हो जाती है । इस प्रकार के अरहत भगवान् की पूजा करके सेठ सुदर्शन घर लोट रहा था । यह उपर्युक्त समस्त जिन पूजा एवं जिन पूजा एवं बिम्ब महिमा का बड़ा सुन्दर वर्णन लेखक ने अपने महाकाव्य के पचम सर्ग मे किया है। इस सर्ग का यह प्रसग प्रत्येक श्रावक के लिये पठनीय है ।

सातवें सर्ग में लेखक ने कहा है कि गृहस्थ को आरम्भ अहकार आदि को छोडकर चर्तुविध आहार का त्याग कर पर्व के दिन निरन्तर 16 प्रहर तक जिनदेव के नाम उच्चारण मे बिता कर बाद मे अतिथि आहार दान देकर पारणा करना चाहिए ।

आठवे सर्ग में जब मे 6 सुदर्शन मनारमा जब दीक्षा लेने के लिये दानो दम्पति तयार हाते है तो उसके पूर्व जिन मदिर जाकर जिन भगवान् की पूजा करते हैं । पूजन की महिमा का चिन्तवन करते हुए सुदर्शन सोचते हैं कि देखो राजगृही नगर में जब भगवान् महावीर का समाशरण आया था, तब राजा श्रेणिक नगर वासियो के साथ जिन पूजन को जा रहा था, तभी एक मेंढक कमल की पाखुडी मुख मे दबाकर भगवान् की वन्दना के लिए जा रहा था और वह राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे आकर मरकर स्वर्ग मे पहुँचता है । जब एक मेढक जैसा क्षुद्र प्राणी पूजन के भाव मात्र से स्वर्ग जैसी लक्ष्मी का भोक्ता बन गया । तब भक्त जब विधि पूर्वक जिन पूजन का पूजन करेगे तो वह परमानन्द को नियम से प्राप्त होंगे । इस प्रकार सुदर्शन ने जिन मदिर में जाकर जिन बिम्ब का अभिषेक एव पूजन की तदुपरान्त उसी मदिर मे विराजे विमल वाहन मुनिराज से दीक्षा ग्रहण कर लेता है । और मनोरमा आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर लेती है ।

काव्य नायक के जन्म जन्मान्तर

काव्य नायक के पिता जब दीक्षा ग्रहण करते है, तब काव्य नायक अर्थात सुदर्शन कहता है कि मेरा परिणाम भी दीक्षा लेने का हो रहा है लेकिन मेरा मन मनारमा प्रिया मे रम रहा है। ।।48।। तब मनिराज परस्पर मनारमा और सुदर्शन के प्रेम का कारण पूर्व भव के सस्कार का कारण बताते हुए काव्य नायक के पूर्व भवो का वर्णन मुनिराज द्वारा इस काव्य मे काव्यकार ने इस प्रकार किया है कि हे सुदर्शन पूर्व भवो मे तुम एक बार विन्ध्याचल के निवासी भील की पर्याय मे थे और मनोरमा का जीव भी तेरे चरणो की सेवा करने वाली भीलनी के रूप मे थी । ।।49।। दानो जीव प्राणियो का वध करके मासाहार मे उदर पोषण करते थे। परिणाम स्वरुप तेरा जीव मरकर कुत्ता हुआ । और वहा से शुभ होनहार के कारण जिनालय के समीप मरा सो किसी ग्वाले के यहा पुत्र के रूप मे पैदा हुआ । एक बार सरोवर मे से सहस्रदल कमल को तोडते हुए तुमने अर्थात् ग्वाले के लडके ने आकाशवाणी सुनी कि वत्स यह कमल बडे पुरुष को समर्पण करना स्वय उपभोग नही करना । सो उस ग्वाल पुत्र ने नगर के वृषभदास सेठ को बडा आदमी मानकर उसे दिया । और वृषभ सेठ ने राजा को बडा आदमी मानकर राजा को वह कमल दिया और राजा ने स्वय से बडा जिनेन्द्र देव को मानकर तीनो ने समर्पण किया । और राजा ने उस पुत्र को होनहार मानकर अपनी गायो को चराने के लिए रख लिया । एक दिन वह गाय चराने जगंल मे जाता है तो शीतकाल मे एक ध्यानस्थ साधु को देखता है और वह दया से द्रवीभूत होकर पूरी रात लकडी की अग्नि जलाकर साधु को उष्णता प्रदान करता है । प्रभातकाल मे साधु उठकर बालक को होनहार समझकर "णमो अरिहताणं" यह महामत्र देते हैं और महामत्र को निरन्तर जपता रहता है । एक दिन उसकी भैस सरोवर मे चली जाती है, उसे निकालने के लिये वह उसे ही सरोवर में कूदता है और पैनी लकडी के आघात से मरण को प्राप्त होकर सेठ वृषभदास के यहा सदुर्शन नाम से पुत्र के रूप मे जन्म लिया है । और वह भीलनी मरकर भैंस हुई और उस भैंस पर्याय से मरकर तेरी प्राणप्रिय मनोरमा हुई है । ।।50।

तिरिया -चरित्र

इस सुदर्शन महाकाव्य मे तिरिया चरित्र का बहुत ही विचित्र यथार्थ वर्णन किया है । कपिला ब्राह्मणी के छलात्मक तिरिया चरित्र को चित्रित करते हुए लिखा है कि वह ब्राह्मणी सुदर्शन को मोहजाल मे फसाने के लिए दासी से कहती है कि सुदर्शन से कहना कि तेरा मित्र बीमार अवस्था मे इस कमरे मे सो रहा है और स्वय कमरे मे चादर ओढकर सो गयी । जब सेठ सुदर्शन दासी के कहने पर अपने मित्र को देखने कमरे में जाता है तो वह सोचता है कि शय्या पर मेरा मित्र बीमारी के कारण लेटा है और जब वह अपने हाथ से उसके चेहरे का चद्दर दूर करता है तो वहा

तो काम वासना के कीचढ़ से लिप्त तिरिया चरित्र का नाटक खेलकर कपिला ब्राह्मणी अपनी काम वासना की पूर्ति करने हेतु लेटी हुई थी ।

दूसरा त्रिया चरित्र का चित्रण इस महाकाव्य में उस समय किया गया है कि जिस समय अभया रानी की इच्छा पूर्ति के लिए दासी सुदर्शन को मरघट मे लाने से पूर्व सात मिट्टी के पुतले बनाकर एक-एक पुतला ले जाकर एक-एक पहरेदार को अपने त्रिया चरित्र से इस प्रकार अनुकूल बना लेती है कि जब जबरदस्ती अन्दर पुतला लेकर जाती है तो पहरेदार उसे धक्का दे देता है जिसमे पुतला टूट जाता है तब वह कहती है कि तुमने पुतला तोड दिया रानी इसके दर्शन के बिना भोजन नहीं करेगी तब वह पहरेदार घबरा जाता है और तिरिया चरित्र को न समझकर उसे अन्दर आने की स्वीकृति दे देता है, इस प्रकार वह सात दिन मे सातों पहेरदारो को अपने अनुकूल बनाकर और आठवे दिन सेठ सुदर्शन को श्मशान से लाकर रानी का सौंप देती है । यहा तिरिया-चरित्र में राजदरबार के पहरेदार भी फस जाते हैं, यह तिरिया चरित्र का ही एक माहात्म्य है । ॥ 52॥

इसी प्रसग मे तिरिया चरित्र का दूसरा भाव इस प्रकार प्रगट किया है कि यही दासी जब अभयारानी का सुदर्शन पर मोहित होने पर बडा अच्छा सदुपदेश देती है ओर जब स्वय सेठ सुदर्शन को उठाने श्मशान जाती है तो उसका काम वासना मे आलिगन चुम्बन आदि करती है । ॥53॥ स्त्रियो को अपने अन्दर के भावो को सम्हालना टेढी खीर है । कहा भी है- "स्त्रियश्च चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति, कुतो मनुष्या ।"

अर्थात् देखो । वह दासी पहले रानी को वीतरागता के भाव दर्शा रही थी लेकिन जब वह सुदर्शन को पाती है तो स्वय वही चेष्टाये करती है, जिन चेष्टाओ के लिए वह रानी को मना कर रही थी ।

अभयारानी के तिरिया चरित्र को प्रकट करते हुए लेखक ने लिखा है कि जो सुदर्शन पर इतनी मोहित थी ओर पूरी रात भर उसके साथ प्रेम प्रदर्शित करती है लेकिन जब सुदर्शन मिथ्या प्रेम पाश में नहीं फसता है और प्रभातकाल होने को होता है तब वह दासी से कहती है कि इसे अपने स्थान पर छोड आओ तब दासी कहती है कि प्रभात काल हो गया है । इसे कही गुप्त स्थान पर सुरक्षित रखो या इसे वामा (त्रिया-चरित्र) के द्वारा इस अपवाद रूपी विपत्ति को जीतने का प्रयास करो । तब रानी तिरिया-चरित्र फैलाकर चिल्लाकर द्वारपालो को बुलाकर कहती है कि इसे पकडो यह पापी मेरा शीलहरण करना चाहता है और वह धूर्त धूर्तता के साथ मुझ मे व्याभिचार करना चाहता है । पहरेदार रानी कि तिरिया-चरित्र को न समझकर रानी की बातो मे आकर सुदर्शन को राजा के सामने ले जाते हैं और राजा भी अपनी रानी की तिरिया-चरित्र को न समझकर गुस्से मे आ जाता है और सुदर्शन को सूली पर चढाने का आदेश दे देता है ॥54॥ देखो तिरिया-चरित्र जिस पुरुष पर इतनी मोहित थी उसी को सूली पर चढवा देती है और स्वय का दोषी होने पर निर्दोष बना देती है और निर्दोषी को दोषी बना देती है यह तिरिया चरित्र का ही कुत्सित चमत्कार है ।

तिरिया-चरित्र का एक और चित्रण चित्रित करते हुए कहा है कि वही अभयरानी को सम्बोधित करने वाली दासी पटना मे जाकर देवदत्ता वेश्या की सेवा करने लग जाती है और उस वेश्या के साथ मिलकर मुनि सुदर्शन को डिगाने का षड्यत्र रचती है और वेश्या ने तिरिया चरित्रानुसार मुनिराज को नवधा भक्ति द्वारा पडगाह लिया और पडगाह कर आहार दान तो नहीं दिया और कमरे मे बद कर निरन्तर तीन दिन तक मुनि सुदर्शन के साथ काम चेष्टा करके मुनि सुदर्शन को डिगाने का प्रयास करती है । ॥55।

कैसा विचित्र है इस तिरिया चरित्र का नाटक कि उस देवदत्ता वेश्या ने नवधा भक्ति रूपी श्रावक की महान धार्मिक क्रिया को भी ऐसे निकृष्ट कार्य के लिए उज्ज्वल भेष को धारण कर महान वीतरागी मुनि को भी छलने का प्रयास किया । धिक्कार है ऐसे तिरिया चरित्र को ।

उपयुक्त वर्णित त्रिया चरित्रो को समझकर सत् पुरुषों को उनसे बच कर चलना चाहिए और तिरियाओ की बातो मे आकर शीघ्रता से कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए ।

मानवीय चरित्र चित्रण

इस महाकाव्य में एक सामान्य मानव जीवन किस प्रकार का होना चाहिए भारतीय संस्कृति में इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि शुद्ध वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं इसको धारण करने वाला धर्मात्मा पुरुष विश्व को अपने समान मानता हुआ अन्य के कल्याण के लिये भद्रतापूर्वक अपने शरीर को अर्पण कर देता है किन्तु देह की रक्षार्थ किसी भी जीव जन्तु को कष्ट नहीं पहुँचाता। ॥56॥ यहा पर मुनिराज द्वारा उपदेश दिलाया गया है कि सम्यग् दृष्टि मात्र आत्म कल्याण ही नहीं करता बल्कि विश्व रक्षार्थ एव कल्याणार्थ अपने प्राण भी अर्पण कर देता है । लेकिन कभी भी अपनी शरीर की रक्षा या इन्द्रियो के पोषण के लिये किसी अन्य जीव की हत्या नहीं करता । इसी सबध मे किसी नीतिकार ने कहा है कि "मर जाऊ मागू नहीं अपने तन के काज, परमारथ के कारण मोहे न आवे लाज ।"

एक ज्ञानी जीव का लक्षण बताते हुए लेखक ने कहा है कि ज्ञानी व्यक्ति अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न सत्‌चित्त और आनन्द स्वरुप जानकर उसमे तल्लीन रहता है और शरीर एव सबन्धित कुटुम्ब आदि को पर जानकर उनसे विरक्त रहता है । ॥57॥ जीव के तामस भाव ससार की परम्परा को बढाने वाला है। उसमे विपरीत जो सात्विक भाव को धर्म कहा है । यह सात्विक भाव ही मुक्ति का प्रधान कारण है, सक्षेप में यही धर्म अधर्म का स्वरूप है । ॥58।

मानवीय चरित्र चित्रण का चित्रण करते हुए लेखक ने इस महाकाव्य मे कहा है कि एक धोबिन की लडकी (पूर्व पर्याय मे मनोरमा का जीव)आर्यिका के सत्सग मे क्षुद्र पने को त्यागकर क्षुल्लिका व्रत धारण करती है । तथा श्वेत साडी, एक श्वेत उत्तरीय (चद्दर) इन दो वस्त्रो को अपने शरीर पर धारण करती है तथा कमण्डल एव भोजन पात्र, मात्र परिग्रह को रखकर शेष परिग्रह का त्याग कर देती है ।

यहा पर क्षुल्लिका को कमण्डल का विधान तो किया लेकिन लेखक ने क्षुल्लिका को पिच्छिका का कोई विधान नही किया क्या ? लेखक की दृष्टि से क्षुल्लिका को पिच्छिका की कोई आवश्यकता नही है यह प्रश्न विचारणीय है अस्तु यह धोबिन की पर्याय मे जन्मी कन्या, क्षुल्लिका व्रत लेने पर दया, क्षमाशील एव सतोष जैसे महान् मानवीय गुणों से अलकृत हो गयी ।

आरम्भिक और अनारम्भिक साकल्पिक पाप से दूर हो गयी । सत् सत्य वचन बोलती, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती, अष्टमी चतुदर्शी पर्व मे उपवास रखती एव तीनो काल मे सदा सामायिक करने वाली सतकुलीन पुरुषो से भी वदनीय हो गयी । क्षुल्लिका की आहार चर्या के माध्यम से लेखक ने जनमानस को उपदेश दिया है कि वह क्षुल्लिका अग्नि पक्क दाल भात रोटी आदि जिन भोज्य पदार्थो को गृहस्थ भक्ति मे देता था । उन्हे एक बार खाकर तभी पानी पीकर वह आर्यिकाओ के संघ मे जिनदेवी का स्मरण करती हुई रहती थी । प्राणी मात्र मे मैत्री भाव पीडित प्राणी से करुणा भाव गुणी जनो मे प्रमोद भाव, विरोधी जनो मे माध्यस्थ्य भाव रखती थी । इस प्रकार लेखक ने क्षुद्र पर्याय मे जन्मा हुआ जीव भी शुद्ध आचरण के माध्यम से मानवीय चरित्र चित्रण को प्राप्त हो जाता है । ऐसा कहा है । ॥59॥

यहाँ सगति का भी प्रभाव देखने में आता है कि एक आर्यिका की सगति नीच कुलीन कन्या ने की तो वह आदर्शपने को प्राप्त हो गई । इसलिए मानव के सद् आचरण वाले लोगो की सगति करना चाहिए ।

इसी सर्ग मे लेखक ने सेठ वृषभदास को उपदेश देते हुए कहा है कि मानव को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थों मे से गृहस्थ को धर्म पुरुषार्थ ही प्रधान है । इसके बिना अन्य पुरुषार्थ सम्भव नहीं है । गृहस्थ को पच अणुव्रत धारण करना चाहिए अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा न कर सत्य वचन बोले लेकिन मर्मच्छेदक, एव निन्दापरक सत्य वचन भी न कहे । किसी की बिना दी हुई वस्तु न लेवे, किसी से ईर्ष्या न करें, पर पुरुष का / पर स्त्री का सेवन न करें, पर्व के दिनो मे स्वस्त्री का भी सेवन न करे, मासाहार न करे, शाकाहार करे, वस्त्र से छने हुए जल को पीवें, मदिरा, भाग तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओ का सेवन न करे । एवं विनीत भाव धारण कर वृद्ध जनों की आज्ञा स्वीकार करे। सर्व प्राणियो के लिए यह सुखदायक, साधारण धर्म मार्ग कहा है । ॥60॥

लेखक ने इस महाकाव्य मे स्वतत्र भारत एव भारतीय व्यक्तिया का इस प्रकार का चरित्र चित्रण किया है कि श्वेत वर्ण वाले अंग्रेजों के चले जाने से भारतीय वासी क्षत्रीयपने को प्राप्त हो गये है अर्थात साहसी हो गये हैं तथा अंग्रेजो के चले जाने से भारतीय व्यक्ति हीन जाति वाले का भी आदर सत्कार करने लगे हैं । पाँचवे सर्ग के इस कथन से ऐसा लगता है कि लेखक की दृष्टि से हीन जाति वाले भी आदर के योग्य है । लेकिन अग्रेजो के कारण से हीन जाति को आदर सत्कार नहीं मिल पा रहा था । इसी सर्ग मे कहा है कि एक गृहस्थ के लिये अष्टमी चतुर्दशी को उपवास पूर्वक आत्म साधना करना चाहिए । अर्थात् पर्व के एक दिन पूर्व गुरु चरणो मे जाकर उपवास की धारणा करना चाहिए । तदनन्तर अपनी इन्द्रियो के विषयों को त्यागकर आरम्भ, परिग्रह एव चतुर्विध आहार का त्याग कर पर्व की पूर्व रात्रि मे पर्व के दिन एक पर्व की रात्रि और अगले दिन मध्याह्न काल अर्थात् 16 पहर तक जिनदेव का नामोच्चारण करना चाहिए तथा पर्व के दूसरे दिन सत् पात्र का आहार-दान देकर स्वय पारणा करना चाहिए ।

विषय वासना मे निमित्त मिलने पर मानव के लिये स्त्री शरीर को सप्त धातुओ से बना हुआ एक पिण्ड मानना चाहिए जैसा कि सेठ सुदर्शन अभयारानी के वासना-युक्त शरीर को एक घृणित पदार्थों का पिण्ड मानकर के वैराग्य भाव धारण किया था । ऐसा इसी सातवे सर्ग मे कहा है।

राजा के सम्बन्ध मे लेखक ने लिखा है कि राजा को कभी अपने व्यक्ति के द्वारा भी कही गई बात परीक्षा किये नहीं मानना चाहिए क्योंकि अपनी पत्नी का कहना मान लेने पर निर्दोष सुदर्शन को भी सूली देने जैसा पाप राजा द्वारा हो सकता था, यदि आकाशवाणी न हुई होती अर्थात् दोषी बच जाता है और निर्दोषी मारा जाता । ।।61।।

एक गृहस्थ मानव को उपदेश देते हुए लेखक ने अपना अभिप्राय प्रकट किया है कि देखो एक स्वदार सतोष व्रत की महिमा कि राजा द्वारा सूली दिये जाने पर वह सूली भी सिंहासन बन गयी और देव लोग आकाश से जमीन पर उतर कर जय जयकार करने लगे । अत शील व्रत की महिमा अचिन्त्य है । प्रत्येक को शील व्रत धारण करना चाहिए ।

महान् व्यक्तिया का लक्षण बताते हुए 8 वे सर्ग मे लेखक ने लिखा है कि राजा को जैसे पता चला आकाशवाणी द्वारा कि मेरे द्वारा निर्दोष व्यक्ति को सूली दी जा रही है वैसे ही वह पश्चाताप करता हुआ सुदर्शन से क्षमा मागने लगा। यह सत्पुरुषो के लक्षण है। ।।62।।

यहा मानव को शिक्षा लेनी चाहिए । पता चले कि मुझमे अपराध हो गया है तो अपराध का स्वीकार कर प्रायश्चित लेना चाहिए ।

सुदर्शन की महानता बताते हुए लिखा है कि जब राजा ने उससे क्षमा मागी तो सुदर्शन कहता है कि राजन् इसमे तुम्हारा क्या दोष । यदि राजा अपराधी को दण्ड न देवे तो राज्य की मर्यादा कैसे रहेगी अर्थात् आपने तो मुझे अपराधी मानकर दण्ड दिया था । और सेठ सुदर्शन की महानता देखो वह कहता है कि महारानी तो मेरी माता और आप देश के राजा हो सो पिता हैं इसलिए महारानी एव आपमे मेरी कोई द्वेष बुद्धि नहीं है । और जब राजा ने अपने बिना विचार किये हुए अपराध की ग्लानि से भरकर राज्य सुदर्शन को देना चाहा तब सुदर्शन बोलते है कि यह राज्य अनेक राजाओ द्वारा भोगा गया इसलिये ऐसे अनेको के द्वारा भोग्य वस्तु मुझ जैसे स्वदार सतोष व्रत धारी के लिए उपयोग करने योग्य नहीं है। इस प्रकार राज्य को ग्रहण न कर अपने घर जाकर पत्नी मनोरमा से अनुराग रखना चाहता हूँ । तब मनोरमा भी उनकी भावना का आदर कर स्वय भी मोक्ष मार्ग पर चलने के लिये अपने भाव प्रकट करती है । तब दोनो क्रमश मुनि एव आर्यिका व्रत धारण कर लेते हैं । यहा लेखक का सकेत है कि प्रत्येक गृहस्थ को अपने जीवन के अन्त में सन्यास धारण करना चाहिए यही गृहस्थ का श्रेयस्कर मार्ग है । यह सब विवरण आठवे सर्ग मे किया गया है ।

नौवें सर्ग मे वेश्या के द्वारा वासना युक्त चेष्टाये करने पर मुनि सुदर्शन उन्हे उपदेश देते हैं जो मानव जाति के लिए अनुकरणीय है । सुदर्शन कहते हैं कि हे देवदत्त, स्वच्छ मुख देखकर के दर्पण में मनुष्य सुखी होता है और मलीन

मुख देखकर दु.खी होता है, इसमें दर्पण का क्या दोष है । अत शिष्ट पुरुष निमित्त कारण को भला बुरा न कहें । मनुष्य को चाहिए कि जो अपने लिए कार्य अरुचिकर है वह दूसरों के साथ भी न करे। सूर्य के लिये उछाली गयी धूल स्वयं के सिर पर आकर पडती है । मन, वचन, मात्र की सरलता रखे एवं निश्छलता एव निरीहता को धारण करना चाहिए । बाह्य वस्तुओं की इच्छा ही पीड़ादायक है । बाह्य वस्तुओं को भोगकर जो अपनी इच्छा शात करना चाहता है, उसकी इच्छा उतनी ही दुगनी बढ़ जाती है । जैसे अग्नि में लकड़ी डालने से अग्नि और भडकती है। जो लोग इन्द्रिय विषयों से आहत होकर शरीर में ही आत्म बुद्धि रखते हैं तथा जो इन्द्रिय विषयो के आहत होकर शरीर में ही आत्म बुद्धि रखते हैं तथा जो हिसा, असत्य सम्भाषण, परधन हरण, परस्त्री सेवन, और परिग्रह में आसक्त हो रहते हैं, मदिरा और मांस के सेवन में सलग्न हैं, वे लोग सुख के स्थान पर दु ख ही उठाते हैं । देखो हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत होकर के नकली हथनी के वशीभूत होकर सांखलो में बांधा जाता है । मछली रसना इन्द्रिय के वशीभूत होकर बंशी के कांटे में फसकर मौत को प्राप्त हो जाती है । इसी प्रकार भ्रमर कमल की गंध से घ्राण इन्द्रिय के वश में होकर मारा जाता है तथा पतगा दीप शिखा मे गिरकर मर जाता है नेत्र इन्द्रिय के वशीभूत होकर तथा कर्ण इन्द्रिय के वशीभूत होकर सर्प सपेरे के पिटारों में बन्द हो जाता है । इस प्रकार एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत की जब यह दशा है ता जो पांचो इन्द्रियों के वशीभूत है, उसकी विपत्तियों का वर्णन कौन कर सकता है ।

मांस का निषेध करते हुए सुदर्शन मुनि वेश्या से कहते हैं कि मास खाना तो दूर की बात सज्जन पुरुष उसका नाम भी नहीं लेते हैं। इसी के आगे कहा है कि दयालु पुरुष को आचार, मुरब्बे, मक्खन एक अर्न्तमुहूर्त के बाद बिना छना जल, वर्षा ऋतु मे पत्र शाक नहीं खाना चाहिए । क्योंकि इनमें अपरिमित त्रस जीवो की हिंसा होती है तथा बड पीपल, गूलर, अंजीर, पिलखन, आदि अनेक जन्तु वाले फल नहीं खाना चाहिए । रात्रि में भोजन करने का त्याग करना चाहिए । चमडे में रखी हुई तेल, घृत रम पदार्थ नहीं खाना चाहिए । चना, मूंग, उडद, द्विदल वाले पदार्थ भी कच्चे दूध, दही के साथ नहीं खाना चाहिए क्योंकि इन पदार्थों मे थूक के साथ त्रम जीवों की उत्पत्ति हो जाती है । मधु, भाग, तम्बाकू, गुटखा, गाजा का त्याग करना चाहिए । व्रती को यथाशक्ति प्रतिमाओ को ग्रहण कर तीनों सन्ध्याओ में परमात्मा का स्मरण करना चाहिए ।

इस प्रकार अनेक-अनेक प्रकार से इस काव्य में मानवीय चरित्र चित्रण का आलेखन किया गया है, जो प्राणीमात्र के लिये अनुकरणीय है।

काव्य नायक सेठ सुदर्शन की जीवन झाकी

सेठ सुदर्शन इस काव्य के मुख्य नायक हैं । जैन दर्शन के अनुसार 24वें कामदेवों में अन्तिम कामदेव माने गये हैं । इन्हें आगम में अन्त कृत केवली कहा है । सुदर्शन धीर गम्भीर स्वभाव वाला है । उन्होंने कठिन तपश्चरण कर घोर उपसर्ग सहनकर अंत में सिद्ध पद को प्राप्त किया है ।

लेखक ने कहा है कि इन कामदेव की कथा का आख्यान आचार्य परम्परा से अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है । अनन्त गुणों के निदान वीर प्रभु का स्मरण करने वाले आप लोगो के लिए यह बहुत ही अनुकूल है ।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में अगनाम का देश है, जहा पर चम्पापुर नाम की नगरी है । ।।64।। जो नगरी वासु पूज्य स्वामी की निर्वाण स्थली होने से अधिक पूज्यता को प्राप्त है । ।।65।। इस चम्पापुर नगरी का चारित्रवाहन नाम का राजा हुआ है जो सर्व गुण सम्पन्न शक्तिमान था । जिसके अभयमती नाम की रानी थी । ।।66।। यह राजा आज से 2500 वर्ष पहले महावीर के काल में हुआ था । इस चम्पापुर नगरी में वृषभदास नाम का सेठ भी रहता था जिसकी पत्नी जिनमति सेठानी थी । ।।67।। एक दिन जिनमति सेठानी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में निम्न प्रकार 5 स्वप्न देखे । प्रथम सुरगिरि पर्वत, दूसरा कल्पवृक्ष, तीसरा उदार सागर, चौथा निर्धूम अग्नि पांचवा विमान । ।।68।। प्रभात काल में जब यह सेठानी अपने पति के पास स्वप्नो का फल जानने जाती है जब पति इन स्वप्ना के फल को

जानने में अनभिज्ञता प्रकट करता है, तब मंदिर में विराजमान मुनिराज के पास दोनों सेठ सेठानी फल पूछने जाते हैं। और महाराज को विनयपूर्वक 'नमोऽस्तु' आदि करके मुनिराज से 'धर्म-वृद्धिरस्तु' ऐसा आशीर्वाद पाते हैं तथा सेठानी से प्रेरित होकर सेठ मुनिराज का गुणानुवाद करते हुए कहते हैं कि मेरी इस सहचारिणी ने रात्रि में पांच स्वप्न देखे हैं। सो आप इनका फल बतलाकर हमें अनुगृहीत करें। ॥69॥ तब मुनिराज ने प्रथम स्वप्न का फल बतलाकर कहा कि आपका पुत्र अति धीर होगा, दूसरे कल्पवृक्ष का अर्थ कहा कि पुत्र दानवीर होगा, तीसरा समुद्र देखने का फल हैं कि पुत्र सद्गुण रूपी रत्नों का भडार होगा, चौथे विमान को देखने का फल है - पुत्र स्वर्गवासी देवो का भी वल्लभ होगा, पांचवे निर्धूम अग्नि देखने का अर्थ है कि पुत्र अंत में अपने कर्म रूपी ईंधन को जलाकर शिवपद को प्राप्त करेगा। इन गुणो से सम्पन्न तुम्हारा पुत्र होगा। ऐसा निश्चय जानो ॥70॥

मोक्षगामी जीव को गर्भ में पाकर सेठानी पूज्यता को प्राप्त हो गयी। इस प्रकार गर्भवृद्धि के लक्षणो का वर्णन करके लेखक ने दूसरा सर्ग समाप्त किया है।

तीसरे सर्ग को प्रारंभ करते हुए लिखा है कि गर्भ के नौ मास पूरे होने पर जिनमति ने मानों सूर्य को ही पुत्र के रूप में उत्पन्न किया जिसका नाम सुदर्शन रखा गया। ॥71॥

सुदर्शन के बडे हो जाने पर सुदर्शन पूजन के निमित्त मदिर में जाता है और वहा उसी नगर के सागर दत्त वैश्य की पुत्री मनोरमा के सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है। मनोरमा भी सुदर्शन पर प्रेमासक्त हो जाती है। दोनो के पिताओ ने अपने पुत्र-पुत्री का मन्तव्य जानकर दोनों का विवाह सम्बन्ध करा देते हैं।। ॥72॥

कुछ दिन बाद चम्पापुर नगरी के बाहर उपवन में एक ऋषिराज आये, जिनके चरणों मे जाकर मेठ वृषभदास दीक्षा ले लेता है। पिता को दीक्षित देखकर सुदर्शन के भी दीक्षा को लेने के परिणाम होते हैं लेकिन मनोरमा के कारण वह दीक्षा नहीं ले पाता। तब सुदर्शन को मुनिराज ने मनोरमा के प्रति प्रेमासक्ति का कारण पूर्वभव का सस्कार बताया तथा उपदेश देकर अहिसा, सत्य, अचौर्य, स्वदार सतोष व्रत, शाकाहार, नशा त्याग, जल छानकर पीना आदि नियम सुदर्शन एव मनोरमा को दिये। ॥72॥

एक दिन जिन मंदिर से पूजन अभिषेक कर सुदर्शन लौट रहे थे, तब एक कपिला ब्राह्मणी सुदर्शन के सौन्दर्य पर मोहित हो जाती है। उस ब्राह्मणी का पति सुदर्शन का मित्र था। अत वह दासी को भेजकर यह सदेशा कहलवाती है कि तुम्हारा मित्र बहुत बीमार है, तुम उसे अभी देखने चलो। सुदर्शन उस दासी के भातरिक छलभाव को न समझकर निश्छल भाव से अपने मित्र के घर चले जाते हैं और एक कमरे में अपने मित्र को पलग पर सोया हुआ जानकर उसके पास बैठकर सांत्वना के शब्द कहते हैं उसके मुख पर चद्दर हटाते ही कपिला ब्राह्मणी अपनी काम वासना प्रकट करती है लेकिन सुदर्शन अपने चातुर्य के कारण तथा अपने व्रत की रक्षा निमित्त झूंठ बोल देते है कि हे कपिला, मैं तो नपुसक हू। तेरी इच्छा की पूर्ति करने में मैं असमर्थ हू। तब ब्राह्मणी ने लज्जित होकर उसे छोड दिया। ॥74।

एक दिन बसन्त बहार देखने के लिए मनोरमा अपने पुत्र को लेकर जा रही थी। कपिला ब्राह्मणी अभयारानी के साथ महल के झरोखे में बैठी थी। तब वह रानी से पूछती है कि रानी। वह सुंदर पुत्र किसका है। तब रानी के उसे सुदर्शन का पुत्र बतलाया। तब कपिला स्वय के साथ घटी घटना का हवाला देते हुए कहती है कि वह तो नर्पुसक है। लेकिन रानी उसका परिहास करते हुए कहती है कि उस धर्मात्मा ने अपने धर्म की रक्षा करने के लिए तुझसे झूँठ बोल दिया है। तब कपिला ब्राह्मणी रानी को चुनौती देती है कि यदि तुम महारानी हो तो ऐसा सुदर पुरुष तो तुम्हारे आलिंगन-योग्य है तब अभया रानी अपनी दासी के साथ षड्यत्र रचकर जिस समय सेठ सुदर्शन अष्टमी और चतुर्दशी को नग्न होकर श्मशान में ध्यान करता है, उसी नग्न अवस्था में रात्रि के समय उसे अपने महलों में उठवा लेती है और कमरे में बंद कर अनेक प्रकार की आलिंगन आदि काम चेष्टा करती है। लेकिन सेठ सुदर्शन स्वदार संतोष व्रती होने के कारण किंचित् मात्र भी विकार को प्राप्त नहीं हुए। तब रानी ने अपने अपवाद से बचने के लिए तिरिया-चरित्र के अनुसार शोर-गुल मचाते हुए द्वारपालों को बुलाकर कहा कि निर्लज्ज मेरा शील भंग करना चाह रहा

है । तब रानी की बातों पर विश्वास करके द्वारपालों ने सुदर्शन को पकड कर उसी अवस्था में राजदरबार में उपस्थित किया । तब राजा ने भी बिना विचार किये ही रानी की बातों पर विश्वास कर उसे शूली पर चढ़ाने का आदेश दे दिया । इस प्रकार का रानी द्वारा उपसर्ग करने का वर्णन लेखक ने छठवें सातवें सर्ग में किया है ।

आगे शूली पर चढ़ जाने के बाद चाण्डाल द्वारा तलवार चलाने पर वह तलवार का वार पुष्पहार का रूप धारण कर गले को शोभायमाम करता है । तब राजा आकर स्वय अपने हाथ से तलवार चलाने को उद्यत होता है, उसी समय आकाशवाणी होती है कि हे राजन् अपनी ही स्त्री में संतुष्ट रहने वाला सेठ सुदर्शन स्वदार संतोष व्रती महान् इन्द्रिय विजयी है, अर्थात् यह निर्दोष है । आप अपने ही घर के छिद्र को देखो और यथार्थता का निरीक्षण करो । ।।75।।

इस प्रकार राजा यथार्थ रहस्य को जानकर ग्लानि से भर गया और सुदर्शन को अपना राज्याधिकारी बनाने के लिए उसके चरणो में विनती करता है । तब सुदर्शन इस राज सम्पदा को निस्सार जानकर अपनी पत्नी मनोरमा सहित चैत्यालय में विराजे मुनिराज के समक्ष सुदर्शन मुनि व मनोरमा आर्यिका दीक्षा धारण कर लेती है । अभयमती रानी लज्जा के कारण आत्महत्या कर लेती है और मरकर पाटली पुत्र (पटना) में व्यतरी हो जाती है और वह दासी चम्पापुर से भागकर पटना में एक वेश्या के घर दासीत्व स्वीकार करती है । वहाँ पर भी वह दासी वेश्या को सुदर्शन मुनि के प्रति सम्मोहित कर देती है । तब वह वैश्या मुनि सुदर्शन को अपने वासना पांस में फसांने का षड्यत्र तैयार करती है । ।।76।।

मुनि सुदर्शन

यही सेठ सुदर्शन मुनि दीक्षा ले लेता है तब मुनि सुदर्शन की मुनिचर्या एवं वेश्या तथा व्यतरी द्वारा किये गये उपसर्ग के चित्रण को चित्रित करते हुए लेखक ने अनुकरणीय वर्णन किया है । लेखक ने मुनि सुदर्शन की चर्या को निमित्त बनाकर मुनिचर्या के भी वर्णन का प्रयास किया है और मुनि महाराज का स्वरूप इस प्रकार होता है, पृथ्वी ही जिनकी शय्या, आकाश ही जिनकी चद्दर है, भुजा ही जिनकी तकिया है, चन्द्रमा ही जिनका दीपक है, अयाचित भिक्षा ही जिनके उदर भरण का साधन है । हस्ततल ही भोजन पात्र है, जो अनुद्दिष्ट भोजी है, शरीर ही जिनका परिवार है जहा पर बैठ जाय, वही उनका देश है, अरण्य प्रदेश में भी जिन्हें नगर का बोध होता है, गिरी गुफा को ही भवन मानते हैं मृगादिक वनचारी ही जिनके मित्र हैं, सहज आत्म सुख ही उपभोग है । जो पुष्पहार एव तलवार के प्रहार मे, सम्पत्ति एव विपत्ति मे मृत्यु एव जीवन मे समता परिणाम रखते हैं, ज्ञानामृत ही जिनका भोजन हैं, कर्मों का क्षय करना ही जिनका उद्यम है, दसों दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं, कनक और कामिनी में अनुराग नहीं रखते, दिन-रात विश्व कल्याण की भावना में निरत रहते हैं । इन समस्त गुणों से सम्पन्न साधु को होना चाहिए और यह गुण सुदर्शन मुनि में थे । ।।77।।

वे सुदर्शन मुनिराज कभी एक मास कभी एक पक्ष में पारणा करते थे । ग्रीष्मकाल गिरि शिखर पर, शीतकाल मरूस्थल में व्यतीत करते थे । यहा लेखक राजस्थान जैसी मरुभूमि का होने के कारण इस बात से परिचित था कि राजस्थान में गर्मी और सर्दी दोनो ज्यादा पडती है। इसलिए शीतकाल नदी किनारे न कहकर मरुस्थल में कहा । वर्षाकाल में वृक्षो के नीचे प्रतिमा योग धारण करते थे । इन परिषह और उपसर्गों के कारण से मुनिराज का शरीर थोडे ही दिनों मे सूख गया अर्थात् शरीर में मांस एवं चर्बी समाप्त होकर मात्र हड्डी और चर्म ही रह गया । इस प्रकार तपस्या करते हुए सुदर्शन मुनि पाटलीपुत्र पहुचें और वहां चर्या के लिए विचरण कर रहे थे । तब वह कपिला ब्राह्मणी जो वेश्या के यहा दासी थी, उसने देवदत्ता वेश्या के लिये सुदर्शन मुनि को पडगाहकर वश में करने के लिए कहा । तब वेश्या ने सुदर्शन मुनि को पडगाहकर आहार दान तो नहीं दिया बल्कि उनकों निरन्तर तीन दिन तक कमरे में बद कर तरह-तरह की काम-चेष्टाएं करने लगी । लेकिन अखण्ड ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले महामुनि रच मात्र भी विकृति को प्राप्त नहीं हुए। इन्हीं तीन दिनों के अंदर लेखक ने कहा है कि सबसे पहले वेश्या के दुष्ट अभिप्राय को जानकर मुनि सुदर्शन ने संसार से ग्लानि पैदा करने वाला उपदेश दिया । लेकिन उस उपदेश का उस वेश्या पर कोई प्रभाव नहीं

हुआ तो सुदर्शन मुनि उसको उपसर्ग मानकर तीन दिन तक मौन रहकर सहन करते रहे । अंत में जब देवदत्ता वेश्या नहीं डिगा सकी तब इनके चरित्र से प्रभावित होकर अपने किये हुए दुष्कृत के लिये क्षमा मागने लगी और अपने निन्द्य कार्यों की निन्दा करती हुई अपने जीवन के उद्धार के लिये उपदेश-प्रार्थना करने लगी, तब सुदर्शन मुनि ने अपना उपसर्ग दूर जान और वेश्या को स्वकल्याण के लिये प्रवृत्त जान उसे सद्-उपदेश दिया । उस उपदेश के परिणाम स्वरूप वह वेश्या और उसकी दासी जो कपिला ब्राह्मणी थी उन्होंने सुदर्शन मुनि से आर्यिका व्रत धारण कर लिये, सो ठीक भी है, क्योंकि जगत में लोहा भी रसायन का योग पाकर सोने का रूप धारण कर लेता है । ऐसा नौवें सर्ग के 74 वें श्लोक में कहा है ।

इसके बाद मुनिराज श्मशान मे जाकर ध्यान मग्न हो गये । उसी समय अभयारानी जो मरकर व्यन्तरी हुई थी वहा पर आ जाती है और सुदर्शन मुनि को देखकर उसे अपना पूर्वभव का बैर ध्यान आ जाता है और कहती है, हे दुष्ट, मेरी तूने एक साधारण सी इच्छा पूर्ण नहीं की थी । कोई भी जीव इस भूतल पर दूसरे की प्रार्थना का तिरस्कार नहीं करता और तूने मेरी प्रार्थना को तिरस्कार किया था । हे तात्रिक, तूने अपनी तत्र विद्या से उस समय राजा को अपने अनुकूल बना लिया था सो बच गया । अब बोल, आज मेरे हाथ से तेरी क्या दशा होगी । इस प्रकार निष्ठुर वचन बोलते हुए वह व्यन्तरी सुदर्शन मुनि पर तरह-तरह से घोर उपसर्ग करने लगी । उस उपसर्ग को सहन करते हुए सुदर्शन मुनि क्षपक श्रेणी पर चढ़कर घातिया कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञान को प्राप्त कर, अरहत अवस्था को प्राप्त हो गये और तुरंत ही अघातिया कर्मों को भी नष्ट कर निरजन होकर मोक्ष पद प्राप्त कर सिद्ध परमेष्ठी हो गये ।

इस प्रकार सुदर्शनोदय महाकाव्य मे सुदर्शन का पूर्व भवो से लेकर मोक्ष पर्यन्त तक बड़े ही सुदर, सहज और आगमानुकूल चरित्र चित्रण किया गया है ।

प्रशस्ति

जयोदय एव वीरोदय महाकाव्य के अनुसार प्रत्येक सर्ग के अत में स्वय की प्रशस्ति लिखते हुए लिखा है कि श्रीमान सेठ चतर्भुजजी (हिन्दी व्याख्या मे राणोली ग्राम का नाम भी दिया है) हुए हैं उनकी धर्मपत्नी श्रीमति घृतवरी देवी थी । उनसे वाणीभूषण बालब्रह्मचारी भूरामलजी हुए, जिन्होनें यह सुदर्शनोदय महाकाव्य लिखा ससार मे जब तक सूर्य चन्द्रमा का उदय होते रहे तब तक यह महाकाव्य ससार के लोगो का कल्याण करता हुआ पठन-पाठन के रूप मे विराजमान रहे ऐसी कामना की गयी है ।

नौवे सर्ग के 91वें 92वे श्लोक के पद का प्रथम अक्षर यदि सयुक्त करके मिलायें तो भूरामल शब्द बनता है।

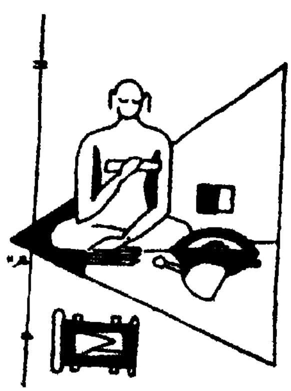
नौवे सर्ग के 93वे श्लोक मे वीर सवत् को जैन आगम के प्रसिद्ध शब्दभगों के द्वारा प्रकट किया है अर्थात् श्लोक मे शुभ शब्द मे शून्य अर्थ लिया और तत्व से 7, अर्थ, पुरुषार्थ से 4, लोचन से 2 इस प्रकार योग करने पर अङ्कानाम् वामतोगति के सूत्रानुसार वीर निर्वाण सवत् 2470 में यह सुदर्शनोदय महाकाव्य भूरामल ब्रह्मचारी द्वारा लिखा गया है ।

सुदर्शनोदय महाकाव्य मे लेखक ने 5 सर्ग से कुछ शिक्षा पद कथनों को सस्कृत भाषा में ही भजन के रूप मे लिखा है उन भजनों को राग के आधार पर उनका नामकरण भी किया है । जैसे प्रभातकालीन राग । रसिकनामराग/ काफ होलिका राग/ श्याम कल्याण राग / छन्दोभिधश्चाल/ सारङ्नामराग/ दैशिकसौराष्ट्री राग इन राग रागिनियों का हिन्दी पद्यानुवाद भी परिशिष्ट के रूप में किया गया है ।

क्र स	सर्ग	श्लोक	क्र स	सर्ग	श्लोक	क्र स	सर्ग	श्लोक
1	1	1	2	1	3	3	1	5,6,
4	1	7	5	1	9,10,	6	1	11,12
7	1	14,15,	8	1	24	9	1	19

10	4	19	11	2	10	12	1	21-22
13	1	31	14	1	21	15	3	1
16	3	48	17	1	29	18	2	42
19	5	2	20	1	28	21	3	19
22	4	30	23	2	3	24	2	6
25	1	4	26	1	30	27	1	30
28	3	9	29	3	31	30	1	41
31	1	32	32	1	44	33	3	40
34	1	32	35	2	20	38	2	32
37	2	20	38	2	32	39	4	46
40	8	27	41	1	31	42	2	24
43	3	5से 12	44	3	47	45	2	21
46	4	25	47	4	47	48	4	15
49	4	17	50	4	18से 29	51	5	6से12
52	7	1से 17	53	7	15	54	7	34 से 36
55	9	13 से 30	56	4	6	57	4	11
58	4	12	59	4	32 से 36	60	4	40 से 46
61	8	10	62	8	11 से 13	63	1	4
64	1	25	65	1	35	66	1	38 से 40
67	2	1	68	2	14 से 19	69	2	21 से 36
70	2	39 से 40	71	3	16	72	3	34 से 47
73	4	15से 45	74	5	2 से 20	75	8	8 से 10
76	8	35 से 36	77	9	1 से 8			

❑❑❑



विषयों की आशा नहिं जिनके साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-पर के हित-साधन मे जो निशि-दिन तत्पर रहते है ।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिन खेद जो करते है,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के दु ख-समूह को हरते है ॥

दयोदयः चम्पू एक अध्ययन

लेखक : श्री अमृतलाल शास्त्री

विपुल संस्कृत वाङ्मय जिन अनेक भागो में विभक्त हैं, उनमें एक भाग चम्पू काव्यो का भी है । जिस काव्य में गद्य और पद्य दोनों का चमत्कार दृष्टिगोचर हो उसे चम्पू कहते हैं । उपलब्ध अलंकार ग्रन्थों में प्रथमत दण्डी के काव्यादर्श मे चम्पू की परिभाषा देखने को मिलती है, किन्तु उस समय का एक भी चम्पू काव्य आज उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध 245 चम्पूकाव्यों मे जिनमें ७४ प्रकाशित भी हो चुके हैं- नलचम्पू और यशस्तिलकचम्पू सबसे पहले लिखे गये । इनका रचनाकाल १० वीं शताब्दी है। १०वीं से १५वीं शताब्दी तक चम्पूकाव्यों का उत्कर्ष काल माना जाता है। उसके बाद भी चम्पू काव्यों की रचना होती रही, जो अभी चक चालू है। इनके सर्वाधिक रचना का श्रेय दक्षिण प्रान्त को है। इनके लेखकों में अधिक संख्या वैष्णव कवियों की है । जैन कवियो ने भी इन काव्यो की रचना की पर उनकी संख्या बहुत ही कम है, केवल ५ या ६ जिनमें सर्व श्री सोमदेव सूरि, महाकवि हरिचद्र और महाकवि अर्हद्दास प्रख्यात हैं । प्रस्तुत दयोदय चम्पू के रचयिता का नाम उक्त कवियो में जोड दिया जाय तो एक की वृद्धि ओर हो जायेगी।

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के अभी तक जो तीन चम्पूकाव्य प्रकाशित हुए हैं । (१) यशस्तिलक चम्पू, (२) जीवन्धर चम्पू और (३) पुरुदेव चम्पू उनकी तुलना में प्रस्तुत दयोदय चम्पू काव्य छोटा है, पर अपनी अनेक विशेषताओं के आधार पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और अक्षरश पठनीय है ।

प्रस्तुत चम्पू का प्रकाशन अभी-अभी महावीर जयन्ती की पुण्यबेला मे (चैत्रशुक्ला त्रयोदशी, रविवार ३ अप्रेल १९६६) मुनि श्रीज्ञान सागर ग्रन्थमाला, ब्यावर (राजस्थान) से उस के प्रथम पुष्प के रूप में हुआ है । इसके रचयिता मुनि ज्ञानसागर और सम्पादक प्रतिभामूर्ति मनीषी मूर्धन्य पण्डित हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री हैं, जिन्होंने सम्पादन के साथ ही साथ अत्यन्त विद्वतापूर्ण विस्तृत प्रस्तावना भी लिखी हे । सोलह पेजी साइज की पुस्तक चम्पू सात लम्बों मे समाप्त है, जिनकी पृष्ठ म कुल मिलाकर १६२ है । मूल ग्रन्थ की भाषा संस्कृत है और अनुवाद की भाषा हिन्दी ।

कथावस्तु

अवन्ती देश में शिप्रा नदी के तट पर एक बस्ती थी उसका नाम शिंशपा था । वहाँ मृगसेन नाम का एक धीवर रहता था । उसकी माँ का नाम भवश्री और पिता का नाम भवदेव था । (पृ ११) मृगसेन की पत्नी का नाम घण्टा था। उसकी जीविका मछलियो से चला करती थी । एक दिन प्रभात के समय वह जाल लेकर शिप्रा की ओर चला जा रहा था । रास्ते में उसने पार्श्वनाथ जिनालय के पास भीड देखी कोतुक वश वह भी वहाँ जा पहुँचा । वहाँ अपने शिष्यो के साथ एक मुनिराज विराजे थे । वे उस समय उपदेश दे रहे थे -'जो सबमे अनुस्यूत होकर उन्हें बनाये रखे, उसे परमब्रह्म कहते हैं । अत अहिसा भी परमब्रह्म है जो कि सभी जीवो को निराकुल करना हे - 'अहिसा भूताना जगति विदित ब्रह्मपरमम् ।' (पृ १२) उनके इस उपदेश से प्रभावित होकर अनेक श्रोताओं ने अहिसा व्रत को स्वीकार करके हिंसा पिशाची से अपना पिण्ड छुडा लिया । मृगसेन ने सोचा हिसा करना पाप है अत त्याज्य है, पर इसके बिना मेरी जीविका ही ठप हो जायेगी । फिर भी मुनिराज की प्रसन्न वीतराग मुद्रा, स्वर की मधुरिमा और बोलने की शैली ने उस पर जादू का असर किया । फलत वह निकट जाकर उनके चरणो में गिर गया और गदगद् स्वर मे यों बोला- स्वामिन् । मुझे बचाईये, बचाईये और बताईये कि मुझ महापापी का समुद्धार कैसे हो- तस्य साधो पादयो पतित्वा सगद्गदमुक्तवान्-स्वामिन् त्राहि मा त्राहि मा कथन्नु मे पापीयस समुद्धर इति।' (पृ १३) कुछ सोचने के बाद उन्होंने उत्तर दिया तेरे जाल मे जो जीव सबसे पहले आवे उसे तुरन्त उसी जाल में छोड देना उसकी हिंसा नहीं करना । उसने इसे स्वीकार कर लिया । इसके पश्चात् वह शिप्रा के तट पर जा पहुँचा । उसके जाल मे पहली बार एक बडी मछली फंसी । अपने व्रत के अनुसार उसने उसके गले पर एक चिह्न लगा कर शीघ्र ही उसी जल में छोड दिया । बाद

में उसने चार बार और जाल डाला हर बार वही मछली फंसी पर चिह्न देख कर चारों बार छोड़ दी गई । इतने मे सांझ हो गई और वह खाली हाथ ही अपने घर की ओर चल दिया । उसे खाली हाथ आते देख उसकी पत्नी आपे से बाहर हो गई फलत उसने उसे घर में नहीं घुसने दिया- किवाड़ बन्द कर लिये वह बेचारा दिन भर का थका मादा और भूखा प्यासा था और कोई उपाय न सूझने से वह एक वृक्ष के नीचे णमोकार मन्त्र पढ़कर ज्यों ही लेटा त्यों ही उसे निद्रा ने घेर लिया । संयोग की बात है इतने में उसे एक काले नाग ने डस लिया । उसकी मृत्यु हो गई । व्रत के प्रभाव से वह उसी नगरी में धनपाल सेठ के घर उत्पन्न हुआ । उसका नाम सोमदत्त रखा गया । उसकी परिणति उत्तरोत्तर अच्छी होती गई, जिससे वह कुछ ही भवों के पश्चात् मुक्त हो गया ।

कथा वस्तु का विभाजन

उपलब्ध चम्पू काव्यों मे प्रतिपाद्य विषय का विभाजन उच्छ्वास, आश्वास, लम्ब या लम्ब स्तबक (अधिकाश चम्पुओ में इसी का प्रयोग हुआ है) उल्लास, काण्ड, तरंग, कल्लोल, विलास, सर्ग, मनोरथ, बिन्दु और परिच्छेद आदि से किया गया । प्रस्तुत चम्पू में कथा का विभाजन लम्ब से हुआ जैसा कि जीवन्धर चम्पू में हरिचन्द्र ने किया है। इस दृष्टि से और पत्र व्यवहार (पृष्ठ ७५-७६) की दृष्टि से भी प्रस्तुत चम्पू जीवन्धर चम्पू से प्रभावित है जीवन्धर चम्पू में 11 लम्ब (ज्ञानपीठ सस्करण मे) हैं पर प्रस्तुत चम्पू में 7 लम्ब हैं । (अधिकांश चम्पुओं में कथावस्तु का विभाजन इसी सख्या मे हुआ है ।)

कथा वस्तु का आधार

उपलब्ध चम्पुओ में रामायण के आधार पर ३६, महाभारत पर २७, भागवत पर ४५, शिवपुराण पर १८, ऐतिहासिक पुरुषो पर ४८, यात्रावृत्त पर १० मन्दिरो, देवताओ और उत्सव पर २५ तथा शेष अन्य पुराणो और दार्शनिक विषयो पर आधृत हैं । प्रस्तुत दयोदय चम्पू की कथा वस्तु का आधार हरिषेण कथाकोष है ।

शैली

प्रस्तुत चम्पू की शैली अशत यशस्तिलक चम्पू की शैली से मिलती जुलती है । यशस्तिलक की रचना श्री शब्द से प्रारम्भ होती है, दूसरे श्लोक में चन्द्रप्रभु का स्तवन किया गया है । हिसा आदि पापो का परित्याग कराने के लिए उनके दुष्परिणाम दिखलाये गये हैं, जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध की गई है । समस्या पूर्ति की गई है, कथानक को रोचक बनाने के लिये सम्वादों की योजना की गई है, अवान्तर कथाओं को स्थान दिया गया है, प्रसगत ग्रन्थान्तरो के उद्धरण दिये गये हैं, और यत्र तत्र नाटको जैसी शैली अपनाई गई है।

प्रस्तुत दयोदय चम्पू का प्रारम्भ भी श्री शब्द से हुआ है, दूसरे श्लोक मे चन्द्रप्रभु का स्तवन किया गया है, प्रस्तुत चम्पू की रचना का उद्देश्य ही हिसा का परित्याग कर अहिसा का फल दिखलाना है जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है-

अहिसाया फ़ल। विश्मसमक्षमिति वर्त्तते ।
यदास्वाद्यामरत्व द्रागनुयान्तु मनीषिण· ॥७।३९॥

प्रस्तुत चम्पू के दूसरे लम्ब में १७ जैनेतर ग्रन्थों के प्रमाण देकर जैन तीर्थङ्करो की प्राचीनता और प्रमाणिकता सिद्ध की गई है ।

इसमे अनेक श्लोक समस्यापूर्ति के रूप में लिखे गये हैं जैसे -

आत्मकर्तव्यविस्मृत्या परकार्यकरो नर । सद्यो विनाशमायाति कीलोत्पाटीव वानर ।२।१३॥ वर्तितव्यं यथाशक्यं मानवेन सता पथा । पीयूषं नहि नि·शेष पिबन्नेव सुखायते ॥१।२५॥ माधुर्यमाप्त्वा पिशुनस्य वाचि न विश्वसेना धरणीतले तु । शैवालशालिन्युपलेच्छलेन पातो भवेत्केवलदु खहेतु ॥४।९। यहाँ रेखाकित पहली समस्या जैनेतर ग्रन्थ पञ्चतन्त्र से, दूसरी जैनग्रन्थ क्षत्रचूडामणि से और तीसरी धर्मशर्माभ्युदय से ली गई है।

प्रस्तुत चम्पू या यशस्तिलक चम्पू की समस्यापूर्ति में सूक्ष्म अन्तर है, वह यह है कि यशस्तिलक चम्पू के रचियता श्री मोमदेव सूरि ने समस्या की रचना भी स्वय की, दूसरों के काव्यों से नहीं, जैसे-

अर्धकाव्य कवि

अरुण किरण मध्ये विद्रुमस्तम्बबिम्ब ।
क्षितिप किमिव शोभां भानुरुद्यद्बिभर्ति ?

राजा

बुध युधि मम शत्रो शोणिता पूरितायां
प्रतरदुपरि कोपात् पाटला यकृशस्यमे ॥३।१९।

प्रस्तुत चम्पू मे यत्र तत्र सवाद वर्णित हैं । सबसे पहले, पहले लम्ब मे ही मृगसेन और घण्टा का सवाद वर्णित है। इसी तरह अवान्तर कथाएँ भी इनमें अनेक हैं । ग्रन्थान्तरो के उद्धरण भी बहुत हैं जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

नाटकीय शैली

मातङ्ग (स्वगतम्)
यद्यपि वय चाण्डाला ॥३।५८॥
गुणपाल (स्वगतम्)
मयाऽसौ सोमदत्तोऽवश्य ॥४।७२॥

रचियता का परिचय

प्रस्तुत चम्पू के रचियता स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी के सुयोग्य स्नातक वाणीभूषण बालब्रह्मचारी प भूरामलजी शास्त्री हैं, जिनका वर्तमान नाम श्री 108 मुनि ज्ञानसागरजी महाराज है । मूलत आप राजस्थान के निवासी हैं । आपने अपने जन्म से राणोली ग्राम को अलंकृत किया, जो जयपुर के निकट है । आपकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र छाबडा है । आपके पितामह का नाम श्री सुखदेव जी, पिता का नाम श्री चतुर्भुज जी और माँ का नाम श्री घृतवरीदेवी था। आपके बडे भाई का नाम छगनलाल और छोटे भाईयो का नाम गगाप्रसाद, गौरीलाल और देवदत्त हैं । वि म १९५० में जब आपकी आयु केवल १० वर्ष की थी पिता जी का देहावसान हो गया जिससे घर की स्थिति बिगड गई । व्यापार बन्द हो गया । आपके बडे भाई ने जिनकी आयु उस समय केवल १२ वर्ष की थी, स्थिति सभालने का यथाशक्ति प्रयत्न किया ।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाव के स्कूल मे हुई बाद मे स्याद्वाद महाविद्यालय मे श्री प उमरावसिह जी के पास, जो बाद मे ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दजी के नाम से प्रख्यात हुए, धर्मशास्त्र का तथा जैनेतर विद्वानो मे अन्य शास्त्रो का अध्ययन किया । आपके अध्ययनकाल मे प वशीधरजी, प गोविन्दरायजी और प तुलसीरामजी आदि स्याद्वाद महाविद्यालय मे अध्ययन कर रहे थे ।

आपकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है इसलिए आप प्रतिदिन थोडा सा व्यवसाय भी करते थे। जिससे अपने खर्च की व्यवस्था हो जाती थी और उसी मे से विद्यालय का भोजन खर्च भी चुका दिया करते थे ।

उन दिनो जैनग्रन्थ पढाने वाले विद्वान दुर्लभ थे । आप जैन ग्रन्थ पढना चाहते थे, उनकी व्यवस्था न हो सकने से मन ही मन बडे खिन्न रहा करते थे । जैनेतर साहित्य में नैषध महाकाव्य का बडा नाम रहा और आज भी है । इसके विषय मे 'नैषध विद्वदौषधम्' यह प्रसिद्ध है। इसे पढकर आपने इसी जैसे जैन महाकाव्य के निर्माण का सकल्प किया । फलत आप निरन्तर ज्ञान बढाने के प्रयत्न मे लगे रहे । आपका लक्ष्य ज्ञान सम्पादन करना था न कि परीक्षा

पास करना । अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् आपने अवैतनिक अध्यापन किया और अपने मासिक खर्च के लिये थोडा बहुत व्यवसाय । विवाह का प्रसग आया पर उसे आपने टाल दिया । अधिकाश समय का उपयोग आपने जयोदय महाकाव्य के निर्माण में लगाया । यह काव्य बिलकुल नैषध जैसा है नैषध की तरह इसके सर्ग भी बडे-बडे हैं और शाब्दी तथा आर्थी छटा भी उसी जैसी है । नैषध मे 22 सर्ग हैं जब कि जयोदय मे २८। निम्नलिखित श्लोको से दोनों की तुलना का आभास मिल सकता है-

श्रियाश्रितं सन्मतिमात्मयुक्तया--खिलज्ञमीशानमपीति मुक्तया।
तनोभि नत्वा जिनपं सुभक्तयाजयोदय स्वाभ्युदाय शक्तया ।

(जयोदय का प्रथम श्लोक)

निपीय वस्यक्षितिरिक्षिण कथा स्तथाद्रियन्ते न बुधा सुधामपि।
नल सितच्छत्रितकीर्तिमण्डल सराशिरासीन्महसा महोज्जवल ।

(नैषेध का प्रथम श्लोक)

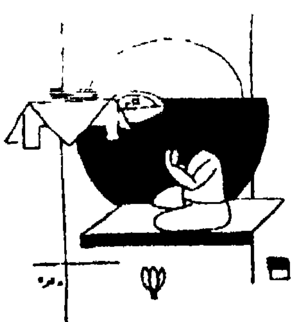
श्री मान् श्रेष्ठिचतुर्भज स सुषुवे भूरामलोपाह्वय
वाणीभूषणमस्त्रिय घृतवरी देवीचय धीचयम् ।
तेनास्मिन्नुदिते जयोदयनय प्रोद्धारसाराश्रित ।
नानानव्यनिवेदनातिशयवान् सर्गोऽयमादि गंत ।।

जयोदय के प्रथमसर्ग का यह अन्तिम श्लोक नलचम्पू के प्रथम सर्ग के अन्तिम श्लोक से तुलनीय है ।

इसकी रचना के पश्चात् आपने ६ कृतिया सस्कृत मे (जिनमें दयोदय चम्पू भी सम्मिलित हैं) लिखी और १४ हिन्दी मे । काशी के लब्धप्रतिष्ठ ब्राह्मण विद्वान् जयोदय की भूरि-भूरि प्रशसा किया करते है । यदि लेखक ब्राह्मण हुआ होता तो यह महाकाव्य आज अनेक परीक्षाओ में निर्धारित हो जाता ।

जन परीक्षालय के अधिकारियो और जैन विद्वानो से अनुरोध है कि वे दयोदय चम्पू को पाठ्यक्रम में स्थान दे । आज के इस हिसा प्रधान युग मे दयादय चम्पू निश्चय ही पाठको के हृदय में दया को सचार करेगा। ऐसी कृतियो की रचना करके पूज्य मुनि ज्ञानसागरजी ने जैन समाज के गौरव को बढाया है और जैन मुनियो का एक आदर्श उपस्थित किया है । इति ।

❑ ❑ ❑



रहे सदा सत्सग उन्ही का ध्यान उन्ही का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्या मे यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नही सताऊँ किसी जीव को झूठ कभी नहि कहा करूँ,
परधन, वनिता पर न लुभाऊँ सन्तोषमृत पिया करूँ ।।

लघुत्रयी में शब्दालङ्कार

डॉ रुद्रदेव त्रिपाठी, उज्जैन

आचार्यवर्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज की अनेकविध काव्यकृतियो में तीन काव्यो को 'लघुत्रयी' के रूप में सुविख्यात किया गया है । मनीषी वर्ग ने पूर्व महाकवियों में सुप्रसिद्ध कविकुलगुरु कालिदास की तीन काव्यात्मक कृतियों को भी 'लघुत्रयी' के रूप में सम्मान दिया है । वर्तमान युग के उत्कृष्ट काव्य-निर्माता की वन काव्यात्मक तीन कृतियों को यह सम्मानित नाम देना सर्वथा समुचित ही है । इस त्रयी में- १ सुदर्शनोदय, 2-दयोदय और 3 समुद्रदत्त चरित्र काव्यो का समावेश है ।

काव्य का आयाम बुहशाखीय कल्पवृक्ष की कोटि मे आता है । जिसमें आत्मतत्त्वमूलक अनुभूति और शारीरिक तत्त्वात्मक अभिव्यक्ति इन दोनो का संकलित आधार रहता है । इस रचना- विधान मनोरमपदावली, सर्वजनग्राह्यता, युक्तियुक्तता, अलकृतता एव रम निर्भर भाषा प्रवाहिता आदि के द्वारा उज्जृम्भित होता है । जीवन का समग्र चित्रण नायक की उच्चता, महदुद्देश्य, अलौकिक तत्त्व का समावेश इसके कलेवर का बाह्यरूप है । यह काव्य लक्षणोचित सुनियोजित पद्धति से निर्मित होने पर 'काव्य' कहलाता है ।

काव्यशास्त्रकारो ने काव्य मे अलङ्कारो की स्थिति को आवश्यक बतलाते हुए हुए' शब्द, अर्थ और उभय' अलङ्कारो का विवेचन विस्तार से किया हैं । प्रस्तुत आलोच्य लघुत्रयी मे अलङ्कारो का विवेचन विस्तार से किया है । प्रस्तुत आलोच्य लघुत्रयी में अलङ्कारो के प्रथम भेद शब्दालकार की संयोजना का विमर्श यहा प्रस्तोतव्य है ।

शब्दालकारो का क्षेत्र-विस्तार

भरत से आरम्भ करके वर्तमान काल के आचार्य 'साहित्य शिक्षामजरी' कार विजयधर्म धुरन्धर सूरि तक सभी ने शब्दालकार को विविधरूप में देखा और परखा है, जिसके सामूहिक अवेक्षण से १ अनुप्राम २ यमक ३-पुनरुक्तवदाभाम, ४ वक्रोक्ति, ५ श्लेष ओर ६ चित्र नामक छह भेदो मे विवेचित करते हुए प्रत्येक को भेद, प्रभेद, उपभेद आदि के द्वारा सहस्राधिक सख्या तक पहुँचाया है। इन अलकारो का प्रयोग काव्यकार अपनी काव्यधारा में स्वत स्फूर्त प्रतिभा से ही उद्‌भावित करता है । क्योकि हठ-पूर्वक की गई कविता मे काव्यत्व का अथवा का काव्यतत्व का साहजिक समावेश नहीं हो पाता है- कहा भी गया है कि "बलादाकृष्यमाणा तु सरसा विरसायते" महाकवि श्री ज्ञानसागर महाराज ने भी लघुत्रयी मे शब्दालकारो की अवतारणा सहजरूप में ही की है । यहा हम क्रमश इन शब्दालंकारों के प्रयागों पर प्रकाश डालेगे ।

(१) आनुप्रासिक चेतना

अनुप्राम का अन्तस्तत्त्व स्वरसाम्य, व्यञ्जनसाम्य, शब्दसाम्य, पदसाम्य काव्यसाम्य, श्रुति वैशिष्ट्य और कृतिवैशिष्ट्य आदि के द्वारा व्याप्त हाकर 'सकल कविकुलाराध्य' कहा गया हे । प्रस्तुत लघुत्रयी के पद्यो मे विशेषत श्रुत्यनुप्रास की प्रधानता है । प्रत्येक पद्य मे प्राय ऐसे शब्दो की सर्वत्र उपस्थिति हैं, जिनमें श्रुतिसुखद एवं उच्चारण-स्थानसाम्यमूलक वर्णों की व्यापकता है। यथा सुधीवराध्य, कवित्वगावा, कर्मकलङ्क, दुरन्तदु ख, कवान्धुबन्धु, समाधिसिन्धु, कदा यथा- जैसे पद्याश दर्शनीय हैं । यह वर्णसाम्य कहीं मसृण अन्तर एव निरन्तर रूप से, वर्णमसृण- परस्पर वर्णनरूप साम्य और वर्णोत्कट- किसा एक वर्ण अधिकता से प्रयोग, वर्णानुत्कट- किसी एक चरण मे वर्णप्रयोग की शिथिलता को व्यक्त करता है । जबकि बहुत से पद्यो से वृत्यनुप्रास की छटा परिलक्षित होती है । जैसे-कथा पद्यायात-रथा । (सु १-४), कवेर्भवेदेव सुमोधुनाना सुधाधुनी (सु १ १०), किलैकलोक स कोकवत् किन्त्वितस्त्वशोक (१-१०) इत्यादि पद दर्शनीय हैं । इनमें परुष श-ष वर्णों का प्रचुर प्रयोग, रेफयुक्त वर्णप्रयोग तथा 'ट' वर्गीय वर्ण एवं ह्य, ह्, ह्य, ह्व आदि की बहुलता से,

उपनागरिका-समानवर्णों की संयुक्तता और अनुनासिक और वर्गान्त्यवर्णप्रयोग से व्यक्त तथा ग्राम्या लकारादिवर्णों के बहुत प्रयोग से व्यक्त है । यही अनुप्रास पदावृत्ति, प्रयोगनियमन और वर्गान्त्य वर्णों से सयुक्त तथा लघु स्वर वाले वर्णों के व्यवधानपूर्वक प्रयोगों से-मधुर, परुष, प्रौढ, ललित और मुद्रानुप्रास के नाम से व्याख्यात है, जिसे लघुत्रयी की पद्यावली में सरलता से प्राप्त कर सकते हैं । रसानुगुण शब्द व्यवहार के कारण अग्निपुराणों का द्वादशवृत्तियों से निष्पन्न अनुप्रास इन कृतियों में समाविष्ट हैं। भोज की दृष्टि से ये अनुप्रास यहा १-सघटन-बहुलता-समस्तासमस्त वर्णावृत्ति, २ विघटनबहुलताअसमस्त वर्णावृति एव ३- उभय बहुलतासमस्तासमस्तवर्णावृत्तिमूलक बनकर उजागर हुए है। जयरथ के अनुसार यहा समस्त, असमस्त और समस्तासमस्त एकाक्षर, द्वयक्षर और त्र्याक्षरावृत्तिया भी अवलोकनीय हैं । यह वर्णावृत्ति और शब्दपौनरुक्त्य के कारण मूलाधार गुणो का पोषक है । अत माधुर्य, औजस्, तथा प्रसादगुण से समन्वित भी है ।

छेकानुप्रास- यहां सर्वत्र व्याप्त है। यह अनुप्रास घोसले में सुखपूर्वक बैठे हुए पक्षिशावको की सुखोदित मधुरवाणी-'छेक' का प्रतीक है । विदग्धजनो के प्रिय स्वर व्यंजन समुदाय के समान उच्चारणीय वर्णों से भी यह लघुत्रयी ओतप्रोत है। वर्णानुप्रास- सजातीय एव विजातीय वर्ण पुरुषो की रगबिरगी माला के समान यहा पद्यो मे वर्ण गुँथे हुए है । जिनमें कहीं गुच्छे के समान तो कहीं स्थाननियमनिपक्षा के निहित वर्णराशि से, अन्यत्र आवृत्ति के मध्य व्यवहित वर्ण होने से तथा इतरत्र-आवृत्तवर्णों के विकास और सकोच से क्रमश स्तबकवान् स्थानी, गर्भ और विवृत- सवृत भेदरूप वर्णानुप्रास निखर आये है । इतना ही नहीं- गृहीत-मुक्त, क्रमवान् विपर्यय सम्पुट, मिथुन, वेणिका, चित्र और विचित्र नामक अनुप्रासप्रभेद भी यहा सुलभ है । यत्र तत्र पदानुप्रास के साथ ही कहीं कहीं एक रीति का पूर्णत निर्वाह न होने से 'खिन्न' नामक भेद भी मिल जाता है । जहा सवाद शैली मे पदविन्यास हुआ है, वहा स्वभाव, गौणीवृत्ति, वीप्सा, आभीक्ष्ण्य और सम्भ्रमजनित वर्णों पदो का विन्यास करके कवि ने 'नामद्विरुक्त्यमुप्रास ' का स्मरण कराया है। रुय्यक के अनुसार यहा हमे क्रियाओ के क्रमिक विन्यास से क्रियानुप्रास, कारको के क्रमिक न्यास से कारकानुप्रास, श्लोको मे दो समान उक्तियो का प्रयोग करने से श्लोकानुप्रास तथा जयदेव के अनुसार श्लोक के अर्धपाद तथा अर्धपादार्धभाग में निश्चित वर्णावृत्ति से स्फुटानुप्रास और उपमानोपमय के वर्णों की समानता से अर्थानुप्रास भी ओझल नहीं हुआ है ।

आनुप्रासिक चेतना के शिखर पुरुष महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने तीनो काव्यो मे उपर्युक्त अनुप्रास भेदो के अतिरिक्त अन्त्यानुप्रास पर विशेष लक्ष्य रखा है। साहित्यदर्पण कार विश्वनाथ के अनुसार पादान्त और पदान्त प्रास योजना से विकसित होकर यह क्रमश यहा चरणगत आद्यानुप्रास, मध्यानुप्रास, अन्त्यानुप्रास आद्यन्तचरणानुप्रास, यत्यन्त्यानुप्रास, पदाद्य, मध्य अन्तय भेद भी आवर्जित हो गये है । इन सभी में अव्यापक और व्यापकरूप से प्रयोग होने से समृष्टि एव सकर अनुप्रास' के भी उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं । इस अपूर्व अनुप्रास योजना से सरस्वती-कण्ठाभरण की यह उक्ति कवि मे चरितार्थ होती है ।

निवेशयति वाग्देवी प्रतिभानवत. कवे ।
पुष्पैरमुमनुप्रास स समाधिनि चेतसि ।। (२१७३)

यमक- सयोजना

सुदर्शनोदय महाकाव्य मे विविध अनुप्रासो की योजना के साथ ही यमक नामक-शब्दालङ्कार का भी प्रयोग सराहनीय हुआ है । आचार्य श्रीभरत ने यमक को ही प्रथम अलंकार मानकर इसके दस भेदो में अनुप्रास को भी सम्मिलित कर लिया । यह अलकार समश्रुतिवाले वर्ण एवं शब्दो के आवर्तन तथा अर्थ मे भेद होने पर सम्पन्न होता है । 'यम्यते गुण्यते आवर्ण्यते पदमक्षर वेति यम ' इस व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि यह शब्द ही, नहीं अपितु वर्ण के आवर्तन से भी सिद्ध होता है । आवर्तन क्रम अक्रम से ही अथवा व्यपेत, अव्यपेत, अव्यपेत व्यपेत, अनुलोम, विलोम, सभग, अभगसजातीयमिश्रण, विजातीयमिश्रण, श्रृंखला, परिवर्तक और चूर्ण आदि के कारण बहुविधता को प्राप्त है । आचार्य दण्डी ने यमक के ३१५ भेद दिये हैं । अन्तर की आचार्यो ने इस पद्धति से और भी भेद प्रभेद दिये हैं, जिन से यह सख्या ४०० मे आगे बढ गई है ।

सुदर्शनोदय-महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में १५ वें पद्य के दर्शन तथा पादान्तो मे सुदर्शन की आवृत्ति से अग्निपुराण के अनुसार द्वितीय और चतुर्थ पाद के अन्त में अव्यपेत व्यधान रहित आवृत्ति होने से 'पादाभ्यास अव्यपेत' यमक हुआ है। वहीं २१ वें पद्य में 'जननीजननीयतामित ' में जननी पद की आवृत्ति जननीजन पद का भ्रश करके 'नीयता' से जोड़ा गया है । अत यह 'सभंग यमक है । २७ वें पद्य मे 'समवर्धत वर्धयन्तय' में वर्ध की आवृत्ति भी संभग है और एक पद तिङन्त से आया है तो दूसरा सुबन्त है । अत यहा वामन के अनुसार 'अदभुत यमक' हुआ है। यहां ऐसे अनेक पद्य सुलभ है । जिनमे स्थाननियमपूर्वक एकाक्षर अथवा अनेकाक्षरों की आवृत्ति से वामनोकृत 'अक्षरयमक' बनता है । यह आवृत्ति अनर्थक है, इसी प्रकार सार्थक वर्णावृत्ति भी यहा उपलब्ध है। एक ही चरण मे शब्दावृत्ति-क्षणवल्लक्षणमेत्य वस्तुन मे एकपदावृत्तियमक, २/३७, मनोरमाया पद की प्रथम तथा द्वितीय चरण मे आवृत्त मे 'द्विपादयमक' (२/३८), 'समाहमद्य कपिलक्षणेन' की तृतीय और चतुर्थ चरण मे समानावृति से 'त्रिचतुष्पादावृत्तियमक' (३/३९) सुदर्शनत्व पद की प्रथम और द्वितीय चरण के आरम्भ मे आवृत्ति से प्रथमद्वितीयपादाद्यावृत्ति यमक, २/४१ जानु और परिवा शब्दो की १-२ तथा ३-४ मे आवृत्ति होने से मुख यमक बना है, जो रुद्रट के द्वारा स्वीकृत है । प्रथम चरण के मध्य मे ओर द्वितीय चरण के आरम्भ मे देह शब्द की आवृत्ति होने मे आदिमध्य यमक ३/७, तृतीयचरण के अन्त एव चतुर्थ चरण के आदि मे अङ्गभू रङ्गभू के रूप मे वर्णाम्रेडन होने से पुच्छ यमक (३/९) सदारम्भादनारम्भाद मे तृतीय पाद मे ही द्विरावृत्ति से पादमध्ययमक (३/३२), मनोरमा शब्द प्रथम चरण के मध्य मे तथा द्वितीय चरण के अन्त मे आम्रेडित होने से मध्यान्तयमक होता है । (३/३७)

इसी प्रकार चतुर्थ सर्ग षष्ठ सर्ग सप्तमसर्ग मे भी अन्यभेदोच्छेदक, अन्यभेदानुच्छेदक पादसन्धिगत अस्थानयमक भी अनेकत्र प्रयुक्त हैं । स्थूल और सूक्ष्मभाव से व्यपेत एव अव्यपेत यमको के प्रयोगो से यह काव्य परिपुष्ट है । आवृत्तिधर्म की प्रवृत्ति तो आचार्यश्री की रचना मे प्राय सर्वत्र व्याप्त है ही । अत सरस्वती कण्ठाभरण के टीकाकार रामसिह के अनुसार -'सूक्ष्मतर भेद' कहते हुए स्पष्ट किया है कि वर्णद्वयपर्यन्तमावृति सूक्ष्मा सैवेक्ष्वर्णगोचरा सूक्ष्मतरा' (पृ २११) प्रारम्भ में स्थान यमक ही मान्य था किन्तु वामनादि आचार्यो ने 'अस्थानयमक' भी मान्य किया गया । यह अलकार अतिप्राचीन होने के साथ ही पुन पुन श्रवणजन्य नाद बन्ध के कारण श्लोकपदावयवावृत्ति मे प्रसृत होकर श्लोकयमक तक पहुँचा है । दयोदयचम्पू मे पुनरुक्तवदाभास स्पष्ट नहीं है । वक्रोक्ति के उदाहरण प्राप्त है किन्तु उनमे निश्चित रूप उदभासित नहीं है । अत ''श्लेष सर्वासु पुष्णाति प्रायोवक्रोक्तिषु श्रिम ।

श्लेषालकार- प्रयोग

'श्लिष्यन्तीति श्लेष ' जहाँ शब्द एक दूसरे से अभिन्न हो जाते है । वह श्लेष है। अत एक प्रयत्नोच्चार्य शब्दो मे अनेकार्थबोध को श्लेषालकार कहते है । एक कालिकबोध विषमस्वरुप अर्थद्वयप्रतीतिजनकता जतुकाष्ठन्याय एव एक वृन्तगत फलद्वयन्याय के आधार पर सुदीर्घ विवेचनपूर्वक इस के शब्द और अर्थमूलक दो भेद माने गये है । 'काव्यालकार सारसग्रह' की लघुवृत्ति मे प्रतिहारेन्दुराज ने अर्थश्लेष और शब्दश्लेष को स्पष्ट करते हुए एक प्रयत्न जन्य शब्दो मे छाया सादृश्य को रखने पर भी 'शब्द श्लेष' माना है । दयोदय चम्पू मे इस दृष्टि से शब्दश्लेष का प्रयोग मुक्तरूप' से हुआ है । यथा करो पलाश प्रकरो तु तेन २/२६ मे पलाश गुण मधुर मे शब्द परिवृत्यसहिष्णु है और किसी भी प्रकार के भग की उपेक्षा भी नही रखते हैं । अत यहा अभग श्लेष अलकार है । मुदक्तिरेषा भवता सुवस्तु' इत्यादि २/२९ मे पद्य मे 'अनेकधान्यार्थ' पद मे 'अनेकधा अन्य' और 'अनेक धन्य' ऐसा पदच्छेद करने से सभगश्लेषालकार होता है। रत्नत्रयाराधनकारिणा वा' इत्यादि २/३० मे पद्य मे गुणावली और वृत्त पदो के भिन्नभिन्नार्थ एव, वहीं 'सहमाशयाभ्या' मे शय हस्त और आशय विचार रूप अर्थ द्वय के कारण 'सभगाभग' श्लेष हुआ है । 'युवभावमसृपेत्य मानित्य' इत्यादि पद्य मे (३/३३) बहुमञ्जुलता-समन्वित और मदद्य वादाऽऽलापि (३/३७) मे मुञ्जुलता और मञ्जुलता जैसा विच्छेद होने से तथा वाऽऽलापि मे वाला अपि ऐसी सन्धि विच्छेद होने से पूर्वाक्षरत्रोटन श्लेष हुए हैं । उत्तमांग सुवशस्य' इत्यादि पद्य में (४/८) गुण और मार्गण शब्दों का प्रयोग रुद्रट के अनुसार वर्णश्लेष का प्रयोग हुआ है ।

'दयोदय' चम्पू में शब्दालंकार

साहित्यिक रचना प्रकार के, आधार पर श्रव्यकाव्य का तीसरा प्रकार मिश्रकाव्य' माना गया है । इसमें पद्यात्मक एव गद्यात्मक काव्यशैली का समन्वित प्रयोग होता है । यह मित्रकाव्य शैली ही काव्यणास्त्रों मे 'चम्पू' काव्य की संज्ञा को प्राप्त है । चपि गतौ चुरादिगण के धातु से यह शब्द निष्पन्न होकर 'गतिमत्ता एव ज्ञान प्राप्तिमूलक मोक्षसहोदरानन्दप्रापिका रचना के अर्थ को व्यक्त करता है ।

'चमत्कृत पुनाति' इस के अनुसार सहृदयो के विस्मित करके प्रसन्न करने के अर्थ को भी अभिव्यक्त करता है । दण्डी ने काव्यदर्श में तथा अग्निपुराणादि शास्त्रीय ग्रन्थो में इसका लक्षण 'गद्य पद्यमय काव्य चम्पूरित्यभिश्रधीयते' दिया है।

ख्यात और प्रकीर्ण इस काव्य के दो भेद हैं । इन्हीं दो भेदो मे उत्तरोत्तर काल के आचार्यों ने कुछ अन्य अपेक्षित तत्त्वों को बढ़ाते हुए अन्य भेद भी निर्धारित किये हैं । पद्यो की छन्दोमयी विविधता गद्यो गद्याशो की विविधता भी अपने मौष्ठव मे चम्पूकाव्य की उत्कृष्टता बढाती है ।

दयोदय-काव्य मे आचार्य प्रवर श्री ज्ञानमागरजी ने सात लम्बो में इसका कथ्य-कलेवर ग्रथित किया है । प्रसाद गुणपूर्ण रचना विधान का आश्रय लेकर वक्ता के मुख्य उद्देश्य पर कि 'वस्तुबोधन' पर विशेष बल देते हुए रागमयता, अर्थगुरुता, वर्णनप्राधान्य सरसता और माङ्कविधान करते हुए आचार्य हेमचन्द्र के चम्पूलक्षण का आत्मसात् किया है यथा -गद्यपद्यमयी माङ्क सोच्छ्वासा कविगुम्फिता ।

उक्तिप्रत्युक्ति विष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता ।।८/९१ काव्यानु ।। विद्वत्समाज में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'गद्य कवीना निकष वदन्ति' । इसका कारण गद्य मे कवि को बहुत सावधान रहकर गद्य बन्ध की योजना करनी पडती है । जिसमे सुललित पदविन्याम अलकृत शेली, माधुर्य पूर्ण वर्णयोजना, आदि के साथ ही भाषा वैभव का प्रयोग होता है । मुक्तक वृत्तगन्धी दीर्घसमासशाली उत्कलिकाप्राम तथा चूर्णक-रूप गद्य भेदो का इस दयोदय काव्य मे प्रचुर प्रयोग मिलता है।

शब्दालकार की परिधि में किया गया शब्दराशि का उदार प्रयोग यहा -१- सगीतात्मकता ,२ दृश्यबिम्बोपस्थापकता एव अभिव्यक्ति के प्रति चेतना जागरण का कार्य कर रहा है। यद्यपि इस काव्य मे विषयानुसारी वर्णन के साथ ही वाक्य और पतिवाक्यो मे पदाद्यनुप्रास और पदान्तानुप्रास के विन्यास से प्रयोगमाधुरी आकर्षण का केन्द्र बनी है। कवि को सानुप्रासभाषा साहित्यिक सान्दर्य की समृद्धि की सतत अभिवृद्धि करती हुई चतुर्वर्ग सर्ग समुत्थ महीमण्डलालङ्करण प्रसृत, भृत सन्निवेश निवेश देश मन्निवेश परिवेश और प्रदेश जेसे उत्कलिकाप्राय गद्य विधा से बहुधा प्रभावशाली होकर निखर आई है । यह पदान्तानुप्रास गद्य को मुखर करता है । (द्र दयो प्र सर्ग)। कहीं चूर्णक गद्य में विभक्त्यनुप्रास-ताद्धितान्त शब्दो से मजुल होकर अश्रान्तप्रयोग लिङ्ग, वचन प्रत्यय साम्य के द्वारा अद्भुत विच्छित्ति सम्पादित कर रहा है । इस काव्य में वाग्व्यवहार की विधियो मे श्लेषालकार की उभर आया है। प्रारम्भ के पद्य मे तथा अन्य पद्यो में और गद्यांशों मे- बहुलहरि, सिप्रा, बहुधान्य, सूपकारिणी जेसे पदो से सभगश्लेष बहुत ही सरलभाव से आया है । वेमे पूर्णोपमा एव उत्प्रेक्षा, परिसख्या के सन्दर्भ मे शब्दार्थोभयविधि श्लेषालकार प्रयुक्त है ।

दयोदय की रचना मे काव्यमाधुरी का अधिकाश विभिन्न अनुप्रासो से अनुप्राणित हे। जहा दीर्घ ममामशाली पदो का वाक्यों का विन्यास है, वहा नाद माधुर्य, आन्दोलनचातुर्य एवं अर्थगौरवता, मृदुलता ममृणता से मण्डित मूक्तियो का समावेश है । एक ओर गद्य अपना छटा बिखेर रहे है दूसरी और पद्यान्तर्गत शब्दशिल्पपूर्ण अनुप्रास छेक वृति, लाट नामद्विरुक्ति, क्रिया, कारक आदि भेद प्रभेदों से पूरा छाया हुआ है । कवि के पास शब्द का अपार भण्डार तो हे ही, साथ ही नव नवशब्द निर्माण सामर्थ्य भी विलक्षण है। तभी तो एक ही वाक्य कदम्ब में - उत्तरायण, परायण, धरायण, नारायण, कारायण, सारायण, आदि का चमत्कृत प्रयोग हो पाया है । कहीं कहीं शब्दसाम्य किन्तु अर्थ वैभिन्नय के द्वारा यमक भी गुणपाल की विचारावली में मारणाय तारणाय कारणाय, धारणाय तारणाय के प्रयाग माला की तरह अनुप्राम की मादकता बढाते हैं ।

यद्यपि चम्पूकाल में मुख्यत्वेन अनुप्रास यमक और श्लेष ही विशेषत प्रयुक्त होते रहे हैं । किन्तु यहा रमणीय पदशय्या गाढ़ बन्धना, विविध छन्द प्रयोग द्वारा सहृदयता और विदग्धता का अपूर्ण मिलन यहाँ देखने को मिलता है। कतिपय आचार्यों ने छन्द को भी शब्दालंकार माना है, जिसका निर्वाह दयोदय चम्पू में श्लाघनोय है । चित्रालकार के भेदों में 'समस्यापूर्ति' भी शब्दालंकार मानी गई है। प्रस्तुत चम्पूकाव्य भी प्रस्तुत किया है । अन्तिम पद्य में कविनामगर्भाक्षिरो का समालंकार का उदाहरण है । अन्त्यानुप्रास के चरणगत भेदो के तीनो प्रकार यहा आवर्जित हैं । इसी प्रकार एक ही पद्य मे दो दो समान उक्तियों के विन्यास से श्लोकानुप्रास और श्लोक के अर्धपाद अथवा अर्धार्धपाद में निश्चित वर्णावृत्तिसे स्फुटानुपरास भी परिलक्षित हुआ है । एक ही अर्धाली में उपमानोपमेयरूप पदो में वर्णसाम्य होने से कहीं कहीं अर्थानुप्रास भी आया है । उपर्युक्त पारायण, चारायण, सारायण, आदि पदों के एकत्र पयोग से पञ्चप्रास विश्वेश्वर को 'चमत्कार चन्द्रिका' के अनुसार प्रतिवाक्य खण्ड में भिन्न रूप वाले होने से अव्यापक अनुप्रास तथा समानवर्णों की पद्य में अथवा गद्यखण्ड मे सर्वत्र आवृति होने से व्यापक अनुप्रास के उदाहरण बने हैं ।

इस प्रकार यह 'दयोदय चम्पूकाव्य' अपने आप मे सभी प्रकार के शब्दालकारो मे मौलिभूत 'अनुप्रास' का सर्वांश मे पूरक है तथा अपने विशाल शब्द सागर मे बहुविधता के काण शब्दालकार के ही अन्यान्य कतिपय भेदो को बडी मनोरमता से संजोये हुए है ।

वैसे तो भामह ने कहा है कि 'गिरामलङ्कारविधि सविस्तर ' और आचार्य दण्डी ने कहा है कि -'ते चाद्यापि विकल्पयन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति ।' अत राजशेखर के अनुसार यहा

समासव्याससद्‌ब्ध श्रृगाराद्‌भुतसभृम् ।
सानुप्रासमुदार च वच. स्यादमृताशिनाम् ।।

आचार्य श्री के वचोविन्याम देवकोटि के हैं । वहीं यह भी कहा गया है कि -

स्तोकानुप्रास- सच्छायं, चतुरोक्ति- प्रसादि च ।
द्राघीयासा समासेन विद्धि वैद्याधर वच ।।का मी ७ अ ।।

इसके अनुसार आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की वाणी जहाँ स्तोकानुप्रास, चतुरोक्ति और दोर्घसमास से सम्पृक्त हुई है । वहां वे विधाधरो की श्रेणी मे विराजमान होते हैं । साराश यह है कि यह रचना सर्वांश मे महनीय और कमनीय है । अनुसार पद में अथवा शब्द मे सन्धि के नियमानुसार दीर्घ, पररूप आदि होने से शब्दश्लेष होता हे । यथा मनोरमा तथा मन+अरमा (५/२१) तथा कहीं-कहीं 'विधौ साधौ' जैसे पदो मे विधि आर विधु शब्द के सप्तम्यन्त होने पर भी द्वयर्थकता-वचनश्लेष का घोषणा करती है । कहीं प्रत्यश साम्य होने से प्रत्ययश्लेष भी हुआ है । और विभक्ति भेद से भिन्नभिन्नार्थ होने पर विभक्तिश्लेष भी व्यक्त हुआ है । इतना ही श्लिष्ट शब्दो के प्रयोगों के द्वारा कतिपय पद्यों मे आचार्यप्रवर ने महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी के अनुसार बहुत स्थानों पर-प्रकृतानेकविषयश्लेष, अप्रकृतानेक-विषमश्लेष तथा प्रकृताप्रकृतानेकविषय श्लेष भी यहा समाहृत किये हैं। रुद्रट मे- दीर्घ के ह्रस्व हो जाने से अथवा ह्रस्व के दीर्घ हो जाने से तथा समास के कारण स्त्रीलिग, पुल्लिंग और नपुसंक लिंगी शब्दो की अरूपता हो गई है वहाँ लिंग श्लेष भी हुआ है । यथा रसाहारी पद मे रसा आहरतीति यथा रसै आहारति, रसान् आहरति इत्यादि उप पद समास से लिङ्ग परिवर्तन से अर्थ भिन्नता आई है । ठक्-ठग् जैसे पदो से भाषाश्लेष भी हुआ है ।

रसास्वाद के लिये बाह्यसौन्दर्य और अक्षर से योजनारूप मोहिनी पर पाठक निर्भर होता है । अक्षर-साम्य से रूपसाम्य और धर्मसाम्य ये दो रूप बनते हैं, इसी से एक साथ ही शब्द और अर्थ का सौन्दर्य निखर आता है। भावसंगोपन और कौतूहल दोनो ही विस्मय मे डालते हैं । अर्थबोध के साथ ही पाठक का मन आनन्दानुभूति करता है और उसका हृदय चमत्कृति मे सराबोर हो जाता है । श्लेषालंकार का ऐसा प्रयोग इस महाकाव्य में बहुधा हुआ है ।

चित्रकाव्य सुदर्शनोदय के नवमसर्ग की समाप्ति में आचार्य श्री ज्ञानसागरजी ने महाकवि माघ और उत्तरवर्ती कवियो की काव्यपरम्परा को प्रश्रय देते हुए शब्दालंकार के अन्तिम भेद चित्रालंकार का प्रयोग किया है । जिन में कलशबन्ध और हारबन्ध समादृत हैं । वैसे आपके अन्य महाकाव्यों में और चित्रबन्ध है । अत उनकी काव्य निर्माण प्रतिभा सर्वतोभद्र थी, यह निःसन्देह कहा जा सकता है । 'कलश-बन्ध' संस्कृतसाहित्य में कहीं घट, कहीं भृङ्गार सारी, कहीं सदुकूल कलश आदि रूपों मे उपलब्ध है। यह कलश अपनी रचना मे साधार और सावरण है इसमें आधार से पाठ प्रारम्भ होकर आवरण के शिखर तक पहुँचता है तथा पुन अवतरण क्रम से आधार तक आता है । तत्पश्चात् मध्यवृत्त में भ्रमण और बाह्यवृत्त में भ्रमण से पद्यपूर्ण होता है । यहा र-ल-,स-सं, म-म, अक्षरें की अभेद कल्पना करके वाग्भटालङ्कार के अनुसार अपवादों को आत्मसात् किया है ।

द्वितीय बन्ध 'हारबन्ध है'। इसकी आकृति में आठ चतुर्दलात्मक पुष्पों का सयोजन है। इसमें पाठ-प्रक्रिया एक वामदल मे आरम्भ होकर चारो दलों मे भ्रमण करके मध्यस्थवर्ण एवं तृतीय दक्षिण दल के वर्ण को द्विरावृत करती है । (९-९०) यह वाग्भटालंकार-ग्रन्थ के 'चन्द्रेडित चटुलित स्वरघीत सार ' पद्य के अनुसार है । यहा आचार्य प्रवर ने कतिपय वर्णों को श्लिष्ट करके उनमें भी अपवाद रूप प्रयोग को स्वीकृत किया है ।

यहीं ९१-९२ सख्यक पद्यो के सभी चरणो के प्रारम्भाक्षरों को योजना से 'भूरामलकृतमस्तु' वाक्य अकित होता है । यह 'नामाङ्कन' चित्र है ।

वस्तुत आचार्य श्रीज्ञानसागरजी महाराज स्वभावत कवि थे । वे कोई आयासिक कवि नहीं बने थे । उनकी सभी रचनाओ मे जिस प्रकार से अलकारो की सम्पृक्ता है । वह भी जड़िये के प्रयास की तरह जड़ी हुई न होकर स्वच्छन्दरमणीय प्रकृति की परिचायिका है। महाकवि भवभूति के वचनानुसार उनकी वाणी आत्मा की कला है । और उनकी शब्दसज्जा प्रयास साधिता नहीं है। अपि ऋषियो की वाणी की तरह वाग्देवी की अनन्य कृपा से 'वाचमर्थोऽनुधावति तथा 'शब्द वागनुधावति' की प्रतीक है ।

ऐसे महाकवि को भवभूति के शब्दो मे हम वन्दन करते हैं ।

इद कविभ्य पूर्वेभ्यो नमो वाचं प्रशास्महे ।
विन्देम देवता वाचममृतामात्मन. कलाम् ।

तथा

सर्वो धातुगण. क्रियादिविपुलो जिह्वाजिरे राजते,
विश्वास्तद्धितवृत्तय प्रमुदिता. क्रीडन्ति कण्ठस्थिता ।
कृत्सज्ञा विलसन्ति प्रत्ययघटा स्वान्तान्तरालम्बरे,
येषा ते विभवो जयन्ति जगती ते कुर्वते कीर्तिताम्

समुद्रद्रत चरित्र मे मुख्यत अन्त्यानुप्रास का मुक्त रूप से प्रयोग हुआ है। कुछ स्थलो पर यमक है तो कहीं श्लेष भी प्रयुक्त है । विस्तार एव पिष्टपेषणा के भय से यहा अधिक नहीं लिखा गया है ।

निदेशक - बी एम बिड़ला शोधकेन्द्र
विश्वविद्यालय मार्ग,
उज्जैन ४५६००१ (म प्र)

लघुत्रयी, विश्व की ज्वलन्त समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में

(सन्दर्भ ग्रन्थ : 'सुदर्शनोदय' 'दयोदय' एव 'भद्रोदय')

निहालचन्द जैन

पूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा सस्कृत भाषा में रचित "सुदर्शनोदय" महाकाव्य, ब्रह्मचर्य एव शील व्रत की प्रतिष्ठा का शिलालेख है। इसमे सेठ सुदर्शन का एकपत्नीव्रत धारण करते हुए ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये जीवन-उत्सर्ग की कथा है । उनके सामने तीन बार 'काम' प्रसग के सम्मोहन उपस्थित हुए । प्रथम बार राजपुरोहित की स्त्री कपिला के प्रणय निवेदन से यह कहकर छुटकारा पाया कि -

"हे सुबुद्धे न नाऽह तु करत्राणा विनामवाक् ।
त्वदादेशविधि कर्तुं कातरोऽस्मीति वस्तुत ॥5-19॥

मैं पुरुष नहीं किन्तु नपुसक हू , स्त्रियों के किसी काम का नहीं हूँ । अस्तु, हे सुबुद्धिशाली, मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हूँ । दूसरी बार -अभयारानी की काम भगिमा के सामने पाषाण-मूर्ति के समान अविचल बने रहे ।

"प्रकाशि यावत्तु तयाऽथवाऽऽग प्रयुक्तये साम्प्रतमङ्गभाग ।
तथा तथा प्रत्युत सम्विरागमालब्धवांनेव समर्त्यनाग ॥7-21॥"

रानी जैसे-जैसे अपने स्तन आदि अगो को प्रकट करती जा रही थी, वैसे-वैसे सुदर्शन राग के स्थान पर, विराग भाव को प्राप्त हो रहा था और विचार रहा था कि आसक्ति की आँख वक्षस्थल पर होने वाले मास की वृद्धि को 'अमृत कुम्भ' कहता है इस कामन्धता-पूर्ण मूर्खता पर क्या कहूँ ?

पीयूष कुम्भाविति हन्त कामी वदत्यहो सम्प्रति किम्वदामि ॥7-25॥

सेठ सुदर्शन का चाण्डाल व राजा के हाथों की तलवार से बच जाना, पापाचरण पर अखण्ड ब्रह्मचर्य की विजय है ।

तीसरी बार-चम्पानगरी की देवदत्ता वेश्या द्वारा की गई नाना कुचेष्टाओ द्वारा सुदर्शन मुनिराज का काठ के पुतले के समान लिप्त बने रहना और अन्त में अपने उपदेशामृत से वेश्या और उसकी दासी 'पण्डिता' को यथायोग्य व्रत देकर उनके जीवन का सुधार किया । यह ब्रह्मचर्य की परम तेजस्विता का सुफल था ।

इस महाकाव्य के केन्द्र बिन्दु "ब्रह्मचर्य" को विश्व की दो ज्वलन्त समस्याओ से सम्बद्ध कर एक सर्व स्वीकृत हल प्राप्त किया जा सकता है।

(१) विश्व मे 'एड्स' का बढ़ता प्रकोप

'एड्स' एक ऐसा असाध्य रोग है, जिसका अन्तिम पडाव त्वचा का कैंसर होता है, जिसे लिफोमा कहते हैं और मौत ही उससे छुटकारा दिला सकती है । 'एड्स' सक्रमण का सबसे प्रमुख कारण यौन सबध है और ब्रह्मचर्य व्रत से रहित पुरुष इस रोग से लिप्त पाये गए । 1983 मे विश्व मे केवल दो या तीन हजार के बीच एड्स रोगी थे, लेकिन आज विश्व के 132 देशो मे 'एड्स' रोगियो की सख्या 85 हजार से ऊपर पहुँच गई है ।

इस विश्वव्यापी समस्या की गम्भीर चुनोती केवल वैज्ञानिकों व चिकित्सको के लिए ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है । परीक्षा की इस कठिन घडी मे एक ही सच्चा हितैषी है- वह है "हमारा सयमी जीवन" । ऐसा जीवन, जिसमें ब्रह्मचर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा हो केवल इस रोग से निजात दिला सकता है ।

(२) विश्व की बढ़ती जनसंख्या

व्यक्ति की अंतहीन काम वासना एवं अनियंत्रित भोगवाद, जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी है । आज विश्व की जनसंख्या 5 अरब से ऊपर पहुँच चुकी है । विश्व की बढती जनसख्या का विस्फोट, आणविक-विस्फोट से कहीं ज्यादा खतरनाक है। 1901 में भारत की जनसख्या 23 करोड 84 लाख थी । 50 वर्षों मे इसमे 12 27 करोड की वृद्धि हुई आज 1994 में देश की जनसख्या 91 करोड 11 लाख तक पहुच गई है । इस बढ़ती जनसख्या ने -शहरीकरण, अव्यस्थित औद्यौगिक विकास, गरीबी भुखमरी, ध्वनि-प्रदूषण आर स्वास्थ्य-प्रदूषण जसी अनेक समस्याए सौगात मे दी हैं । जनसख्या बाढ ने मल-मूत्र स्राव प्रणाली मे निकले मलवे द्वारा भयकर रोगों का जन्म दिया है ।

जनसख्या क बढते इस ग्राफ को ब्रह्मचर्य रूप सयम ही रोक सकता है । परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत सरकार द्वारा किये जाने वाले उपक्रम-अप्राकृतिक हैं। यदि जीवन मे ब्रह्मचर्य आचरित हो जाता ह तो परिवार मे नैसगिक रूप से जनसख्या की वृद्धि पर विराम लग सकता है ।

महाकाव्यकार ने 'पण्डिता' दासी के माध्यम मे अभयारानी को शील व्रत खण्डित न करने के लिए बहुत सचेष्ट किया ।

"किमिति गदसि लज्जाऽऽस्पद कि ग्लपिताऽसि मदेन ॥6-23॥

दासी कहती है कि हे महारानी ! आपके मुख मे पर पुरुष मे सहवास करने जसी लज्जास्पद बाते कैसे कहीं जा रही है ? क्या आप मदिरापान से बेहोश हो रहीं ह ।

निजपतिरस्तु तरा सति । रम्य कुलबालाना किन्तु परेण ।सर्ग-६॥

कुलीन नारियो के निज पति ही सर्वस्व होता ह उन्हे पर पुरुष मे क्या प्रयोजन? महाकाव्यकार ने प्रकृति के नारी सुलभ शील गुण की पुष्टि करते हुए पतिव्रत्य धर्म से पतित न होने का उपदेश, दासी मुख मे करवाया ।

(३) आतकवाद एव युद्ध विभीषिका

विश्व मे बढती हिंसा व क्रूरता ने आतकवाद बढाने मे 'आग मे' घी का काम किया है । आज इतनी हिंसा का विस्तार हो गया है कि एक हजार वर्ष के सारे कातिमान पीछे हो गए ह। इतिहास के क्रूर पुरुष नेपालियन चगेज खाँ नादिरशाह और हिटलर आदि आज की क्रूर-हिंसा के सामन बौने साबित हो गए ह । विश्व मे व्याप्त हिंसा व घृणा के प्रति प जवाहरलाल नेहरु ने चिन्ता व्यक्त करते हुए अपनी पुस्तक "डिसकवरी आफ इण्डिया" मे लिखा है-

'The world of today has achieved much but for all its declared love for humanity it based itself for more on hatred and voilence than on the virtues that make man human

आतकवादी देश हिंसा से प्रेरित राजनीतिक द्वारा बन्दूक व गोली की भाषा मे निर्दोष लोगो की जघन्य हत्याए करवा रहे ह । जो एक ज्वलन्त समस्या बनकर विश्व को रक्त रजित कर रहा है । अभी हाल मे श्री लका के विपक्षी नेता दिशानायके की समूह के साथ की गई नृशस-हत्या हिसा का एक जीता जागता विद्रूप उदाहरण है । इस आतकवाद के मूल मे मानव की हिंसात्मक प्रवृत्ति, मासाहार व मद्यपान उत्तरदायी है ।

महाकाव्यकार ने इस हिसा के क्रूर कृत्य का निषेध परक व्याख्यान मुनिराज सुदर्शन के मुख से वेश्या देवदत्ता को सम्बोधने हेतु किया है ।

स्वार्थस्येय पराकाष्ठा जिह्वालाम्पट्य पुष्टये ।
अन्यस्य जीवनमसौ सहरेन्मानवो भवन् ॥9-53)

यह मनुष्य के स्वार्थ की पराकाष्ठा है कि वह जिह्वा की लालसा के लिए अन्य प्राणी का संहार करके उनका मांस खाता है ।

कर्ता प्रमाद्यति यतः प्रतिभाति हिंसा ।
पाप पुनर्विदधतो जगते न किंसा ॥

अर्थात-हिसक मनुष्य कषाय के आवेश में, किस पाप को नहीं उत्पन्न करता ? मरने वाले के शस्त्रघात जनित पीडा होती है और मारने वाले के परिणाम सक्लेशयुक्त होते हैं । अत नियम से पाप बध होता है ।

हिंसामृषाऽयधनदार परिग्रहेषु,
सक्ता सुरापलपरा निपतन्त्यकेषु ॥9–44॥

जो हिसादि पाच पाप करते हैं, वे सुख के स्थान पर दुखो को ही प्राप्त होते हैं । इस प्रकार महाकाव्यकार ने अनेक प्रंसगो पर हिंसा की भर्त्सना की है ।

हिंसा से-युद्ध का जन्म होता है । हिंसा में विश्वास रखने वाले राष्ट्र आक्रामक होकर-अहिसा व शान्ति मे विश्वास रखने वाले राष्ट्र पर युद्ध थोप देते हैं । युद्ध की विभीषिका पर एक बार जब आइन्स्टीन से पूछा गया कि तीसरा महायुद्ध कैसा होगा । उत्तर में उन्होंने कहा -"मैं तीसरे महायुद्ध के बारे में कुछ नहीं कह सकता, परन्तु चौथा महायुद्ध मनुष्य पत्थरो से लडेगा । वैज्ञानिक आइन्स्टीन के कहने का अभिप्राय था कि चौथे महायुद्ध तक ज्ञान-विज्ञान, वैज्ञानिक साधन वाहन, अस्त्र-शस्त्र आदि अवशेष ही नहीं रहेगें। विध्वस लीला, मनुष्य की सस्कृति और सभ्यता को भी नष्ट कर देगी।

मासाहार ने, हिसा को चिनगारी से बढाकर आग की लपटो मे बदल दिया । आज हिसा के पर्याय बने कत्लखाने-क्रूरता के कारखाने बन गये हैं । आधुनिक बध-यत्रो से लेस कत्लखाने "अहिसा परमो धर्म " की धार्मिक घोषणा का अगूठा बता रही है । महावीर और गांधी के देश मे ही 36031 बडे वैध कारखाने हिसा के क्रन्दन मे आपूरित है जहा क्रूरता भी सहम कर सघनभूत हो गई है । प्रतिदिन लाखो मूक-पशुओ की हत्याये न केवल पशुधन का समाप्त करने का विदेशियों का षड्यत्र है, वरन् पर्यावरण को असन्तुलित करने मे उत्तरदायी है । यह वैज्ञानिक तथ्य भी सामने आ रहा है कि मासाहार -जलाभाव को उत्पन्न कर रहा है।

हिसा की इस ज्वलन्त समस्या को चम्पू-'दयोदय' मे एक कथानक के रूप मे उठाया गया है । प्रस्तुत चम्पू मे एक मृगसेन धीवर के उत्कर्ष की कथा रेखाकित है जिसकी आजीविका हिसामय थी ओर वह मासाहारी था । इसमे यह तथ्य उजागर किया गया है कि जीवन का उत्थान अहिसा व्रत को धारण करने से ही होता है ।

मृगसेन धीवर-मछली मारने के लिए जा रहा था, अचानक एक दि जैन मुनि की अमृतवाणी उसके कानो मे पड़ती है -

"अहिंसा भूताना जगति विदित ब्रह्म परम्" ।

अर्थात् - अहिंसा ही परम ब्रह्म है ।

बिभेति मरणमिति श्रुत्वा स्वस्य सदा पुन. ।
मारयेदि तराञ्जंतून्, किमसौ स्यात् सुधीवर : ॥9–24॥

जो मरण का नाम सुनकर काँपने लगता है, वह दूसरे जीवो को कठोरता के साथ मारने को उद्यत हो, वह कैसे सुधीवर (बुद्धिमान) हो सकता है ?

मृगसेन धीवर चिन्तन करने लगता है- ओह ! मै हिंसा के खोटे मार्ग पर जा रहा हूँ और मेरी आजीविका भी यही है । क्या करूँ ? वह उन दि मुनि से जाल में फँसने वाली पहली मछली को न मारने का व्रत लेता है और केवल एक दिन के लिए उस व्रत को पालने से वह अगले जन्म में उच्च कुलीन सेठ धनपाल के घर जन्म लेता है और महान् भाग्यशाली सोमदत्त के नाम से विख्यात होता है ।

गुणपाल सेठ-सोमदत्त को मारने के लिए एक चाण्डाल को धन का लालच देकर षड्यत्र करता है । उस चाण्डाल के मन में भोले बालक सोमदत्त को देखकर अहिसक भाव उत्पन्न होता है। वह विचारता है- सेठ से तो धन जरूर ऐंठ लेना चाहिए लेकिन इस निरपराध बालक को नहीं मारना चाहिए । जैसे बनियां के गुड़ को ग्राहक पैसों से खरीदकर खाते हैं लेकिन मकोडे मुफ्त में ही खाते रहते हैं । (श्लोक 6 लम्ब 3)

जिस मछली को मृगसेन धीवर ने बचाया था, वह मरकर वेश्या हुई थी । और उसने सोमदत्त को पत्र मे लिखे शब्द 'विष' के स्थान गुणपाल सेठ की पुत्री का नाम 'विषा' सशोधित करके, मौत के मुँह से बचा लिया था । इस प्रकार सोमदत्त के पूर्व जन्म के लघुरूप में ही अहिंसा व्रत को अंगीकार करने का प्रभाव था ।

(४) पूजीवाद-एक विकराल समस्या

विश्व की अशान्ति और दुख का कारण -धन की लिप्सा/मूर्च्छा/ममत्व या अनावश्यक सग्रहवृत्ति है । हम जितना परिग्रह बढ़ाते जाते हैं । जैनाचार हमसे दूर खिसकता जाता है और उसी अनुपात मे मनुष्य मे भीतर की मनुष्यता घटती जाती है इस परिग्रह और धन की लिप्सा के विस्तार में पुजीवादी-राष्ट्र आज विश्व मे साम्राज्यवाद एव सामन्तवाद की पुनर्प्रतिष्ठा करना चाह रहे हैं । पुजीवाद समाजवादी एव प्रगतिशील राष्ट्रों के लिए 'सुरसा' के मुँह की भाँति एक विकट समस्या बनी हुई है । धन की तृष्णा -व्यक्ति को न केवल वर्तमान मे दुखी करती है वरन् अगले भवों तक दुर्गति मे ले जाती है ।

आचार्य ज्ञानसागरजी के तीसरे 'समुद्रदत्त चरित्र' (भद्रोदय) मे धन की तृष्णा से जुडा हुआ एक प्रसग आया है । राजा सिहसेन का मत्री श्री भूति-ऊपर से सत्यघोष बना हुआ था लेकिन उसका अन्तस् कपट व धन के लालच से लिप्त था । धन की तृष्णा मे वह भद्र मित्र के रत्नो का अपहरण कर लेता है । भद्रमित्र न्यायोपार्जित रत्न को खोकर किकर्तव्य विमूढ है वह 'सत्यघोष' से कहता है- हे विप्र ! तुझे किसी चीज की कमी नहीं है । फिर भी तेरी तृष्णा नही मिटी, प्रयुक्त बढती जा रही है और इसी कारण चोरी करने का कुचेष्टा कर रहा है ।

''तथापि तृष्णावत् नो पशान्तादुर्वृत्ति
मेवानुकरोत्ति कान्ताम् ॥3-35॥

जब सत्यघोष के कपट का भेद खुलता है तो न केवल वह अपमानित होता है वरन मरकर इसी राजा के भण्डार मे सर्प बनता है । यही सर्प आगे के भवो में चरमभृग, सर्प और रौद्र परिणामो से मरकर तीसरे नरक मे जाता है।

इस प्रकार लघुत्रयी के परिप्रेक्ष्य में आज की ज्वलन्त समस्याओ पर एक सक्षिप्त ऊहापोह किया । पू आचार्य ज्ञानसागर के अगाध ज्ञान-पाण्डित्य की फलश्रुतियाँ ये तीनो ग्रन्थ हैं, जो कलेवर में लघु दिखने पर भी जीवन-उत्कर्ष-सिद्धान्तो से जुडे महान ''कल्याणकल्पद्रुम'' हैं ।

जहाँ ''सुदर्शनोदय'' महाकाव्य जीवन की तेजस्विता-ब्रह्मचर्य को व्याख्यापित कर रहा है । वहाँ ''दयोदय'' चम्पू जीवन मे अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए समर्पित हैं । ''समुद्रदत्त चरित्र'' अपर नाम ''भद्रोदय'' फरेब-झुठ छल कपट जैसे पापाचरण के पक को जीवन से धोकर उसे निखारने व उज्ज्वल बनाने के लिए सकल्पित है।

ये तीनो ग्रन्थ-सामयिक सन्दर्भों मे विश्व की ज्वलन्त समस्याओ से जुडकर और भी उपादेय बन गए हैं । ये ग्रन्थ -विश्व को, अहिंसा, शान्ति, विश्व बधुत्व और अयुद्ध जैसे मानवोचित गुणो को प्राप्त करने के लिए सशक्त हस्ताक्षर बन गये हैं । आये- एक सर्व व्यापी सर्वेक्षण की आँख से इन ग्रन्थो में निहित सार तत्त्व को उदघाटित करने का एक सार्थक प्रयास करें । और अनुगृहीत हों पू मुनि सुधासागर जी के जिन्होंने 'ज्ञानसागर' के इस समुद्र मथन के उपक्रम के लिए अपना ''तथागत आर्शीवाद'' प्रदान किया।

निहालचन्द्र जैन
प्राचार्य बीना (म प्र) 470113

लघुत्रयी का भाषागत वैशिष्ट्य

डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

किसी भी काव्य की सफलता का तारतम्य उसकी भाषा है । काव्यगत कार्य विषय के अनुसार ही भाषा का अलंकृत, गम्भीर, साथ ही रुचिकर भी होना आवश्यक है । इस तथ्य से महामहिम महाकवि मुनिश्री ज्ञानसागरजी महाराज भली भाँति परिचित थे । काव्य भाषा-निष्णात काव्यकार पुण्यश्लोक मुनि श्री अपनी विलक्षण काव्य प्रौढि और प्रौढिवाद की विलक्षणता के कारण संस्कृत के आधुनिक कविर्मनीषी काव्यपुरुषो में धुरि कीर्तनीय हैं । उनकी बहुपथीन काव्य सृष्टि से यह सुस्पष्ट है कि वह शब्द शास्त्र के पारगामी अध्येता थे, इसीलिए उन्हें परावाणी का साक्षात्कार सुलभ हुआ था और उनकी वही परावाणी पश्यन्ती और मध्यमा के स्तर को पार करती हुई उनके काव्यो मे वाग्वखरी बनकर अवतीर्ण हुई है । उनके काव्य-वाङमय के अध्ययन से सहज ही यह ज्ञात होता है कि वह केवल शब्द के नही, वरन् शब्द तत्त्व के मर्मज्ञ थे ।

आचार्य भर्तृहरि ने भी वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड, श्लोक 1) मे केवल शब्द नही शब्द तत्त्व कहा है 'अनादिनिधन ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम् ।' शब्द-व्यापार की एक सूत्रता और एकतानता का मूल तत्त्व ही शब्द तत्त्व है जिसे पाश्चात्य भाषा शास्त्रियो ने 'स्पीच एलिमेन्ट' कहा है । इसी शब्द तत्त्व या 'स्पीच एलिमण्ट' का मूर्त या साकार रूप गद्य या पद्य है । मुनि श्री ज्ञानसागर जी काव्यसाधना मे शब्द तत्त्व के इन दोनो रूपो के रमणीय दर्शन होते है । सच पूछिए तो, युगदृष्टा कवि मुनि श्री के पास एक ओर पुराने निकष की परिपूर्णता है तो दूसरी ओर नये निकष गढ लेने की अपार शक्ति है । वह शब्दज्ञ भी हैं और शब्द सृष्टा भी । शास्त्र उनकी प्रज्ञापूत ललित लेखनी के सम्पर्क से मधुर रस बन गया है और रस ने रसशास्त्र की गम्भीरता आयत्त कर ली है । इस दृष्टि से मुनिश्री ज्ञानसागरजी केवल शास्त्रज्ञ आचार्य ही न होकर 'आचार्य' की सज्ञा को सही मानो मे सार्थक करने वाले रसज्ञ आचार्य है ।

कविश्रेष्ठ मुनिश्री महाराज के काव्यभाषा-निबद्ध गद्य और पद्य दोनो में, भाषा और भावगत अथवा शिल्प और कथ्यगत कला-सौन्दर्य के वैलक्षण्य की प्रतिष्ठा उनके द्वारा की गई शब्द तत्त्व की आराधना के विभूतिमान् परिणमन से सम्भव हुई है । उनकी कालोत्तीर्ण काव्यकृतियो की भाषिक सरचना मे समाहित कलातत्त्व की वरेण्यता के कारण ही उनका काव्य-सौन्दर्य अपना विशिष्ट मूल्य रखता है । विकसित कला-चेतना से समन्वित मुनिश्री की काव्यभाषा सौन्दर्य और बिम्ब की दृष्टि से प्रभूत अध्ययन-सामग्री प्रस्तुत करती है । इस सन्दर्भ मे मुनिश्री के महनीय काव्य 'सुदर्शनोदय' के तृतीय सर्ग मे उपन्यस्त अगदेश के चम्पापुर के वैश्यकुल भूषण वृषभदास सेठ की अतिशय सुन्दरी सेठानी को अगदीप्ति और आन्तरिक उदात्तता से सम्बद्ध वर्णन की समग्रता सन्दर्भित करने योग्य है । इस वर्णन मे रसज्ञ आचार्य कवि श्री की, आत्मानुभूति की अधिकता के कारण, सेठानी के रूप-सौन्दर्य, कर्म-सौन्दर्य, भाव-सौन्दर्य और उससे अधिक अन्त सौन्दर्य के प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा या काव्य -प्रयास बहुत सफल है । यह पूरा सर्ग कवि श्री के आत्मानुभूतिपरक अन्त सौन्दर्य और बहि सौन्दर्य के समेकित प्रत्यक्षीकरण मे सकलित रसपेशल काव्यचित्रण का स्पृहणीय आदर्श बन गया है। इसमे उन्होंने काव्य भाषा को विविध चारियो या भंगियों में नचाकर यह सिद्ध कर दिया है कि वह एक वश्यवाक् कवि हैं और भाषा उनकी वशंवदा है ।

भाषिक कला-सौन्दर्य के विधायक मूल तत्त्वो मे शब्द-लालित्य, पदशय्या की चारुता और सुकुमारता, अभिव्यक्ति की वक्रता, वचोभगी का चमत्कार, भावों की विच्छित्ति, अर्थ चमत्कार, अलकारों की शोभा, रस का परिपाक रमणीय कल्पना, हृदयावर्जक बिम्ब, रम्यरुचिर प्रतीक आदि प्रमुख हैं । कहना न होगा कि मुनिश्री महाराज की काव्यभाषा में, भाषागत वैशिष्ट्य की दृष्टि से, प्राय इन समस्त सौन्दर्य मूलक कलातत्त्वो का हृदयावर्जनकारी विनियोग हुआ है ।

संस्कृत-साहित्य में महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध काव्यत्रय-'रघुवंश, 'कुमारसम्भव और 'मेघदूत' को 'लघुत्रयी' की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है । वर्तमान सन्दर्भ मे, उक्त 'लघुत्रयी' के समानान्तर, मुनिश्री ज्ञानसागरजी महाराज के 'सुदर्शनोदय', 'दयोदय' और 'समुद्रदत्त चरित्र' काव्यो का 'लघुत्रयी' के रूप मे प्रत्यास्मरण करना अप्रासंगिक नहीं है । मुनिश्री की इस 'लघुत्रयी' की काव्यभाषा का रचना प्रकल्प प्राय एक समान है । व्याकरण गर्भता, उनकी काव्यकृतियो के भाषागत वैशिष्ट्यो में प्रमुख है । काव्य के माध्यम से व्याकरण का प्रतिपादन अथवा व्याकरण के माध्यम से काव्य का निरूपण ही उनकी काव्य रचना प्रक्रिया का भाषिक वैभव है । यद्यपि काव्य पाठको के लिए व्याकरण-ज्ञान को लक्ष्य मे रखकर मुनिश्री ने काव्य रचना की है तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि उनकी यह 'लघुत्रयी' काव्य ग्रन्थ है व्याकरण-ग्रन्थ नहीं ।

ध्यातव्य है कि व्याकरणगर्भता के अतिरिक्त आनुप्रासिक तुकान्तता मुनिश्री की काव्यभाषा का आशंसनीय वैशिष्ट्य है ।

आचार्य शंकर के 'चर्पटपंजरिकास्तोत्र' जैसे स्तोत्र काव्यो को छोड़कर अन्य संस्कृत काव्यो मे अन्त्यानुप्रास या तुक के निर्वाह को प्राय मूल्य नही दिया गया है । भिन्न तुकान्तता ही संस्कृत काव्यों की रचना प्रक्रिया की विशेषता है । मुनिश्री ज्ञानसागरजी की आस्वादरमणीय काव्यभाषा की पदशय्या मे यत्र-तत्र जो प्रायोगिक नवीनता दिखाई पडती है वह सोद्देश्य है । गोस्वामी तुलसीदास की तरह मुनिश्री संस्कृत को अधिक से अधिक जनोपयोगी बनाने के पक्षधर प्रतीत होते है । फिर भी यदि शब्द शास्त्रीय सूक्ष्मेक्षिका मे देखे तो स्पष्ट होगा कि मुनिश्री की काव्यभाषा कही भी और किसी प्रकार से भी अपाणिनीय नहीं है । मुनिश्री का कवि काव्यमर्मज्ञ तो है ही शब्दशास्त्रज्ञ भी है ।

वस्तुत मुनिश्री की काव्यभाषा के सौन्दर्य का आनंद कुछ और ही है । तुलनात्मक दृष्टि से देखे तो इस प्रकार का प्रौढतर भाषिक सौन्दर्य महाकवि भट्टि के 'भट्टिकाव्य' तथा महाकवि श्रीहर्ष के 'नैषधीय चरित' मे ही सुलभ होता है । मुनिश्री के भाषागत शाब्दिक प्रयोगो का एक और उल्लेखनीय तथा वैज्ञानिक वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने आवश्यकतानुसार अर्थोत्कृष्ट शब्दो को अर्थापकृष्ट करके अथवा अर्थापकृष्ट शब्दो को अर्थोत्कृष्ट करके परिगुम्फित किया है । शब्दो के अनेकार्थकत्व की प्रायोगिक सार्थकता की दृष्टि से 'लघुत्रयी' अपने-आप मे स्वयं उदाहरण है । इस सन्दर्भ मे भंग के लिए 'रक्तांशिका' (सुदर्शनोदय १ २८) बाण के लिए 'मार्गण' (तत्रैव ४४), समास के लिए 'अनक' (तत्रैव सर्ग १ की पुष्पिका) ठगपने के लिए 'ठकत्व' (तत्रैव १ ३४) पैसा के लिए 'टका' (दयोदय लम्ब ५ श्लो १२) सुन्दर के लिए 'रमाल' (तत्रैव ८१) पागल के लिए 'प्रमादी' (समुद्रदत्तचरित्र सर्ग ८ श्लोक २८) शक्तिशाली के लिए 'वपुष्मान' (तत्रैव २ १८) आदि शब्द निदर्शनीय हैं । इसी क्रम में मुनिश्री के सहित शब्दो का प्रयोग वैचित्र्य भी अपना अनुसन्धेय महत्त्व रखता है । देशी शब्दो के प्रयोग का आग्रह तो मुनिश्री के, संस्कृत के सरलीकरण की प्रवृत्ति का स्पष्ट संकेतित करता है ।

भाषा की प्रायोगिक विलक्षणता के उपस्थापक महाकवि मुनिश्री ने अपनी काव्यरचना-प्रक्रिया मे भाषा की प्रमुखता को महत्त्व दिया है क्योंकि काव्य के रचनागत तत्त्वो या उपादानो में भाषा मूलतत्त्व है और भाषा ही काव्य रचना-प्रक्रिया का मूलाधार है ।

इस सन्दर्भ मे 'सुदर्शनोदय' के मंगलाचरण मे आरचित मुनिश्री की निम्नांकित काव्य पंक्तियाँ द्रष्टव्य है

वीर प्रभु स्वीयसुबुद्धिनावा भवाब्धितीरं गमितप्रजावान् ।
सुधीवराराध्यगुणान्वया वाग्यस्यास्ति न शास्तिकवित्वगावा ।।(१ १)
वागुत्तमा कर्म कलङ्कजेतु दुरन्तदुःखाम्बुनिधौ तु सेतु ।
ममास्त्वमुष्मिंस्तरणाय हेतुरदृष्टपारे कविताभरे तु ।। (१.२)

अर्थात् श्रेष्ठ सुधियो द्वारा आराध्य गुणों से सम्पन्न वीर प्रभु की वाणी या भाषा हमारी कवित्व-शक्ति को अनुशासित करती है तथा उनकी वही उत्तम वाणी कवियों को अपार काव्य सागर से पार उतारती है और फिर, प्रभु की उत्तम वाणी ही भवसागर से पार उतरने के लिए पुल के समान है और वहीं वीर प्रभु अपने सद्ज्ञान की नौका से ससार के प्राणियो को पार उतारते हैं ।

कविता की सृष्टि के लिए सद्ज्ञान या श्रेष्ठ बौद्धिक विचार अपेक्षित होता है और भाषा ही विचारों की संवाहिका होती है । मुनिश्री के मगलाचारण मे सन्दर्भित 'वाक्' शब्द से उनका यह अभिप्राय या मन्तव्य स्पष्ट होता है कि भाषा की उपलब्धि के बिना कविता पूर्ण नहीं हो सकती है और, कहना न होगा कि मुनिश्री की 'लघुत्रयी' भावोद्बोधक सौन्दर्यमधुर काव्य भाषा से समन्वित होने के साथ ही शब्द ज्ञान के उन्मेषक भाषाकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित है

इस 'लघुत्रयी' के भाषागत वैशिष्ट्य की दृष्टि से उसकी छन्दोयोजना का भी ततोऽधिक महत्त्व है । छन्द का काव्य भाषा से अभिन्न सम्बन्ध है । छन्द मूलत लयाधृत नादयोजना है । छन्द का आधार लय है और लय मुनिश्री के केवल पद्य मे ही नहीं कुछ दूर तक उनके गद्य में भी दृष्टिगत होती है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, वस्तुत भाषा के प्रवाह-धर्म का नाम ही छन्द है और चूँकि गद्य मे भी भाषा का प्रवाह रहता है, इसलिए वहा भी सहज ही छन्द की अवस्थिति रहती है । इस सन्दर्भ में सफल गद्य कवि मुनिश्री महाराज के यशोधन चम्पूकाव्य 'दयोदय' में समासबहुला गौडी और ललितमधुरा वैदर्भी शैली मे ग्रथित प्राजल गद्य की मनोहारी सुषमा दर्शनीय है ।

गौडी शैली

"यत खलु सोऽस्माक तारुण्यतेज समुत्तननाय तरणिरिवोत्तरायण' सर्वदेवानुकूलाचरण-करण-परायण सुललित-मनोरथलता-पल्लववननिमित्तमम्बुधरायण पानीयापत्तिपूतना-विनाशनाय नारायण पाठीन-मीनक्रन-मकरादिजलजन्तुभ्य कारायण कुतो जगामास्माक सर्वस्वसारायण इति प्रत्यवेक्षितु तदनुसरणक्रमेणैव देवस्थानभूमावेकाकिन पतित च दृष्ट्वोत्थापयितु-मभिवाञ्छन्ती सहसैव परासुतामवाप्तमवलोक्य सरोदस्वशिरस्ताडन-पूर्वक स्वकृतापराधस्मरणपुरस्सर चेति।" (लम्ब २, श्लो ३१ के बाद)

वैदर्भी शैली

"हे तनयेऽसौ बाला प्रत्यासन्नसमाप्तकौमारकाल-ऽत एव वल्लरीव मृदुपल्लवापि सुकोमलहृदयालवाला, त्वन्तु मर्मुदित-शाखिशाखेव समाश्रितविचाला किलेत्यतोऽमुष्यै भवितु -मर्हत्याश्रयदानशाला यथानुमित्यै साधनमाला । या कुसुमकलिकेव तरुतरलशाखाया मृदुलतमकलपल्लवै समुपलालन-योग्या सतो भायादति स्थितिर्मदीयहृदि कल्पनाया " । तत्रैव (लम्ब ७, श्लो १५ के बाद)

प्रस्तुत 'लघुत्रयी' मे मुनिश्री ज्ञानसागरजी को छन्द शास्त्रीय तत्त्वज्ञता का विस्मयकारी विनिवेश हुआ है । छन्दो का वैविध्य ही इस 'लघुत्रयी' के भाषा-सौन्दर्य का सीमान्त है। नवसर्गात्मक 'सुदर्शनोदय', सप्तलम्बात्मक 'दयोदय' और नवसर्गात्मक 'समुद्रदत्त चरित्र', इन तीनो काव्यो मे सस्कृत के प्राय सभी प्रसिद्ध वृत्तो, जैसे इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति वियोगिनी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीडित, वैतालीय, अनुष्टुप् आदि का प्रयोग तो हुआ ही है, रस सिद्ध कवीश्वर जयदेव की तरह विविध रागों (जैसे- प्रभाती, काफी होलिकाराग, कव्वाली, छन्दचाल, रसिकराग, सारगराग, श्यामकल्याणराग और सोराष्ट्रीय राग) मे आबद्ध सागीतिक छन्दो की भी मनोरम योजना हुई है । इससे मुनिश्री की भाषा-साधना के अन्तर्गत उनकी सागीतिक छान्दस प्रतिभा की प्रकाण्डता और तद्विषयक गहन शास्त्रीय व्युत्पत्ति हमे बार-बार चकित-विस्मित कर देती है ।

मुनिश्री की लघुत्रयी में स्वभावोक्ति का सौष्ठव तो है ही, उसके विपरीत वक्रोक्ति-चमत्कार का भी आशंसनीय विनियोग हुआ है । वक्रोक्ति की आवर्जक योजना इस लघुत्रयी' के काव्यभाषिक सौन्दर्य के संवर्द्धक तत्त्वो मे अपनी उल्लेखनीय महत्ता आयत्त करती है । यहाँ दो-एक वक्रताएँ द्रष्टव्य हैं ।

विशेषणवक्रता - विशेषण प्रातिपदिक का एक प्रकार है । विशेषण के प्रयोग-वैशिष्ट्य के प्रभाव मे क्रिया अथवा कारक की रमणीयता द्योतित होती है । इस काव्यभाषिक सौष्ठव के आस्वाद के लिए मुनिश्री का यह श्लोक निदर्शनीय है-

वागेव कौमुदी साधुसुधांशोरमृतस्रवा ।
तथा वृषभदासस्या भून्मोहतिमिरक्षतिः॥ (सुदर्शनोदय ४१३)

यहाँ चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान अमृतवर्षिणी मुनि वाणी में विशेषण वक्रता के विन्यास के कारण काव्य भाषा ततोऽधिक रमणीय बनकर उद्‌भावित हुई है ।

क्रियावैचित्र्य-वक्रता

क्रिया के प्रायोगिक वैचित्र्य की वक्रता की दृष्टि से भी इस 'लघुत्रयी' की काव्य भाषा चारुतर बन गई है । एक उदाहरण -

समस्त्युज्जयिनी नाम नगरीह गरीयसी ।
यातीव स्वःपुरी जेतु स्वसौधै र्गगनङ्कषैः ॥ (दयोदय ११०)

अर्थात, उज्जयिनी नगरी अपने गगन चुम्बी महलो द्वारा देवपुरी को जीतने के लिए जाती हुई सी प्रतीत होती है । यहाँ उज्जयिनी नगरी कर्त्ता है । किन्तु, अन्य कर्त्ताओं मे उसका वैचित्र्य स्पष्ट है । कविर्मनीषी मुनिश्री ने उज्जयिनी नगरी का मानवीकरण किया है । स्थावर नगरी में जगमता की ऊहा या उत्प्रेक्षा के लिए उसे 'यातीव' विशेषणशब्द द्वारा मुनिश्री-कृत नगरी का उत्प्रेक्षामूलक चाक्षुष बिम्बविधान अतिशय अभिराम और आवर्जक है । ज्ञातव्य है 'दयोदय' के अतिरिक्त 'सुदर्शनोदय' और 'समुद्रदत्त चरित्र' काव्यो में भी मानवीकृत अलंकार बिम्बो का प्रचुर प्रयोग उपलभ्य है।

काव्य के शोभावर्द्धक अलकार काव्य भाषा को ततोऽधिक विशिष्ट बनाते है । मुनिश्री ने अपनी इस 'लघुत्रयी' मे अनुप्रास यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि प्रमुख अलंकारो के प्रयोग के प्रति सहज आग्रह प्रदर्शित किया है । चम्पापुरी के वर्णन के क्रम मे उनके द्वारा प्रयुक्त सभग श्लेष का चमत्कार पूर्ण विनियोग द्रष्टव्य है-

पलाशिता किंशुक एव यत्र द्विरेफवर्ग मधुपत्वमत्र।
विरोधिता पञ्जर एव भातु निरौष्ठ्य काव्येष्वपवादिता तु ॥ (सुदर्शनोदय १३३)

अर्थात् चम्पानगर मे 'पलाश' शब्द का व्यवहार केवल किंशुक वृक्ष के लिए ही होता था । वहाँ का काई मनुष्य 'पल' अर्थात मास का 'आशी' अर्थात खाने वाला नहीं था । इसी प्रकार, वहाँ 'मधुप' शब्द का व्यवहार केवल भ्रमरो के लिए ही होता था । वहां का काई भी आदमी मधु यानी मद्य का पान नहीं करता था । इसी प्रकार विरोध-विशेष रूप से रोध या बन्द करने की बात पिजरो के लिए ही की जाती थी । यो वहाँ के निवासियो के परम्पर विरोध का भाव नहीं था । और फिर, वहाँ अपवादिता केवल निरोष्ठ्य (अर्थात ओष्ठ्य वर्णों-प, फ आदि दुरुच्चार्य अक्षरो से रहित) काव्यो मे थी । अन्यत्र कहीं भी अपवाद, यानी निन्दा या बुराई नहीं दृष्टिगोचर होती थी । इस सभगश्लेष के प्रयोग-नैपुण्य से मुनिश्री ने चम्पापुरी के बाह्य सौन्दर्य के साथ ही उसके आन्तरिक गुणो का भी समुद्‌भावन कर दिया है ।

'दयोदय' काव्य मे तो नीतिपूर्ण सूक्तियो का सघन समावेश मिलता है । अनेक नीतिश्लोक ता 'हितोपदेश' के ही अक्षरश समानान्तरित प्रतीत होते हैं । सूक्तियाँ प्राय कहावतों के ही समकक्ष होती हैं । काव्यभाषा मे कहावता और मुहावरो के विन्यास का अपना महत्त्व है । किन्तु ध्यातव्य यह है कि मुनिश्री ने चित्रात्मक, सर्वसम्मत, नवीन और नोंकदार सूक्तियो का प्रयोग किया है । मुनिश्री की सूक्तियो को हम कहावतो से इतर अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त अलंकारो के समानान्तर रखकर भी विवेचना का विषय बना सकते हैं । एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं, -

दृष्टान्तमूलक सूक्ति-

अर्थात् जिस प्रकार एक वृक्ष की अनेक शाखाएँ होती हैं एक चन्द्रमा के पीछे अनेक तारिकाएँ होती है और एक समुद्र में अनेक नदियाँ समा जाती हैं उसी प्रकार एक राजा के एक साथ अनेक रानियाँ होती हैं । (समु च 6 19)

अर्थान्तरन्यासमूलक सूक्ति

तुरगेण स मायिना पुनस्तभिहानेतुमगात् प्रयत्न ।
कमभीष्टसमागमाय नोस्थितिरास्तामवनौ वपुष्मम ॥ (तत्रैव २ १८)

इस श्लोक में सूक्ति यह है कि इस भूतल पर जो शक्तिशाली होता है वह अपने अभीष्ट की प्राप्ति में विलम्ब नहीं करता ।

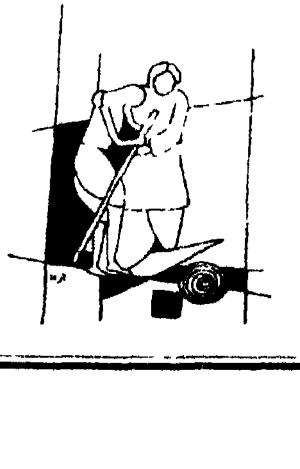
ज्ञातव्य है कविवरेण्य मुनिश्री ने अपनी प्रतिभा-प्रदीप्त और शास्त्रदीक्षित लेखनी से जिस काव्य-संसार की अवतारणा की है उसमे उन्होने न केवल नवीन शब्दो की सरचना की है वरन् उसके प्रयोग मे भी अभिनवता उपस्थित की है साथ ही शब्दो की प्रायोगिक विलक्षणता से अर्थ-चमत्कार मे भी अपूर्वता का आधार किया है । निश्चय ही आवश्यकता इस बात की है कि मुनिश्री द्वारा प्रयुक्त शब्दो का एक स्वतन्त्र 'कोश' महत्त्वपूर्ण' विवरण के साथ निर्मित किया जाय।

इस प्रकार इस नातिदीर्घ निबन्ध मे मुनिश्री ज्ञानसागरजी की उक्त 'लघुत्रयी' का काव्यभाषागत विशिष्टता के कतिपय अगो पर ही विचार किया गया है । अगो का सम्पूर्ण योगफल अगी नही होता पर अगो से अगी का कुछ परिचय अवश्य ही मिलता है फिर भी अगी अपने अगो से कुछ इतर परिचय रखता है । सक्षेप मे या निष्कर्ष रूप में कहे तो महान् युगचेता कवि मुनिश्री ज्ञानसागरजी की उक्त 'लघुत्रयी' की काव्यभाषा मे पदे पदे शब्द चयन की ताजगी है । उसकी शब्द योजना पूरे वेग से भाव और अर्थ के सवहन में समर्थ है साथ ही शब्दावली उत्कृष्ट सुन्दर और सारगर्भी है । इस 'लघुत्रयी' मे अलकृत शब्दावली अवश्य मिलती है, पर उसमे कवि-स्वीकृत चरित्रो और यथाभिव्यक्त विचारो की प्रस्तुति कहीं भी आच्छन्न नहीं हुई है ।

कविश्री ज्ञानसागरजी ने अपनी काव्यभाषिक अभिव्यक्ति रसप्रधान और अलकार प्रधान दोनो ही रूपो मे की है किन्तु विशेष ध्यातव्य विषय यह है कि प्रस्तुत 'लघुत्रयी' मे प्राप्य प्रयोग चमत्कार अन्यत्र प्रायःदुर्लभ है ।

उनकी काव्यरचना- प्रक्रिया के मिजाज और तेवर को समझकर ही उनके काव्यो का सही मूल्याकन किया जा सकता है । वस्तुत प्राचीन कथा के व्याज से वर्तमान समाज की विसगतियो का समग्र आकलन और उनका निराकरण न केवल इस 'लघुत्रयी' की , वरन् मुनिश्री महाराज की समस्त काव्यसृष्टि की केन्द्रीय दृष्टि है ।

डॉ श्रीरञ्जन सूरिदेव
पी एन सिन्हा कॉलोनी
भिखनापहाडी, पटना



अहकार का भाव न रक्खू नही किसी पर क्रोध करूँ
देख दूसरो की बढती को कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ ।
रहे भावना ऐसी मेरी सरल-सत्य व्यवहार करूँ,
बने जहाँ तक इस जीवन मे औरों का उपकार करूँ ॥

दयोदय दीपिका

प पू मुनिपुगव श्री सुधासागरजी महाराज

ज्ञानसागर एक बहुमुखी प्रतिभाशाली आचार्य थे । जिन्होंने अपना सारा जीवन विषय भागो से विरक्त होकर बाल्यावस्था से ही साहित्य साधना मे व्यतीत किया है । इनकी साहित्य साधना मे उत्पन्न जितनी भी कृतियाँ ह, उन सभी मे जैन दर्शन के चारो अनुयोगों मे उनका ज्ञानातिशय प्रकट होता है । साथ ही कृतियो मे मत - मतान्तरो के प्रसग भी परिलक्षित होते हैं । लेखक ने प्रत्येक कृति का मूल आधार जैन शास्त्रो मे वर्णित विषय वस्तु को बनाया है । आचार्य श्री ने प्राय साहित्य की रचना अपने गृहस्थ काल मे की हे जब इनका नाम ब्र भूरामल था ।

इस दयोदय चम्पू मे वर्णित कथा भी जन आगम मे अति सक्षेप रूप मे मिलती हे । लेखक ने इस कथा मे प्रसगानुसार विभिन्न मतो के विषय को उपकथाओ एव लोक कथाओ के रूप मे दार्शनिक दृष्टि कोण की कसौटी पर कसकर प्रस्तुत किया है । इस चम्पू को पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह महाकवि की प्रतिभा से प्रसूत काव्यात्मक कोई विश्वकोष ही हो । साहित्य साधक की यह कृति एवम् विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण का सान्दर्य विद्वानो के मस्तिष्क की खुराक बन गया है । साथ ही विषय वस्तु का सरलीकरण एवम् कथा प्रसग के साथ मानवीय दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होने से जनसाधारण के लिये भी जीवनोपयोगी हो गया ह । अहिसा धर्म, को प्रकट करने वाली इस चम्पू की कथा पूर्व मे शकसम्वत् 853 में हरिषेण कथा मे आलेखित है, उसके बाद शक सम्वत् 881 मे यशस्तिलक चम्पू मे वर्णित की गई है । उसके बाद ब्रह्मचारी नेमीदत्त कृत 'आराधना कोष' मे लिपिबद्ध की गई है । इन समस्त पूर्ववर्ती लेखको ने दयोदय चम्पू मे वर्णित कथा को अति सक्षेप रूप मे लिया है । किसी भी लेखक ने इस पर स्वतन्त्र ग्रन्थ नही लिखा ह । लेकिन ब्रह्मचारी भूरामल (आचार्य ज्ञानसागर) ने इसे मूलकथा के आधार पर यह दयोदय चम्पू नामक काव्य लिखा है । चम्पू काव्य की प्रसगगत विषय वस्तु की मीमासा ही इस लेख का प्रतिपाद्य है ।

मगलाचरण

लेखक ने प्रथम श्लोक मे परोपकारी वाणी बोलने वाले समवशरण मे विराजमान अन्तरग एव बहिरग लक्ष्मी के धनी अरिहन्त को जयवत बने रहने की भावना भायी है । यहाँ जयवन्त का अर्थ उनके आदर्श सिद्धान्तो मे ह । (अर्थात उनके सिद्धान्त इस पृथ्वी पर जयवन्त होकर जन मानस का कल्याण करते रहे ।)

दूसरे श्लोक मे चन्द्रप्रभ भगवान् को अन्धकार का विनाशक कहा है । यहाँ पर चन्द्रप्रभ भगवान् के पहिले 7 भगवानो का स्मरण न कर मात्र चन्द्रप्रभु भगवान् का अन्धकार का विनाशक कहने का अभिप्राय मेरी दृष्टि मे यह हो सकता है कि समन्तभद्र स्वामी के द्वारा शिव पिण्ड को नमस्कार करने पर चन्द्रप्रभ भगवान् की प्रतिमा बनारस के अन्दर प्रगट हुयी थी जिससे शिवकोटि राजा का मिथ्यात्व रूप अन्धकार नष्ट हो गया था । अस्तु ।

इसके बाद लेखक ने चाबीसवे तीर्थकर वर्द्धमान को नमस्कार करते हुये कहा है कि जिनके ज्ञान मे सारी दुनिया ... समान दिखती है ऐसे वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार हो ।

वर्तमान समय मे भगवान महावीर का शासन प्रवाहमान होने से लेखक ने शायद महावीर भगवान् का स्मरण किया हो । अस्तु ।

सरस्वती देवी को पवित्र ज्ञान रूप ही शरीर युक्त बताया है । (सर्ग । श्लोक 4) इसकी कृपा से हमारी वाणी रूपी गाय जीवित रहे । यहाँ सरस्वती देवी कोई देव पर्याय को धारण करने वाली स्त्री जाति को नमस्कार नहीं किया है बल्कि ज्ञान - शरीरी कहने से स्पष्ट होता है, कि ज्ञान का ही दूसरा नाम सरस्वती है ।

शास्त्र रूपी समुद्र को पार पहुँचने के लिये गुरु जहाज का काम करते हैं । जिनके सदुपदेश से धीवर सरीखे जीव भी पुनीत अहिंसा धर्म को धारण करके अपना कल्याण कर लेते हैं । ऐसे प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला श्रमण साधु आज भी इस धरा पर विद्यमान है । (सर्ग 1 श्लोक 5-6)

लेखक ने इस कृति की लोक-प्रियता के सम्बन्ध मे कहा है कि यह कथा सनातन रूप मे प्रवाहमान नदी मे से घड़े में भरकर लाये हुये जल के समान है । अर्थात् नदी के जल को घडे में भरने के बाद भी लोग उस जल को खुशी से पीते है, उसी प्रकार मेरी इस कृति मे वर्णित वचनो को सत्पुरुष रुचिपूर्वक सुनेंगे । चम्पू काव्य की विशेषता बताते हुये लेखक ने लिखा है कि जिस प्रकार अच्छे पत्तो वाली बेल में बीच-बीच मे फूल होने से शोभा को प्राप्त होती है, उसी प्रकार इस कृति में अच्छे वाक्यो की निबन्ध कला के साथ-साथ बीच-बीच में श्लोक रूपी फूल भी रचे गये हैं । अत सत्पुरुषो को यह प्यारी लगनी ही चाहिये । (सर्ग - 1, श्लोक 4)

चम्पू काव्य की मनोरमता को प्रगट करते हुये कहा है कि समझदार लोग पढने की इच्छा से कुछ लोग कौतुक दृष्टि से और कुछ लोग समालोचना की दृष्टि से मेरी इस कृति को देखेगे । (सर्ग 1 श्लोक-9)

कथा प्रारम्भ करने का प्रेरक प्रसग

लेखक ने कथा प्रसग के सम्बन्ध मे लिखा है कि एक बार हमारे गुरुजी (गुरु का नाम स्पष्ट नही है) ने प्रसग पाकर "जो जैसा करता है, वैसा ही फल पाता है जो दूसरो को गड्ढा खोदता है, उसमें वह स्वय जाकर गिरता है" । (सर्ग-1 श्लोक-10)

यह कथन सुनकर मैंने (लेखक ने) कहा- कि इसको एक उदाहरण द्वारा खुलासा कीजिये इस कथन से स्पष्ट होता है कि लेखक ने सर्वप्रथम यह कथा गृहस्थ अवस्था मे किसी गृहस्थ पडित से (जिसे लेखक ने गुरु मानता है) सुनी होगी, अधिक रुचिकर लगने के कारण विद्वान् बनने के बाद इसे चम्पू काव्य मे परिणत कर दिया । अस्तु । (सर्ग -1, श्लोक 10 गद्य)

मालव देश की विशेषताएँ

इस काव्य मे लेखक ने मालव देश को अपने कथा पात्रो का आवास स्थान होने से वहाँ की वस्तु स्थिति का महत्त्व दर्शाते हुये लिखा है कि मालव देश धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इस चतुर्वग की महिमा से युक्त है, वहाँ छहो ऋतुएँ यथा योग्य परिवतन करती हैं । इस प्रान्त मे गाय भैंस, भेड एव बकरिया की बहुलता है । यहाँ की भूमि बहुव्रीहि समास के समान बहुत धान उत्पन्न करने वाली है । लेखक ने मालव प्रान्त के बाद्ध मतावलम्बियो का अस्तित्व प्रगट किया है । तथा वैय्याकरण भी इस देश मे है । इस प्रान्त की एक विशेष विशेषता को बताते हुये कहा है कि यहाँ क्षत्रिय और ब्राह्मण मुख्य न रहकर, किसान लोग निवास करते हैं । (सर्ग-1, श्लोक 10 गद्य) आज भी मालव प्रान्त को कृषि प्रधान प्रान्त कहा जाता है, वहाँ पर वर्तमान मे रवि फसल की पैदाइश अधिक होती है ।

कथा पात्र-परिचय

स्थान - मालव प्रान्त की उज्जयिनी नगरी एव आवन्ति देश मे शिप्रा नदी की शिशपा बस्ती (सर्ग 1, श्लोक 10 एव 21)

राजा वृषभदत्त एव रानी वृषभदत्ता उज्जयिनी नगरी के राजा रानी (सर्ग 1, श्लोक 12 13)

गुणपाल एव गुणश्री सेठानी

उज्जयिनी नगरी का राज्य श्रेष्ठी जो कुबेर के समान धन सम्पन्न है, तथा अपने प्रण का पक्का है । अर्थात् अपने प्रण को पूरा करने में प्राण न्यौछावर करने तथा सब कुछ मिटने मिटाने को तैयार रहता है । इस चम्पू काव्य का खलनायक एव खलनायिका यही दोनो सेठ सेटानी हैं । (सर्ग-1, श्लोक 14 16)

विषा - सेठ गुणपाल की कन्या जो काव्यनायक की पत्नी है, इसी विषा के निमित्त से ही कथा की शुरुआत होती है, यह कन्या बाद में आर्यिका बनकर समाधिमरण कर स्वर्ग जाती है । यही विषा इस काव्य की काव्यनायिका है ।

सोमदत्त - इस काव्य का काव्यनायक, जो बचपन में दरिद्र रहता है, लेकिन भाग्य की प्रबलता के कारण विषा से विवाह करके खलनायक का दामाद बनता है, ओर पुण्य की प्रबलता के कारण राजा वृषभदत्त की कन्या को विवाह कर राज्य सम्मान पाकर राज्य गद्दी प्राप्त करता है, अन्त मे मुनि दीक्षा लेकर सन्यास मरण कर सर्वाथ - सिद्धि चला जाता है ।

मृगसेन धीवर एवं धीवरणी घंटा - मालव प्रान्त की उज्जयिनी नगरी एव आवन्ती देश में शिप्रा नदी की शिशपा बस्ती में रहने वाला धीवर एव धीवरणी इस काव्य के नायक एव नायिका की पूर्व भव की पर्याय मे अपने जाल में प्रथम मछली को नहीं मारने का नियम मुनिराज से लिया था, उसी व्रत के परिणाम स्वरूप दूसरे भव मे यह सोमदत्त एव विषा नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुये ।

युगल महामुनि - दो महामुनि, जो चर्या के निमित्त से उज्जयिनी नगरी में आये हैं, जिसके वचनो के निमित्त से अपनी विषा कन्या का पति दरिद्र सोमदत्त बालक होगा । ऐसा सुन, खलनायक का रूप धारण कर लेता है ।

वसन्तसेना वैश्या - जिस मछली को धीवर ने छोड दिया था, वही मछली आयु पूर्ण कर वसन्त सेना नाम की वेश्या हुई । पूर्व भव के उपकार के संस्कार के कारण काव्य नायक के प्राण बचाती है, और बाद मे आर्यिका दीक्षा लेकर मरण कर स्वर्ग चली जाती है ।

सार्थवाह एवम् श्रीमती - काव्य नायक सोमदत्त के माता - पिता (सर्ग - 1, श्लोक - 20)

भवदेव एव भवदेव श्री - काव्यनायक के पूर्व भव की पर्याय के अर्थात् मृगसेन धीवर के माता - पिता (सर्ग-1, श्लोक 21 गद्य)

सोमदाम - काव्य नायिका विषा की पूर्व पर्याय के अर्थात् घटा धीवरी के पिता (सर्ग - 1, श्लोक 21 गद्य)

गोविन्द ग्वाला एव धन श्री - काव्य नायक को अनाथ दशा में पालन करने वाले ग्वाल ग्वालिन (सर्ग - 3 श्लोक 10)

महाबल - खलनायक गुणमाल राज्य श्रेष्ठी का पुत्र

चाण्डाल - इस काव्य मे दो चाण्डालो का प्रसग प्राप्त होता है । प्रथम चाण्डाल तो अपने कर्त्तव्यो से परिचित था, लेकिन धन का लोभी था, अत खलनायक से धन लेकर बालक की हत्या न कर एक नदी - किनारे पेड के नीचे जीवित छोड देता है ।

दूसरा चाण्डाल, जिसे धन का लोभ देकर खलनायक द्वारा काव्य-नायक को मारने के लिये नियुक्त किया गया था, लेकिन अज्ञानता-वश वह खलनायक के पुत्र की हत्या कर देता है ।

दिगम्बर मुनि एव वेद

दिगम्बर जैन मुनि के सम्बन्ध मे इस काव्य में धीवर अपने मुख से अपनी पत्नी घटा से इस प्रकार कहता है कि आज मुझे एक महात्मा मिले थे, जो सुख-दु ख मे, भवन एव श्मशान मे, निन्दा एव बढ़ाई में, शूल एव फुल मे, समता-परिणाम धारण कर प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखते है ।

हाथ ही जिनके भोजन-पात्र हैं, दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं, पृथ्वी ही जिनकी शैय्या है, आकाश चँदोवा है, चन्द्रमा दीपक है, भुजा-तकिया है एव इच्छा रहित होकर शात चित्त के साथ ज्ञान-अभ्यास, ध्यान-साधना हेतु शरीर के लिये बिना-याचना के गृहस्थ के द्वारा आदरपूर्वक रुखा-सूखा यथा-लब्ध कर पात्र मे ग्रहण करना ही जिनकी आजीविका है।

इसी प्रकार के मुनि का वर्णन जाबालोपनिषद के छठे सूत्र में आया है । इस उपनिषद् में लिखा है कि बालक के समान निर्विकार, मायाचार एवं परिग्रह से रहित ब्रह्ममार्ग मे सदा प्रवृत्त पवित्र मन वाला नग्नवेषी, प्राणसंधारण हेतु कर-पात्र के उदर-पात्र मे भिक्षा धारण करता हो । लाभालाभ मे समता हो, शून्यागारी हो, अर्थात् सूना मकान देवस्थान ग्राम की कुटी, वृक्ष-मूल, नदी-तट, गिरिकन्दराओ मे निवास करता हुआ निर्विकल्प, निस्तब्ध, ध्यानी हो अन्तरात्मा मे विश्वास करने वाला हो, खोटे कर्मों को काटकर सन्यास पूर्वक शरीर को त्याग करने के लिये तैयार हो, उसे परमहंस बोलते हैं ।

इस कथन से स्पष्ट है कि एक परमहंस एवं दिगम्बर जैन मुनि के स्वरूप मे कोई अन्तर नहीं है । अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि ही परमहंस है ऐसा वेदो से सिद्ध हो जाता है । (सर्ग-2, श्लोक-12 गद्य)

यजुर्वेद के उन्नीसवे अध्याय के 14वे मन्त्र मे दिगम्बरत्व की महानता बतलाते हुये कहा है अर्थात् इस वेद से नारद परिव्रजकोपनिषद् मे लिखा है कि मुनि 2 प्रकार का होता है (1) कौपीन मात्र को धारण करने वाले (2) नग्न होकर ध्यान मे तत्पर रहने वाला ऐसा ज्ञानवान योगी परमात्म पद को प्राप्त कर लेता है । जैन शास्त्रो मे यही कथन लघुमुनि अर्थात् ऐलक के लिये एक लगोटी वाला कहा है । लेकिन इसे परमात्म पद प्राप्त करने वाला नही कहा है - परमात्म पद को प्राप्त करने वाला तो पूर्ण नग्नवेषी मुनि पद को ही आवश्यक बताया है ।

मैत्रेयोपनिषद् के 3 अध्याय के 19 सूत्र मे लिखा है कि देशकाल की अपेक्षा न करके मै दिगम्बर रहकर सुखी हो रहा हूँ इसी बात की पुष्टि तुरीयोपनिषद् मे की गयी है । इस कथन से स्पष्ट है कि वेद भी दिगम्बर अवस्था मे ही वास्तविक सुख की उपलब्धि को मानते है । सन्यासोपनिषद् मे भी कहा है कि सब कुछ छोडकर देह-मात्र धारण करके "बाल सरीखा" निर्विकार दिगम्बर सन्यासी होता है ।

वेदों के अलावा वैष्णव सम्प्रदायो के पुराण ग्रन्थो मे भी दिगम्बरत्व की प्रशंसा की गई है इसका उल्लेख भी लेखक ने चम्पू काव्य मे इस प्रकार किया है ।

धीवर धीवरी से कहता है कि हे प्यारी ! पुराण ग्रन्थो मे तो दिगम्बरत्व की जगह जगह प्रशंसा आई है । पद्म पुराण के (वैष्णव सम्प्रदाय का एक ग्रन्थ) भूमिकाण्ड के अध्याय 65 मे लिखा है और अपनी काख मे मयूर पंखो को धारण करने वाला है वही सच्चा साधु है "मार्जोनी शिखिपत्राणा कक्षाया संहिधारयन" इसका अर्थ लेखक ने कहा है मयूर पंख जो अपनी काख मे लिये हुये है इससे स्पष्ट है कि दिगम्बर जैन मुनि ही मयूर पंख पीछि लेते है जिस पीछिधारी का वर्णन इस पुराण ग्रन्थ मे किया गया है ।

स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड के 6 अध्याय मे लिखा है हे वामन जो पद्मासन मे बैठा हुआ है काले वर्ण का शरीर वाला है । वस्त्र रहित है वह नेमिनाथ ही कल्याण रूप शिव का रूप है । इस वर्णन से स्पष्ट है कि वैष्णव सम्प्रदाय के स्कन्द पुराण मे नेमीनाथ को शिव का रूप बताया है । जैन शास्त्रो मे भी नेमिनाथ को कृष्ण वर्ण वाला कहा है ।

इसी बीच में धीवरी के कहने पर कि अर्हत् मतानुयायी वेद बाह्य है तो धीवर कहता है कि वेदो मे जिस अर्हत की स्थान स्थान पर प्रशंसा की गई हो उस अर्हत को वेद-बाह्य कैसे कहा जा सकता है । ऋग्वेद मे कहा है कि (अ-1 अ 6 मम 1 अ 15 सूक्त 94 मं 30)

हे अर्हंत आप विधाता है अपनी चतुरता से समस्त भूमण्डल को रथ की तरह चलाते है आपका मत हम लोगो के लिये कल्याणकारी हो । आपका ससर्ग मित्र की तरह सदा चाहते है । इसी ऋग्वेद के मण्डल 2 अध्याय 4 मंत्र 30 मे लिखा है कि "हे अर्हत आप धर्म रूप बाणो को उत्तम उपदेश धनुष को अनन्त ज्ञानादि रूप आभूषणो को धारण करते हो ससारी जीव के रक्षक हो काम क्रोधादि शत्रुओ को भगाने वाले हो आपके समान बलवान् इस दुनियाँ मे कोई नही है तथा इसी ऋग्वेद के मण्डल 5 अध्याय 4 सूक्त 52 मे लिखा है कि भगवान् अर्हत् सर्वज्ञ

है, और अनवरत दान देने वाले हैं, उनके पुजारियो की पूजा देवलोग करते हैं । "पूजकाना पूजा दैवैरपि क्रियते" इसी ऋग्वेद के मण्डल-5 अध्याय-6, सूक्त 86 में लिखा है कि समुद्र सरीखे क्षोभरहित होने वाले भी अर्हत् भगवान् से शिक्षा पाकर ही देवलोग पवित्र बनाते हैं । अर्थात् जैन शास्त्र के अनुसार देवता लोग समवशरण में आकर दिव्य ध्वनि सुनते हैं और सम्यग्दर्शन को प्राप्त करते हैं ।

इसी ऋग्वेद के मण्डल 2 अध्याय ॥ सूत्र 3 में कहा है कि हे अग्निदेव इस वेदी पर सबसे पहिले अर्हत् की पूजा करो, दर्शन करो, आह्वानन करो, आदि अनेक प्रकार से वेदो मे प्रशंसा की गई है । अर्थवर्णवेद मे कहा है कि 22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि हमारा कल्याण करे । सूर्य के समान आकाश मे घूमने वाले श्री अरिष्टनेमि को हम आह्वानन करते हैं । इस प्रकार जिन अर्हत् भगवान् का लक्षण वेदो मे कहा है, वे सारे लक्षण जैन मत मे अरिहन्त परमेष्ठी भगवान् के लक्षणो मे मेल खाते हैं ।

लेखक ने इस काव्य मे भगवान् ऋषभदेव के सम्बन्ध मे श्रीमद्भागवत के 6 अध्याय के 19 श्लोक को उद्धृत करते हुये कहा है कि जो सासारिक भोगो की लालसा से रहित हो चुका हो, जिसके गुणों का वर्णन दुनियाँ का जन-समूह अपने वचनो से नहीं कर सकता, जिसने दयावृत्ति द्वारा प्राणियो को कल्याण मार्ग में लगाने वाले, उस ऋषभदेव को नमस्कार हो ।

श्रीमद्भागवत में यह भी लिखा है कि श्री ऋषभदेव ने तपस्या करके परमहस मार्ग को प्रगट किया था । ऋषभदेव महाराज नाभिराय के पुत्र थे जिन्होने साम्यवाद का अपनाकर उत्तम योगाभ्यास किया था, वह ऋषभदेव भगवान् स्वस्थ इन्द्रिय विजेयी, परिग्रह-रहित, नग्नता को प्राप्त हो गये थे ।

आगे इसी श्रीमद्भागवत मे कहा है, कि विष्णुभगवान् महर्षि लोगो से प्रसन्न हो जाने पर नाभि राजा की इच्छा को पूरा करने के लिये उनकी महारानी मरुदेवी के कोख मे वायु ही वस्त्र है जिनके, ऐसे दिगम्बर महर्षियो के धर्म का प्रगट करने की इच्छा से अवतरित हुये थे । (श्रीमद्भागवत अध्याय 3, श्लोक 20)

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि नाभिराय के पुत्र ऋषभदेव इस युग को दिगम्बर परम्परा का उद्घाटित करने वाले जैन शास्त्रो मे माने गये । इसी का समर्थन भागवत मे किया गया है । यह भी कहा गया है कि महात्मा ऋषभदेव की तपस्या के बल से उनकी विष्टा मे ऐसी गन्ध हो गई थी कि चारो ओर दस योजन तक वायु को सुगन्धित कर देती थी ।

उपरोक्त कथन मात्र ऋषभदेव के नाम को प्रकट करने के लिये लिया गया है क्योकि जैन दर्शन के अनुसार तीर्थंकरो का निहार नहीं होता है ।

ऋषभ अवतार की प्रशंसा मार्कण्डेयपुराण कूर्मपुराण, अग्नि पुराण वायुमहापुराण, स्कन्धपुराण आदि मे भी लिखी हुई है जिसके कि अनुयायी जैन लोग होते है और जिन्हे ही आदर्श मानकर महापुरुष परमहस अवस्था को प्राप्त होते है । सब लोगो के द्वारा प्रशसा योग्य उसी परमहस दशा को वह महात्मा भी प्राप्त हो रहा है ।

इस प्रकार धीवरी ने दिगम्बर भूमि का वेद-बाह्य कहने पर धीवरी वेदो के अनुसार दिगम्बर भूमिका को सिद्ध कर दिया । यह सारा वर्णन इस चम्पू काव्य के दूसरे अध्याय मे किया गया है ।

इस दयोदय चम्पू मे दिगम्बर महर्षि के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे एकान्त सत्य बोलते हैं कभी झूठ नहीं बोलते । (सर्ग 3 श्लोक 2 गद्य)

दिगम्बर मुनि इन्द्रिय विजयी शरीर से कामादिक विकार परिणामो से क्रोधादिक कषायो से रहित होता है । पंचाचार से युक्त होते हैं तथा दिशाओ को ही वस्त्र मानते हैं । (सर्ग 7, श्लोक 17 गद्य)

धन के कारनामे - धन की विशेषताओ का वर्णन करते हुये काव्यकार ने खलनायक गुणपाल के भावो को व्यक्त करते हुये लिखा है कि खलनायक सोचता है कि धनी आदमी धन के बल से चाहे जो कर सकता है और

धन की ओट में भला बना रह सकता है । सारा ससार धन का गुलाम है । जो काम तपस्या से भक्ति से विद्या से अथवा चतुरता मे सम्भव न हो वह कार्य धन के द्वारा किया जा सकता है । बडे-बडे मान्य लाग को भी धन के वशीभूत किया जा सकता है । (सर्ग-3, श्लाक 5-6)

आगे चण्डाल द्वारा कहा गया कि धनी व्यक्ति का धन बनिया के गुड के समान होता है । जैसे - बनिया के गुड़ को ग्राहक लोग पैसे देकर खाते हैं ओर कीडे-मकोड़े मुफ्त मे जाते हैं । उसी प्रकार धनवान के धन को मजदूर काम करके खा जाते हैं लेकिन अन्य धोखेबाज खल आदि मुफ्त मे डकार जाते हैं । (सर्ग - 3, श्लोक -7)

धन के लोभ मे व्यक्ति क्रोध काम विकार मायाचारी एवं ऐसे सभी कार्य करने लग जाता है, जो करने योग्य नहीं है । इसी बात को इस काव्य मे कहा है कि चाण्डाल धन के लोभ में काव्य नायक सोमदत्त की हत्या करने के लिये यह सोचकर तैयार हो जाता है कि इस हत्या करने के बदले मुझे पैसा मिल रहा है अत यदि मुझे राजा द्वारा देश निकाला भी मिलेगा तो भी हम परदेश में इस पैसे के द्वारा जीवन यापन कर लेगे । जिसके पास धन है वही आज के युग मे सर्वगुण सम्पन्न माना जाता है । (सर्ग - 4, श्लोक 13)

नारी वैचित्र्य

इस सृष्टि में नारी अनादि काल से चर्चा का विषय रही है । नारी के सम्बन्ध मे साहित्य एव शास्त्रकारो के कथन मे अनेकता दृष्टिगोचर होती है ।.किसी ने नारी को विष की खान कहा तो किसी ने अमृत कुण्ड की सज्ञा दी है और देखा भी जाता है कि कभी-कभी किसी नारियो ने ऐसे दानवीय कृत्य किये है जिससे सारा भूमडल त्राहि-त्राहि मे परिवर्तित हो गया वहीं दूसरी तरफ नारियो के ऐसे आदर्श प्रस्तुत हुए हैं जिसमे सारी दुनियाँ को नारी के लिये भगवती की सज्ञा देने के लिये प्रेरित होना पडा । जहाँ नारी के जीवन मे वासना की चिनगारी प्रस्फुटित होती रहती है, वहीं नारी के जीवन मे मां की ममतामयी वात्सल्य का झरना प्रवाहित होता रहता है । इन्ही समस्त गुण दोषो की समष्टि इस दयोदय चम्पू में प्रकट किया है कि घटा नाम की धीवरी वेदो की ज्ञाता होकर के भी विवेकरहित एवं स्वार्थलिप्सा के वशीभूत बनी रहती है, उसकी विचारधारा है कि गृहस्थ का मुख्य कार्य किसी भी प्रकार से वस्तुओ को जुटाना एव भोगो को भोगना ही है (2-13)

अपनी भोग लिप्सा के सम्बन्ध मे वह अपने पति से कहती है कि साधु लोग भी आहार के बिना अपनी साधना से च्युत हो जाते हैं । भगवद् भक्ति आदि सभी कार्य पेट भरने के बाद ही याद आते हैं । धीवरी वेदो की ज्ञाता होते हुए भी मछली मारने की हिसा एवम् कृषि करने मे जो हिसा होती है । उसमें कोई अन्तर नहीं समझती है - अर्थात् इस नारी का ज्ञान शब्द प्रत्यय रूप था न कि भाव प्रत्यय रूप । (सर्ग 2 श्लोक 20-21)

नारी की स्वार्थ लिप्सा इस काव्य मे उस समय प्रगट होती है जब घटा धीवरी का पति मछली मारकर नहीं लाता है तो वह धीवरी उसे घर से बाहर निकाल देती है । (सर्ग 2, श्लोक 22)

इसी प्रकार दूसरे प्रसग मे कहा है कि गुण श्री नाम की सेठानी पति के व्यामोह मे पडकर अपनी पुत्री के पति (जामाता) सोमदत्त को भी मारने का षड्यंत्र रचने लग जाती है । (सर्ग 6, श्लोक 4)

काव्य मे स्त्री का साख्य मत के सिद्धान्त की उपमा दी है कि जिस प्रकार पुरुष तो मात्र अनुभव करता है लेकिन प्रकृति (स्त्री) महान् अहकार माया आदि समस्त कार्य को करने वाली होती है । (सर्ग 6, श्लोक 5)

इस काव्य मे नारी की विवेकहीनता का वर्णन किया है वहीं पर नारी की प्रत्युत्पन्नता का भी दृश्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वहीं धीवरी पति को घर से बाहर निकालने के बाद क्षणिक रोष पर पश्चाताप करने लगती है और पति को खोजने के लिए निकल जाती है लेकिन धीवरी को सर्प डसने के कारण से मरण हो जाने पर पति द्वारा ग्रहण किये अहिंसा व्रत को स्वय भी धारण कर लेती है तथा उसी सर्प के डसने से मरण कर अगले जन्म में पुन उसी की पत्नी पर्याय को प्राप्त हो जाती है । (विषा नाम से)

नारी का वात्सल्य के सम्बन्ध में इस काव्य में इस प्रकार कहा गया है कि धनश्री नाम की ग्वालन सोमदत्त नाम के अनाथ पर पुत्र को (काव्यानायक को) यह सोचकर अधिक प्यार मे पालन करती है कि उदर से उत्पन्न पुत्र की अपेक्षा गोद में आया हुआ पुत्र अधिक सुख देने वाला होता है, क्योंकि उदर से पुत्र से तो यौवन की हानि होती है, प्रसव पीड़ा उठानी पडती है लेकिन गोद आये बालक से सहज ही पुत्र पालन एव प्राप्ति का सुख उपलब्ध हो जाता है । (सर्ग 3-10 गद्य)

नारी का वात्सल्य प्रगट करते हुए कहा गया है कि धनश्री का हृदय, पर पुत्र को गोद में पाकर इतनी ममत्व को प्राप्त हो गया कि उसके स्तन दूध से लबालब भर गये । (3-10 गद्य)

सौत-डाह की चर्चा साहित्य मे यत्र तत्र देखने को मिलती है, लेकिन दयोदय चम्पू मे सौत वात्सल्य का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि विवाहित सोमदत्त को जब राजा वृषभदत्त अपनी पुत्री का विवाह देता है, तब सोमदत्त की दोनो स्त्रियाँ परस्पर एक दूसरे के प्रति वात्सल्य प्रगट करती है । प्रथम नारी जो विषा थी, वह कहती है कि आज तक मैं अकेली थी आज राजकुमारी को सौत के रूप मे पाकर एकादशी के समान पूर्ण सम्पादन करने वाली बन जाऊँगी तथा द्वितीया तिथि के समान भद्रता को प्राप्त हो जाऊँगी तथा आगे कहती है कि यह मेरी छोटी बहिन है, (सर्ग 7, श्लोक 15 गद्य) और वह राजकुमारी कहती है, कि यह मेरी ज्येष्ठ सौत माता के समान भला करने वाली है । अत मैं इसकी आज्ञानुसार ही चलूँगी, जैसे मछली जलधारा के अनुसार ही चलती है । (सर्ग 7 श्लोक 15 गद्य)

इस प्रकार दोनों सौतो के वात्सल्य के कारण बहुपत्नीक सोमदत्त ऐसा महसूस करता है कि एक मुख पर दो आँखे हो एक सरोवर से गगा और यमुना दोनो नदियाँ एक साथ प्रवाहित हो रही हो । (सर्ग 7, श्लोक 16)

नारियो को भोजन पति को भोजन कराने के बाद करना चाहिये, इस बात का उल्लेख इस प्रकार आया है कि एक दिन विषा ने भोजन बनाकर तैयार किया, और वहाँ राजकुमारी को बिठाकर स्वय दरवाजे पर खडी होकर पति का इन्तजार करने लगी । (सर्ग-श्लोक 17 गद्य)

पति सोमदत्त जब आता है उसी समय एक मुनिराज चर्या के निमित्त वहाँ से गुजरते हैं, तब वह विषा सबसे पहिले मुनिराज को पडगाह कर उन्हे आहार दान देने की बात अपने पति से कहती है । इससे एक बात और सिद्ध होती है कि स्त्रियो को पति के भोजन मे पहिले मुनिराज को आहार देने का परिणाम होना चाहिये ।

दूसरी स्त्री राजकुमारी अपनी ज्येष्ठ सौत विषा एव भर्ता के द्वारा दिया गये ऋषिदान की प्रशसा करती है । इस प्रकार इस चम्पू काव्य मे नारियो के जहाँ दोषों को उद्घाटित किया गया है, वहीं पर नारी की आदर्शता भी प्रगट की गई है ।

कथा एव कथा मीमासा

किसी भी काव्य या महाकाव्य को लिखते समय नायक के जीवन चरित्र को प्रासगिक करना जरूरी होता है। काव्य के काव्य नायक 2 प्रकार के हो सकते हैं (1) काल्पनिक, (2) यथार्थ (ऐतिहासिक) ।

कवि सकल्पित काव्य नायक की जीवन घटना को लेकर स्वय के विचारो को या सामाजिक परिस्थितियो को अभिव्यक्ति करने का प्रयास करता है । इसी विधा को ध्यान में रखते हुये दयोदय चम्पू मे लेखक ने एक यथार्थ जीवन की व्यक्तित्व को अपने काव्य का काव्य-नायक बनाया है । इस काव्य के सभी पात्र यथार्थ-जीवन शैली में जीने वाले चैतन्य जीव है । अपने काव्य की कथा को प्रारम्भ करने के साथ लेखक ने अपने काव्य गत पात्रो के आवास स्थान को प्रगट करते हुए लिखा है कि उज्जयिनी नगरी का गुणपाल नाम का राज्य सेठ जो कुबेर जैसा धन सम्पन्न था, जो अपनी धुन का भी पक्का था । गुण श्री नाम की इसकी पत्नी पति का अनुसरण करने वाली थी । (सर्ग 1, श्लोक 15-16) इसकी विषा नाम की कन्या थी (1-17) ये दम्पति इस काव्य के खलनायक एवं खलनायिका का दृश्य प्रस्तुत करते हैं ।

एक दिन गुणपाल सेठ अपने भोजन के झूठे बर्तन दरवाजे पर रख देता है, उसी समय एक दरिद्र बालक उन बर्तनों की जूठन को खाने लग जाता है । (सर्ग 1, श्लोक 18 गद्य) ।

उसी समय वहाँ से युगल मुनिराज चर्या के निमित्त से विचरण करते हैं, इस बालक की यह दशा देखकर छोटे मुनि ने बडे मुनि से पूछा कि यह बालक सुलक्षण एव भाग्यशाली दिखलायी देता है, फिर भी यह बालक इस दशा में क्यों है । तब ज्येष्ठ मुनि कहते हैं कि आपका सोचना यथार्थ है । यही दरिद्र बालक बड़ा होने पर इसी सेठ की कन्या विषा से विवाह करके सेठ की सम्पत्ति का भागीदार होगा और राजकन्या से भी विवाह करके राजा से राज्य सम्मान प्राप्त करता हुआ राज्य गद्दी का स्वामी बनेगा । (सर्ग -1, श्लोक 19 गद्य) पूर्व भव के पाप कर्मों के कारण इसके गर्भ मे आते ही इसी उज्जयिनी नगरी का श्रीदत्त नामक सार्थवाह का मरण हो गया था तथा इसका जन्म होते ही इसकी माँ श्री देवी का मरण हो जाने से दूसरो की जूठन खाते हुये पल रहा है । छोटे मुनि की जिज्ञासानुसार बडे मुनि ने इसके पूर्वभवो की जीवन-लीला को एक गेंद के समान बताते हुए कहा है कि जिस प्रकार गेंद जमीन से टकराकर ऊपर जाती है और ऊपर जाकर पुन फिर जमीन पर आ जाती है । इस प्रकार से उत्थान-पतन का क्रम संसारी प्राणी के जीवन मे चलता रहता है । लेखक ने पाडव, राम आदि के उत्थान पतन का दृश्य यहाँ उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया है (सर्ग 1, श्लोक-21) बालक के अतीत भवो का वर्णन इस प्रकार किया है कि अवन्ती प्रान्त की शिप्रा नदी के किनारे शिशपा बस्ती थी उसमे मृगसेन धीवर अपनी घटा नाम की धीवरणी के साथ रहता था जो नदी मे से मछली मारकर अपनी आजीविका चलाता था । (सर्ग 1, श्लोक 21 गद्य) एक दिन वह धीवर मछली मारने जा रहा था उसी समय रास्ते मे जिन मन्दिर के प्रागण में बहुत सारे लोगो के बीच दिगम्बर साधु बैठे हुये अहिसा का उपदेश इस प्रकार दे रहे थे - कि अहो, देखो ससारी प्राणी स्वय के शरीर मे काटा चुभ जाने पर चीख उठता है, और दूसरो के प्राण लेने के लिये तलवार लिये फिरता है । अपने मरण का नाम सुनते ही प्राणी काप उठता है। वहीं दूसरे के प्राण कठोरता से लेने के लिये तैयार हो जाता है ऐसा व्यक्ति सुधीवर कैसे हो सकता है ? (सर्ग 1, श्लोक -24) इस उपदेश को सुनकर धीवर मुनिराज से यह नियम लेता है कि मेरे जाल मे जो प्रथम जीव आयेगा उसे मैं नहीं मारूँगा (सर्ग 1-26)

कहा जाता है कि जब व्यक्ति नियम ले लेता है तो उस नियम की परीक्षा भी होती है यही धीवर के साथ हुआ कि, वह नियम लेकर नदी मे जाल डालता है, तो उसके जाल मे एक मछली फस जाती है प्रतिज्ञानुसार उस मछली को चिह्नित करके उसे नदी मे छोड देता है, बाद मे उसने जितनी बार भी जाल नदी मे डाला उतनी ही बार वहीं चिह्नित मछली जाल मे आई । दृढ सकल्पी होने के कारण उसने उस मछली को नही मारा अर्क के अस्त हो जाने के कारण वह खाली हाथ घर लौटता हुआ विचार करता है, कि आज स्त्री पुत्रादिक का क्या होगा ? जो भूखे बैठे होगे, और मेरा इतजार कर रहे होगे । एक ओर परिवार पालन करने का कर्तव्य और दूसरी ओर प्रतिज्ञा पालन करने का विचार उसके मन मे चल रहा था ।

अन्त मे अपने मन मे ही निर्णय करता है कि नीतिकारो ने नीति कही है कि विपत्तिकाल के लिये धन की रक्षा करना चाहिये, लेकिन परिवार आदि की इज्जत बचाने के लिये उस धन को भी खर्च कर देना चाहिए और जब अपना स्वय का जीवन बिगडने लग जाय तो धन-दौलत, स्त्री परिवार आदि सबको छोडकर अपने जीवन की सुरक्षित करना चाहिये । (सर्ग 2 श्लोक 3)

अत व्रत की रक्षा ही जीवन की रक्षा है, ऐसा विचार करता हुआ धीवर अपने घर पहुँचता है, घटा धीवरनी दरवाजे पर ही उसकी प्रतीक्षा करते हुए खडी थी । उसने पति को खाली हाथ आने का कारण पूछा, तब मृगसेन धीवर ने दिगम्बर मुनि के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा को बता देता है, तब धीवरनी कहती है कि वेदो से बाह्य चलने वाले जैन मतानुयायी नगे साधु के पास आपने प्रतिज्ञा लेकर बहुत बुरा किया है, (2-12 गद्य) । दिगम्बर साधु वेद-बाह्य नहीं होते, इसकी सिद्धि धीवर ने वेदो के अनेक प्रकार के उदाहरण देकर सिद्ध कर दिया, कि दिगम्बर मुनि की चर्या को

वेद भी स्वीकार करते हैं, तब घंटा धीवरी कहती है, कि ठीक है, वेद के अनुसार दिगम्बर मुनि परमहस है, लेकिन साधुओं से हम गृहस्थो का क्या प्रयोजन ? साधु का कार्य त्याग और योग साधना है, और हम गृहस्थो का कार्य सग्रह करना व भोगों को भोगना है । तब धीवर इस बात का खडन करता हुआ कहता है, कि गृहस्थों को अहिसामूलक आजीविका करनी चाहिये । इस बात को सुनकर धीवरी क्रोध से आग-बबूला होती हुई धीवर को घर से बाहर निकालकर किवाड़ बंद कर लेती है, यह कहते हुये, कि आप अपनी तशरीफ उन साधुजी के पास ले जाइये, आपको मेरे से क्या प्रयोजन है । (सर्ग 2-22 गद्य)

यहाँ पर लेखक ने ससार की स्वार्थता का बडा सुन्दर चित्रण किया है, जिसे इस लेख मे अन्य स्थानो पर वर्णित किया गया है ।

धीवर यह सोचता हुआ, कि जिस स्त्री आदि परिवार के लिये जीवो को मार-मार करके जीवन यापन चलाया, इसके बावजूद भी एक दिन मै भोज्य सामग्री नहीं ला पाया तो मुझे घर से बाहर निकाल दिया गया अर्थात् ससार मे व्यक्ति-व्यक्ति से प्यार नहीं करता, बल्कि अपनी स्वार्थ सम्पूर्ति से प्यार का प्रदर्शन करता है । (2 25) ऐसा परिणाम करता हुआ धीवर एक सूने देवकुल (धर्मशाला) मे थका हुआ होने के कारण सो जाता है और उसी समय एक सर्प आकर उसे डस लेता है, परिणामस्वरूप वह मरकर के उज्जयिनी नगरी मे श्रीदत्त नामक सार्थवाह के एव पत्नि श्रीमति के कूख से सोमदत्त नाम से जन्म लेता है (सर्ग 2, श्लोक 29 गद्य)

इधर थोडी देर बाद धीवरी का क्रोध शान्त हुआ और सोचने लगी कि मैंने बिना विचारे ही पति को घर से बाहर निकाल दिया और इस प्रकार सोचती हुई वह पति को खोजने हेतु घर से बाहर निकलकर धर्मशाला जाती है, तथा वहाँ पर पति को मरा हुआ देखकर रुदन करती हुई अपने पति के (मृगसेन धीवर के) व्रतों का अनुसरण करती हुई स्वय भी अहिसा व्रत को धारण कर लेती है, और उसी समय वही सर्प घटा धीवरी को भी काट लेता है, वह भी मरण करके अहिसा व्रत के परिणामस्वरूप उज्जयिनी नगरी मे गुणपाल सेठ एव गुणश्री सेठानी के यहाँ विषा नाम की कन्या के रूप मे जन्म लेती है । (सर्ग 2, श्लोक 33)

यदि इस दयोदय चम्पू के नाम का ध्यान मे रखकर मीमासा की जाय तो यह काव्य पूर्णता को प्राप्त माना जा सकता है, लेकिन अहिसा व्रत का पालन करने वाले धीवर व धीवरी को किस प्रकार से फल मिला इस बात को प्रकट करने के लिये इनके भवान्तरो का वर्णन विस्तार मे इस चम्पू काव्य मे आगे के सर्गो मे किया गया है ।

यह काव्य की कथावस्तु की रोचक शुरुआत भी धीवर धवरी की भावी पर्याय सोमदत्त एव विषा से प्रारम्भ होती है । यही दोनो इस काव्य के काव्यनायक एव काव्यनायिका प्रकट किये गये हैं । इस काव्य मे पूरा कथन एक छोटे मुनिराज के द्वारा बडे मुनिराज से पूछे जाने पर बडे मुनिराज के मुख से व्यक्त किया गया है । बडे मुनि जब उसे जूठन खाने वाले दरिद्र बालक सोमदत्त की होनहार के सम्बन्ध में बता रहे थे तब उस सारे वृत्तान्त को गुणपाल सेठ भी सुन लेता है (यही सेठ इस काव्य का खलनायक एव इसकी सेठानी गुणश्री खलनायिका है) यह सेठ अपनी जाति, धन का बहुत अहकार करने वाला है अत जैन मुनियो की बात को सत्य मानता हुआ भी अहकार के कारण सोचता है कि मुझ सेठ की कन्या का यह दरिद्र बालक पति बनेगा क्या ? क्या बकरी का बच्चा शेर की बच्ची का स्वामी हो सकता है ?

अत उसने एक चाण्डाल को धन का लोभ देकर उसे उस बालक को मारने के लिये कहा, लेकिन चाण्डाल अपने कर्तव्य का ध्यान रखता हुआ सोचता है कि मुझे तो राजा द्वारा दण्डित अपराधी व्यक्ति को ही मारने का अधिकार है यह बालक तो निरपराध है अत वह सेठ से धन लेकर उस [illegible] को मारने के बहाने जंगल मे नदी के किनारे पेड के नीचे छोड़ देता है (सर्ग 3, श्लोक 6 गद्य)

प्रभात काल होते ही एक गोविन्द नाम का ग्वाला अपनी गायों को चराता हुआ उधर आता है एव उस बालक

को देखकर उठाकर अपनी स्त्री धनश्री को लाकर दे देता है (श्लोक 10 सर्ग 3) धनश्री ग्वालिन उसे अपने उदर से उत्पन्न पुत्र से भी अधिक प्यार से पालन - पोषण करती है, (सर्ग 4, श्लोक 1)

एक दिन खलनायक गुणपाल सेठ किसी राजकार्य से ग्वालों की बस्ती में आया तथा वह इस बालक को पहचान लेता है । तब यह उसे अपने विश्वास में लेकर पुन मारने के षड्यंत्र रचता है - षड्यन्त्रानुसार उसे एक पत्र देकर अपने घर भेजता है, जिस पत्र में खलनायक अपनी पत्नी एवं पुत्र को लिखता है कि जिसके हाथ से मैं यह पत्र भेज रहा हूँ उसे तुम विष दे देना यदि तुम मेरे सच्चे पत्नी एवं पुत्र हो तो ।

वह सोमदत्त बालक अपने मौत के पैगाम से अनभिज्ञ था, अत वह पत्र लेकर उज्जैन नगरी के निकट उपवन में पेड़ के नीचे विश्राम करता है, उसी समय उस उपवन में इसी नगरी की वेश्या वसन्त सेना वहाँ इसको सोता हुआ देखकर उसका परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा उसके मन में जागती है, तब वह उसके गले मे डले हुए पत्र को खोलकर पढ़ती हुई सोचती है कि ऐसे होनहार सुन्दर बालक को मेरा नगर सेठ कभी मारने का परिणाम नहीं कर सकता । लगता है सेठजी के यहाँ विषा नाम की कन्या है, उसे देने के लिये सेठजी ने यह पत्र लिखा हो शीघ्रता से विषा के स्थान पर विष लिख दिया गया है, अत उसने अपनी आँख के काजल को एक सलाई से लेकर विष दे देना के स्थान पर "विषा दे देना" ऐसा संशोधन कर दिया अर्थात् विष के स्थान पर विषा करके पत्र को उसी प्रकार गले मे बाँध दिया । उसके बाद वह वहाँ से चलकर सेठ के घर पहुँचता है । पत्र जैसे ही सेठानी गुणश्री एव पुत्र महाबल को सोमदत्त जाकर दे देता है माता पुत्र पत्र को पढकर सोचते हैं कि लगता हे सेठानी को आवश्यक राजकार्य होने के कारण नहीं आ सके हो और उनके लिये कन्या विषा के योग्य वर मिल जाने के कारण एव कल ही अक्षय तृतीया एवं बृहस्पतिवार रोहिणी नक्षत्र वाला शुभ मुहूर्त होने से यह सौगन्ध पूर्वक आदेश पत्र हमको भेजा है, हम लोगो का कर्तव्य है कि अपने पति एव पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए । (सर्ग 4 श्लोक 26, 27, 28)

जब खलनायक गुणपाल को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वह अविलम्ब अपने घर वापिस लौटकर आया और उसको पुन मारने के अन्य उपायो को सोचने लगा । ससारी प्राणी कषायवश इस स्तर तक पतित हो जाते हैं कि वे अपनी पुत्री के सुहाग को भी मारने मे तत्पर हो जाते हैं ।

नाग पचमी को गुणपाल सेठ अपने जामाता (काव्यनायक) सोमदत्त को नाग मन्दिर पूजनार्थ छलपूर्वक भेजता है एव दूसरी ओर वहाँ के लोभी चाण्डाल को धन देकर मरवाने की योजना बनाता है, परन्तु "जो ओरन को खाई खोदत हैं, ताको खाई है तैयार" की उक्ति के अनुसार गुणपाल द्वारा बनाये पाश में, उसका पुत्र फसकर मारा जाता है, क्योंकि मार्ग मे गेद खेलते हुए महाबल ने अपने बहिनोई को गेद खेलने मे नियोजित कर स्वय पूजनसामग्री लेकर नाग मन्दिर चला जाता है ।

सोमदत्त जब सकुशल घर पहुँचता है और उससे महाबल के नाग मन्दिर मे जाने के समाचार सुनकर गुणपाल अपना माथा पीट लेता है कि यह वज्रपात भी मेरे ही सिर पर आकर पडा ।

इतनी दर्दनाक घटना घटने के बावजूद भी खलनायक सेठ गुणपाल उसको मारने का बैर नहीं छोड़ पाता, और अपनी पत्नी को अपने अनुकूल बनाकर बना लेता है । एक दिन सोमदत्त को मारने के लिये जहरयुक्त लड्डू बनाकर खलनायिका गुणश्री शौच क्रिया के लिये चला जाती है, इसी बीच विषा उन लड्डुओं को अनजान में पिता को अर्थात् गुणपाल को खिला देती है, परिणामस्वरूप सेठ मरण को प्राप्त हो जाता है । गुणश्री सेठानी जब शौच क्रिया मे लौटकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनती है तब दु खी होकर आवेश मे उन्हीं जहरयुक्त शेष बचे हुए को खाकर आत्महत्या कर लेती है। संसार का वैचित्र्य यहाँ दृष्टिगोचर होता है कि जो दूसरों के लिये गड्ढा खोदता है, वह स्वय उसमें जाकर गिरता है।

सोमदत्त का पुण्य प्रबल होने से कई बार गुणपाल के रचित षड्यत्र भी उसका कुछ नहीं बिगाड सके, किसी नीतिकार ने कहा भी है - "जाको राखे साईयाँ, मार सके न कोय, बाल न बाका कर सके, जो जग बैरी होय"

उपरोक्त सम्पूर्ण वर्णन महाकवि ने दयोदय चम्पू मे 6वे सर्ग में किया है । 7वे सर्ग से अपनी कथा वस्तु को आगे बढ़ाते हुये कवि ने लिखा है कि एक दिन राजा वृषभदत्त ने मंत्रियो से पूछा कि बहुत दिनो से राज्य-श्रेष्ठी गुणपाल राज्य दरबार में क्यों नहीं आ रहे हैं ? तब मंत्रियों ने गुणपाल की दुर्दशा का वर्णन राजा को बता दिया । राजा सोमदत्त को महान पुण्यशाली जानकर राज्य दरबार में बुलाकर अपनी कन्या राजकुमारी से विवाह कर उसे आधा राज्य देकर सम्मानित करता है । इस विवाह से स्पष्ट होता है कि इस समय बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी ।

सोमदत्त ने एक दिन मुनिराज को पडगाह कर आहार दिया, तत्पश्चात् उन्हीं मुनिराज से उपदेश ग्रहण कर मुनि दीक्षा धारण की तथा समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धि विमान मे जाकर उत्पन्न हुये । सोमदत्त की दीक्षा के साथ विषा एव वसत सेना वैश्या भी आर्यिका दीक्षा लेकर यथायोग्य तपस्यानुसार मरण कर स्वर्ग को चली गयी । इस काव्य मे सोमदत्त की दूसरी पत्नी राजकुमारी के अन्तिम जीवन व मरण के सम्बन्ध मे कोई भी सकेत नहीं दिया है ।

इस कथानक की सक्षिप्त समीक्षा से इस बात की उपलब्धि होती है कि जिस धीवर ने एक छोटा सा अहिंसाव्रत का पालन किया तथा 3 बार मछली को जाल मे आने पर भी छोड दिया, परिणामस्वरूप मृगसेन धीवर अगले भव की सोमदत्त पर्याय में 3 बार मारे जाने का षड्यन्त्र रचे जाने के बाद भी बच गया और जिस मछली को मृगसेन धीवर (सोमदत्त) ने छोडा था, वह मछली स्वयं आयु पूरी कर वसन्त सेना नाम की वेश्या हुई, पूर्व उपकार के कारण उपकारी के पत्र (सोमदत्त के) मे विष के स्थान पर विषा कर उसके प्राणो की रक्षा की । घटा धीवरी ने अन्त समय में अपने पति का अनुसरण करते हुये अहिसा-व्रत का पालन किया था, "अन्त मता सो गता" के अनुसार वह अगले भव मे भी सोमदत्त की विषा नाम से पत्नी बनती है ।

उपादान की प्रबलता होने पर निमित्त प्रभावकारी नहीं होता, तथा दूसरी तरफ निमित्त की प्रबलता मिल जाने पर उपादान मे अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् निमित्त और उपादान की परस्पर उपकार व उपकारीभाव पूर्णतया दृष्टिगोचर होता हे । तत्वार्थ सूत्र के "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" सूत्र का यह चम्पूकाव्य पूर्णतया अनुचरण करता है । यह काव्य सामान्य गृहस्थो के लिये पठनीय एव अनुकरणीय है । इसे पढने से प्राणियों मे दया का सचार, अहिसा का प्रचार, एव बैर-भाव का अभाव जरूर होगा, अस्तु ।

पू. मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

❑ ❑ ❑



मैत्रीभाव जगत् मे मेरा सब जीवो से नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवो पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे ।
दुर्जन, क्रूर, कुमार्ग-रतो पर क्षोभ नही मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे ।।

सुदर्शनोदय का दार्शनिक अध्ययन

अरुणकुमार जैन, व्याकरणाचार्य , ब्यावर

बीसवीं शताब्दी के मूर्धन्य दार्शनिक एवम् रससिद्ध कवीश्वर ब्र प भूरामल शास्त्री (उत्तर नाम आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज) ने जैन दर्शन, अध्यात्म, सिद्धान्त के ग्रन्थों की रचनाओ के साथ -साथ उच्च कोटि के महाकाव्यो का प्रणयन कर भारतीय साहित्य के इतिहास में नये अध्याय का समावेश किया है । उनका जन्म राजस्थान के सीकर-जिलान्तर्गत राणोली ग्राम में हुआ था । राजस्थान रज.स्थान होने के कारण शस्योत्पादन में कोइ प्रतिमान तो स्थापित नहीं कर सका परन्तु इतिहास साक्षी है कि शत्रु की दुर्धर भर्त्सना एवम् तर्जना मे तथा कोमलकान्त रस सिक्त सर्जना में सदा अग्रणी रहा है । शक्ति की सरस प्रतिपत्ति एवम् साहित्य सृष्टि मे जैनाचार्यों का योगदान भी सदा अविस्मरणीय रहा है / रहेगा ।

जैन-साहित्य रचना के प्रारम्भिक काल में जैनाचार्यों के द्वारा जनभाषा - प्राकृत भाषा व अपभ्रशादि भाषा मे विविध-विध ग्रन्थों की रचनाएँ की गयी । संस्कृत भाषा की साहित्यिक प्रतिष्ठा के कारण जैनाचार्यों ने सस्कृत-भाषा में भी विपुल-परिमाण ज्ञान विज्ञान के लगभग सभी क्षेत्रो मे उच्च कोटि के महनीय ग्रन्थों का प्रणयन किया । इस शृखला में काव्यकारो मे आचार्य रविषेण, हरिभद्रसूरि, अमृतचन्द्राचार्य, भट्टारक सकलकीर्ति वादिराज सूरि तथा दार्शनिका में उमास्वामी पूज्यपाद, भट्ट अकलक, विद्यानन्द स्वामी आदि विशेषत समादृत हैं ।

अवसर्पिणीकाल की विडम्बना के कारण उत्कृष्टकोटिक, सस्कृत ग्रन्थो विशेषत सस्कृत महाकाव्यो की रचना मे विरलता आने लगी ।

एक लम्बे काल तक कोई प्रतापी जैन आचार्य सस्कृत -साहित्यकार/महाकाव्यकार के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुआ। अनेक शताब्दियो पश्चात् ब्र भूरामल शास्त्री ने राजस्थान मे अवतरण कर पूर्वोपात्त तपाबल विशेष से क्षयोपशमित ज्ञानावरण-विशेष से अधिगत मेधाशक्ति से/अपनी बहु-आयामी प्रतिभा के चमत्कार से सस्कृत एवम् हिन्दी मे प्रचुर रचनाएँ लिखी। मुनि मनोरञ्जनाशीति , सम्यक्त्वसार-शतकम्, हित सम्पादकम्, सचित्त विवेचन, आदि जेन दर्शन आचार सिद्धान्त के वदुष्य पूर्ण ग्रन्थो के प्रणयन के साथ साथ श्री हर्ष के नैषध तथा अश्वघोष के बुद्धचरित्र सौन्दरानन्द तुल्य दार्शनिक गभीरता से समन्वित वीरोदय, जयोदय सुदर्शनोदय, आदि महाकाव्यो की रचनाएँ महाकवि के द्वारा की गयी । इसके अतिरिक्त आपकी समर्थ लेखनी के द्वारा प्राचीन आचार्यों के समयसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थो के हार्द को सुस्पष्ट करने के लिये प्रामाणिक टीका ग्रन्थो की भी सग्रथना की गयी । राजस्थान के अमर सपूत इस महान् साहित्याराधक के महाकाव्यो ने राजस्थान की मरुधरा मे भी सरस वाग्गगा प्रवाहित कर दी ।

उनके काव्यो मे 'सुदर्शनोदय महाकाव्य' अपना विशिष्ट स्थान रखता है । इस महाकाव्य के स्वदार-सन्तोष व्रत (ब्रह्मचर्याणुव्रत) पालन मे अडिग, अचल निष्कम्प, सेठ सुदर्शन की कथा एवम् सेठ सुदर्शन के जीव को जीव की जन्म-जन्मान्तरों की कथा काव्यात्मक कलेवर मे प्रस्तुत की गयी है । उनके अन्य काव्यो की भाति सुदर्शनोदय महाकाव्य मे भी उनकी नाना-शास्त्रज्ञता परिलक्षित होती है । उनके सुदर्शनोदय महाकाव्य में वर्णित व्याकरण[1] पुराण[2] ज्योतिष[3], आयुर्वेद[4] और राजनीति विषयक तत्त्व उनके अपार वैदुष्य एवम् बहुश्रुतता के साक्षात् सूचक हैं ही लेकिन प्रकृत महाकाव्य मे दार्शनिक तत्व अनेकत्र प्रतिपादित होते दिखाई देते हैं । महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाकवि ने सकल दु खत्राता दर्शन की शिक्षा प्रदान करने हेतु ही महाकाव्य की रचना की है । जैसा कि सुप्रसिद्ध सस्कृत पत्रकार प श्री गोविन्द नरहरि वैजापुरकर वाराणसी ने सुदर्शनोदय महाकाव्य के विषय में लिखा था ''सत्यपि महाकाव्येऽस्मिन् जैनाचार-दर्शनाम्भोधिमथन-समुत्थनवनीत यथा कौशलेन समालिम्पितं यथात्र काव्यस्य कान्तासम्मिततयोपयोगिता मूर्तिमती परिदृश्येत् ।'' काव्यगत शृङ्गारादि के चित्रण तो मात्र जैन दर्शनाचार रूप कटूवौषधि के ऊपर शर्करालिम्पन (Sugar coated) मात्र हैं ।

'दृश्यते, विचार्यते चिन्त्यते अनेन इति दर्शनम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार दर्शन-शास्त्र उस विद्या का नाम है जिसमें सकल वस्तुओं के विषय में चिन्तन मनन एवम् गम्भीर विचारणा की जाय। प्रमुखतया सृष्टि, लोक परलोक कर्मफल, आत्मादि, तत्त्व के विषय में तथा सासारिक दु खो के मूलकारणो के विषय मे और जीवन रहस्यो के विषय मे जो शास्त्र गहन अध्ययन करता है, वह दर्शनशास्त्र के नाम से जाना जाता है । ज्ञान मीमांसा, तत्त्व मीमामा एवम् आचार मीमासा दर्शनशास्त्र के प्रमुख प्रतिपाद्य हैं ।

सुदर्शनोदय महाकाव्य में तत्त्व मीमासा एवम् आचार मीमासा का विस्तृत एवम् विशद प्रतिपादन हुआ है । कारण और कार्य को सिद्धान्त का वर्णन ग्रन्थ मे मिलता है, श्रेष्ठि वृषभदास की पत्नी के पुत्रोत्पत्ति के वर्णन प्रसङ्ग मे उनकी उपमा दर्शनीय है । कवि ने कल्पना की है कि जिस प्रकार कार्य अपने कारण से सर्वथा भिन्न नही हो सकता उसी प्रकार श्रेष्ठि वृषभदास का अपने पुत्र (कार्य) में निज (कारण) की छवि दृष्टिगोचर हुयी।[5] पुत्र और उसकी माता के जन्मकालीन सस्कार के वर्णन मे भी दार्शनिक सिद्धान्त स्याद्वाद उपमान के रूप मे प्रस्तुत हो जाता है । वे लिखते है कि जिस प्रकार कथचित् चिह्न से युक्त स्याद्वाद के द्वारा जैन धर्म प्राणिमात्र का कल्याण करने वाली अर्थयुक्त वाणी का सस्कार करता है, उसी प्रकार सेठ वृषभदास ने पुत्र से अन्वित उसकी हितकारिणी माता का मृदुल गन्धोदक से जन्मकालीन सस्कार किया।[6]

यह जीव संसार मे नाना प्रकार के दु खो को क्यो उठा रहा है अथवा दु खो का मूल कारण क्या है यही मूलत भारतीय दर्शनो के विचार और चिन्तन का सार रहा है किवा दु ख कारण -जिज्ञासा ही दर्शन की उत्पादिका है,यत साख्यकारिका की प्रथम कारिका के अनुसार ससारी प्राणी त्रिविध दु खो से पीडित है जिसके निवारणार्थ अब तक कृत सभी उपाय (लौकिक व वैदिकादि) निष्फल हो गये है,[7] अत तत्त्वज्ञान एवम् निजस्वरूप के भान पूर्वक कृत सम्यक्चारित्र ही दु ख निवृत्ति / मुक्ति का कारण हो सकता है । सुदर्शनोदय मे भी दु ख-कारणो की चर्चा करते हुए कहा गया है कि अज्ञानवश जीव जिन्हे अपना समझता उनमे इष्टबुद्धि और जिन्हें पर समझता है उनमे अनिष्ट बुद्धि को प्राप्त जीव ससार मे कर्मबन्ध करके भ्रमण करता और दु ख उठाता है ।[8]

परमपूज्य मुनिपुगव सुधासागर जी महाराज ने अपने प्रवचन मे कहा था कि The world is stage life is drama a man is actor and the director is Karma सुदर्शनोदय मे कहा गया है कि कभी पिता पुत्र का और कभी पुत्र पिता का अभिनय करते हुए कर्म के वशीभूत होकर ससार को रगभूमि का दृश्य बनाते है । यथा -

पिता पुत्रत्वमायाति पुत्र शत्रुत्वमन्यदा ।
शत्रुश्च मित्रतामित्थमङ्ग भू रङ्गभूरिव ।।

इस प्रकार सुदर्शनोदय मे ससार के स्वरूप तथा ससार के कारणभूत मोह-इष्टानिष्टबुद्धि का प्रतिपादन काव्यरूप मे अति सुन्दर रुप मे दृष्टिगोचर होता है । यदि यह जीव इष्टानिष्ट बुद्धि को धारणकर मोहासक्त न हो तो कर्मबन्धन और उससे होने वाले दु खो का भी शिकार न हो ।

आत्मा

दर्शनशास्त्र तत्त्व मीमासा करते हुए जीव के श्रद्धान को समीचीन बनाकर उसके आचार को तार्किक एव सदृढ आधार प्रदान करता है । जैन दर्शन मे सात तत्त्व स्वीकृत हैं जिनमे आत्म तत्त्व प्रधानभूत है यत आस्रव बन्ध सवर और निर्जरा आदि आत्मा के ही होते है । उस प्रधान भूत आत्म तत्त्व का वर्णन करते हुए सुदर्शनोदय मे महाकवि ने कहा है आत्मा सच्चिदानन्द रूप है, अर्थात् आत्मा दर्शन ज्ञान आनन्द से युक्त है ।

निश्चय नय से आत्मा कर्मबन्ध से रहित अस्पृष्ट, एवम् मुक्त मानी जाती है, यदि ऐसा न माना जाय तो आत्मा के कर्म मुक्ति सभव नही हो सके ।

व्यवहार की दृष्टि से भी महाकवि ने आत्मा का वर्णन किया है, यत किसी एक ही नय का एकान्तत अवलम्बन मिथ्यात्व माना जाता है । कृतिकार ने आत्मा के तीन प्रकारों का वर्णन किया है, 1 बहिरात्मा 2 अन्तरात्मा, और 3 परमात्मा।

इन्हें परिभाषित करते हुए महाकवि ने कहा है कि "देहं वदेत् स्वं बहिरात्मनामा" अर्थात् जो देह को ही आत्म कहे या माने, वह बहिरात्मा है । जो विवेकी शरीर से भिन्न चैतन्यधाम को आत्मा माने वह अन्तरात्मा और जो अन्तरात्मा बनकर स्वयं शुद्ध होकर परमात्मतत्त्व को प्राप्त करे, वह परमात्मा है।[10] त्रिविध आत्मा के उनके द्वारा वर्णित लक्षण अनवद्य, सारवद्, असंदिग्ध, अस्पाक्षर हैं । कविता से सूत्रत्व का गुम्फन उनकी प्रतिभा का कमाल है ।

श्रेष्ठि सुदर्शन के जन्म जन्मान्तरों की कथा दर्शन-प्रतिपादित एवम् जैनदर्शनाभ्युगत आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सटीक सिद्धि करती है ।

अनेकान्तवाद सिद्धान्त जैन दर्शन की आधार शिला है । यह सिद्धान्त सकल विश्व के मत-भेदों सम्प्रदायो/मान्यताओ वर्गों जातियों के मध्य भेद की सकीर्ण दीवारो को तोडकर उनमें सामञ्जस्य स्थापित करने में सक्षम है। सुदर्शनोदय के समर्थ महाकवि ने इस सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया है । यथा -

इस जगत् में सकल पदार्थ अनन्त धर्मात्मक हैं । कोई भी कथन सर्वथा एकान्तरूप नहीं है । प्रत्येक उत्सर्ग मार्ग के साथ अपवाद-मार्ग का भी विधान पाया जाता है । इसलिये दोनो मार्गों मे ही अनेकान्त रूप तत्त्व की सिद्धि होती है । महाकवि ने इस सिद्धान्त की सिद्धि हेतु एवम् सामान्य पाठको को भी सरस प्रतिपत्ति कराने हेतु अठारह नाते की कथा का उदाहरण दिया है ।

बाजार में जब वस्तु सस्ती मिलती है, व्यापारी उसे खरीद लेता है और जब मँहगी हो जाती है, तब उसे बेच देता है । इससे एक ही वस्तु क्रेय और विक्रेय दोनों धर्मो मे युक्त है । वे एक और दृष्टान्त से अनेकान्त सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि देखो, जीर्ण ज्वर वाले पुरुष की दूध मे, अतिसार रोगवाले पुरुष की दही मे और रोगरहित बुभुक्षु की दोनों में प्रवृत्ति देखी जाती है । परन्तु अब यदि उपवास करने वाले मे पूँछे तो कहेगा मुझे न तो दूध और न ही दही स्वीकार्य है । अत वस्तु की सिद्धि एकान्त से सभव नहीं है, अनेकान्त से वस्तु की सिद्धि सभव हैं ।[11]

शुष्क दर्शन के तीक्ष्ण बुद्धि ग्राह्य तत्त्वों को हृदयगम करा सकने का दुरुह कार्य महाकवियो की अन्तःस्त्रावी कविता का ही चमत्कार है ।

महाकवि का असाधारण कौशल है कि वे प्रकृति चित्रण मे तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिकादि दार्शनिक ग्रन्थो की अवतारणा से पाठक को चमत्कृत करते हैं ।[12] महाकवि सन्त हैं, दार्शनिक हैं । उनका दर्शन शुष्क रुक्ष के स्थान पर वर्णन में कोमल कान्त पदावली का प्रयोग एवम् उसमे व्यावहारिक जीवन के मद्य ग्राह्य उपमानो के माध्यम से उन्हे रोचक बना देते हैं ।

इस प्रकार मूर्धन्य रससिद्ध महाकवि का महनीय महाकाव्य सुदर्शनोदय भारतीय दर्शन / जैन-दर्शन के तत्त्वो का आकर है । इन दार्शनिक वर्णनो से ग्रन्थ का माहात्म्य वृद्धिगत हुआ है ।

अरुणकुमार जैन, दर्शन व्याकरणाचार्य
पुस्तकाध्यक्ष
श्री ए प दि जैन सरस्वती भवन
सेठ जी की नशियाँ ब्यावर (राज)

1 सुदर्शनोदय महाकाव्य - 1/22 2 वही 1/30 3 वही 1/21, 29 4 वही नवम् सर्ग का आचार वर्णन
5 श्रितवानपि सूतिकास्थल किमु बीजव्यभिचारि अकुर ॥ 6 सुद 3/6 7 साख्य कारिका का 1
8 सुदर्शनोदय 4/8 9 सुदर्शनोदय 4-11 10 सुदर्शनोदय 9/72 11 6/गी 6 12 सर्ग 6/गी 2

सुदर्शनोदय का काव्यात्मक वैशिष्ट्य

डॉ रमेशचन्द जैन

जैन परम्परा में सुदर्शन

सुदर्शनोदय में मुनिश्री सुदर्शन का चरित्र आचार्य ज्ञानसागर ने संस्कृत महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है । जैन परम्परा के अनुसार सुदर्शन भगवान् महावीर के पाँचवे अन्तकृत् केवली हुए । उन्होंने कठिन तपश्चरण किया, घोर उपसर्गों को सहा और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति की । धवला मे कहा गया है -

अष्टकर्मणमन्त विलशँ कुर्वन्तीति अन्तकृत । अन्तकृताभूत्वा सिज्झति सिद्ध्यन्ति निस्तिर्ष्ठन्ति निष्पद्यते स्वरूपेण अन्यर्थ । बुज्झति त्रिकाल गोचरानन्तार्थ व्यञ्जन परिणामत्मका विशेष वस्तुतत्व बुद्ध्यन्ति अवगच्छन्तीत्यर्थ -जो आठ कर्मों का अन्त अर्थात विनाश करते है, वे अन्तकृत् कहलाते हैं । अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, निष्ठित होते हैं व अपने स्वरूप से निष्पन्न होते हैं, ऐसा अर्थ जानना चाहिए । जानते हैं अर्थात् त्रिकालगोचर अनंत अर्थ और व्यञ्जन पर्यायात्मक अशेष वस्तु तत्त्व को जानते व समझते है । (धवला ६/१, ९-९, २१६ ४६०/१)

मस्तरम्यान्त कृता यैस्ते ऽन्तकृत (केवलिन) जिन्होंने सस्तर का अन्त कर दिया है, उन्हे केवली कहते हैं। (धवला १/१/,२ २/१०२/१

नमिमतङ्ग, सोमिल रामपुत्र-सुदर्शनि यमलीक वलीक किष्किविलपालम्बाष्टपुत्री इति एते दश वर्द्धमान तीर्थंकर तीर्थे दारुणानुपसर्गान्तिर्जित्य कृत्स्त कर्मक्षयादन्त कृतो - वर्द्धमान तीर्थंकर के तीर्थ मे नीम, मतग सोमिल रामपुत्र, सुदर्शन यमलीक, वलीक, किष्किविल पालम्ब अष्टपुत्र ये दश दारुण उपसर्गों को जीतकर सम्पूण कर्मो के क्षय मे अन्तकृत् केवली हुए। (धवला १/१, १ २/१०३/२)

पञ्च नमस्कार मन्त्र के माहात्म्य का प्रकट करने के लिए महामुनि सुदर्शन का चरित्र कथा ग्रन्थो मे प्राय वर्णन किया गया है । इस मन्त्र का प्रभाव अचिन्त्य और अद्भुत है । इसकी साधना द्वारा सभी प्रकार की ऋद्धियाँ प्राप्त की जा सकती है। यह मन्त्र आत्मिक शक्ति का विकास करता है । उस मन्त्र की निष्काम साधना से लौकिक और पारलौकिक कार्य सिद्ध होते है ।

पञ्च परमेष्ठी नमस्कार स्तोत्र में कहा गया है -

एसो परमिट्ठिण पचण्ह वि भावओ णमुक्कारो ।
सव्वस्स कीरमणो पावस्स पणासणो होई ॥ ६

पञ्च परमेष्ठी को भाव सहित किया गया नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है ।

यह पच नमस्कार चक्र समस्त भुवनो को प्रकाशित करने वाला, सम्पूर्ण शत्रुओ को दूर भगाने वाला, मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का नाश करने वाला, मोह का दूर करने वाला और अज्ञान के समूह का हनन करने वाला है । (प प न 30)

प्राचीन साहित्य मे सुदर्शन चरित

प्राचीन साहित्य मे शिवार्य कृत भगवती आराधना मे मुनिश्री सुदर्शन के विषय मे एक गाथा मिलती है

अन्नाणीविय गोवो आराधित्ता मदो नमोक्कार ।
चपाए सेट्ठिकुल जादो पत्तो य सामन्नं ॥७५८

अर्थात् अज्ञानी होते हुए भी सुभग गोपाल ने णमोकार मन्त्र की आराधना की जिसके प्रभाव से वह मरकर चम्पानगर के श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुआ और श्रामण्य को प्राप्त हुआ ।

भगवती आराधना में जो कथायें आयी हैं , उनका विस्तार से वर्णन करने वाली कुछ रचनायें प्राप्त हुई हैं । इनमें सुदर्शन मुनि की कथा वर्णित है ।

विक्रम संवत् ९८९ तथा शक सवत् ८५३मे हरिषेण द्वारा लिखे गए बृहत्कथाकोश मे ६० वीं कथा सुभग गोपाल की है। यह १७३ पद्यो मे पूर्ण हुई है ।

ग्यारवीं शताब्दी के अन्त मे प्रभाचन्द्र ने आराधना कथा प्रबन्ध (कथाकोश) या आराधना सत्सुकथा प्रबन्ध की रचना की। इसमें 23वीं आराध्यनमस्कारमित्यादि सुभग ग्वाले की कथा अत्यन्त सक्षेप रूप में दी गई है । विक्रम सवत् ११२३ के आस पास लिखे गए मुनिश्री चन्द्रकृत कहाकोसु (कथाकोश) मे २२वीं सन्धि के १६ कडवको मे सुभग गोपाल और सेठ सुदर्शन का चरित्र कहा गया है ।

नयनन्दिकृत सुदसण चरिउ सुदर्शन मुनि के चरित्र का विविध छन्दो मे काव्यात्मक ढंग से वर्णन किया गया है । यह काव्य १२ सन्धियो से युक्त है । इसकी रचना अवन्ति देश की राजधानी धारानगरी के वर्डविहार नामक जैन मन्दिर मे राजा भोज के समय विक्रम सवत् ११०० मे हुई थी ।

रामचन्द्र मुमुक्ष कृत पुण्यास्रव कथाकोश मे 'पञ्चनमस्कार मन्त्र फलम्' नामक द्वितीय अधिकार मे आठवी कथा सुभग गोपाल के जीव सेठ सुदर्शन की कही गयी है । पुण्याश्रव कथाकोश छह अधिकारो मे विभक्त है । इसमे कुल ५६कथाये हैं । रामचन्द्र मुमुक्षु 12वी शती के मध्य मे भी पूर्वकालीन सिद्ध होते हैं ।

भट्टारक सकलकीर्ति (विक्रम सवत् १४४३ १४९९) की अनेक रचनायें प्राप्त है । इनमे एक रचना सुदर्शनचरित भी है ।

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने बीसवीं शताब्दी ई मे सुदर्शनोदय काव्य की रचना की जिसका विद्वतापूर्ण सम्पादन प हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री सिद्धान्तालङ्कार न्यायतीर्थ साढूमल (जिला-ललितपुर उ प्र) ने ब्यावर मे किया । यह रचना प्रथम बार वीर निर्वाण सवत् २४९३ वि स २०२३ नवम्बर १९६६ मे आ ज्ञानसागर ग्रन्थमाला ब्यावर से प्रकाशित हुई । हरिषेण ने अपने कथाकोश मे सुदर्शन का न कामदेव के रूप मे उल्लेख किया है और न अन्तकृत केवली के रूप मे ही । केवलज्ञान उत्पन्न होने पर उनके आठ प्रातिहार्यों का वर्णन करते हुए लिखा है कि मुण्डकेवली के समवशरण की रचना नहीं होती । यथा

छत्रत्रय समुत्तुङ्ग प्राकारो हरिविष्टरम् ।
मुण्डकेवलिनो नास्ति सरण समवादिकम् ॥१५७॥
छत्रमेक शशिच्छाय भद्रपीठ मनोहरम् ।
मुण्डकेवलिनो नून द्वयमेतत् प्रजायते ॥१५८॥

इस उल्लेख मे सिद्ध है कि सुदर्शन मुण्ड या सामान्य केवली हुए हैं और सामान्य केवलियो के समवसरण रचना नहीं होती। आठ प्रातिहार्य अवश्य होते हैं पर तीन छत्र के स्थान पर एक श्वेत छत्र और सिंहासन के स्थान पर मनोहर भद्रपीठ होता है ।

सकलकीर्ति ने सुदर्शन को पाँचवाँ अन्तःकृत्केवली और अन्तिम कामदेव दानो रूप माने है (सुदर्शन चरित १/ १४-१/१५)

सुदर्शनोदय महाकाव्य

सुदर्शनोदय काव्य विधा की दृष्टि से महाकाव्य है । इसमे ९ सर्ग हैं । इसका नायक सुदर्शन प्रख्यात श्रेष्ठि वश का अवतस है । यह धीर प्रशान्त नायक के गुणो से युक्त है । इसका प्रधान रस शान्त है, शेष रस अप्रधान है । इसमे

पञ्च सन्धियो का प्रयोग हुआ है । सुदर्शन जैसे महापुरुष के लोकप्रिय वृत्त का इसमें निरूपण किया गया है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ का इसमे काव्यात्मक निरूपण है। धर्म के विषय में कहा गया है कि जो विश्व को धारण करे, वह धर्म है। धर्म का धारण करने वाला सारे विश्व को अपने समान मानता हुआ अन्य के कल्याण के लिए भद्रतापूर्वक अपने शरीर को अर्पण कर देता है किन्तु अपने देह की रक्षार्थ किसी भी जीवजन्तु को कष्ट नहीं पहुँचाता है । अर्थनिरूपण की दृष्टि से सुदर्शनोदय के चम्पानगर का वर्णन द्रष्टव्य है । महाकवि ज्ञानसागर के अनुसार चम्पानगर का वणिक् पथ (बाजार) विश्वलोचन कोष सा प्रतीत होता था । जैसे यह कोष श्रीधर आचार्य रचित है उसी प्रकार वहाँ का बाजार ससार भर के लोगों के नेत्रो द्वारा देखा जाता था अर्थात् ससार भर के लोग क्रय विक्रय करने के लिए वहाँ आते थे। जैसे विश्वलोचन कोष शब्द ज्ञान से मनुष्य को शीघ्र सस्कृत अर्थात् व्युत्पन्न कर देता हे, उसी प्रकार वहाँ का बाजार भी खरीदने योग्य वस्तुओं मे खरीददार को शीघ्र सम्पन्न कर देता था । जैसे यह कोष एक एक शब्द के अनेक अनेक अर्थों से परिपूर्ण है, वैसे ही वहाँ का बाजार एक एक जाति के अनेक द्रव्यो मे भरा हुआ था तथा जेसे इस कोष मे अनेक अध्याय वर्ग आदि हे, उसी प्रकार उस नगर के बाजारो के भी अनेक विभाग थे आर वहाँ के राजमार्ग भी लम्बे चौडे और अनेक थे ।[2]

जब सेठ सुदर्शन ने सागरदत्त सेठ की पुत्री मनोरमा का देखा तो वह उसके प्रति काम भावना से विद्ध हो गया । उसके प्रधान मित्र कपिल ने उसकी मन स्थिति का अनुमान कर लिया । सुदर्शन के पिता सेठ वृषभदास अपने पुत्र हेतु मनोरमा की प्राप्ति के विषय मे जब विचार कर रहे थे तभी मानो उनके चिन्तन से आकृष्ट हुए सागरदत्त सेठ स्वय ही आ उपस्थित हुए, क्योकि सुकृतशाली सज्जनो की इष्ट वस्तु स्वय ही फलित होती है ।[3] सागरदत्त के प्रस्ताव को सुनकर सेठ वृषभदास ने मनोरमा के साथ पुत्र सुदर्शन के विवाह की अनुमति दे दी । तदनुसार दोनो का विवाह सम्पन्न हुआ । सुदर्शन मनोरमा मे इतना आसक्त हो गया कि विरक्ति के भाव होने पर भी वह पिता के साथ मुनिदीक्षा नही ले सका । इस प्रकार यहाँ काम पुरुषार्थ फलित होता हुआ दिखाई दे रहा है ।

सेठ सुदर्शन सब प्रकार की विघ्नबाधाओ को सहन कर, मुनिदीक्षा अङ्गीकार कर अन्त मे मोक्षलाभ करते हैं[4] इस प्रकार उनके जीवन का चरम पुरुषार्थ फलित होता है ।

सुदर्शनोदय महाकाव्य का प्रारम्भ भगवान् वीर प्रभु की स्तुति पूर्वक हुआ है । अनन्तर कवि ने सुदर्शन नामक अन्तिम कामदेव की कथा कहने का निर्देश किया है।[5] कथावस्तु के निर्देश के बाद खल निन्दा और सज्जन प्रशसा की गयी है ।[6] इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति वियोगिनी वसन्ततिलका द्रुतविलम्बित शार्दूलविक्रीडित और वेतालीय जेसे सस्कृत छन्दो का प्रयोग करने के साथ कवि ने प्रभाती काफी होलिका राग, कव्वाली छन्दचाल रसिक राग सारग राग, कल्याण राग तथा सौराष्ट्रीय राग जैसे हिन्दी छन्दो का भी प्रयोग किया । सस्कृत भाषा मे इस प्रकार हिन्दी छन्दो का प्रयोग करना महाकवि ज्ञानसागर की अपनी निजी विशेषता है । इनके अतिरिक्त अनेक गीतो की रचना हिन्दी पद्य रचना मे प्रसिद्ध अनेक तर्जों पर की गयी है ।

प्रत्येक सर्ग मे अन्त मे प्राय भिन्न छन्द का प्रयोग किया गया । प्रसङ्गानुसार सुदर्शनोदय मे समुद्र[7] संयोग[8] वियोग[9], मुनि[10] नगर[11] संग्राम[12] विवाह[13], पुत्र[14], पर्वत[15] ऋतु[16] वन[17], सूर्य[18] रात्रि[19] अन्धकार[20], प्रातःकाल[21] आदि का वर्णन हुआ है । इन सब वर्णनो के आधार पर सुदर्शनोदय महाकाव्य सिद्ध होता है ।

---

1 सुदर्शनोदय 4/6
2 सुदर्शनोदय 1/32
3 वही 3/43
4 वही 8/86
5 वही 1/4
6 वही 1/7-10
7 सुदर्शनोदय 2/28 34
8 वही 4/46
9 वही 3 35
10 वही 2/24
11 वही 1/24-37
12 वही 1 38
13 वही 3/48
14 वही 3/8
15 वही 2/14 34 38 3/7
16 वही 1/6 2/40 3/33, 32, 6/1 4
17 वही 6/1 4
18 वही 3/1
19 वही 3/3
20 वही 7 9/1
21 वही 3/4 5/1

अलङ्कार योजना

महाकवि ज्ञानसागर अलङ्कारवादी कवि थे । अपने संस्कृत काव्यो की भाँति उन्होंने सुदर्शनोदय में भी अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है । निदर्शनार्थ कुछ अलङ्कार प्रस्तुत हैं ।

उपमा - सेठ वृषभदास की सेठानी जिनमती का अनेक उपमाओ के द्वारा वर्णन करते हुए महाकवि ज्ञानसागर कहते हैं -

वह जिनमती सेठानी जल से भरी हुई वापी के समान सरल थी, मुद्रिका के समान सुवृत्त थी, जैसे अँगूठी गोल होती है, उसी प्रकार यह सुवृत्त अर्थात उत्तम आचरण करने वाली थी । साडी के समान एक मात्र गुणो से गुम्फित थी, जैसे साडी-गुण अर्थात सूत के धागों से बुनी होती है, उसी प्रकार वह सेठानी पातिव्रत्यादि अनेक गुणों से सयुक्त थी । चन्द्रमा की कला के समान तिथिसत्कृतीद्धा थी । जैसे चन्द्र की बढती हुई कलाये प्रतिदिन तिथियो को प्रकट करती हैं वैसे ही वह सेठानी प्रतिदिन अतिथियो का आदर सत्कार करने मे तत्पर रहती थी और वह सेठानी अलङ्कार परिपूर्ण उत्तम कविता के समान प्रसिद्ध थी । जैसे उत्तम कविता उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारो से परिपूर्ण होती है वैसे ही सेठानी भी गले, कान, हाथ आदि में नाना प्रकार के आभूषणो को धारण करती थी । (सु 2/6)

वह जिनमती जिन भगवान् की मति के समान पवित्र रूप वाली थी दोषरहित थी। जिन भगवान् की मति ससार परिभ्रमण रूप अन्धकूप का अभाव करती है और सेठानी की नाभि दक्षिणावर्त भ्रमण को लिए हुए कूप के समान गहरी थी । जैसे जिनमत के अभ्यास मे कामवासना मिट जाती है वैसे ही सेठानी की चेष्टा मे कामदेव उसके वश मे हो रहा था ।

मुनिराज की वाणी सुनकर और अपने पिता का इस प्रकार मुनि बना देखकर सुदर्शन भी ससार मे उदास होता हुआ मुनिराज से बोला हे नाथ! मैं मानता हूँ कि यह ससार असार है, विनश्वर है । पर देवाङ्गनाओ से भी विकार भाव को नहीं प्राप्त होने वाला मेरा यह मन रूप जल मनोरमा रूपी सरसी में अवश्य ही रम रहा है यह मेरे लिए बडी कठिन समस्या है। यहाँ मन को जल ओर मनोरमा को सरसी कहा गया है । अत रूपक अलङ्कार है । (सु ४/१५)

अनुप्रास -

> **मालेव या शीलसुगन्धयुक्ता शालेव सम्यक् सुकृतस्य सूक्ता ।**
> **श्रीश्रेष्ठिनो मानसराजहसीव सीवद्धभावा खलु वाचि वशी ॥२/९॥**

उक्त पद्य मे सकार और शकार की अनेक बार आवृत्ति होने के कारण अनुप्रास अलङ्कार है ।

उत्प्रेक्षा -

हे बुधजनो, माता के करपल्लव मे अवस्थित वह बालक स्तनो से दुग्धपान करते समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो उत्तम पल्लव वाली अमृतलता के कोरको पर लगा हुआ भौरा ही हो ।

यहा माता को करपल्लव मे स्थित दुग्धपान करते हुए बालक की सम्भावना इस रूप में की गयी है मानो उत्तम पल्लव वाली अमृतलता के कोरको पर लगा हुआ भौंरा ही हो । इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

विरोधाभास -

उस अग देश मे सभी जन सुनीतिवाले थे और भयाढ्य होते हुए भी उन्हे किसी से भी भय नहीं था । विसर्ग को ही अर्थात् खोटे धधे को ही अपनी लक्ष्मी बढाने वाला समझते थे फिर भी अच्छे धधो के करने वालो मे प्रधान थे । ये सभी बाते परस्पर विरुद्ध है अत विरोध है, पर परिहार इस प्रकार होगा ईति (दुर्भिक्ष आदि) से रहित उस देश मे सभी सुन्दर नीति का आचरण करते थे और कान्ति युक्त होते हुए भी वे किसी से भयभीत नहीं थे । वे अपनी चचल लक्ष्मी का विसर्ग अर्थात् त्याग करना ही उसका सच्चा उपयोग मानते थे और सदा साधुजनो के संसर्ग मे अग्रज रहते थे । (सु 1/23)

सेठ वृषभदास द्विजिह्वतातीत गुण वाला हो करके भी अहीन था अर्थात् दो जिह्वा वाले सर्पों का स्वामी शेषनाग अपरिमित गुण का धारक होकर भी अन्त मे अहीन ही है, सर्प ही है। परन्तु यह सेठ द्विजिह्वता अर्थात चुगलखोरी के दुर्गुण से रहित एवं उत्तम सद्गुणो का धारक होने मे अहीन अर्थात् हीनता से रहित था, उत्तम था । वह सेठ आनक होते हुए भी अति प्रवीण था अर्थात आनक नाम नगाडे का है, जो नगाडा हो, वह उत्तम वीणा कैसे हो सकता है? इस विरोध का परिहार यह है कि वह सेठ आनक अर्थात पापो से रहित था और अतिचतुर था तथा विचारवान् होते हुए भी अविरूद्धवृत्ति था। विनाम पक्षी का है । जो पक्षिया का प्रचार से युक्त हो वह पक्षियो से रहित आजीविका वाला कैसे हो सकता है । इस विरोध का परिहार यह है कि वह सेठ अति विचारशील था और जाति कुल मे अविरूद्ध न्याययुक्त आजीविका करने वाला था । वह सेठ मदोज्झित हाकर भी दानमय प्रवृत्ति वाला था । जो हाथी मद से रहित होता है वह दान अर्थात मद की वर्षा नही कर सकता । मदयुक्त गज के ही गण्डस्थलो से मद झरता है, मदहीन गजो से नहीं, पर यह सेठ सर्व प्रकार के मदो से रहित हो करके भी निरन्तर दान देने की प्रवृत्ति वाला था । (सु 2/2)

श्लिष्टोपमा -

वह राजा यति के समान समरसङ्गत था । जैसे साधु समतारस को प्राप्त होते है वैसे ही वह राजा भी समर (युद्ध) सङ्गत था अर्थात युद्ध करने मे अति कुशल था । स्वर्ग मे रहने वाले देवो के समान वह राजा सुधा रस हित था । जैसे देव सदा सुधा (अमृत) रस के ही पान करने के इच्छुक रहते हैं वैसे ही यह राजा भी सुधा रस हित था, अर्थात् अपनी प्रजा की बुराईयों को दूर क र उन्हे सुखी बनाने वाला था । इन्द्र जैसे पृथुदानवारि है, पृथु (महा) दानवों का अरि है, उनका विनाशक है उसी प्रकार यह राजा भी पृथु-दान वारि अर्थात् अपनी प्रजा को निरन्तर सर्व प्रकार के महान् दानो की वर्षा के जल मे तृप्त करता रहता था । इस प्रकार वह धात्रीवाहन राजा नाना प्रकार की महिमा का धारण करने वाला था । (सु 1/39)

यमक -

अहो किलाश्लेषि मनोरमाया त्वयानुरूपेण मनो रमायाम् ।
जहासि मत्तोऽपि न किन्तु माया चिदेति मेऽत्यर्थमकिन्नु मायाम् ऽ
तमन्यचेतस्कमवेत्य तस्य सकल्पतोऽनन्यमना वयस्य ।
समाह सद्य कपिलक्षणेन समाह सद्य कपिल क्षणेन ॥३/३८-३९॥

सुदर्शन का उत्तर सुनकर अन्य मित्र तो उसके कथन को सत्य समझकर चुप रह गये ।

किन्तु कपिल नाम का प्रधान मित्र उसके हृदय की बात को ताड गया और बन्दर के समान चपलता के साथ मुस्कराता हुआ बोला - अहो मित्र। मुझसे भी मायाचार करना नहीं छोडते हो । मै तुम्हारे अनमनेपन का रहस्य समझ गया हूँ किन्तु हे दु खी मित्र मेरी बुद्धि तुम्हारी माया को जानती है, तुम्हारा मन रमा(लक्ष्मी) के समान सुन्दर उस मनोरमा मे आसक्त हो गया है, सो यह तो तुम्हारे अनुरूप ही है ।

यहाँ पर 'मनोरमा' 'मनोरमा' तथा कपिलक्षणेन' 'कपिल क्षणेन' के रूप मे शब्दो की आवृत्ति हुई है किन्तु अर्थ पृथक् पृथक् है, अत यमक अलकार है ।

भाग्य मे ऐसे अति दुर्लभ मनुष्यभव को पाकर जो मनुष्य विषयो के पीछे दौडता है, वह ठीक उस पुरुष के सदृश है जो अति दुर्लभ चिन्तामणि रत्न को पाकर उसे काक उडाने के लिए फेक देता है । (सु 9/52)

यहाँ दो वाक्यो मे परस्पर सम्बन्ध की स्थापना हेतु उपमा की कल्पना की गयी है अत निदर्शना अलङ्कार है।

परिसंख्या -

उस चम्पानगर में पलाश शब्द का व्यवहार केवल किंशुक (ढाक) के वृक्ष मे ही था और कोई मनुष्य पल अर्थात मांस का खाने वाला नहीं था । मधुप शब्द का व्यवहार केवल द्विरेफ वर्ग अर्थात भ्रमर समुदाय मे ही होता

था और कोई मनुष्य वहाँ मधु और मद्य का पान करने वाला नही था । वि-रोध-पन वहाँ पिंजरो में ही था , क्योंकि उनमें ही वि अर्थात पक्षी अवरुद्ध रहते थे आर वहाँ किसी मनुष्य में विरोधभाव नहीं था । अपवादिता वहाँ निरोष्ठ्य काव्यों में ही थी अर्थात जो विशिष्ट काव्य होते थे, उनमें ही ओष्ठ से बोले जाने वाले प, फ आदि शब्दों का अभाव पाया जाता था, अन्यत्र कहीं भी अपवाद अर्थात लोगो की निन्दा बुराई आदि दृष्टिगोचर नहीं होते थे । (1/33)

स्वभावोक्ति

खेलते-खेलते जब बालक रोने लगता तो माता भूखा समझकर उसे शीघ्र स्तनो से लगाकर दूध पिलाने लगती। दूध पीते -पीते जब वह अर्द्धनिद्रित सा हो जाता तो माता धीरे से पालने मे सुलाने के लिए ज्यो ही उद्यत होती, त्यो ही वह फिर जाग जाता और फिर सुलाने के लिए ज्यो ही उद्यत होती, त्यो ही वह फिर जाग जाता और फिर सुलाने पर भी नहीं सोता । (3 36)

अर्थान्तरन्यास-

जिनमती के उदर की इधर जैसे जसे वृद्धि हो रही थी, वैसे वैसे ही उधर उसके कठोर स्तनो के मुख पर कालिमा आ आकर अपना घर कर रही था । जो लोग स्वभाव से कठोर होते हैं वे दूसरे के अभ्युदय को कैसे सह सकते है ?

यहाँ पर विशेष कथन का सामान्य से समर्थन है अत अर्थान्तरन्यास अलकार है । इसी प्रकार अन्य अलङ्कारो का भी सुदर्शनोदय मे प्रयोग हुआ है । (सु 2/44)

सुदर्शनोदय पर पूर्ववर्ती ग्रन्थो का प्रभाव

नलचम्पू और सुदर्शनोदय -

महाकवि त्रिविक्रम भट्ट ने नलचम्पू के प्रथम उच्छ्वास के प्रारम्भ मे कहा है

उत्फुल्लगल्लैरालापा क्रियन्ते दुर्मुखै सुखम् ।
जानाति हि पुन सम्यक् कविरेव कवे श्रमम् ।। नलचम्पू १/२३।।

दुर्मुख जन भले ही गाल फुलाकर निन्दा की बातें करते रहते है पर कवि के श्रम का ठीक-ठीक कवि ही जानता है । सुदर्शनोदय में इस प्रकार के दुर्मुख व्यक्ति को नपुसक कहा है -

विचारसारे भुवनेऽपि सा ऽलङ्कारामुदारा कविता मुदाऽलम् ।
निषेवमाणे मयि यस्तु पण्ड स केवल स्यात् परिफुल्लगण्ड ।।सुदर्शनोदय १/७।

विचारशील मनुष्यो के विद्यमान होने से सारयुक्त इस लोक मे अलकार युक्त नायिका के समान विविध प्रकार के अलकारो से युक्त इस उदार कविता का भली भाँति सहर्ष सेवन करने वाले मुझ पर केवल वही पुरुष अपने गाल फुलावेगा चिढ कर निन्दा करेगा, जो कि पण्ड (नपुसक-पक्ष मे कविता करने के पुरुषार्थ से हीन) होगा अन्य लोग तो मेरे पुरुषार्थ की प्रशसा ही करेगे ।

नलचम्पू के प्रथम उच्छ्वास के २६ वे पद्य म आर्यावर्त की स्त्रियो को पीनपयोधरा कहा गया है । सुदर्शनोदय के द्वितीय सर्ग मे पाँचवे पद्य म जिनमती सेठानी को पीनपयोधरा कहा गया है1 । इसी पद्य मे 'समेखला' शब्द का प्रयोग हुआ है । नलचम्पू के प्रथम उच्छ्वास के ७ वे पद्य मे यह शब्द अन्य अर्थ मे प्रयुक्त है ।

नलचम्पू के प्रथम उच्छ्वास के 13वे पद्य मे महाभारत की कथा को कान्ता के समान आह्लादित करने वाली कहा है

सुदर्शनोदय के द्वितीय सर्ग के 21वे पद्य मे कहा गया है कि अविवाहित युवती पृथ्वी पर किसे कौतुक उत्पन्न नहीं करती है ?

शिशुपालवध और सुदर्शनोदय - शिशुपालवध सर्ग - 12 श्लोक - 69 मे महाकवि माघ ने शिशुपाल के पूर्वजन्मो का स्मरण करते हुए उसे शेलूष (नट) की भूमिका वाला बतलाया हे -

सुदर्शनोदय मे भी अज्ञ प्राणी की भूमिका शैलूष के समान बतलायी है यथा - इस संसार में अज्ञ प्राणी शरीर में ही जीवपने की कल्पना करके बार बार विपत्तियाँ को प्राप्त हाता है जैसे रंङ्गभूमि पर अभिनय करने वाला अभिनेता नये नये स्वागं धारण कर विश्राम को नहीं पाता है । (सु 9/50)

नैषधीय चरित और सुदर्शनोदय

नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग के चोथे पद्य मे विद्या के १४ भेदों का कथन किया हैं

अधीतिबोधचरण प्रचारणैर्दशाश्चतस्त्र प्रणयन्नुधिभि ।
चतुर्दशत्व कृतवान् कुत स्वय ने वेधिविद्यासु चतुर्दशस्वयम् ।।
नैषधीयचरितम् १/४।।

सुदर्शनोदय के षष्ठ सर्ग के सारङ्ग नामक राग मे भी विद्या को 18 रूपा मे विस्तृत बतलाया है ।

नैषधीय चरितम् के प्रत्येक सर्ग के अन्त मे सर्ग की समाप्ति सूचक पद्य जिसमे सर्ग की सूचना प्रत्येक सर्ग अनुसार भिन्न-भिन्न हे इस प्रकार प्राप्त हाता हे -

श्री हर्ष कविराट् गजिमुकुटालङ्कारहीर सुत
श्रीहीर सुषुवे जितेन्द्रियचय आमल्लदेवी च यम् ।
तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या महा ।
काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गो ऽयमादिर्गत ।।
नैषधीयचरितम् १/१४५।।

इसी के अनुकरण पर आचार्य ज्ञानसागर ने सुदर्शनादय के प्रत्येक सर्ग के अन्त मे एक पद्य दिया है, जिसका उदाहरण इस प्रकार है

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुज स सुषुवे भूरामलेत्याह्वय ।
वाणीभूषणवर्णिन घृतवरी देवी च य धीचयम् ।
तेन प्रोक्त. सदर्शनोदय इह व्यत्येति सख्यापको ।
देशोदेर्नृपतेश्च वर्णनमय सर्गो ऽयमाद्यो ऽनक ।।
सुदर्शनोदय १/४६।।

कुमारसम्भव और सुदर्शनोदय -

महाकवि कालिदास ने कुमार सम्भव के प्रथम पद्य में हिमालय को पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित बतलाया है ।

महाकवि ज्ञानसागर कृत सुदर्शनोदय मे चम्पापुरी के जिनालयो की पृथ्वी और आकाश को नापने वाले मानदण्ड के रूप मे उत्प्रेक्षा की गयी है । (सु 1/36)

कुमार सम्भव के सर्ग 3 श्लोक 67 के अनुसार - जैसे चन्द्रोदय होने से अत्यन्त गम्भीर समुद्र भी क्षुब्ध हो उठता है, उसी प्रकार शङ्कर जी भी (काम के सम्मोहन नामक बाण के चढाने के कारण) कुछ अधीर हो उठे और बिम्बाफल के समान लाल ओठ वाली पर्वत के मुख की ओर अपने नेत्रों को लगा दिया ।

इसी उपमा को आचार्य ज्ञानसागर ने इस प्रकार ग्रहण किया है ।

समुद्रदत्त सेठ को इस प्रकार सहसा आया हुआ देखकर सुदर्शन का पिता वृषभदास सेठानी चन्द्रमा को देखकर समुद्र के समान अति हर्षित हो अतिथिसत्कार करने के लिए तत्परता के साथ उठ खडा हुआ । (सु 3/44)

अभिज्ञान शाकुन्तलम् और सुदर्शनोदय -

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के पचम अङ्क में एक पद्य है -

रम्याणि वीक्ष्यमधुराश्चनिशम्य शब्दान् पर्युत्सुकोभवति यत्सुखितोऽपि जन्तु ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ॥ अभि शाकु ५/२॥

रमणीय वस्तुओं को देखकर और मधुर शब्दो को सुनकर एक प्रकार से सुखी व्यक्ति भी जो उत्कण्ठित अर्थात् बिछोह की अनुभूति मे व्याकुल होने लगता है तो वह निस्सन्देह अनजाने ही अपने हृदय मे सस्कार के रूप में विद्यमान जन्मान्तर के प्रणय सम्बन्धो को अपने चित्र मे स्मरण करता है ।

इसी बात को आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने सीधे सादे शब्दो मे इस प्रकार कहा है - प्राय

प्राग्भवभाविन्यौ प्रीत्यप्रीती च देहिनाम् ।सुदर्शनोदय ४/१६॥

अर्थात् जीवो के परस्पर प्रीति और अप्रीति प्राय पूर्वभव के सस्कार वाली होती है ।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे मारीच ऋषि शकुन्तला को 'पोलोमी सदृशी भव' कहकर इन्द्राणी के सदृश होने का आशीर्वाद देते हैं । सुदर्शनोदय मे सुदर्शन सेठ को इन्द्र और उनकी पत्नी मनोरमा को पौलोमी (इन्द्राणी) के समान समय बिताने वाला बतलाया है

पौलोमी शतयज्ञतुल्यकथनौ काल तकौ निन्यतु ॥४/४७॥

अभिज्ञान शाकुन्तल मे भी दुष्यन्त को चन्द्रमा अपनी शीतल किरणो से आग बरसती हुयी दिखाई देती है तो सुदर्शनोदय मे कामपीडित रानी को उत्तम उत्तम कोमल पुष्पो से सजी सेज भी अग्नि कणो से व्याप्त सी प्रतीत होती है (सु 6-/17)

रघुवश महाकाव्य और सुदर्शनोदय -

रघुवंश मे राजा दिलीप नन्दिनी गाय का छाया के समान अनुगमन करते हैं । सुदर्शनोदय मे मनोरमा भी सेठ सुदर्शन का छाया के समान अनुगमन करती है यथा -

छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत् ।रघुवश २/६
छायेव तसाऽव्यनुवर्तमान तथैव सम्पादित सम्विधान ।सुदर्शनोदय ८/३३॥

सुदर्शन के साथ वह मनोरमा भी छाया के समान उसका अनुसरण करती रही और उसके समान ही उसने भी उसी के साथ (अभिषेक, पूजन,स्तवन आदि) सर्व विधान सम्पादित किए । पुन सुदर्शन के मुनि बन जाने पर उन्हीं योगिराज के वचनों को प्रमाण मानकर उसने भी अपने नारी जन्म को इस प्रकार (आर्यिका) बनकर सार्थक किया ।

मनुस्मृति और सुदर्शनोदय -

मनुस्मृति में कहा है -

दृष्टिपूत न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाच मन· पूत समाचरेत् ।मनुस्मृति ६/४६॥

देखने पर पवित्र भूमि पर पैर रखे, वस्त्र से (छानकर) पवित्र जल पिये । सत्य से पवित्र वाणी बोले तथा मन से पवित्राचरण करे ।

सुदर्शनोदय में भी कहा है वस्त्रपूत पिबेज्जलम् (४/४३) अर्थात् वस्त्र से पवित्र जल पिये ।

छहढाला और सुदर्शनोदय -

छहढाला में मिथ्यादृष्टि की मान्यता के विषय मे कहा है -

मै सुखी दु खी मै रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव ।

.. . .

आतमहित हेतु विराग ज्ञान ते लखैं आपको कष्टदान ॥ छहढाला २/४-६॥

इसी अभिप्राय को सुदर्शनोदय सर्ग 4 श्लोक 7-8 मे इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है

यह संसारी प्राणी अपने द्वारा ग्रहण किये हुए इस शरीर को और शरीर मे सम्बन्ध रखने वाले (माता-पिता, पुत्रादि कुटुम्बी जन) को अपना मानकर शेष सर्व को अन्य समझता तहै । जिन्हे वह अपना समझता हे, उनके प्रति राग करता है और जिन्हें पर समझता है, उनसे विरक्त होता है । इस प्रकार मोहवश ससार मे एक शरीर को छोडता और दूसरे को ग्रहण करता है । छहढाला मे शरीर की अशुचिता के विषय मे कहा गया है

पल रुधिर राध मल थैली कीकस वसादि ते मैली ।
नवद्वार बहे घिनकारी अस देह करै किम यारी ॥
छहढाला ५/८॥

इसी अभिप्राय को सुदर्शनोदय कार ने इस प्रकार व्यक्त किया है .

यह शरीर निरन्तर अपने नौ द्वारो मे मल को बहाता रहता है माता-पिता के रज और वीर्य के सयोग से उत्पन्न हुआ है घृणा का स्थान है और इसके गुप्त अङ्ग वस्तुत दुर्गन्धिमूलक मूत्रेन्द्रिय रूप हैं । लोगो ने कामान्ध होकर इसे केवल सौन्दर्य का तूल दे रखा है । (सु 7 27)

छहढाला मे मुनि के समताभाव के विषय मे कहा है

अरि मित्र महल मसान कचन काच निदन थुति करन ।
अर्घावतारन असि प्रहारन मे सदा समता धरन ॥
छहढाला ६/६॥

इसी अभिप्राय के पोषक कुछ पद्य सुदर्शनोदय मे आए हैं, जिनका अर्थ है, -

जो गले में पहिराए गए हार मे और गले पर किए गए तलवार के प्रहार मे समान बुद्धि रखते हैं, जो सम्पत्ति और विपत्ति दोनो मे ही हर्षित रहते हैं, जो मृत्यु को नवजीवन मानते हैं, ऐसे सुदृष्टि वाले साधुजन इस पृथ्वीतल पर सदा जयवन्त रहे ।

जो (नवयुवती) स्त्री के परम अनुराग को तृण के समान नि सार समझते हैं, जो शत्रु को भी मित्र रूप मे आह्वानन करते हैं, जो कचन (सुवर्ण) पर भी अपनी चित्तवृत्ति को कभी नहीं जाने देते हैं, जिनकी प्रवृत्ति प्राणिमात्र के कल्याणरूप है ऐसे सयमी साधुजनों को हमारा नमस्कार है । (सु 9 - 4 से 6)

छहढाला मे दृष्टिभेद की अपेक्षा आत्माओ को तीन प्रकार का कहा है-

बहिरातम अन्तर आतम परमातम जीव त्रिधा है ।
श्री अरहंत सकल परमातम लोकालोक निहारी ॥ (छहढाला - ३/४-५)

सुदर्शनोदय में भी तीनों प्रकार की आत्माओं का कथन आया है -

आत्मा तीन प्रकार की होती है- बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। इनमे से बहिरात्मा तो देह के ही अपनी आत्मा कहता है । विवेकवान् पुरुष शरीर से भिन्न चैतन्य धाम को अपनी आत्मा मानता है । जो अन्तरात्मा बनकर देह से भिन्न निष्कलक सत् चित् और आनन्द रूप परमात्मा का ध्यान करता है, वह स्वय शुद्ध बनकर परमात्मतत्त्व को प्राप्त होता है अर्थात् परमात्मा बन जाता है । सुदर्शनोदय 9/72। छहढाला में गृहित मिथ्याचारित्र के प्रसङ्ग मे कहा गया है कि आत्मा और अनात्मा के ज्ञान बिना जितनी भी क्रियायें हैं, वे शरीर और इन्द्रियों को क्षीण करने वाली हैं। आत्म अनात्म के ज्ञान हीन, जे जे करनी तन करन छीन (छहढाला २/१४) सुदर्शनोदय मे कहा है कि आत्मा और अनात्मा के यथार्थ परिज्ञान सहित धर्म रूप रत्न का प्रकाश आप लोगों को प्रमोदवर्द्धक हो ।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार और सुदर्शनोदय - रत्नकारण्ड श्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र ने प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का लक्षण करते हुए कहा है कि चतुर्थी और अष्टमी के दिन चारो प्रकार के आहार का त्याग और पर्व के दिनों के अतिरिक्त अन्य दिनो मे भी इच्छानुसार चारो प्रकार के आहार का त्याग करने को प्रोषधोपवास जानना चाहिए । (र श्रा 106)

सुदर्शनोदय मे एक धाबिन क्षुल्लिका के व्रत धारण कर लेती है वह अन्य व्रतो के पालने के साथ अष्टमी और चतुदशी के पर्व पर उपवास रखती है और तीनो काला में सामायिक करती है -

तत्त्वार्थ सूत्र और सुदर्शनोदय -

तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय मे एक सूत्र है -

मैत्री–प्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥7॥

सत्त्व, गुणाधिक क्लिष्यमान और अविनय जीवो मे क्रम से मैत्री प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भाव आना चाहिए। यही बात सुदर्शनोदय मे कही गयी है-वह (क्षुल्लिका) सदा प्राणिमात्र मे मैत्रीभाव रखती थी कष्ट मे पीडित प्राणी पर करुणाभाव रखती हुई उसके दु ख को दूर करने का प्रयत्न करती रहती थी,गुणी जनो को देखकर अतीव हर्षित हो उत्सव मनाया करती थी और विपरीत विचार वाले व्यक्तियो पर माध्यस्थ भाव रखती थी । (सुदर्शनोदय 4 35)

तत्त्वार्थ सूत्र के चोथे अध्याय का प्रथम सूत्र है- "देवाश्चतुर्णिकाया" । यही पक्ति नवम सर्ग के ४२ वे पद्य मे देवाश्चतुर्णिकाया इस रूप मे प्रयुक्त की गई है ।

सागार धर्मामृत और सुदर्शनोदय -

सागार धर्मामृत के दूसरे अध्याय मे आया है -

न हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यार्षं धर्मे प्रमाणयन् ।
सागसोऽपि सदा रक्षेच्छक्तया किं नु निरागम· १/८१

किसी भी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिए, इस प्रकार आचार्य प्रणीत शास्त्र को प्रमाण मानता हुआ धर्मनिमित्त सदा अपनी शक्ति अनुसार कर अपराधी की भी रक्षा करे, परन्तु निरपराधी की तो कहना क्या अर्थात् उनकी विशेष रूप से रक्षा करे ।

सुदर्शनादय मे यह विषय इस प्रकार मिलता है

मा हिंस्यात्सर्व भूतानीत्यार्षं धर्मे प्रमाणयन् ।
सागसोऽप्यङ्गिनो रक्षेच्छक्त्या किं नु निरागस ॥

(सुदर्शनादय ८/८१ इसी प्रकार दोनो ग्रन्थो की कुछ अन्य पक्तियाँ मिलती जुलती है । यथा -

पत्रशांक च वर्षासु ना ऽऽहर्तव्य दयावता ॥ सुदर्शनोदय ९/५६॥
वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नाहरेत् ॥ सागार धर्मामृत ५/१८॥

सागार धर्मामृत के प्रथम अध्याय के ११वें पद्य में श्रावक को अन्योन्यानुगुणं, त्रिवर्गं भजन् अर्थात् परस्पर विरोधरहित धर्म, अर्थ और काम इन तीन वर्गों को से वन करने वाला कहा गया है । सुदर्शनोदय में मनोरमा और सुदर्शनोदय को 'अन्योन्यानुगुणैकमानस' अर्थात एक दूसरे के गुणों में अनुरक्त चित्त कहा है ।

सागार धर्मामृत में मास[1], नवनीत[2], अगालित जल[3], पचोदुम्बर फल[4], तथा रात्रि भोजन[5], आदि का निषेध किया गया है । सुदर्शनोदय में भी इनका निषेध[6] मिलता है ।

महावीराष्टक और सुदर्शनोदय -

महाकवि भागेन्दु ने महावीराष्टक में कहा है -

यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दुर्दर इह, क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधि· ।
लभन्ते सद्भक्ता शिवसुखसमाजं किमु तदा, महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥

इस संसार मे जिन की पूजा के भाव से प्रमुदित मन वाला मेढक क्षण भर मे गुणों के समूह से समृद्ध और सुख की निधि स्वरूप देव हुआ था तो यदि अच्छे भक्त मोक्ष सुख के समूह को प्राप्त करते हैं तो उसमें आश्चर्य की क्या बात है अर्थात् कोई आश्चर्य नहीं है ।

सुदर्शनोदय के अष्टम सर्ग मे जिन पूजन के माहात्म्य को बताते हुए कहा है -

जिन पूजन की महिमा प्रसिद्ध है । अत मन, वचन, काय, से जिनपूजन करना चाहिए । प्रमोद से एक मेंढक कमल की कली को मुख में दबाकर भगवान् की पूजन के लिए चला, किन्तु मार्ग में हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया और स्वर्ग सम्पदा को प्राप्त हुआ । जब मेंढक जैसा एक क्षुद्र प्राणी भी पूजन के फल मे स्वर्ग-लक्ष्मी को भोक्ता बना तब जो भव्यजन विधिपूर्वक जिनपूजन करेगा, वह परम आनन्द का पात्र क्यों नहीं होगा ?

इसी कथा की ओर सागार - धर्मामृत अ 2 छन्द 24 में भी सङ्केत किया गया है, -

श्रावक नित्यमहादि पूजाओं के द्वारा शक्त्यनुसार अर्हन्तदेव की पूजा करे, क्योंकि संकल्प मात्र से भी उन अर्हन्त देव की पूजा करने वाला मेंढक के समान स्वर्ग में महर्द्धिक देवों के द्वारा पूजा जाता है ।

भक्तामर स्तोत्र तथा सुदर्शनोदय -

आचार्य मानतुङ्ग कृत भक्तामर स्तोत्र में कहा गया है -

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ, स्तोतु समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ॥
बाल विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्बमन्य क इच्छति जन· सहसा गृहीतुम् ॥३।

देवों ने जिनके पादपीठ की पूजा की है, ऐसे हे जिनेन्द्र ! बुद्धि के बिना भी लज्जारहित मैं स्तुति के लिए उद्यतबुद्धि हो रहा हूँ, क्योंकि बालक को छोड़ और कौन व्यक्ति जल में स्थित चन्द्रमा के बिम्ब को यकायक पकडना चाहता है ।

---

1 सा ध 2/6-20　　2 वही 2 92　　3 वही 2/14　　4 वही 2/13
5 वही 2/14　　6 सुदर्शनोदय 8/55-57

उपर्युक्त पद्य के उत्तरार्द्ध में निर्दिष्ट उदाहरण को महाकवि ज्ञानसागर ने भी अपनाया है - (सु 8/21)

आश्चर्य है कि सुख, जो अपनी आत्मा का गुण है, उसे यह संसारी प्राणी मोह के वश होकर बाह्य वस्तओं में देखता हैं ? जैसे कोई भोला बालक आकाशगत चन्द्रबिम्ब को भ्रम से जल में अवस्थित समझकर उसे पकड़ने के लिए छटपटाता रहता है । (सु 8/21)

वैराग्य शतक और सुदर्शनोदय -

वैराग्य शतक मे जैन साधु की प्रशंसा इस प्रकार की गयी है

पाणि पात्र पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं
धन्या सन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म्म निर्मूलयन्ति ॥५०॥

यहाँ एक अन्य पद्य मिलता है

शय्या शैलशिला ।

इसी प्रकार का एक पद्य ज्ञानार्णव (5/28) में मिलता है -

उपर्युक्त तीनो पद्यो के अभिप्राय को ग्रहण किए हुए कुछ पद्य सुदर्शनोदय के नवम सर्गमें प्राप्त होते हैं -

धरैवशय्या गगनं वितानं स्वबाहुमूलं तदिहोपधानम् ।
मृगोदया वा सहचारिणस्तु धन्य स एवात्मसुखैक वस्तु ॥९/३॥

पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, आकाश ही जिनका चादर है, अपनी भुजायें ही जिनका तकिया है, और रात्रि ही जिनके लिए दीपक है, ऐसे पल प्रशम भाव को धारक गुण गरिष्ठ साधुजन चिरकाल तक जीवे । इभक्षा ही जिनके उदरमाण का साधन है, अपने हस्तल ही जिनके भोजन पात्र है, जो अनुदिष्टि भोजी हैं, अपना शरीर ही जिनका कुल परिवार है, जहाँ पर बैठ जाँय, वहीं जिनका देश हैं , निराशता ही जिनकी आशा या सफलता है, ऐसे साधुजन मेरे हर्ष के लिए होवें । अहो, अरण्य प्रदेश में ही जिन्हें नगर का बोध हो रहा है । गिरि की गुफा ही को जो भवन मान रहे हैं, ऐसे सहज आत्मसुख का उपभोग करने वाले वे साधुपुरुष धन्य हैं ।

विश्वलोचनकोष और सुदर्शनोदय - सुदर्शनोदय के प्रथम सर्ग में ३२वे पद्य मे चम्पानगर के वणिक् पथ की विश्वलोचन कोष से तुलना की गयी है । इसके अतिरिक्त विश्वलोचन कोष के अनेक शब्दो का सुदर्शनोदय मे प्रयोग हुआ है।

क्षत्रचूड़ामणि और सुदर्शनोदय - क्षत्रचूडामणि का भी सुदर्शनोदय पर प्रभाव है । जैसे मदीय रुसल रुपममीमासे यमङ्गना । पश्यन्ती पारवश्यान्धा ततो याग्यात्मने ऽथवा ॥क्ष चू ७/४०॥

मदीयं रुसलं देह दृष्ट्वेयं मोहमागता । दुरन्तु रितेनाहो चेतनास्या समावृता । सुदर्शनोदय ७/२२

अन्य ग्रन्थ और ग्रन्थकार - सुदर्शनोदय के षष्ठ सर्ग में अनेक ग्रन्थ और ग्रन्थकारो का आचार्य ज्ञानसागर ने नामोल्लेख किया है ।

उस शास्त्र रूप उद्यान मे सदा प्रेमपूर्वक मेरी दृष्टि संलग्न रहे, जिस उद्यान में तत्त्वार्थ सूत्र जैसे नाम वाले उत्तम वृक्ष विद्यमान हैं, जिनकी मृदुल सुखकारी छाया है और जिनकी अनेकों शाखायें चारो और फैल रही है, उसके लिए मेरा मन सदा उत्सुक रहता है । जिस तत्त्वार्थसूत्र पर अत्यन्त ललित पद वाली श्री पूज्यपाद स्वामी रचित सर्वार्थ सिद्धिकरी वृत्ति है और जिसे अत्यन्त मनन विचार पूर्वक आत्मसात करके अतुल कौतुक (चमत्कार) वाली महावृत्ति (राजवार्तिक) श्री अकलङ्कदेव ने रची है, जो कि निर्दोषबुद्धि वाले विद्वानो के द्वारा ही अध्ययन करने के योग्य है। जैसे एक महान् वृक्ष अनेकों पुष्पमयी लताओं और पक्षियों से व्याप्त रहता है । उसी प्रकार यह महाशास्त्र भी अनेकों टीकाओं और अध्ययन करने के योग्य है । जैसे एक महान् वृक्ष अनेकों पुष्पमयी लताओं और पक्षियों से व्याप्त रहता है । जिस श्रुत उद्यान

में श्री जिन सेनाचार्य से रचित महापुराण रूप महापादप भी विद्यमान है, जो कि दिगन्तव्याप्त कीर्तिमय है । उत्तम गमले के गुच्छों का आश्रय भूत हैं, विद्वज्जनरूप भ्रमरों से सेवित है और असि, मसी आदि षट्कर्म करने वाले गृहस्थों का जिसमें आचार विचार विस्तार से वर्णित है, उस श्रुत स्कन्ध रूप उद्यान में सर्वज्ञप्रतिपादित, सर्वकल्याणकारी शिवमार्ग की समन्तभद्राचार्य प्रणीत सूक्तियाँ विद्यमान हैं और शिवार्य आचार्य रचित सयम धारियों के लिए भगवती माता के समान परम हितकारी भगवती आराधना शिवमार्ग को दिखा रही है, उस शास्त्र रूप उद्यान में मेरी सदा सलग्न रहे।

मुहावरों का प्रयोग - काव्य मे चारुता लाने हेतु आचार्य ज्ञानसागर ने सुदर्शनोदय में मुहावरो की भी प्रयोग किया जैसे - सुगन्धयुक्ताऽपि सुगन्धमूर्ति ॥सुद १/३५॥ सोने में सुगध होना ।

चाकेव यद्दौत: - चूहे पर बिल्ली कूँदना ॥सुदर्शनोदय ७/५॥

लोकोक्ति का प्रयोग सुदर्शनोदय के अष्टम सर्ग में एक स्थान पर निम्नलिखित लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है ।

जिसके चरण चमडे की जूतियों से युक्त हैं, उसको उन काटो से क्या बाधा हो सकती है । सुदर्शनोदय में अनेक वृक्षो एव पादपों का वर्णन हुआ है, जो निम्नलिखित है - सहकार (६/३), पन्नग (६/११), मदन (६/२), कल्पांघ्रि (कल्पवृक्ष) -१/२०, नन्दपादप (कल्पवृक्ष)- ३/१४, सुरानोकहक (कल्पवृक्ष) -२/१५, पलाश (२/२७) सुद्र (२/३४) -कल्पवृक्ष, कष्णगुरु (५/७ पृ ८५) , चन्दन (५/७ पृ ८५) आम्र (५/८) नारङ्ग, (५/८), पनस (५/८), रम्भा (५/८), इक्षु (१/१६), कमल, कुन्द, चम्पा (५/४(साल ६/१, अञ्जन (६/१) कैरविणी [कमलिनी] (६/१८) तथा कुमुद्वती (६/२०) किशुक (१/३३), जम्बू (१/१९), जम्माल (१/१९), कदली(पृ १९६), करीर (९/१०) अम्बुज (८/२ पृ १५६)

सरोवर

पद्महृद (३/७)

(२/३४), विन्ध्यगिरि पर्वत (४/१७) मलयगिरि (काफी होलिका राग ५/२) उदयाद्रि (५/११)

पशु-पक्षी तथा अन्य जीवजन्तु

चटिका (७/३) सिह (६स्थायी/१) कवि (३/६) द्विजिह्व सर्प (१/२७) सर्प (१/30) द्विरेफ (भौंरा) मधुप (१/३३) झष (मीत) चातक, शलभ (१/४३) अहि (सर्प) (२/८) मयूर (मोर) (१/४१) अलि (भौंरा) (२/३४) भृङ्ग (भौंरा) (२/४६), हस (३/३) कोक (३/४)ताम्रचूड (मुर्गा)(३/४) विनताङ्गज (गरुड) (३/२८) सर्प (३/२८) कुक्कुर (४/१८) सक्ताक्षिका (भैंस) (४/२८), चकोर (५/४),केकि (मयूर) (५/४ श्यामकल्याण राग.) पिक, (६/४-सारङ्गराग), भुजग (७/१पृ १४०), बक (७/२ पृ १४१), गज (८/३पृ १५६) भेक (मेढक) (८/२ पृ १५६) खञ्जन (८/३०) श्वा (कुत्ता)(९/२६) महिषी (४/२७)

सुदर्शनोदय में उल्लिखित विभिन्न और वर्ग-सुदर्शनोदय में निम्नलिखित जातियां और वर्गों का उल्लेख हुआ है- वणिक (३/३४), रजक (४/२८)भिल्ल (४/२८),चाण्डाल (७/३६) गोप (४/२२), क्षुल्लिका (४/२९) धीवर (१/१),चेट (७/३) द्वा स्य (द्वारपाल या प्रतिहार) (७/३), भट (७/३५) वेश्या दास, (८/३६) श्रेष्ठी (५/६) शैलूष (नट) (९/५०), तात्रिक (९/८१) यति (२/३६) आर्या (आर्यिका) (९/७४)

सुदर्शनोदय का सन्देश- जैनधर्म पतित को पावन बनाने का धर्म है यह बात सेठ सुदर्शन के चरित्र से स्पष्ट होती है । पूर्वजन्म में वे एक भील थे। जन्तु वध करना उनकी जीविका थी। भील मरकर कुत्ता हुआ । कुछ शुभ होनहार के निमित्त से कुत्ता जिनालय के समीप मरा और किसी गुवाले मे यहा पुत्र हुआ । एक बार सरोवर मे से सहस्त्रपत्र वाले कमल को तोडते हुए उस गुवाले के लडके ने यह आकाशवाणी सुनी कि यह सहस्त्रदल कमल किसी बडे पुरुष को समर्पण करना, स्वयं उपभोगन करना । गुवालेके लडने ने सोचा हमारे नगर मे तो सेठ वृषभदास सबसे बडे आदमी

हैं, अतः वह कमल देने के लिए उनके पास पहुँचा और आकाशवाणी की बात कहकर वह कमल उन्हें देने लगा। किन्तु सेठ ने कहा कि मेरे से बडे तो इस नगर के राजा है उन्हें यह देना चाहिए ऐसा कहकर सेठ राजा के पास पहुँचा और सारी बात कह सुनायी । राजा ने कहा कि मुझसे क्या, तीनो लोको में सबसे बड़े जिनराज है, उन्हें यह समपर्ण करना चाहिए । राजा ने बडे धूमधाम से उस गोप बालक के हाथ से जिनदेव को वह कमल भेंट करा दिया। वृषभदास सेठ ने उस बालक को अपने यहां काम करने के लिए रख लिया । एक बार वन में शीतकाल के दिन उसमें रात भर ध्यानरत मुनि की शीतबाधा दूर करते हेतु आग जलाकर उनकी सेवा की । मुनि महाराज ने उसे प्रात 'णमोकार अरिहन्ताणं' यह मन्त्र दिया । वह प्रत्येक कार्य उस मन्त्र का स्मरण कर सम्पन्न करने लगा । एक बार उसकी एक भैंस सरोवर में प्रविष्ट हो गई । भैंस को निकालते हेतु वह सरोवर में कूदा । पानी में तीक्ष्ण काठ के आघात से वह तत्काल मर गया । और सेठ वृषभदास के यहाँ पुत्र हुआ । उसका नाम सुदर्शन रखा गया । उसने गृहस्थावस्था मे आजीवन एक पत्नी व्रत पालन किया और अनेक उपसर्गों को सह अन्त में मुनि बन मोक्ष प्राप्त किया ।

सुदर्शन की पत्नी मनोरमा की पूर्व जन्मो की कहानी आत्मोत्थान की कहानी है । धोबिन के जन्म में एक बार वह आर्यिकाओं के ससर्ग से क्षुल्लिका बन गयी । उसकी चर्या निर्मल हो गयी । जो धोबिन पहिले जल से लोगो के वस्त्र धोकर स्वच्छ किया करती थी । वही ज्ञानरूप जल से मन के मैल धोकर उसे स्वच्छ बनाने के लिए उद्यत रहती थी । वही क्षुल्लिका मरकर के सेठ सुदर्शन की पत्नी हुई । अन्त में उसने सेठ की मुनिदीक्षा के समय आर्यिका बनकर सद्गति प्राप्त की ।

देवदत्ता नामक वेश्या ने मुनि सुदर्शन के उपदेश से प्रभावित होकर आर्यिका के व्रत अङ्गीकार किए । आचार्य ज्ञानसागर का कहना है कि इस व्रत में लोहे की शलाका भी रसायन के योग से सोने की बन जाती है। अत निरन्तर सत्सङ्गति का लाभ लेना चाहिए और किसी को भी धर्म धारण करने के अयोग्य न समझकर उसकी धार्मिक क्रियाओ मे सहायक बनना चाहिए । जब धोबिन क्षुल्लिका बनकर और वेश्या आर्यिका के व्रत अगीकार कर आत्मकल्याण कर सकती हैं । तो सामान्य मनुष्य जैनधर्म अपनाकर आत्मकल्याण क्यों नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं । एक ब्रह्मचर्य व्रत का पूरी तरह पालन करने पर समस्त व्रतो का पूर्णतया पालन हो जाता है। अत ब्रह्मचर्य अवश्य पालन करना चाहिए ।

सुदर्शनोदय का सूक्ति वैभव- सुदर्शनोदय में महाकवि ज्ञानसागर ने अनेक सुन्दर सूक्तियो का प्रयोग किया है। जो द्रष्टव्य हैं -

करोत्यनूढा स्मयकौतुकं न ॥ २/२१॥
अविवाहित युवती पृथ्वी पर किसे कौतुक उत्पन्न नहीं करती हैं ?
स्वभावतो ये कठिना सहेर कुत परस्याभ्युदय सहेरन् ॥ २/४४
जो लोग स्वभाव से कठोर होते है वे दूसरे के अभ्युदय को कैसे सहन कर सकतें हैं ?
किमु बीजव्यभिचारि अङ्कुर ॥३/८ क्या अङ्कुर बीज से भिन्न प्रकार का होता है?
अहो श्रुता किं चन्द्रकान्ता न कलावता द्रुता ॥३/४१॥

कलावान् चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्तमणि द्रवित नन हुआ हो ऐसा क्या कभी सुना गया । अहो दुराराध्य ईयान् परो जन. ॥३/४२ सज्जनो की इष्ठवस्तु स्वयं ही फलित हो जाती है। धुर्मम्बुवाहायनक सपक्षी ॥४/२२ धर्मबुद्धिवाले जीव की कौन सहायता नहीं करता है ? जैसे जल की एक बिन्दु सीप के भीतर जाकर मोती बन जाती है और पारस पत्थर को योग पाकर लोहा भी सोना बन जाता है, उसी प्रकार सन्त जनों से सयोग से प्राणियों को भी अभीष्ट फलदायी महान् पद शीघ्र मिल जाता है । (4/30)

अपनी भलाई को चाहते हुए दूसरों की भलाई का भी ध्यान रखे । (4/44) को न मुह्यात् भूतले ॥६/१३ संसार में ऐसा कौन है जो भूलता न हो ।

निजपतिरस्तु तरां सति । रम्य कुलबालानां किंतु परेण ॥६/२३/१)

हे सति, कुलीन नारियो के तो निज पति ही सर्वस्व होता है, उन्हें पर पुरुष से क्या प्रयोजन है ? समस्ति यतात्मनो नूनं कोऽपि महिमूर्ध्नहो महिमा ८/११/१

निश्चय से इसी महीमण्डलपर जितेन्द्रिय महापुरुषों की कोई अपूर्व की महिमा है ।

दण्डं चेदपराधिने न नृपतिर्दद्यात्स्थिति का भवेत् ॥८/१४

यदि राजा अपराधी मनुष्य को दण्ड न दे तो लोक स्थिति कैसे रहेगी ।

लोके लोक स्वार्थभावेन मित्रं नोचेच्छुत्रु सम्भवेन्नात्र चित्रम् १/८/१६

इस संसार में लोग स्वार्थ साधन के भाव से मित्र बन जाते है और यदि स्वार्थसिद्धि संभव नहीं हुई तो शत्रु बन जाते हैं ।

वस्तुतस्तु मदमात्सर्याद्या· शत्रवोऽङ्गिन इति प्रतिपाद्या ॥८/१७

वास्तव में मद मात्सर्य आदि दुर्भाव ही जीवो के यथार्थ शत्रु हैं ।

हे दुरित विनाशेच्छुक महाराज । इस जगत् में जीवों के सुख और दु ख अपने ही द्वारा किए कर्म के योग से प्राप्त होते हैं । मिश्री का आस्वादन कर मुख मीठा होता है और मिर्च खाने पर मुख जलता है। (8/18)

ज्ञानी जल सम्पत्तियो के आने पर न हर्ष को प्राप्त होता है और न विपत्तियो के आने पर रचमात्र भी शोक होता है । किन्तु वह दोनों ही अवस्थाओ मे मध्यस्थ रहकर अपने जीवन के दिन व्यतीत करता है और अपनी शक्ति के अनुसार धर्म रूप तीर्थ की सेवा करता रहता है । (8/19)

मोहादहोपश्यति बाह्य वस्तुन्यङ्गीतिसौख्य गुणमात्मनस्तु ॥८/२१

आश्चर्य है कि सुख जो अपनी आत्मा का गुण है , उसे यह ससारी प्राणी मोह के वश मे होकर बाह्य वस्तुओ में देखता है ।

न नग्नभावोऽयमवाचि नार्या ॥८/३४

स्त्री के दिगम्बर दीक्षा का सर्वज्ञदेव ने विधान नहीं किया है ।

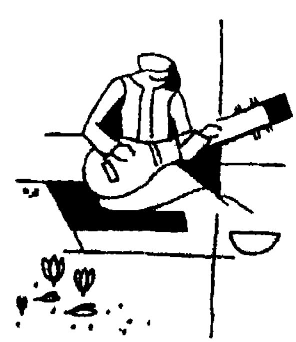
भोजन करने के पश्चात् उसके परिपाक के लिए जल का उपयोग करना अर्थात् पीना उचित हैं पर भोजन किए बिना ही उसका पीना क्या उचित है कहा जा सकता है ।

सुखी हड्डी को चबाने वाला कुत्ता अपने मुख में से निकले रक्त का स्वाद लेकर उसे हड्डी से निकला हुआ मानता है । (9/26)

अहो यह मोह का माहात्म्य है कि जिसके वश में हुआ यह जीव संसार मे यथार्थ मार्ग को देखता हुआ भी उसे प्राप्त नहीं करता है । (9/49) अनेक प्रकार के जन्म वाले इस संसार मे मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है । खैर बबूल आदि अनेक वृक्षो से व्याप्त वन में चन्दन वृक्ष का मिलना अति कठिन है । (9/51)

इस जगत् में लोहे की शलाका भी रसायन के योग से स्वर्णपने को प्राप्त हो जाती है । (9/51)

डॉ रमेशचन्द जैन
जैन मंदिर के पास बिजनौर (उ प्र)



गुणी-जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे,
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे ॥

लघुत्रयी में वर्णित सिद्धान्त मीमांसा

(सुदर्शनोदय, दयोदय भद्रोदय)

लेखकः डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

जैनधर्म एव सस्कृति के सस्कर्ता प्रज्ञा श्रुत सेवा की मूर्ति तत्त्वज्ञ मनीषी कविवर ब्र श्री भूरामल जी (परिवर्ती आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज) अध्यात्म तथा आगम के निष्णात विद्वान थे । इनके उदार एव गम्भीर चिन्तन ने नई तथा पुरानी दोनो पीढियो के विद्वानो को समानरूप से प्रभावित किया । संस्कृत और हिन्दी भाषा में इनकी विविध रचनाएं विविध विषयों को आधार बनाकर लिखी गयी हैं । संस्कृत में रचित महाकाव्य एवं प्रस्फुट रचना रचित प्रधान हैं । महापुरुषो के चरित वर्णन प्रसग में ही आगम और अध्यात्म सिद्धान्त को कुशलता के साथ स्थापित करना इनकी विशेषता है । आगम और अध्यात्म दोनो पद्धतियां भिन्न-भिन्न होने पर भी ब्र श्री भूरामल जी (आचार्य श्री ज्ञानसागर जी) के काव्यो में दोनो पद्धतियों का स्पष्ट दर्शन प्राप्त होता है । अज्ञान निवृत्ति के अर्थ किसी भी वस्तु का परिचय पाने के लिए जो कथन किया जाता है उसे आगम पद्धति कहते हैं । जीवन या आत्मतत्त्व सम्बन्धित हेयोपादेयता का विवेक कराने के लिए जो कथन किया जाता है । उसे अध्यात्म पद्धति कहते हैं । इन दोनो पद्धतियो का आश्रय कवि श्री ने प्राय अपने सभी काव्यो में लिया है । उनके विविध काव्यो सुदर्शनोदय, भद्रोदय (समुद्रदत्त चरित्र) और दयोदय काव्यों का चरित्र वर्णन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है । इन काव्यों के माध्यम से चारित्रोत्थान की शिक्षा दी गयी है। जीवन के विविध पक्षो को भी उदघाटित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया हे । काव्य विषयक सभी तत्त्वो को समाहित करते हुए सैद्धान्तिक विषयो को बडी सरलता के साथ उपस्थित किया गया है । ब्र श्री भूरामल जी के काव्यों में सिद्धान्त की प्रस्तुति मे यत्र-तत्र प्रगतिवादी दृष्टिकोण भी परिलक्षित होता है, जिमका उल्लेख आलेख मे स्थान स्थान पर किया गया है ।

लघुत्रयी के अन्तर्गत गृहीत सुदर्शनोदय काव्य ब्रह्मचर्य निष्ठा का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करने वाला है । इसका नायक सुदर्शन धीरोदात्त प्रकृति का विशिष्ट चरित्रवान् महापुरुष है । सुदर्शन के जीवन मे जैन आचार सम्बन्धी मभी गुणों का दर्शन होता है । सुदर्शन के लिए मुनिवर के द्वारा दिए उपदेशो मे कवि ने पूर्वजन्म के शुभ कर्मों के शुभ फल की प्राप्ति आदि का वर्णन करते हुए पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन किया है । उन्होंने कहा है-

हे वत्स त्वञ्च जानासि पुरुषार्थचतुष्टये ।
धर्म एवाद्य आख्यातस्तं विनाऽन्ये न जातुचित् । सुदर्शनोदय ४०/४ ।

अर्थात् हे वत्स यह तो तुम भी जानते हो कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों मे धर्म ही प्रधान है और इसीलिए वह सब पुरुषार्थों के आदि मे कहा गया है । धर्म पुरुषार्थ के बिना शेष अन्य पुरुषार्थ कदाचित् भी संभव नहीं है । उनका होना तो उसी के अधीन है ।

इस प्रकार धर्म को प्रधान बतलाते हुए जीवमात्र की रक्षा के उपदेश के माध्यम अहिमा व्रत, सत्य, अचौर्य परिग्रह परिमाणु और एकदेश ब्रह्मचर्य के परिपालन का सुदर्शन के लिए मुनिराज के सबोधन के माध्यम से अणुव्रतों का सरल रूप से प्रतिपादन सुदर्शनोदय मे अनूठा है । जैन धर्म के सामान्य नियम, अनामिष, भोजन, मदिरा त्याग और छने हुए जल का ग्रहण का उपदेश प्रभावक है । इसी प्रकार से भद्रोदय मे धरोहरण को पाप कार्य सिद्ध करते हुए अचौर्यव्रत का वर्णन महत्त्वपूर्ण है। दयोदय में धीवर के द्वारा सामान्य से नियम लेकर अहिंसा व्रत की परिपालन का चित्रण अपने आप में वैशिष्ट्य पूर्ण है ।

अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है, उसका सुदर्शनोदय, भद्रोदय, दयोदय तीनो ही काव्यों में विशिष्ट वर्णन है । मनुष्य जन्म की सार्थकता व्रत ग्रहण में ही है । समुद्रदत्त चरित्र में प्रतिपादन है कि जब रामदत्ता आर्यिका सिंह-चन्द्र मुनिराज की वन्दना कर गृहस्थावस्था के द्वितीय पुत्र पूर्ण चन्द्र के विषय में जिज्ञासा करती है । तब मुनीश्वर ने उसके पूर्वभव बताये और यह भी बताया कि मैं तुम्हारा ही पुत्र सिंह चन्द्र हूँ । तुमने आर्यिका दान्तमती के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर अपनी नारी पर्याय सफल बना ली है। दान आदि का भी विस्तार के साथ वर्णन श्रावक धर्म के परिपालन करने वालों के लिए महत्त्वपूर्ण है । श्रावको के लिए भक्ष्याभक्ष्य के विचार हेतु अनेक इन शास्त्रीय प्रसंगो को सुदर्शनोदय मे प्रतिपादित किया गया है । क्षुल्लिका के द्वारा भावना चिन्तन की प्रस्तुति मनोज्ञ है ।

सौहार्दभङ्गिमात्रेतु क्लिष्टे कारुण्यमुत्सवम् ।
गुणिवर्णमुदीक्ष्याऽणान्माध्यस्थ्यं च विरोधिषु ॥३५/४ सुदर्शनोदय॥

वह सदा प्राणिमात्र पर मैत्री भाव रखती थी । कष्ट से पीडित प्राणी पर करुणा भाव रखती हुई, उसके दु ख को दूर करने का प्रयत्न करती रहती थी । गुणीजनो को देखकर अतीव हर्षितहोकर उत्सव मनाया करती थी । और विरोधी विचार वाले व्यक्तियो पर मध्यस्थ भाव रखती थी ।

श्रावक धर्म के आचार पक्ष की प्रस्तुति के साथ ही अनेकान्त गुणस्थान, मार्गणास्थान, कर्मवाद आदि को बडी कुशलता के साथ समाहित किया गया है ।

श्रावकाचार, निरुपण मे कवि की कुशलता निश्चित ही श्लाघनीय है । श्रावक के प्रधानरूप से करणीय देवपूजा और दान का सुदर्शनोदय में वर्णन कर श्रावक बारहव्रतों को प्ररूपित किया है । बारहव्रतों के अन्तर्गत प्रोषधोपवास की विधि को पूर्णरूप से बताया है ।

स्यात् पर्वव्रतधारणा गृहिणां कर्मक्षयकारणात् ॥ स्थायी॥
उपसहृत्य च करणग्रामं कार्या स्वात्मविचारणा ॥१॥
गुरु पदयोर्मदयोग त्यक्त्वा प्राड् निशि यस्योद्धरणा ।
षोडशयाममितीद यावच्छ्रीजिन नामोच्चारणात् ।
अतिथिसत्कृति कृत्वाऽग्रदिने भूरापादितपारणा ॥४॥

कर्मो का क्षय करने के निमित्त गृहस्थो को पर्व के दिन उपवास व्रत की गुरु चरणो मे जाकर धारणा करना चाहिए । तदनन्तर अपनी इन्द्रियों को विषयो से सकुचित कर अपने आत्मस्वरूप का विचार करे । सर्व प्रकार से आरम्भ अहकार आदि पाप योग को और चतुर्विध आहार को त्यागकर पर्व की पूर्व रात्रि में पर्व के दिन और रात मे ओर अगले दिन से मध्यान्ह काल तक सोलह पहर श्री जिनदेव के नामोच्चारण से बिताकर पहले अतिथि का आहार दान से सत्कार कर स्वय पारणा स्वीकार करे ।

अतिथि सत्कार के विषय मे दयोदय चम्पू का उद्धरण विशेष प्रभावित करता है । कविवर ने अतिथि स्वरुप को बतलाते हुए कहा है ।

अतिथि सत्करणं चरण व्रते गुणसमुद्धरण जगत· कृते ।
भगवदादरण च महायते निखिलदेवमयोऽतिथिरुच्यते ॥ दयोदय ४/४ ॥

अतिथि का सत्कार करना सम्पूर्ण सदाचारो में मुख्य सदाचार है । ससार भर के लिए गुणप्रकट करने वाला है और भगवत् स्मरण का सबसे अच्छा माध्यम है, क्योंकि अतिथि सम्पूर्ण देवस्वरूप है ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं ।

दयोदयचम्पू में स्पष्ट रूप से कहा है कि गृहस्थ का घर साधुओं के समागम से ही -उनके पदार्पण से ही पवित्र बनता है जैसे कि बसन्त के आगमन से वन ।[1] सोमदत्त एवं विषा ने मुनिवर का नवधाभक्ति पूर्वक पडगाहन किया आहारदान में ईषद् उष्ण अन्न मुनिराज को प्रदान किया । आहारग्रहण करते ही आकाशङ्गण में देवलोगों ने जयध्वनि पूर्वक दाता एवं गृहीता की महती प्रशंसा की । दानधर्म का पूर्ण समर्थन श्रावकाचार वर्णन में प्रभावक है ।[2]

काफीं होलिकाराग में एक गीतिका के माध्यम से एक भक्त की पूजा भावना को बतलाते हुए कवि श्री ने लिखा है- श्री जिन भगवान् की पूजन करने का कब वह सुअवसर मुझे प्राप्त हो, जबकि मैं गंगा के निर्मलजल को स्वर्ण घट मे भरकर लाऊ और जिनमुद्रा के चरणो में विसर्जन कर अपने कर्म-कलंक को बहाऊँ ? कब मैं मलयागिरि चन्दन लाकर और कपूर केशर के साथ घिसकर उसे जिनमुद्रा के चरणों में विसर्जन करूँ ताकि मेरे सर्व विघ्न विनष्ट हो जाये । कब मैं मोतियो के समान उज्ज्वल तन्दुलों को लेकर श्रद्धापूर्वक भक्तिभाव से जिनमुद्रा के सामने पुञ्जचढाकर स्वर्गलक्ष्मी का पति बनू ? कब मैं कमल, कुन्द चमेली, चम्पा आदि के सुगन्धित पुष्प लाकर निरहंकारी बन विनयभाव के साथ जिनमुद्रा के चरणो में अर्पण करुं और सदा के लिए सौभाग्यशाली बनूं ? कब मैं षड् रसमयी नाना प्रकार के व्यञ्जन और अमृतपिण्ड को लेकर जिनमुद्रा के आगे अर्पण करूँ जिससे कि मैं भूख के वश में न रहू । कब मैं शुद्ध घृत कपूर या रत्नमय दीपक लाकर जिनमुद्रा के आगे जलाऊं, जिससे कि मेरे मन का सब अन्धकार विनष्ट हो और ज्ञान का प्रकाश हो । कब में कृष्णागुरु चन्दन कर्पूरादिकमयी दशाङ्गी धूप जलाकर जिनमुद्रा के आगे सुवासना करुं और अदृष्ट की छाया -को कर्म के प्रभाव को दूर करूँ । कब मैं आम, नारगी, पनास, केला आदि उत्तम फल उदारभाव से जिनमुद्रा के आगे समर्पण करूँ, जिससे कि मेरी असफलता का विनाश हो और प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त हो । कब में जल चन्दन, अक्षत, पुष्प, माल, नैवेद्य, दीप धूप और फल को एकत्रित कर उनका अर्घ बनाकर जिनमुद्रा के आगे अर्पण कर अनर्घ पद (मोक्ष) को प्राप्त करूँ । इस प्रकार श्री जिननाथ की प्रतिमा के पजा-विधान से मनुष्य नाना प्रकार की आकुलता व्याकुलताओं के विनाश को प्राप्त होकर सर्व प्रकार के उत्सव का स्थान बन जाता है ।[3]

उक्त पूजन विधि के प्रतिपादन से यह स्पष्ट है कि ग्रन्थकार को वर्तमान मे चल रहे तेरह या बीम पथ का आग्रह नहीं था, जो प्राच्य पद्धति है, वही इष्ट थी ।

जिनेन्द्र ही यथार्थ देव हैं अन्य नहीं । जिनेन्द्र भगवान निष्काम होने पर भी ससारी जीवो के अन्तस्तम के अपहरण करने वाले हैं । अन्य देव अपनी अपनी प्रशंसा करने वाले है, जो मान्य नहीं है । स्वालम्बन का उपदेश देने वाले सहज ज्ञान स्वाभाविक सुन्दर वेश के धारक जिनेन्द्र आप ही शान्ति के देने वाले हो, हे लोकमान्य आपकी शिक्षा परीक्षा प्रधान है । जिनेन्द्र प्रभू की आज्ञा है कि बिना सोचें समझे किसी की बात स्वीकार मत करो[4] । परीक्षण कर अगीकार करो। सम्यक्त्व के निमित्तभूत देव शास्त्र गुण के प्रति पूर्ण श्रद्धान की अनिवार्यता दर्शायी गयी है । उनकी मति विश्वस्त थी कि जिनेन्द्र नाम स्तवन से पापों का क्षय अवश्य होता है । अत सुदर्शनोदय में वे लिखते हैं-

सस्मर्यता श्री जिनराजनाम तदेव नश्चेच्छित पूर्तिधाम ।
पापापहारीति वयं वदाम· सम्विघ्नबाधामपि संहराम ॥

अर्थात् श्री जिनराज का नाम ही हमे स्मरण करना चाहिए , वही पापो का अपहारक, सब विघ्न बाधाओं का सहारक और इच्छित अर्थ का पूरक है ।

जिनेन्द्र की वाणी ससार परिभ्रमण को छुडाने वाली है । वाणी पौद्गलिक है । वह जीव की उपकारक कैसे हो सकती है । वर्तमान में एकान्तवादियों का पुरजोर प्रचार चल रहा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं

1 दयोदय चम्पू श्लोक 18 लम्ब 7   2 वही पृष्ठ 116, 118   3 1-10/5 सुदर्शनोदय   4 सुदर्शनोदय 3-4 अध्याय 5

कर सकता है । एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कोई भी प्रभाव नहीं पडता । इसका स्पष्ट निषेध कवि श्री द्वारा प्रस्तुत एक द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ उपकार्य उपकारक प्रसगों से हैं । उन्होंने कहा है-

मतिजिर्नस्येव पवित्ररूपा बभूव नाभिभ्रमणान्धकूपा ।
सधर्मिणी तस्य वणिग्वरस्य कामोऽपि नामास्तु यदिङ्ग वश्य ।।सुदर्शनोदय ४/२।

उस सेठ वृषभदास की सेठानी का नाम जिनमति था, तो वह जिन भगवान् की मूर्ति के समान ही पवित्र रूप वाली थी । दोष रहित थी । जिनभगवान की मति ससार परिभ्रमण रुप अन्धकूप का अभाव करती है । और सेठानी की नाभि दक्षिणावर्त भ्रमण के लिए हुए कूप के समान गहरी थी । जैसे जिनमत के अभ्यास से काम वासना मिट जाती है, वैसे ही सेठानी की चेष्टा से कामदेव उसके वश में हो रहा था ।

कवि ने आचार्य कुन्द-कुन्द[1], कार्तिकेय[2], योगीन्द्र देव[3], शिवार्य[4] आदि द्वारा प्रतिपादित निमित्त नैमित्तिक संबध का पूर्ण रूप से अपने काव्यो में आश्रय लिया है । सुदर्शनोदय में वृषभदास सेठ की सहधर्मिणी के स्वप्नो के फल के चित्रण में निमित्त नेमित्तक संबन्ध स्पष्ट रूप से विद्यमान है ।

वार्बिन्दुरेति खलु शक्तिषु मौक्तिकत्वं लोहोऽथ पार्श्वदृषदाऽञ्चति हेय सत्वम्।
सत्सम्प्रयोगवशतोऽङ्गवता महत्त्व, सम्पद्यते सपदितद्वदभीष्टकृत्वम् ।। ३०/४

जिस प्रकार जल की एक बिन्दु सीप के भीतर जाकर मोती बन जाती हे और पारस पाषाण का योग पाकर लोहा भी सोना बन जाता है, उसी प्रकार मन्त जनो के सयोग से प्राणियो के भी अभीष्ट फलदायी महान् पद शीघ्र मिल जाता है ।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणमन में किचित् मात्र भी सहायक नहीं है, इस आशका को उदाहरण निराकृत करने हेतु भद्रोदय (समुद्रदत्त चरित्र) का विशेष उल्लेख प्रस्तुत है -

अचेतन कर्म च जीवबद्ध फलप्रदानाय समस्तु नद्धम् ।
कथ न भुक्ताशनवद्विवेकिन्यतोऽयमगी जगतीतलेऽकी ।१३/८

जीव जिस कर्म को बांधता है, उपार्जन करता है तो स्वय कर्म अचेतन होते हुए अपने आप इस जीव को अपना फल कैसे दे सकता है किन्तु विचार करने पर ही उसका समाधान हो जाता है । जैसे हम लोग भोजन करते हैं, उसका ठीक समय पर परिपाक होना शुरु होकर नियत काल तक उसका वैसा ही असर हम लोगो के लिए होता है । जैसे तीव्र मन्द मध्यम जठराग्नि होती है, उसी मात्रा में वह ग्रहण करके पचाती है और रस रक्तादिरूप यथोचित रीति से विभक्त होकर हम लोगो को वैसा ही फल दिखाती है । इसी प्रकार जिस तीव्र मन्द या मध्यम कषायभाव से यह जीव कर्म वर्ग या समूह को ग्रहण करता है, वह यथोचित ज्ञानावरणादि के रूप में विभक्त हो करके वैसा ही अपना प्रभाव इस आत्मा पर डालता है, जिससे यह संसारी जीव दु:खी होता है ।

कर्म पौद्गलिक हैं, उनका जीव पर क्या प्रभाव पडता है अथवा जीव को कर्म कहा-कहा भटकाते हैं, इसका प्रतिपादन योगीन्दु देव कृत परमात्म प्रकाश में इस प्रकार किया है कि ज्ञानावरणादि कर्म बलवान् है, बहुत हैं जिनका विनाश अशक्य है, चिकने हैं, भारी हैं, और वज्र के समान अभेद्य हैं । वे ज्ञानादिगुण से चतुर जीव को खोटे मार्ग में पटकते हैं । 1 यही सैद्धान्तिक प्रस्तुति समुद्रदत्त चरित्र में भी द्रष्टव्य है -

---

(1) समयसार २७८, २७९ गाथा
(2) कार्तिकेअनुप्रेक्षा २११
(3) परमात्मप्रकाश २/७८
(4) मूलराधार १६२१

अतोभवेन्नूतन कर्मबन्ध यस्योदये सन्मधुजोऽयमन्ध. ।
करोति दुष्कर्म ततः कुबुद्धिरुदेति यावन्न समेति शुद्धिम् । १२/८

अहंकार और ममकार रूप परिग्रह परिमाण के द्वारा ही इस आत्मा के साथ आगे के लिए नवीन कर्मो का बन्ध होता रहता है और जब उन कर्मों का उदय होता है, उस समय वह आत्म विचारहीन अन्धा बन जाता है जिससे अनेक निकृष्ट कार्य करने के लिए तत्पर होता है, उससे इसकी बुद्धि और भी आगे के लिए विकृत होती है । जब तक पूर्व ही से शुद्धि को प्राप्त नहीं होती है ।

समुद्रदत्त चरित्र के अष्टम सर्ग में कविवर अपराजित मुनिवर के द्वारा चक्रायुध को सबोधन कराते हुए कर्मसिद्धान्त को प्रस्तुत करते हैं । जिनेन्द्र भगवान् ने मूलत जीव और अजीव दो द्रव्यों को बतलाया है । अजीव के धर्म, अधर्म, काल, आकाश और पुद्गल पाच भेद हैं । आकाशद्रव्य तो रगभूमि का कार्य करता है, कालद्रव्य नाना प्रकार की चेष्टा कराने वाला है, अधर्मद्रव्य पर्दे का काम करते हुए ठहरा देने वाला है । धर्मद्रव्य पुन क्रिया शुद्ध करने वाला है । जीव और पुद्गल ये दोनों आपस मे मिलकर एक दूसरे के रुप को बदलकर स्वाग भर करके नाटक खेलने वाले हैं। जीव और पुद्गल मिलकर सृष्टि उत्पन्न करते हैं । जीव मे उपयोग नाम का गुण है और वह पूर्ण गलत स्वभाव वाले पुद्गल नाम के अजीव के साथ मे सम्बन्ध प्राप्त किए हुए है । इसी से जन्ममरण रूप ससार बना हुआ है । ससार में जीव को घुमाने वाला कर्म है, वह घाति अघाति रूप होता है, घाति कर्म के ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय चार भेद हैं । जो ज्ञान को न होने दे, उसे ज्ञानावरण, जो दर्शन को न होने दे उसे दर्शनावरण, जो शक्ति को रोके उसे अन्तराय और जो इस आत्मा के आत्मतत्त्व को बिगाडने वाला हो कुछ से कुछ कर देने वाला हो, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं । यह चतुर्थ मोहनीय कर्म बडा प्रभावशाली है, जिससे कि यह आत्मा अपने आप को भूलकर अन्य में अपनापन मानने लग रहा है । प्रथम गोत्रकर्म आत्मा को नीचा ऊचा कहलवाता है। वेदनीय कर्म भली बुरी लगने वाली वस्तुओं का योग कराता है । नामकर्म शरीर के अगोपाग रचना में सहकारी होता है । आयुकर्म औदारिकादि शरीर में रोके रहता है ।[1]

मोह कर्म मे अहकार की उत्पत्ति होती है, जिससे यह जीव शरीर को ही आत्मा समझता है । यही मिथ्यात्व नामक अन्तरग परिग्रह है । ममकार रूप बाह्यपरिग्रह पर वस्तुओं का योग कराता है । इन अहकार कर्मो का बन्ध होता रहता है । कर्मोदय मे कुकर्म आदि करने मे प्रवृत्ति करता है । कृतकर्म के फल की प्राप्ति नियम मे होती है, इसी को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्राणधारी ससारी जीव के कर्तव्य पथ में उसके स्वभाव को बदलने के लिए भले ही और कितने ही कारण कलाप आ खडे हो जावे परन्तु भला अथवा बुरा तो उसी के किए हुए अच्छे या बुरे कर्म के अनुसार ही होगा ।[2]

कर्मफल भोगने मे जीव की परतत्रता का यह रहस्य है कि जीव की अनिच्छा से कर्म-परमाणुओ का शुभाशुभ परिणाम रुक नहीं सकता वह तो प्रत्येक दशा मे उसे भोगना ही पडता है । सुदर्शन मुनि राजा को सबोधन करते हुए कहते हैं

सुख च दुख जगतीह जन्तो स्वकर्मयोगाद् दुरितार्थमन्तो ।
मिष्ट सितास्वादन आस्यमस्तु तिक्तायते यन्मरिचाशिनस्तु ॥ सुदर्शनोदय १८/८ ।

हे दुरित - (पाप) विनाशेच्छुक महाराज इस जगत् मे जीवो के सुख और दुख अपने ही द्वारा किये कर्म के योग से प्राप्त होते हैं । देखो मिश्री का अस्वादन करने पर मुख मीठा होता है और मिर्च खाने वाले का मुख जलता है ।

कर्मवाद स्वीकार करता है कि प्रत्येक आत्मा योग्य साधन अपनाने पर परमात्मा पद को पा सकता है । भव्य आत्मा यदि अहिसा सयम तप की त्रिवेणी मे स्नान करले तो मुक्ति उससे दूर नहीं रहती । कर्म सिद्धान्त उपस्थापन

1 समुन्द्रदत्त चरित्र 1-12 सर्ग 8

2 स्वकृत सत्कृत दुष्कृत सुस्थिते· प्रभवतस्त्रिजगत्सुहिताहिते । सहजमुत्कथित तु विकारिण पथिलसुन्तु तरामसुधारिच ॥ दयोदय

के साथ ही निमित्त नैमित्तिक रूप से एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ कर्तव्य वर्णन का अति विस्तार के साथ वर्णन मिलता है । समुद्रदत्त चरित्र मे दशकरण को भी सक्षिप्त रूप से उपस्थित किया गया है । उन्होंने बताया है कि कर्म के प्रभाव को कम करना अपकर्षण, बढा देना उत्कर्षण परिवर्तन का नाम सक्रमण है (1) जीव के बांधे हुए सत्तागत कर्म में ये सब दशाएं परिणामो के अनुसार होती रहती हैं, जिसमें कर्मों का कभी तीव्र और कभी मन्द उदय होता है । आगे कहा है कर्मों का परिपाक भी दो तरह से होता है, एक तो समयानुसार कर्म आकर अपना फल देता है, उसे तो उदय कहते हैं उसे दूसरा कर्म को जबरन उदय में लाकर उसका फल भोगा जाता है, उसका नाम उदीरणा है । बलात् कर्म को उदय मे लाकर तथा कर्मोदय के अनुसार अपने उपयोग को न बिगाडते हुए ही उस कर्म के फल को भोग डालना सो उदयाभाव क्षय कहलाता है, ऐसा करने से आगे के लिए बन्ध बहुत कम होता है । उसमे फल देने की शक्ति उत्तरोत्तर कम होती रहती है । अन्त मे बिलकुल कर्मों का अभाव होकर यह जीव जन्ममरण से रहित हो जाता है जो कि इस आत्मा के प्रयत्न का फल है ।

इस प्रकार के कर्म सिद्धान्त का तीनो काव्यों मे सामान्य वर्णन प्राप्त होता है किन्तु समुद्रदत्त चरित्र में विशेषता है ।

कुछ विशिष्ट सैद्धान्तिक विषयों को कथा प्रवाह में बड़ी कुशलता के साथ समाहित किया है तथा दयोदयचम्पू में दैववाद के महत्त्व को दृष्टि मे रखकर कवि ने कहा है- मनुष्य सदा नुकसान से बचकर मुनाफा चाहता है, अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा करता है । करना ही चाहिए किन्तु उसका किया कुछ नहीं होता होता वही है जो कि दैव के विचार मे आया करता है । सासारिक सभी कार्यों मे दैव के आगे मनुष्य नपुसक है अकर्मण्य है, दैव से विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता ।

सुदर्शनोदय मे शरीर के प्रति घृणा के भावो का चित्रण वैराग्य का सम्पोषक है ।

समुद्रदत चरित्र में अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग की अवस्थाओ का सोदाहरण, चित्रण महत्त्वपूर्ण है। रत्नत्रय का वर्णन सामान्य रूप से प्रस्तुत है । इसी प्रसंग मे कवि एक उदाहरण के माध्यम से विशेष सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं जैसे श्रीभूति नामक मत्री का असत्य का आश्रय लेने उसे पतन हुआ इस श्रीभूति को मिथ्यात्व की उपमा दी है । यह नियम है कि सम्यग्दर्शन से च्युत जीव सासादन में पहुँचकर नियम से मिथ्यात्वगर्त में पतित होता ही है । इस सैद्धान्तिक विषय की उदाहरण के साथ प्रस्तुति कितनी उत्तम है

यथैव सासादनत सुदृष्टे र्मिथ्यात्वयोगोवलयेऽत्रसृष्टे ।
तत्पत्तन प्राप च भद्रमित्र श्रीभूतिना योगमवाप तत्र ।।समुद्र २४/२।।

जिस प्रकार इस धरातल पर सम्यग्दृष्टि जीव का सासादन गुणस्थान मे पहुँचकर फिर मिथ्यात्व से सबध हो जाया करता है उसी प्रकार उस भद्रमित्र लडके का उस सिहपुर पहुँचकर उसी श्रीभृति नामक ब्राह्मण के साथ सयोग बना ।

समुद्रदत्त चरित्र मे ही एक प्रसग है कि वज्रसेन नाम का एक व्यक्ति महाकच्छ की पुत्री प्रियङ्गु, श्री से विवाह करना चाहता था किन्तु महाकच्छ ने अपनी बेटी को ऐरावण विद्याधर को सौंप दी, तब वह व्यक्ति मुनिदीक्षा लेकर कठोर तपस्या करता है । तपस्या काल मे कुछ मनुष्य उसे पत्थरा से पीटते है तब उसके क्रोधकषाय की तीव्र उत्पत्ति होती है, जिसका परिणाम उसके बाये कन्धे से तैजस पुतला निकला ।

संसार स्वरूप दर्शन कराते हुए लिखा है कि मनुष्य जन्म एक विशिष्ट मार्ग है, जिसमें ठीक प्रयत्न किया जाय तो संसार का अन्त किया जा सकता है किन्तु इसमे भी इन्द्रिय विषयरूप लुटेरे अपना अड्डा जमाये हुए हैं उनसे बचकर पार हो जाना सम्यग् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्ररूप रत्नत्रय के धारक इस जीवात्मा के लिए सरल कार्य नहीं है जब तक की वह त्यागरूप कवच पहिनकर अपने आपको सुरक्षित न रखे ।

जैनशासन में त्याग की मुख्यता है उसी का प्रतिपादन कवि को विशेषरूप से इष्ट है । त्याग की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है-

एकदेश परित्यागात् सुगति श्रयते पुमान् ।
अपि पूर्णपरित्यागाद पुन र्भवताय हो ॥

अर्थात् एक देश परित्याग से मनुष्य को सुगति की प्राप्ति होती है और पूर्ण परित्याग से अपुनर्भव की । त्याग वर्णन प्रसंग मे तपश्चरण का प्रतिपादन पूर्ण सिद्धान्त सम्मत है ।

मुनिवर के उपदेश से प्रभावित होकर सोमदत्त ने दिगम्बर दीक्षा धारण की, जहा मयूरपिच्छी और कमण्डलु के अतिरिक्त तन्तु भी शरीर के साथ नहीं रहता । इसी प्रसंग में कविवर लिखते हैं-

''विषा बसन्तसेने एकमेवशाटकमात्रविशेष मार्याव्रत मङ्गीचक्रतु ।'' अर्थात् विषा और बसन्त सेना वेश्या ने एक साडी वस्त्र स्वीकार कर सभी परिग्रह का परित्याग करके आर्या का व्रत स्वीकार किया । यहा आचार्य जिनसेन प्रभृति आचार्य परम्परा का अतिक्रमण परिलक्षित हो रहा है क्योंकि उन्होनें निर्ग्रन्थ मुनि और आर्यिका दीक्षा का अधिकार मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीन वर्णों को दिया है । आचार्य प्रणीत किसी भी सिद्धान्त / पुराण / अध्यात्म ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख नहीं है, जिसमे वेश्या को आर्यिका की दीक्षा हुई हो किन्तु दयोदय चम्पू का उक्त उल्लेख मूल परम्परा सिद्धान्त से सगति नहीं रखता ।

कुछ जैनेतर दार्शनिक शूद्र तथा नारी को धर्मशास्त्र पढ़ने या सुनने का भी अधिकार नहीं देते । स्त्री, वैश्य और शूद्र को पाप योनि कहते हैं । वशिष्ठ स्मृति में ता यहा तक कहा है कि शूद्र को ज्ञान नहीं देना चाहिए, न यज्ञ का उच्छिष्ट, न होम से बचा हुआ भाग तथा न ही धर्म का उपदेश देना चाहिए । यदि कोई शूद्र को धर्मोपदेश और व्रत का आदेश देता है तो वह शूद्र के साथ असवृत नामक अन्धकारमय नरक मे जा पडता है ।

दर्शनशास्त्र के मर्मज्ञ कविवर ने सुदर्शनोदय मे भील भीलनी कुत्ते आदि ने भी धर्मप्रभाव से कल्याण किया, ऐसा दर्शाया है । यह भी लिखा है कि एक धोबिन भी धर्ममार्ग पर आगे बढती है- उस भील की भीलनी मरकर भैंस हुई । पुन वह भैंस मरकर इसी महान् नगर मे धोबी की लडकी हुई । वहा पर उसके पुण्य योग से उसका आर्यिकाओ के संघ के साथ समागम हो गया, जिसका परिणाम बडा सुखकर हुआ, वह धोबिन क्षुल्लिका बन गयी ।[4] क्षुल्लिका आरम्भिक और अनारम्भिक अर्थात साङ्कल्पिक पाप मे दूर रह कर और दया, क्षमा, शील, सन्तोष आदि अनेक गुणो की अधिकारिणी बनकर श्वेत साडी के समान निर्मल बन गई ।[5] सत्य धर्म का पालन करती है, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य का धारण और परिग्रह का परिमाण कर पञ्चाणुव्रतों का विधिवत् पालन करने की अधिकारिणी हुई ।[6]

यहा काव्यकार ने शूद्र को धर्माचरण करने का उत्तम निर्देश किया, किन्तु आचार्य परम्परा असत् शूद्र को क्षुल्लक क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण का अधिकार नहीं देती है । नियम लेकर धर्ममार्ग पर बढने का आचार्य प्रणीत ग्रन्थो में प्राय उल्लेख है ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कविवर ने श्रावकाचार सम्बन्धी सभी नियमो और व्रतों का सरलतम रीति से इन तीनो काव्यो में समायोजन किया ही है साथ में इनकी महान् कुशलता का परिणाम ही है कि दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक गूढ विषयों का काव्यो के नायक नायिकाओं के चरित्र का अग बनाकर सुगम शैली में प्रतिपादन कर अध्येताओं को सहज ग्राह्य बना दिया । सर्वसाधारण पाठक सैद्धान्तिक गूढ रहस्यो से परिचित हो सके । लघुत्रयी में अन्तर्भूत काव्यो से निश्चित ही विद्वज्जगत् और सर्व सामान्य को विशेष शिक्षाएं प्राप्त हुई है । चारित्रोत्थान को प्रशस्त मार्ग मिला है।

डॉ श्रेयासकुमार जैन
बडौत (उ प्र)

लघुत्रयी में प्रतिपादित सामाजिक जीवन

डॉ. जयकुमार जैन

बीसवीं शताब्दी का सस्कृत वाङ्मय के विकास में महत्वपूर्ण अवदान है । इस काल मे शताधिक श्रेष्ठ काव्यों की रचना हुई । महाकवि आचार्य ज्ञानसागर महाराज के काव्य इनमें सर्वातिशाली हैं । उन्होने संस्कृत भाषा मे दार्शनिक कृतियों के साथ विविध विधाओं में काव्यों का भी प्रणयन किया । जयोदय एव वीरोदय उनके विशालकाय महाकाव्य हैं। सुदर्शनोदय एवं भद्रोदय (समुद्रदत्तचरित) नवसर्गात्मक अल्पकाय महाकाव्य हैं। दयोदय चम्पूकाव्य तथा मुनिमनोरञ्जनाशीति मुक्तक काव्य है ।

प्रस्तुत निबन्ध में हम लघुत्रयी (सुदर्शनोदय, भद्रोदय एवं दयोदय) में प्रतिपादित सामाजिक जीवन का विवेचन करेंगे ।

कवि का मानसपटल दर्पण के समान प्रवाहग्राही होता है अतएव उसकी कृतियो में तत्कालीन समाज की परिस्थितियों एव घटनाओं की झाँकी दिखलाई पडती है । यद्यपि यह सत्य है कि कवि अपने इतिवृत्त में जिस देश, नगर या पात्रो का चित्रण करता है, वे कवि के समय के हों । यह आवश्यक नहीं है फिर भी उनके प्रतिपादन मे तत्कालीन समाज का प्रतिबिंब होता है । लघुत्रयी के आन्तरिक अनुशीलन से तत्कालीन सामाजिक जीवन के निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं ।

वर्णव्यवस्था

जैन धर्म अपने मूल रूप मे स्मृत्यनुमोदित वर्णव्यवस्था का समर्थक नहीं है । उसमें वर्णवाद तथा जातिवाद के प्रति विरोध की भावना दृष्टिगत होती है । आचार्य रविषेण ने पद्मपुराण में जातिवाद को अहेतुक बतलाते हुए किसी भी जाति को निन्दनीय नहीं माना है । उन्होंने कहा है-

'न जातिर्गर्हिता काचित् गुणा. कल्याणकारणम् ।
व्रतस्थमपि चाण्डालं त देवा: ब्राह्मण विदु:' ।।[1]

महाकवि ज्ञानसागर भी जातिवाद के विरोधी कहे जा सकते हैं । वीरोदय का सत्रहवाँ सर्ग उनकी जातिवाद विरोधी भावना को पुष्ट करता है । उनका स्पष्ट अभिमत है कि मांसभक्षी ब्राह्मण निन्द्य है और सदाचारी शूद्र वन्द्य है । वे दयोदय मे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि हीन व्यक्ति भी सज्जनो के सङ्ग से पवित्र बन जाता है ।

'सत्सङ्गत. प्रहीणोऽपि पूततामेति भूतले ।
मुक्तिकोदरसम्प्राप्तो वार्विन्दुर्मौक्तिकायते '।।[2]

यत जैन धर्म अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति के कारण वैदिक धर्मावलम्बियो के साथ मिलजुलकर रहा - परिणामत सोमदेव आदि कुछ जैनाचार्यों ने लोकव्यवहार के लिए स्मृत्यनुमोदित वर्ण विभाजन स्वीकार किया है ।[3] यही नहीं, आचार्य जिनसेन ने क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों की उत्पत्ति ऋषभदेव तीर्थंकर द्वारा और ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति उनके पुत्र भरत द्वारा प्रतिपादित की है ।[4]

लघुत्रयी में ब्राह्मणादि चारो वर्णों का उल्लेख मिलता है, ब्राह्मणों का समाज में सम्माननीय स्थान था । वे यज्ञोपवीत धारण करते थे ।[5] तथा स्नानादि से निवृत्त होकर देवपूजन करते थे ।[6] किन्तु कुछ श्री भूति (सत्यघोष) सदृश ब्राह्मण भी थे, जो 'मुख में 'राम' बगल मे छुरी' वाली कहावत को चरितार्थ करते थे । इन्हें समुद्रदत्तचरित्र में महाकवि ने जो धान्य में काग (कावा) की उपमा दी है ।[7] ब्राह्मण लोग वेदसूक्तों का पाठ करते हुए वर्णित किये गये हैं ।[8] क्षत्रिय

साहसी होते थे, कायरता उनका दुर्गुण माना जाता था[9] वैश्यो का तो लघुत्रयी में बहुश उल्लेख हुआ है । इस वर्ण मे प्राय व्यापारी वर्ग अधिक था । बाजार को वणिक्पथ शब्द का उल्लेख इस बात का समर्थन करता है ।[10] वैश्यो के लिए श्रेष्ठिवर्य का उल्लेख उनकी सम्मानीयता को प्रकट करने में समर्थ है । वैश्यकुलावतंस श्रेष्ठिवर्य वृषभदास चुगलखोरी से रहित, सद्‌गुणी, न्यायपूर्वक आजीविका चलाने वाला, दानी तथा निराभिमानी था । वह सहस्त्रो गाय- भैंस आदि पशुओ का स्वामी था ।[11] वैश्य पिता द्वारा अर्जित सम्पति का उपयोग करके जीवन निर्वाह करना उचित नहीं समझते थे तथा वे व्यापार करने हुते देश-देशान्तर मे गमन करते थे । भद्रमित्र एक ऐसा ही वणिक् पुत्र है, जो ऐश्वर्यशाली होने पर भी धनार्जन हेतु रत्नद्वीप व्यापारार्थ जाता है ।[12] शूद्रो को यद्यपि हीन समझा जाता था तथापि उन्हें धर्मपालन का अधिकार था । यही कारण है कि सुदर्शनोदय में नीचकुलोत्पन्न धोबिन भी आर्यिकाओं के समागम से क्षुल्लिका बनकर कुलीन पुरुषो द्वारा पूजनीय कही गई है । जो पहिले जल से लोगो के वस्त्रो को धो-धोकर स्वच्छ करती थी, वही अब क्षुल्लिका बनकर ज्ञान रूपी जल के द्वारा अपने मन के मैल को धो-धोकर निर्मल बनाने के लिए उद्यत रहती थी ।[13]

लघुत्रयी मे चतुर्वर्ण में अन्तर्भूत विभिन्न जातियो का भी वर्णन आया है । इनमें ग्वाला[14] भील[15], धोबी[16], धीवर[17], रंगरेज[18], तथा चाण्डाल[19] प्रमुख हैं । इस प्रकार महाकवि ज्ञानसागरकालीन समाज मे वर्ण व्यवस्था एव जाति व्यवस्था के प्रभाव का पता चलता है । धर्मपालन का अधिकार सब वर्णों की सभी जातियो को स्वीकार किया गया है ।

आश्रम व्यवस्था

लघुत्रयी में अध्ययन मे पता चलता है कि महाकवि की आश्रमव्यवस्था मे आस्था थी तथा तत्कालीन समाज में भी कहीं- कहीं आश्रम-व्यवस्था विद्यमान थी । आश्रमव्यवस्था में ब्रह्मचर्य प्रथम आश्रम है । विवाह योग्य होने के पूर्व ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक माना जाता था । गुणपाल सेठ की विषा नामक कन्या गृहस्थाश्रम मे कुमारावस्था लाघने पर ही प्रवेश योग्य मानी जाती है ।[20] गृहस्थावस्था में परमात्मा का स्मरण, अतिथि स्वागत आदि आवश्यक माना गया है ।[21] गृहस्थो को आजीविकावान् अवश्य होना चाहिए । समुद्रदत्तचरित मे कहा गया है कि जो गृहस्थ आजीविका से हीन होता है, वह सदा मन मे चिन्ता के कारण जलता रहता है, जिससे प्रजापीडक वह नरक कुत्ते के समान परमुखापेक्षी नहीं होना चाहिए ।[22] वानप्रस्थों की प्रशसा करते हुए कहा गया है कि ये दुनियादारी की बातो से बचकर परोपकार में लगे रहते हैं, अत वे मध्यम पात्र हैं । साधु उत्तमपात्र हैं तथा शेष जघन्य पात्र हैं । पापी लोग अपात्र कहे गये हैं।[23] सन्यास आश्रम का प्राय वर्णन हुआ है । जब सुदर्शन संसार से उदासीन हो जाता है तो वह विमलवाहन योगीश्वर से सन्यास (निश्चेल आचार) को ग्रहण कर लेता है ।[24]

पारिवारिक सम्बन्ध- परिवार शब्द परि+वृ धातु का निष्पन्न रूप है, जिसका अर्थ है समूह । अर्थात परिवार व्यक्तियो का समूह या सगठन है । अत परिवार के व्यक्तियो मे सम्बन्ध होना स्वाभाविक हे । लघुत्रयी के अनुशीलन से हमे परिवार के विविध घटको -दाम्पत्य, पितृ-सन्तति, सोदर सपत्नी, ससुर-दामाद तथा साला -बहनोई आदि के सम्बन्धो की जानकारी मिलती है । पत्नी पति का अग समझती थी । गुणपाल की पत्नी गुणश्री इसी कारण पति द्वारा दामाद सोमदत्त के मारने के लिए बनाई गयी योजना में भी साथ देना स्वीकार कर लेती है । वह कहती है

'सोमशर्माङ्गनेवाह साहाय्य ते तनोमि भो ।
नारी नामार्द्धमङ्ग चेन्नरस्य भवति प्रभो ।।[25]

सन्तान माता पिता को अत्यन्त आनन्द दायक होती है । बच्चे भी माता पिता की आज्ञा का पालन करते थे। यही कारण है कि 'विषा सन्दातव्या' पढ़कर महाबल अपनी बहिन का विवाह सोमदत्त से कर देता है । वह 'पितुराज्ञा शिरोधार्या' मानता है ।[26] भद्रमित्र जब व्यापारार्थ परदेश जाने लगता है तो पुत्रस्नेह के कारण पिता उसे रोकने का भरसक प्रयत्न करता है ।[27] महाकवि ने सोदर स्नेह के भी मधुर प्रसगो का वर्णन किया है। सपत्नी का चित्रण संस्कृत साहित्य मे प्राय मधुर नहीं है किन्तु दयोदय मे सपत्नी के सम्बन्ध का बड़ा ही मधुर चित्रण हुआ है । राजा जब अपनी पुत्री का विवाह सोमदत्त से कर देता है तो सोमदत्त की पत्नी विषा कहती है कि आज तक मैं अकेली थी, अब एक और

एक मिलकर एकादशी के समान पुण्यसम्पादिनी बन जाऊँगी ।[28] दयोदय में महाकवि ने जहाँ उक्त मधुर सम्बन्धों का चित्रण किया है, वहाँ सुसुर गुणपाल का दामाद सोमदत्त की हत्या का विचार जैसा कटु एवं निन्द्य सम्बन्ध का भी वर्णन किया है ।[29] साले - बहनोई महाबल एव सोमदत्त के मधुर सम्बन्धों का वर्णन निश्चित रुप से अनुकरणीय है[30] इस प्रकार लघुत्रयीमें पारिवारिक सदस्यों में मधुर और कटु उभयविध सम्बन्धों का चित्रण किया गया है ।

विवाह

समान गुणों वाले वर-कन्या के विवाह को उचित माना गया है तथा अनमेल विवाह को निन्द्य कहा गया है। विवाह के अवसर पर प्राय मुहूर्त आदि देखा जाता था । पिता के पत्र को पाकर अक्षय तृतीया, वृहस्पतिवार, रोहिणी नक्षत्र आदि शुभ मुहूर्त को देखकर ही महाबल अपनी बहिन का विवाह सोमदत्त से कर देता है ।[31] विवाह योग्य नवयुवक में निम्नलिखित गुण देखे जाते थे ।

'सुशीलत्व विनीतत्त्वं विद्या समवयस्कता ।
औदार्यं रूपमारोग्य दृढत्व पटुवाक्यता ।।'[32]

माता-पिता द्वारा सन्तति का विवाह तथा स्वयवरण दोनो पद्धतियो का विवाह प्रचलन मे वर्णित हुआ है । सामान्यत विवाह के अवसर पर पिता की उपस्थिति होती थी किन्तु असाधारण परिस्थिति में यदि जरूरी काम के कारण पिता की उपस्थिति न हो सके तो भाई माता की सहमति से बहिन का विवाह कर सकता था ।[33]

जीवनपद्धति

(क) भोजनपान- लघुत्रयी मे निरामिष और सामिष दोनो प्रकार के भोजन का वर्णन हुआ है । सर्वसाधारण का भोजन निरामिष ही था । किन्तु कुछ नीच पुरुष मछली पकडने आदि से अपनी आजीविका चलाते थे । लघुत्रयी में भोजन में विविध व्यजन[34], खिचड़ी[35], भात[36], मूँग की दाल[37], धान्य[38], कद्दू[39], आम[40], जामुन[41], नारंगी[42], इक्षु[43], द्राक्षा[44], शाक[45] आदि का उल्लेख हुआ है ।

आहार का विवेचन करते हुए कहा गया है कि मास कभी नहीं खाना चाहिए.। अन्नभोजी एव शाकाहारी रहना चाहिए तथा पानी वस्त्र छानकर पीना चाहिए ।[46] सन्धान, नवनीत अगालित जल, वर्षा के पत्रशाक, पञ्च उदुम्बर फल, चर्म मे रखा तैल, घी, जल, आदि द्विदलान्त के साथ कच्चा दूध, दही, छाछ, मद्य, मास, मधु, भाग, तमाकू, सुलफा आदि का सेवन नहीं करना चाहिए ।[47]

(ख) वेशभूषा- वस्त्रो मे साडी[48], निष्कपट (वेश कीमती रेशमी वस्त्र)[49] कुचक[50], कार्पास (सूती कपडा)[51] आदि तथा आभूषण एव प्रसाधन सामग्री में गजमुक्ताहार[52], अगूठी[53], कुण्डल[54], दर्पण[55], साबुन (फेनिल)[56] आदि का लघुत्रयी में उल्लेख मिलता है । साधारण जन, राजा, श्रेष्ठी आदि की समयानुकुल अलग वेशभूषा होती थी ।

(ग) उत्सव एवं मनोविनोद - मानव अपने प्रारभिक काल से ही मनोविनोद प्रिय रहा है । लघुत्रयी में मनोविनोद के साधनों मे जन्मोत्सव[57] विवाहोत्सव[58] वनविहार[59] कुन्दुक क्रीडा[60], शतरंजक्रीडा[61], एव नाटक[62], आदि का वर्णन आया है ।

आवागमन के साधन- जीविकोपार्जन के प्रमुख एव श्रेष्ठ साधन में लघुत्रयी में कृषि,[66] का उल्लेख बहुत हुआ है। अत पितृधन से निर्वाह अच्छा नहीं माना जाता था, तथा गृहस्थ को व्यवसाय आवश्यक माना जाता था। अतएव जीविकोपार्जन के अन्य अनेक साधनो का उल्लेख भी हुआ है । इनमे गोपालन[67], गाय भैंस चराना[68], दुकानदारी[69], हलवाईगिरी[70], घोडों को रखना[71], विषवैद्यक का कार्य[72], चोरी की तहकीकात[73], परदेश में जाकर व्यापार करना[74], आदि प्रमुख हैं । कुछ लोग मछली पकड़कर अपनी आजीविका चलाते थे[74] तथा कुछ भिक्षावृत्ति भी करते थे ।[75]

सामाजिक प्रथायें - सामाजिक प्रथाओं के अन्तर्गत लघुत्रयी मे तीर्थस्थान[76], गगा की पवित्रता[77], गोद लेने की परम्परा[78], जादू-टोने में विश्वास[79] शकुनों का विचार[80], तोता पालना[81], बहुविवाह[82], विनियोग 'विवाहित' स्त्री के साथ

विवाह कर लेना[82] आदि की प्रथाओ का उल्लेख मिलता है एक स्थान पर बकरे के बलि देने की बात का भी उल्लेख किया गया है [83] ।

शिष्टाचार - लघुत्रयी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समाज मे कुलवृद्धों का आदर था । लोग साधुओं से ली गई प्रतिज्ञा का पालन करते थे । मृगसेन धीवर सर्वप्रथम जाल में आई मछली न पकड़ने की प्रतिज्ञा का पूरी तरह पालन करता है । सुदर्शनोदय में कहा गया है कि गुणानुराग पूर्वक अतिथि को शुद्ध भोजन कराके ही स्वयं भोजन करना चाहिए तथा हमेशा हृदय से परहित का विचार करके सदाचार मे तत्पर रहना चाहिए ।[84] पारिवारिक जन शिष्टाचार की मर्यादा का ध्यान रखते थे । पति के आगमन पर पत्नी यथायोग्य अभ्युत्थान क्रिया से शिष्टाचार का पालन करती थी ।

परोपकारी कार्य

परोपकार के बिना कोई भी समाज उन्नति नहीं कर सकती है । लघुत्रयी मे धर्मशाला[85], दान[86], धरोहर न्यास [87] आदि परोपकार के कार्यों का वर्णन आया है । लोग धन को अपने काम में लाते हुए दूसरो की भलाई के लिए भी खर्च करते थे । प्यासो को पानी पिलाने के लिए प्याऊ लगाते थे ।[88]

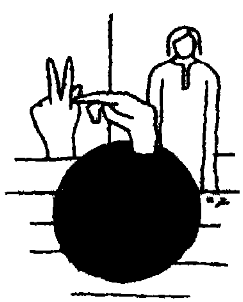
इस प्रकार परमपूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा विरचित लघुत्रयी में सामाजिक जीवन के अन्तर्गत वर्णाश्रम व्यवस्था, पारिवारिक सम्बन्ध, विवाह, जीवन पद्धति, आवागमन के साधन, जीविकोपार्जन के साधन, सामाजिक प्रथाये, शिष्टाचार एव परोपकारी कार्यों का चित्रण हुआ है।

सन्दर्भ

1 पद्मपुराण, ११/२०३
2 दयोदयचम्पू, २/१
3 'ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्च वर्णा ।' नीतिवाक्यामृत ५/६
4 द्रष्टव्य-आदिपुराण १६/२४३-२४८
5 समुद्रदत्तचरित ३/४३
6 सुदर्शनोदय, पञ्चम सर्ग, प्रभातकालीन राग पृ ८०
7 'श्रीभूतिनामा सचिवोऽस्य पूतीङ्कित सदा दुर्हृदयप्रसूति ।
सूतिस्त्वहो विप्रकुलात्तथापि यवेषु कागस्य यथा कदापि॥' सुमुद्रदत्त चरित ३/२१
8 सुदर्शनोदय, षष्ठ सर्ग, सारङ्ग राग पृ १००
9 वही पञ्चम, सर्ग, प्रभातकालीन गीत, पृ ८०
10 'वाणिक्पथ श्रीधरसन्निवेश ' वही, १/३२
11 वही, २/१-४
12 समुद्रदत्तचरित १/३१-34
13 सुदर्शनोदय, ४/२९,३६
14 वही, १/२२,४/१८, दयोदय पृ ५३
15 सुदर्शनोदय ४/१७
16 वही, ४/२८, समुद्रदत्तचरित ९/१८
17 दयोदय १/६ पृ २
18 समुद्रदत्तचरित ९/१८
19 सुदर्शनोदय ८/५, दयोदय पृ ४९
20 दयोदय, चतुर्थ लम्ब, पृ ६५
21 समुद्रदत्तचरित ५/११-१३
22 वही २/३३-34
23 दयोदय, ७/२५ पृ ११८
24 सुदर्शनोदय ८/२३-३२
25 दयोदय ६/४पृ ९१
26 वही, ४/१९-२२
27 समुद्रदत्तचरित ३/६
28 दयोदय, सप्तम लम्ब, पृ १११
29 वही, पृ ७१,९९
30 वही, पृ ८४-८६
31 वही, चतुर्थ लम्ब, पृ ६९
32 वही, ४/१८ पृ ७0
33 वही, चतुर्थ लम्ब, पृ ६९
34 वही, पृ ९५
35 वही, पृ ९३

36 दयोदय १/१, समुद्रदत्तचरित ८/१९
37 वही १/१
38 सुदर्शनोदय १/८,१/20
39 दयोदय पृ. ९४
40 सुदर्शनोदय १/१९
41 वही १/१९
42 वही १/१९
43 वही १/१६
44 समुद्रदत्तचरित १/२३
45 दयोदय २/२७
46 सुदर्शनोदय ४/४३,९/५५
47 वही, ९/५६-५९
48 सुदर्शनोदय २/६. समुद्रदत्तचरित ५/१८
49 समुद्रदत्तचरित ७/२९, ८/३
50 वही ८/५०
51 वही १/१७
52 वही ४/३८
53 सुदर्शनोदय २/६
54 वही ३/१९
55 समुद्रदत्तचरित ७/१
56 वही, ९/२०
57 सुदर्शनोदय ३/2 से
58 वही ३/४८
59 वही ६/२
60 दयोदय पृ ८३-८४
61 समुद्रदत्तचरित ३/४१
62 वही ८/४
63 समुद्रदत्तचरित ३/१७, दयोदय पृ ५, सुदर्शनोदय १/१
64 दयोदय २/३०
65 वही २/३०
66 सुदर्शनोदय १/९ दयोदय २/२२
67 वही १/९
68 वही ४/२६
69 दयोदय ३/६
70 समुद्रदत्तचरित १/१५
71 वही २/२२
72 वही ४/१२, ७/१५
73 वही ९/१०
74 दयोदय, प्रथम लम्ब, पृ १०
75 वही, पृ १६
76 दयोदय, पृ १४
77 समुद्रदत्तचरित १/७, ६/२०
78 दयोदय, पृ ५४-५५
79 सुदर्शनोदय ८/७
80 समुद्रदत्तचरित ३/१६
81 वही ५/८
82 वही ६/१
82 का दयोदयचम्पू, पृ ४१
83 वही ७/७
84 सुदर्शनोदय ९/६०
85 दयोदय पृ. ३९
86 समुद्रदत्तचरित ४/६-७, सुदशनोदय १/१९
87 समुद्रदत्तचरित ३/२७
88 सुदर्शनोदय १/१९

डॉ. जयकुमार जैन
पटेलनगर, नई मण्डी
मुजफ्फरनगर (उ प्र)



कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे ।
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा कभी न पग डिगने पावे ॥

सुदर्शनोदय का महाकाव्यत्व

डॉ. कमलेश कुमार जैन

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज संस्कृत भाषा के प्रौढ कवि थे । आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व वी नि स 2470 में[1] उनके द्वारा विरचित सुदर्शनोदय काव्य संस्कृत काव्यों की परम्परा में अन्यतम रचना है । इसमें महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज ने सेठ सुदर्शन के पिछले भील के भव से लेकर अन्त मे केवलज्ञान की प्राप्ति और तत्पश्चात् मुक्ति प्राप्ति तक का उल्लेख किया है ।

यह सम्पूर्ण कथा धीरोदत्त नायक सेठ सुदर्शन के एक पत्नीव्रतधारी शीलव्रत और ब्रह्मचर्यव्रत को केन्द्र बिन्दु बनाकर लिखी गई है । कपिला ब्राह्मणी (पुरोहितानी), अभया रानी एव देवदत्ता वेश्या द्वारा स्त्रीजन सुलभ विविध काम चेष्टाओं के बावजूद वे अपने शीलव्रत एव ब्रह्मचर्य व्रत से रञ्च मात्र भी नहीं डिगे ।

यद्यपि जैन धर्म मे अहिसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- इन पाँच व्रतो का उल्लेख किया गया है,[2] किन्तु इनमे ब्रह्मचर्य व्रत की साधना अत्यन्त दुष्कर है । उस पर भी जब विकार के बलिष्ठ विविध हेतु उपस्थित हो तब इस व्रत का पालना निश्चय ही एक गुरुतर कार्य है । फिर भी इस व्रत का पालन करने मे सेठ सुदर्शन अग्नि में तपाये गये शुद्ध स्वर्ण की तरह खरे उतरे हैं और अन्त मे मुक्ति को प्राप्त हुये । इस प्रकार सेठ सुदर्शन के उत्तरोत्तर अभ्युदय के कारण प्रस्तुत सुदर्शनोदय काव्य अपने नाम को सार्थक करता है ।

महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा रचे गये उदयान्त काव्यो मे सुदर्शनोदय काव्य एक महाकाव्य की श्रेणी मे आता है। इसके महाकाव्यत्व की सिद्धि के लिये हमें पूर्व आलकारिको के द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षणो पर विचार करना होगा ।

सामान्यत जीवन की समस्त घटनाओ का जहाँ एक साथ विस्तृत विवेचन किया जाता है ऐसी पद्यमयी रचना का नाम महाकाव्य है ।[3] किन्तु सस्कृत काव्य शास्त्रियो ने महाकाव्य मे और भी अन्य अनेक विशेषताओ का उल्लेख किया है, जो एक महाकाव्य मे होना आवश्यक हैं ।

आचार्य भामह ने महाकाव्य का स्वरूप निर्धारित करते हुए लिखा है कि - जिसमें सर्गबन्ध हो, जिसमे महापुरुषो का चरित निबद्ध हो, बडा हो, ऐसा ग्राम्य शब्दो से रहित, अर्थ सौष्ठव सम्पन्न अलकार युक्त, सज्जनाश्रित मन्त्रणा, दूत सम्प्रेषण, प्रयाण,युद्ध एव नायक के अभ्युदय तथा पञ्च सन्धियों[4] से समन्वित, अनतिव्याख्येय (अक्लिष्ट), वैभव सम्पन्न चतुर्वर्ग का निरूपण, करने पर भी अधिकता अर्थोपदेश की हो तथा लोकाचार तथा समस्त रसो से युक्तवह महाकाव्य है ।[5] आचार्य दण्डी ने महाकाव्य के स्वरूप में कुछ अन्य नवीन बातों का भी समावेश किया है । यथा- महाकाव्य का आरम्भ आशीर्वाद नमस्कार अथवा कथावस्तु के निर्देश से होता है । इसमें सभी सर्गों के अन्त मे छन्दो की भिन्नता और लोकानुरञ्जन आदि प्रमुख हैं ।[6]

इस लक्षण की सबसे बडी विशेषता यह है कि जहाँ भामह ने महाकाव्य में वर्णनीय कुछ ही विषयो का उल्लेख किया है, वहीं आचार्य दण्डी ने महाकाव्य में निम्नांकित अठारह विषयों का उल्लेख करना आवश्यक माना है। यथा- नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, और नायकाभ्युदय । जैनाचार्य अजितसेन ने तो महाकाव्य में वर्णनीय उनतालीस विषयो का उल्लेख किया है और प्रत्येक में वर्णनीय विषयों का विस्तार से विवेचन भी किया है ।[7]

1 वीरोक्तशुभतत्त्वार्थ लोचनेनाद्य वत्सरे । पुण्यादहं समाप्नोमि सुदर्शनमहोदयम् ॥ सुदर्शनोदयमहाकाव्य, 9/93
2 सुदर्शनोदय काव्य, 9/70 3 जैनाचार्यो का अलंकार शास्त्र में योगदान, पृष्ठ 84
4 मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण - ये पांच सन्धियाँ हैं । वहीं, पृष्ठ 17 5 काव्यालंकार, 1/19-21
6 काव्यादर्श, 1/14-19 7 अलकार चिन्तामणि, 1/25-66

चूंकि उपर्युक्त लक्षण ग्रन्थों की रचना तत्कालीन उपलब्ध शृङ्गार एवं वीररस प्रधान महाकाव्यों को लक्ष्य में रखकर की गई है । अत पूर्वोक्त वर्णनीय विषयों में से सुदर्शनोदय काव्य में मधुपान, दूतसम्प्रेषण, प्रयाण एवं युद्ध जैसे वर्णनीय विषयों का अभाव है । क्योंकि सुदर्शनोदय काव्य भोगों से वैराग्य की ओर मोड़ने वाला शान्तरस प्रधान काव्य है । किन्तु इस काव्य में सुमेरु पर्वत,[8] कल्पवृक्ष,[9] समुद्र,[10] निर्धूम अग्नि[11] और विमान [12]- इन पाँच स्वप्नों का देखना, मुनिराज का दर्शन,[13] जिनेन्द्र पूजन,[14] मुनि जीवन की कठोर चर्या[15], शरीर की असारता,[16] पार्श्वनाथ स्तुति,[17] सुख[18], -दुख[19], और योगी[20] की परिभाषा, पञ्चेन्द्रिय और उनके विषय[21], अचार नहीं खाने का उपदेश,[22] द्विदल का निषेध[23] और ग्यारह प्रतिमाओं का विवेचन[24] आदि अनेक विषयों का उल्लेख किया गया है । इन विषयों मे जैन प्रतीकों का भी समावेश है । ये विषय जैन काव्यों के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ हैं।

सुदर्शनोदय काव्यगत मुनि जीवन के वर्णन को देखकर ऐसा लगता है कि ब्र भूरामल शास्त्री ने गृहस्थ जीवन में लिखे अपने इन पद्यो के माध्यम से अपने भावी मुनि जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की थी । जिसे उन्होंने अपने मुनि जीवन में अक्षरश शत-प्रतिशत उतारा भी है ।

महाकवि के द्वारा अभया रानी के मुख से अनेकान्त[25] की सिद्धि और प्राणायाम[26] की कल्पना तथा देवदत्ता वेश्या के मुख से जिनवाणी[27] एवं सिद्धशिला[28] का वर्णन सर्वथा अनूठा एव अद्‌भुत है ।

सुदर्शनोदय काव्य का आरम्भ आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण से हुआ है । इसमें सेठ सुदर्शन के सम्पूर्ण जीवन का विस्तृत विवेचन है । इसके प्रथम सर्ग मे 46, द्वितीय सर्ग म 51, तृतीय सर्ग में 49, चतुर्थ सर्ग में 48, पञ्चम सर्ग में 21 एव 38 पद्य प्रमाण आठ सस्कृत गीत षष्ठ सर्ग में 30 पद्य और 36 पद्य प्रमाण नौ सस्कृत गीत, अष्टम सर्ग मे 37 पद्य एव 12 पद्य प्रमाण तीन सस्कृत गीत तथा सबसे अन्त में 4 पद्य प्रमाण एक और मङ्गलकामना रूप संस्कृत गीत है । इस प्रकार कुल 413 पद्य एवं 132 पद्य प्रमाण बत्तीस संस्कृत गीत हैं । प्रत्येक सर्ग के सभी पद्यों एव संस्कृत गीत के रूप में लिखी रचना 545 पद्य प्रमाण है ।

नौ सर्गात्मक इस सुदर्शनोदय काव्य मे अलंकारो का प्रयोग इतना अधिक हुआ है कि उनको एक-एक करके इस लघु लेख मे गिनना सम्भव नहीं है । एक ही पद्य में एकाधिक अलंकारों का प्रयोग महाकवि भूरामल जी की अपनी विशेषता है ।

सुदर्शनोदय काव्य मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, निदर्शना, परिसंख्या, विरोधाभास, यमक, श्लेष एव चित्र बन्ध आदि अलकार गुम्फित हुये हैं ।

उपमालकार के निम्न उदाहरण दर्शनीय हैं -

वह रानी इति के समान अत्यन्त रूपवती थी और कामदेव की माता लक्ष्मी के समान जगत् को मोहित करने वाली थी । चन्द्रमा की नित्य बढने वाली कला के समान वह लोगों को नित्य नवीन आह्लाद उत्पन्न करती थी, और राजा के शोक-सन्ताप को नष्ट करने के लिये पूतना राक्षसी सी थी[29] ।

---

8 सुदर्शनोदय काव्य, 2/14
9 वही, 2/15
10 वही, 2/18
11 वही, 2/17
12 वही, 2/18
13 वही, 2/24-25
14 वही, पञ्चम सर्ग, पृष्ठ 84-85 (संस्कृतगीत)
15 वही, 9/1-71
16 वही, 9/22
17 वही, 9/90
18 वही, 9/38
19 वही, 9/39
20 वही, 9/43
21 वही, 9/45-47
22 वही, 9/56
23 वही, 9/58
24 वही, 9/59-69
25 सुदर्शनोदय काव्य , पृष्ठ 118
26, वही, पृष्ठ 133
27 वही, पृष्ठ 170
28 वही, पृष्ठ 171
29 वही, 1/41

इसी प्रकार जिनमती सेठानी के विविध अंगों की तुलना करते हुये महाकवि कहते हैं

वह सेठानी लता के समान कोमलाङ्गी मृदुल पल्लव वाली, कादम्बिनी के समान पीन पयोधरा, काम रूप उत्तान पर्वत की मेखला युक्त उपत्यका के समान प्रतीत होती थी[30]।

वह सेठानी माला के समान शीलरूप सुगन्धि से युक्त थी । शाला के समान उत्तम सुकृत (पुण्य) का भंडार थी। श्री वृषभदास सेठ के मानस रूप मानसरोवर में निवास करने वाली राजहंसी के समान शुद्ध भावों की धारक थी और वंशी के समान मधुर भाषिणी थी[31]।

उत्प्रेक्षा के माध्यम से अगदेश के ग्रामो का वर्णन बड़ा मनोहारी प्रतीत होता है - यथा

उस अंगदेश के गाँव पञ्चाङ्ग से प्रतीत होते थे । जैसे ज्योतिषियो का पञ्चाङ्ग तिथि, वार, नक्षत्र, योग, और करण इन पाच बातों से युक्त होता है उसी प्रकार उस देश के ग्रामवासी लोग सादा भोजन, सादा पहिनावा, पशुपालन, कृषि-करण और सादा रहन-सहन इन पाँच बातो को सदा व्यवहार में लाते थे । उन ग्रामों में चारों ओर गोचर भूमि थी, जो कि पञ्चाङ्ग के ग्रह गोचर का स्मरण कराती थी । वहाँ के गांवो के प्रधान पुरुष गायों के बछडो से बडा स्नेह रखते थे, क्योंकि उनके द्वारा उत्पन्न की हुई अपार धान्य राशि उन्हें प्राप्त होती थी[32]।

महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज ने रूपक के माध्यम से धर्म रूप कल्पवृक्ष का जो चित्र खींचा है, वह प्रत्येक सहृदय पाठक को आनन्दित किये बिना नहीं रह सकता है - यथा-

हे भद्रे! धर्मरूप वृक्ष की अहिसा जड है, साम्य भाव उसका स्कन्ध (तना) है । तथा सत्य सम्भाषण, स्तेय-वर्णन, मैथुन-परिहार और अपरिग्रहपना - ये उस धर्मरूपी वृक्ष की चार शाखायें हैं, छह आवश्यक जिसके फल हैं, शीलव्रत जिसके पत्र हैं और ईर्या, भाषा आदि समितियाँ जिसकी छाया रूप हैं ऐसा यह श्रीमान् परम् उदार धर्मरूप कल्पवृक्ष सदा जयवन्त रहे[33]।

परिसंख्यालकार की छटा यहाँ द्रष्टव्य है - यथा

उस नगर में 'पलाश' इस शब्द का व्यवहार केवल किंशुक (ढाक) के वृक्ष में ही था और कोई मनुष्य पल अर्थात् मांस का खाने वाला नहीं था । मधुप शब्द का व्यवहार केवल द्विरेफ वर्ग अर्थात् भ्रमर समुदाय मे ही होता था और कोई मनुष्य वहाँ मधु और मद्य का पान करने वाला नहीं था । वि-रोध -पना पिजरो मे ही था, क्योंकि उनमें ही वि अर्थात् पक्षी अवरुद्ध रहते थे और वहाँ के किसी मनुष्य में परस्पर विरोधभाव नहीं था । अपवादिता वहाँ निरोष्ठ्य काव्यों में ही थी, अर्थात जो विशिष्ट काव्य होते थे, उनमें ही ओष्ठ से बोले जाने वाले प, फ आदि शब्दो का अभाव पाया जाता था, अन्यत्र कहीं भी अपवाद अर्थात लोगों की निन्दा-बुराई आदि दृष्टिगोचर नहीं होते थे[34]।

उस नगर में कुटिलता केवल धनुर्लता में ही देखी जाती थी, अन्य किसी भी मनुष्य में कुटिलता दृष्टिगोचर नहीं होती थी, छिद्रानुसारिता केवल मुरली (बांसुरी) में ही देखी जाती थी, क्योंकि मुरली के छेद का आश्रय लेकर गायक लोक अनेक प्रकार के राग आलापते थे, अन्यत्र कहीं भी छिद्रानुसारिता नहीं थी, अर्थात् कोई मनुष्य किसी अन्य मनुष्य के छिद्र (दोष) अन्वेषण नहीं करता था । कठोरपना केवल युवती स्त्रियों के स्तनों में पाया जाता था, अन्यत्र कहीं भी लोगो में कठोरता नहीं पाई जाती थी । कण्ठ में ही ठकपना पाया जाता था, अर्थात् 'क' कार और 'ठ' कार इन दो शब्दों से बने हुये कण्ठ में ठकपना था अन्य किसी भी मनुष्य मे ठकपना अर्थात पचकपना नहीं था । भावार्थ यह कि वहाँ के सभी मनुष्य सीधे, सरल, कोमल और निश्छल थे[35]।

शब्दालंकारों के अन्तर्गत यमक का निम्न उदाहरण ध्यातव्य है - यथा

---

30 वही पृ 133 | 31 सुदर्शनोदय काव्य 2/9 | 32 वही 1/21 | 33 वही 9/70-71
34 वही 1/33 | 35 वही 1/34

मनोरमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणाय ते ।
मनोऽरमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणायते ।।[36]

यहा प्रथम पंक्ति की ही द्वितीय पंक्ति में आवृत्ति की गई है, किन्तु अर्थ भिन्न है । इसी प्रकार

मानवः प्रपठेदेन सुदर्शनसमुद्गमम् ।
येनाऽऽत्मनि स्वय यायात्सुदर्शनसमुद्गमम् ।।[37]

यहाँ द्वितीय पाद 'सुदर्शन समुद्गतम्' की चतुर्थ पाद में आवृत्ति की गई है किन्तु अर्थ भिन्न है ।

चित्र काव्यों में कलश बन्ध[38] और हारबन्ध[39] का गुम्फन महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज को प्राचीन महाकवियों की श्रेणी मे परिगणित करनें को बाध्य करता है । उनके द्वारा अकार बन्ध का प्रयोग भी ध्यातव्य है । यथा -

प्रशमधर गणशरण जय मदनमदहरण।
परमपदपथकथन मम च परमघमथन ।।[40]

इस पद्य मे व्यञ्जन वर्णों के साथ मात्र अकार का प्रयोग कवि के वैदुष्य का निदर्शन है।

अन्त्यानुप्रास तो सम्पूर्ण महाकाव्य में सर्वत्र वैसे ही दृष्टिगोचर होता है जैसे सर्दियो में आयुर्वेदिक दवाओं की दुकानो में च्यवनप्राश दृष्टिगोचर होता है । प्रत्येक पद्य और प्रत्येक सस्कृत गीत मे अन्त्यानुप्रास की छटा निराली है। अन्त्यानुप्राम के प्रयोग के सन्दर्भ मे तो यदि यह कहा जाये कि सौ प्रतिशत मे सवा सौ प्रतिशत अन्त्यानुप्रास का प्रयोग महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज ने किया है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

सुदर्शनोदय काव्य मे विविध सस्कृत एवं हिन्दी छन्दों का प्रयोग किया गया है । सस्कृत छन्दो में अनुष्टुप्[41], इन्द्रवज्रा[42], उपेन्द्रवज्रा[43], उपजाति[44], वियोगिनी वसन्ततिलका[45], द्रुतविलम्बित4[6], शार्दूलविक्रीडित[47] एव वैतालीय का प्रयोग हुआ है ।

सस्कृत गीतों के लेखन मे महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज ने प्रभाती[48], काफी, होलिका राग[49] कव्वाली[50], छन्दचाल[51], रसिकराग[52], सारग राग[53],श्यामकल्याण राग[54], और सौराष्ट्रीय[55] नामक हिन्दी छन्दो का प्रयोग किया है ।

सस्कृत काव्यो की परम्परा के अनुरूप सुदर्शनोदय काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्दो का परिवर्तन किया गया है ।

महाकाव्य के लिये आवश्यक वर्णनीय विषयो का पदे पदे यथाप्रसंग समावेश है । पुरुषार्थ चतुष्टय में से धर्म, अर्थ और काम का सामान्य समावेश करते हुये चरम मोक्ष पुरुषार्थ की प्रधानता है । शान्तरस इसका अंगीरस है । जिनेन्द्र दर्शन-पूजन और धर्मोपदेश जैसे लौकिक मगल कार्यों का उत्तम विवेचन है ।

इस प्रकार महाकाव्य के लिये आचार्य भामह एव दण्डी जैसे प्राचीन काव्यशास्त्रियो द्वारा निर्धारित मापदण्ड की कसौटी पर महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा विरचित सुदर्शनोदय काव्य खरा उतरता है । अतः इस काव्य को महाकाव्य की कोटि में रखा जाना सर्वथा न्यायोचित है ।

---

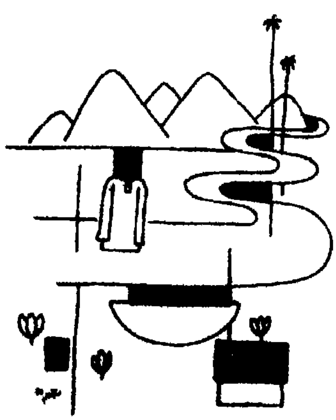
36 वही 6/21 37 वही 9/87 38 वही 9/89 39 वही 9/90 40 वही 9/88 41 वही 9/88 42 वही 1/11 20, 34 43 वही 1/3, 10, 12, 23, 30, 33 44 वही 1/1-2, 4-9, 13-19, 21-22, 24-29, 31, 35 45 1/36, 3/46, 4/24-25, 30, 5/20, 6/17-18, 7/36, 9/44, 54, 82, 90 46 वही 1/37 47 वही 4/47 7/7, 11-12, 28, 31 8/27 14, 9/24, 31, 46 एव प्रत्येक सर्ग का अन्तिम पद्य 48 वही पचम सर्ग, पृ 84-85 49 वही पंचम सर्ग पृ 84-85 50 वही अष्टम सर्ग पृ 147-148 51 वही पचम सर्ग, पृ 90-91 52 वही पचम सर्ग पृ 82-83 53 वही षष्ठ सर्ग पृ 100 54 वही पचम सर्ग पृ 88-89 55 वही षष्ठ सर्ग 115-116

सुदर्शनोदय काव्य के सत्काव्यत्व किं वा महाकाव्यत्व की पुष्टि अन्य विद्वानों ने भी की है । जिनमें जैन वाङ्मय विशेषकर जैन साहित्य के विशिष्ट अध्येता एवं मूर्धन्य विद्वान् श्रीमान् पं अमृतलाल जी शास्त्री ने सुदर्शनोदय काव्य की समीक्षा करते हुये लिखा है कि -प्रस्तुत काव्य में (शब्दालंकार एवं अर्थालंकार) इन दोनों प्रकार के अलंकार आदि से अन्त तक विद्यमान हैं । काव्य का आत्मा रस होता है, जिसे गुण अलंकृत करते हैं । प्रस्तुत काव्य में शान्तरस प्रधान है, जो प्रसाद गुण से विभूषित है । नैषध और धर्मशर्माभ्युदय की भाँति इसमें भी वैदर्भी रीति है । निष्कर्ष यह कि एक सत्काव्य में जो विशेषताएँ होना चाहिये, वे सब इसमें हैं ।

वस्तुत आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के प्रत्येक काव्य ग्रन्थ की स्वतन्त्र समीक्षा अपेक्षित है, इसलिये इस सुदर्शनोदय नामक महाकाव्य पर एक पृथक् शोधप्रबन्ध तैयार कराना चाहिए । विभिन्न विद्वानों द्वारा सुदर्शनोदय काव्य पर लिखे गये लेखो पर इस सगोष्ठी मे विस्तार से चर्चा हो जाने के कारण शोधार्थियों को शोध कार्य मे सुविधा भी रहेगी ।

डॉ कमलेशकुमार जैन
जैन दर्शन प्राध्यापक
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

❑ ❑ ❑



हो कर सुख मे मग्न न फूले दु:ख में कभी न घबरावे
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवी से नहि भय खावे,
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर यह मन दृढ़तर बन जावे
इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग मे सहनशीलता दिखलावे ॥

समुद्रदत्त चरित्र एक अनुशीलन

प.पू. मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने अपनी गृहस्थ अवस्था मे बाल ब्रह्मचारी रहकर इस भौतिक युग में कठोर संयम का पालन किया । और इस संयम से संगृहीत ऊर्जा को ज्ञान साधना के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास सतत करते रहे, परिणाम स्वरूप लेखक ने अनेक महाकाव्य, काव्य, सामाजिक एव धार्मिक ग्रंथो का लेखन, अनुवाद तथा सम्पादन आदि कार्य किया । इसी काव्य-उद्यान में से एक पुष्प लगभग 345 श्लोक प्रमाण 'समुद्रदत्त चरित्र' पुष्पित होकर साहित्य प्रेमियों के लिये सुगन्धि फैलाकर विद्वानो की बुद्धि को सुवासित कर रहा है ।

नाम तथा कथा स्रोत

लेखक के अनुसार यह कथा महापुराण से ली गई है । (सर्ग 1 श्लोक 7)

इस काव्य का नाम समुद्रदत्त चरित्र रखा गया है लेकिन लेखक ने अपने इस काव्य मे किसी भी पात्र को 'समुद्रदत्त' नाम से सम्बोधित नहीं किया बल्कि इस काव्य कथा के अनुसार कथा नायक एक भद्रमित्र नाम का व्यक्ति है । अत इस काव्य का नाम भद्रोदय रखा जाता तो मेरी दृष्टि से अतिश्रेष्ठ होता । ऐसा प्रतिभासित होता है कि शास्त्रो में यह कथा समुद्रदत्त नाम से प्रसिद्ध है । इसलिये लेखक ने अपने काव्य का नाम 'समुद्रदत्त' चरित्र रख दिया प्रतीत होता है

इस काव्य को पढते समय उपन्यास शैली का अनुभव होता है । जिस प्रकार उपन्यास के नायक का रोचक प्रसग प्रारम्भ में वर्णित कर दिया जाता है और बाद में उसके जीवन की घटनाओ को प्रदर्शित किया जाता है, उसी प्रकार इस काव्य के प्रारम्भ मे भद्रमित्र का आदर्श प्रस्तुत करके बाद मे उसके भव भवान्तरो का वर्णन किया गया है। काव्य में इस प्रकार की कथन पद्धति श्रेष्ठ एव रोचक मानी जाती है । लेकिन पुराण ग्रन्थो मे कथा को मूलरूप से प्रारम्भ कर क्रमबद्धता कायम रखी जाती है । अत इस काव्य मे पौराणिक शैली का अनुसरण नहीं किया गया है ।

इस लेख मे मैंने इस काव्य का सैद्धान्तिक सामाजिक अनुशीलन प्रस्तुत किया है ।

काव्य का प्रयोजन

अपने काव्य को लिखने का प्रयोजन लेखक ने बताते हुए लिखा है कि असत्य बोलने वाले का तिरस्कार एव सत्य बोलने वाले की प्रतिष्ठा होती है । और इसी तथ्य का वर्णन या स्पष्टीकरण इस काव्य में यथाशक्ति किया है। (सर्ग -1 श्लोक 7-28) अर्थात् यह काव्य साचे का बोलवाला और झूठे का मुँह काला'' उक्ति को सोदाहरण प्रस्तुत करता है ।

काव्य के उपसहार में लिखा है कि एक सीधे से भद्रमित्र आदमी ने शीघ्र ही आत्मा को परमात्मा मे किस प्रकार परिवर्तित कर दिया । इसका सक्षेप वर्णन मैंने इस प्रबध में किया है । इस काव्य को पढने से वक्ता एव श्रोता का भला होवे । (सर्ग-9 श्लोक-31) जिस प्रकार धान की फसल को बढाना ही नदी की नहर का प्रयोजन होता है उसी प्रकार ग्रथो से निकली यह कथा सत्य को प्रतिष्ठापित करने का प्रयोजन रखती है । (सर्ग-1, श्लोक-7)

काव्य एव कविता

इस समुद्रदत्त चरित्र मे कवि का लक्षण बताते हुए कवि ने लिखा है कि कवि हलवाइ की तरह होता है जैसे हलवाई लोगों को प्रसन्न करने के लिये मोदक तैयार करता है लेकिन उस मोदक के स्वाद को तो खाने वाले ही बता सकते हैं । उसी प्रकार कवि कविता लिखता है जन मानुष को प्रसन्न करने के लिए । लेकिन इस कविता से आत्म ज्ञान के पिपासु पाठक ही श्रेय-प्रेय का निर्णय कर सकते हैं । (सर्ग-1, श्लोक-15)

कोई भी व्यक्ति कोई कार्य करता है तो कुछ आलोचक उसकी आलोचना करते ही है, इस सम्बन्ध मे लेखक का मत है कि ईर्ष्या अर्थात् निन्दा करने वाले लोगों से कवि को डरना नहीं चाहिए । (सर्ग-1, श्लोक-16)

इसी प्रसंग में कविता का लक्षण बताते हुए कहा है कि कविता धरातल पर लता के समान कोमल पत्तों वाली, जगह जगह फूलों सहित, जिस पर भौंरें मंडराते हों अर्थात् कविता लालित्य तथा कौतुक विनोद पदों वाली जीवन उपयोगी होना चाहिए ।

कुकवि के सबंध में कहा है कि कुकवि से एक शब्द भी बोला नहीं जाता और उसके दाँत पुण्य के अंशो के समान अपने आप निकलकर गिर जाया करते हैं । (सर्ग-1, श्लोक-5)

कवि की लघुता

अपनी लघुता को प्रकट करते हुए लेखक ने कहा है कि कविता करने की योग्यता तो समन्तभद्र जैसे महान् आचार्यों के पास थी, जिनकी जिह्वा से अग्रभाग पर वाणी का निवास था । 20 वीं शताब्दी के प्रथम महाकवि होते हुए भी लेखक ने कहा है कि मैं कवि नहीं हूं केवल मनुष्य भव को धारण करने वाला एक मानव हू, बस मनुष्यता के नाते काव्य रचना करने में मेरा भी साधारण अधिकार है, क्योंकि बालक पिता, गुरु आदि जनों का अनुसरण करता है । (सर्ग-1, श्लोक-12) यहां लेखक का यह भाव भी प्रकट होता है कि प्रत्येक मनुष्य को लिये मनुष्यता के नाते काव्य रचने का अभ्यास होना चाहिए ।

प्रत्येक सच्चा शिष्य अपनी ज्ञान की प्रतिभा को गुरु की कृपा मानता है महाकवि ने भी कहा है कि -गुरु महाराज की कृपा का ही परिणाम यह काव्य है । (सर्ग -1, श्लोक-6)

इसी प्रसग नें अपने काव्य की लोकप्रियता बताते हुए लेखक ने लिखा है कि मेरी वाणी मे अनेक प्रकार के दुर्गुण हैं फिर भी सत्य की प्रशसा करने वाली होने से सहज ही सज्जन पुरुषों के लिए रुचिकर होनी चाहिए । जैसे रात्रि में दीपक की लो उजाला करती है इसलिए लोग उसमें तेल रूपी स्नेह डालते हैं । उसी प्रकार मेरी कृति जग में उजाला करने वाली होने से भले पुरुष स्नेह दृष्टि से देखेगें, ऐसी आशा है ।(सर्ग-1, श्लोक-14)

साधु-सन्त

इस महाकाव्य में कुछ लेखक के श्रद्धेय एवं उपकारी आचार्यों तथा साधुओं के नाम उल्लेख किये हैं । जैसे-

(1) गुणभद्राचार्य- इनके सम्बन्ध में कहा है कि इनके द्वारा रचित महापुराण की कथा गगा के समान पवित्र मानी गयी है । (सर्ग-1, श्लोक-7)

(2) समन्तभद्र आचार्य- इनका नाम लेखक ने अपने प्राय सभी काव्यो में लिया है । लगता है समन्त आचार्य लेखक के विशेष श्रद्धेय आचार्य रहे हैं ।
उन्हें स्मरण करते हुए महाकवि कहते हैं कि - वास्तविक कवि की योग्यता तो समन्तभद्र आचार्य मे है जिनकी जिह्वा के अग्र भाग पर 'वाग्देवता' का निवास है । (सर्ग-1, श्लोक -11)

(3) वरधर्म मुनि- काव्य नायक भद्रमित्र के गुरु के रूप में वरधर्म मुनि का नाम उल्लेख किया है । जिनके उपदेश से प्रभावित होकर भद्रमित्र दान देने में प्रवृत्त हुआ था । (सर्ग-4, श्लोक-6)

(4) सिंह चन्द्र मुनि - काव्य नायक भद मित्र मरकर सिंहचन्द्र नाम का राजा हुआ और यही बाद में मुनि दीक्षा लेकर उत्कृष्ट तप एव सच्चा संयम धारण कर मन पर्यय ज्ञान एवं चारण ऋद्धि के धारक सिंहचन्द्र नाम के मुनि हुए। (सर्ग-4, श्लोक-18) इन्हीं सिंहचन्द्र मुनि ने अपनी माता, जो आर्यिका बन चुकी थी, के पूछने पर अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्र के पूर्वभवों को बताकर, इन भवों की कथा को सुनने से पूर्णचन्द्र राजा को ससार के भोगो से विरक्ति का कारण बताया था ।

(5) पूर्णविशुमुनि- सिंहचन्द्र मुनि के दीक्षित गुरु के रूप में मात्र नाम उल्लेख किया है ।

(7) मुनिसूर्यव्रत- सिंहचन्द, जो काव्य नायक का जीव था । (सर्ग-5, श्लोक-24)

(8) रश्मिवेग मुनि- रश्मिवेग राजा भी बाद मे दीक्षा ले लेते हैं । यह राजा सिद्धकूट जिनमदिर की पूजा करने गया था तो हरिश्चन्द्र नामक मुनि (सर्ग-8 श्लोक-29) के उपदेश सुनकर दीक्षा ले लेता है ।

(9) हरिश्चन्द्र मुनि- रश्मिवेग राजा की दीक्षा गुरु, जो चारण ऋद्धिधारी थे (सर्ग-5, श्लोक-27)

(10) पिहितास्रव मुनि - काव्य नायक भद्र मित्र के चक्रायुध नाम की पर्याय के पिता अपराजित के दीक्षा गुरु के रूप में पिहितास्रव मुनि का उल्लेख किया है । (सर्ग-6, श्लोक-31)

(11) अपराजित मुनि- काव्य नायक की चक्रायुध की पर्याय के पिता बाद मे दीक्षा लेकर अपराजित मुनि के नाम से जाने जाते हैं । (सग-6, श्लोक-35)

(12) आर्यिका दान्तमति और हिरण्यमती - काव्य नायक भद्रमित्र के रत्नों को दिलाने वाली तथा आगे सिहचन्द्र की पर्याय की माता रामदत्ता ने इन दोनो आर्यिकाओं के पास दीक्षा धारण की थी । (सर्ग-4, श्लोक-16/14)

(13) आर्यिका रामदत्ता काव्य नायक भद्रमित्र की उपकारिणी एव सिहचन्द्र की पर्याय की माता जो, आर्यिका दीक्षा ले लेती है । तथा आर्यिका बनने के बाद सिहचन्द्र मुनि के मुख से अपने पुत्र पूर्ण चन्द्र के पूर्वभव जानकर पूर्णचन्द्र को सम्बोधने पूर्णचन्द्र के दरबार मे उसी आर्यिका वेश मे जाती है । रामदत्ता आर्यिका ने अंत समय मे समाधि पूर्वक शरीर का त्याग किया तथा 15 सागर की आयु वाला भास्कर नामक देव पर्याय मे उत्पन्न हुई । (सर्ग-4,5 श्लोक-16,14)

(14) आर्यिका यशोधरा - सिहचन्द्र का भाई पूर्णचन्द्र, जो मरणकर महाशुक्र विमान मे उत्पन्न हुआ था, वही जीव वहा से चयकर विजयार्द्ध पर्वत की अलका नाम की नगरी मे श्रीधरा नाम की रानी जो पूर्वभव मे रामदत्ता अर्थात् पूर्णचन्द्र की मा थी । उसने उसके यहा यशोधरा नाम की पुत्री के रूप मे जन्म लिया । वही यशोधरा नाम की आर्यिका के नाम से प्रसिद्ध हुई । (सर्ग-5, श्लोक-24)

(15) आर्यिका श्रीधरा - यह आर्यिका रामदत्ता का जीव है । जो एक दिन रश्मिवेग मुनि के दर्शन करने यशोधरा आर्यिका के साथ गयी थी, तब वहा सत्यघोष का (खलनायक) जीव जो अनेक योनियो मे भटकता भटकता अजगर पर्याय मे था, उसने इन तीनो को खा लिया था । परिणाम स्वरूप तीनो मरण कर आठवे कापिष्ठ नामक स्वर्ग मे 14 सागर वाली आयु के देव हुए । (सर्ग-5, श्लोक-25)

(16) आर्यिका गुणवती - श्री धरारानी की दीक्षा गुरु के रूप मे गुणवती आर्यिका का नाम उल्लेख किया है । (सर्ग-5, श्लोक-25)

सज्जन एव दुर्जन

सज्जन पुरुष कपास की तरह होते हैं, जो अवगुणो को ढक लेते हं तथा दूसरे के गुणो को देखकर खुश होते हैं और अपने बडे भारी गुणो को कुछ भी न गिनते हुए गुणी व्यक्ति का आदर करते हैं । उन्हें दूसरो के दोष देखना आता ही नहीं वह तो गुणग्राही होते हैं । जो दाख के समान बाहर भीतर मृदु एव मीठे होते हैं । (सर्ग-1, श्लोक 17 से 27)

दुर्जन पुरुष शाण (सन) के समान होते हैं, जो अपनी चमड़ी उधडे कर भी दूसरो को बधा हुआ देखते हैं तथा जौंक के समान दोषग्राही हाते हैं ओर चूहे के समान दूसरे को हानि पहुचाये बिना नहीं रहते । लेखक ने बताया है कि दुर्जन की सगति जहर मिले लडडू के समान है, उसकी बोली तलवार की धार के समान दूसरों को दु ख देने वाली है । एक ओर उदाहरण देते हुए कहा है कि दुर्जन बेर के समान होता है, जो बाहर से तो सुहावना लगता है लेकिन अन्दर से कठोर होता है । (सर्ग-1, श्लोक 17 से 27) इस प्रकार दुर्जन सज्जन की परिभाषा बताते हुए कहा है कि यदि ज्ञानी व्यक्ति को दुर्जन व्यक्ति मिल जाये तो समता परिणाम धारण कर विचार करना चाहिए । जिस प्रकार

गाय के लिये सज्जन रूपी घास पुष्टि देती है लेकिन उसी में दुर्जन रूपी खल मिला दिया जाय तो वह घास (भोजन अधिक दुधारू हो जाता है अर्थात् दूध देने वाला हो जाता है - (सर्ग 1श्लोक 28)

मत्र विद्या

मंत्र विद्या आदि का प्रभाव लेखक ने इस काव्य में दर्शाते हुये कहा है कि महाकच्छ राजा ने अपनी कन्या के पति की परीक्षा के लिये एक मायावी घोडा बनाया था। (सर्ग-2, श्लोक-18) आगे मंत्रों का चमत्कार बताते हुए कहा है कि जब राजा सिंहसेन को सर्प ने काट लिया तब मत्रवादी के मंत्र के द्वारा अग्नि तैयार की, काटने वाले सर्प के लिये अपने मत्र से बुलवाया तथा उसे राजा का जहर खींचने के लिए उस गरुड़ी विद्या से कहलवाया। लेकिन गारुडी विद्या के प्रयोग पर भी सर्प ने जहर नहीं खींचा। परिणाम स्वरूप वह उस अग्नि में जलकर मर गया। यहाँ एक ओर मंत्र का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है दूसरी ओर तीव्र बैर भाव मे युक्त सर्प को वह मत्र अपने अनुकूल नहीं बना पाये अर्थात् मंत्रो से बडी ताकत सकल्प शक्ति मे होती है, यह सिद्ध होता है। (सर्ग-4, श्लोक-12,13,14,)

नारी का बुद्धि कौशल

कभी कभी नारी पुरुष से भी आगे अपनी बौद्धिक क्षमता रखती है, इस काव्य मे भी नारी कौशल उस समय दृष्टिगोचर होता है, जब मंत्री श्रीभूति ने परदेशी भद्र मित्र के रत्न हडप लिये और राजा के सामने झूठ बोल दिया कि मैंने नहीं लिये। राजा ने अपने मत्री की बात पर विश्वास कर लिया, तब वह परदेशी राजा के महल के पास वृक्ष पर बैठकर प्रतिदिन अपने रत्नो को प्राप्त करने की भावना वचनो से बोला करता। रानी ने मनोवैज्ञानिक ढंग से उसके विचारो को पकडकर राजा से कहा कि इस परदेशी की बात में कहीं न कहीं सत्यता है। अत इस बात का परीक्षण मे स्वय करूँगी। अत उस दिन रानी ने श्रीभूति मत्री के साथ चौपड खेली और उस चौपड मे श्रीभूति (सत्यघोष) के जनेउ एवं छुरी जीत लिए, जिनसे उसने अपनी सत्यवादिता की झूठी ख्याति बना ली थी। रानी ने उन जनेउ व छुरी को दासी को देकर उसके घर मे रत्नो की पिटारी मंगवा ली तथा उन रत्नो को राजदरबार में अनेक रत्नो मे मिलाकर रख दिये और परदेशी भद्रमित्र को बुलाकर अपने रत्न पहचानने को कहा तब उसने अपने रत्न पहचान लिये। अभिप्राय यह है कि रानी की कुशलता से एक लुटा हुआ परदेशी अपने लुटे हुए धन को पा गया। (सर्ग-3 श्लोक 38 से 43)

इसी काव्य मे नारी का चातुर्य उस समय भी दृष्टिगोचर होता है, जब यही रानी रामदत्ता आर्यिका बनती हैं तो सिहचन्द्र मुनि, जो इसके ज्येष्ठपुत्र था, उनकी सहायता से अपने छोटे पुत्र पूर्णचन्द्र को भी भोगो मे विरक्त कराती हैं। ऐसा वर्णन चौथे सर्ग में आया है।

सामाजिक रीति- रिवाज

इसके सम्बन्ध में इस काव्य को पढ़ने से अनेक बाते ज्ञात होती हैं, जैसे अपनी कन्याओ के वर के सबंध में निमित्त ज्ञानियों से पूछने की प्रथा इस प्रकार थी कि महाकच्छ के राजा एक एक निमित्त ज्ञानी से अपनी कन्या प्रियङ्गु श्री के भावी पति के सम्बन्ध में पूछता है, तो निमित्तज्ञानी कहते हैं कि यह कन्या छह हजार रानियों मे स्तबक-गुच्छ देश के नरेश ऐरावण की पटरानी बनेगी। (सर्ग 2, श्लोक-15) दूसरी बात यह भी दृष्टिगोचर होती है कि निमित्तज्ञानी के बताने के बाद भी कन्या का पिता वर की परीक्षा करता था। जैसे काव्य में कहा है कि महाकच्छ राजा ने मायावी घोडे के द्वारा ऐरावण की परीक्षा ली थी, क्योंकि उस मायावी घोडे पर जसे ही ऐरावण बैठा घोडा उसके अधीन हो गया। अत· उसे पुण्यशाली समझकर अपनी कन्या दे दी।

इस प्रसग में यह बात भी स्पष्ट होती है कि जब महाकच्छ राजा ने ऐरावण से कहा कि आप चलकर मेरी कन्या का पाणिग्रहण करे। (सर्ग-2, श्लोक-26) इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय वर कन्या के दरवाजे पाणिग्रहण करने आता था। लेकिन ऐरावण के कथनानुसार समुद्र नदी के पास नहीं जाता है, नदी ही समुद्र के पास आती है।

हम इक्ष्वाकुवंशी हैं फिर मर्यादा का उल्लंघन कैसे कर सकते हैं । आप यदि चाहें तो अपनी कन्या को यहीं पर लाकर मेरे साथ विवाह कर सकते हैं । तब फिर महाकच्छ राजा ने अपनी कन्या प्रियंगु श्री को स्तबक गुच्छ नगर में ही लाकर ऐरावण राजा से विवाह कर देता है । (सर्ग-2, श्लोक 28, 29) अर्थात् इस कथन से सिद्ध होता है कि इक्ष्वाकु वंश में भी यह प्रथा प्रसिद्ध थी की कन्या को स्वयं ले जाकर वर से विवाह कर दिया जाता था । और भी अन्य रीति रिवाज इस काव्य में वर्णित है, जैसे ब्राह्मणो द्वारा यज्ञोपवीत धारण करना वैश्य पुत्र पिता द्वारा धनार्जित धन के उपयोग का वर्जन, जादू टोने पर विश्वास करना, तोता पालना, शकुनो पर विश्वास बहु विवाह करना, गिरवी आदि रखने की परम्परा थी । अस्तु

पशु-पक्षी

लेखक ने इस काव्य में पशु पक्षियों को कहीं तो उपमा अलकार के रूप मे, कहीं पर अपने काव्यगत पात्रो की पर्यायो के रुप में प्रासगिक किया है । जैसे भ्रमर, गाय, बछडा, जोक, चूहा, कामधेनु, सिह, कुत्ता, चकोर मछली, पतंगा, तोता, हंस, पपीहा, कोयल, हिरण, बकरा, चकवा आदि पशु पक्षियो को उपमा के रूप मे ग्रहण किया है ।

घोड़ा ऐरावण राजा की परीक्षा के लिये महाकच्छ राजा द्वारा मायावी बनाया गया था । (सर्ग-2, श्लोक-18)सर्प का उल्लेख भी लेखक ने काव्य का खलनायक सत्यघोष की आगत पर्यायो के रुप मे साधारण सर्प एव अजगर सर्प के रुप में उल्लेख किया हे । (सर्ग-4, श्लोक 35 एव अजगर सर्ग-5, श्लोक 32) सर्प का नाम एक दो स्थानो पर उपमा के रूप में भी आया हे ।

अशनिवेग हाथी का नाम इस काव्य में राजा सिहसेन की एक पर्याय के रुप मे उल्लेखित है । (सर्ग-4, श्लोक 33, 38)

चर्म मृग नामक पशु को सत्यघोष को एक पर्याय मानी गयी है इस काव्य में । सत्यघोष को मत्रीपद से हटाने के बाद धम्मिल नाम के व्यक्ति को राजा ने मत्री बनाया था । वह मंत्री मरकर बन्दर हुआ । (सर्ग-4, 5 श्लोक 37 8)

देश- देशान्तर

भरत क्षेत्र मे श्री पदम (1, 29) नाम का नगर काव्य नायक का जन्म स्थान के रूप मे नाम आया है । स्तवकगुच्छ (2/15) एरावण राजा का देश माना गया है । सिहपुर काव्य नायक के व्यापार स्थल जहा पर काव्यनायक, श्रीभूति मत्री के द्वारा ठगा गया था । कौशल देश में वृद्ध नाम का (4/24) का गांव जो रामदत्ता रानी के जीव पूर्व पर्याय मे मृगायण नामक ब्राह्मण से मकर कर हिरण्यवती नाम की कन्या के रूप में जन्म लिया था । अलकानगर (2/10 22) महाकच्छ राजा की राजधानी बतायी गयी है । पावनपुर राजा पूर्णचन्द्र की राजधानी (सर्ग 4, श्लोक- 27) धरणी तिलक विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण श्रेणी का एक नगर (5/17) भास्कर पुर राजा सूर्यावृत की राजधानी (5/22) पृथ्वीतिलक तथा चक्रपुर आदि पौराणिक नगरो का उल्लेख ग्रन्थ में मिलता है ।

वनस्पतियाँ

वनस्पतियों के नाम इस काव्य मे उपमा उपमेय के रूप मे निम्न लिखित आये हैं - कमल, शाण, दाख, बदरीफल, केला, कपास, साल, घास, बिल्लव फल टेसु, आदि ।

पर्वत, समुद्र, नदिया, एव तालाब

इनके नाम उपमा के रूप में तथा कुछ वर्णन के रूप में आलेखित हैं । उपमा के रूप में निम्न प्रकार है- समुद्र (1 स -2 स) गगा नदी (1/7) तलैया (3/13) सरोवर (5/11) (6-7) आदि के वर्णन के रुप मे कचनगिरी एवं विजयार्ध पर्वत का नाम आया है, जिसमें लेखक ने विजयार्द्ध पर्वत का वर्णन बहुत ही विस्तार से इस प्रकार किया है कि - यह पर्वत समस्त पर्वतों का गुरु है । (2/1) यह पर्वत भरत क्षेत्र के ठीक बीच में बताया गया है । जो

चक्रवर्ती की अर्द्ध विजय को बताने वाला है । यह पर्वत शिखरों से तो आकाश को छूता है तथा विस्तार मे तो मानो सारे भू मण्डल को घेर रहा हो । इस पर्वत पर 25 योजन की ऊँचाई पर कटनी बनी हुई है, जो इस पहाड को दक्षिण एवं उत्तरी श्रेणी में विभाजित करती है । इस पर्वत पर दो सुरंगें हैं, जिसमें से चक्रवर्ती अपनी सेना सहित तीन म्लेच्छ खण्डों को जीतने जाता है । (सर्ग-2, श्लोक 2, 3, 4, 5,)

अर्थ पुरुषार्थ

समुद्रदत्त चरित्र में लेखक ने वैश्यो के कर्तव्य बताते हुए लिखा है कि वैश्य पुत्र के लिये पिता के द्वारा कमाए हुए पदार्थों से अपना निर्वाह करना उचित नहीं है । किन्तु उन्हे स्वय कुछ ना कुछ व्यवसाय करना चाहिये । (सर्ग-1, श्लोक-31) इस सम्बन्ध में इस काव्य मे कहा गया है कि एक बार बचपन मे काव्य नायक मित्रो के साथ खेल रहा था तब किसी मित्र ने वैश्य पुत्र के कर्तव्यों से अवगत कराते हुए कहा है कि जो गृहस्थ होकर व्यवसाय हीन होता है, अर्थात् कुछ भी कारोबार नहीं करता, वह क्रोधी मुनीश्वरो की तरह दूसरो को भी नुकसान पहुँचाता है तथा स्वय का भी अहित करता हुआ नरक गामी होता है । (सर्ग-1, श्लोक 34) इसी प्रसंग को आगे बढाते हुए लिखा है कि जो गृहस्थ आजीविका से रहित होता है, वह सदा अपने मन में चिन्ताओ के कारण जलता रहता है तथा प्रजा को भी सताता हुआ नरक में पडता है, ऐसा वृद्ध लोग कहते हैं । (सर्ग -2, श्लोक 33) अत सिंह के समान साहसवान् वैश्य पुत्र को चाहिये कि वह अपने हाथों से अपनी अजीविका करे, दूसरो के भरोसे ना रहे, क्योंकि जो गृहस्थ अपना पेट भरने के लिये दूसरों का मुँह ताका करता है, वह इस दुनियाँ मे कुत्ते की भाति निन्दनीय माना गया है । (सर्ग-2, श्लोक 34) जो पिता के धन को बढ़ाता है, वह चन्द्रमा के समान सबको प्यारा होता है । इसी प्रसग मे कहा है कि जो वैश्य पुत्र अर्थ पुरुषार्थ के लिए जाता है, उसे माता पिता की आज्ञा व सलाह जरूर लेना चाहिये । क्योंकि बडे गुरुजनों के आशीर्वाद मे काम सरलता से पूरे हो जाते है । (सर्ग-3, श्लोक 2) हालांकि माता-पिता मोह के कारण पुत्र को व्यवसाय के लिये नहीं जाने देते हैं, वह कहते हैं कि घर में धन की क्या कमी है, जो तुझे कमाने का विकल्प आ रहा है। (सर्ग-3, श्लोक-11) तब भी उस वैश्य पुत्र को अपनी बुद्धि कौशल से उन्हे समझा कर व्यापार के लिये जरूर जाना चाहिये । (सर्ग 3, श्लोक-14) इस प्रसग मे लेखक ने अर्थ पुरुषार्थ के लिये प्रेरित किया है वहीं पर वैश्य पुत्र को सतोषी होना चाहिए अर्थात् अर्थ पुरुषार्थ तो करे परन्तु अर्थ का लोभ न करे । (सर्ग 4, श्लोक-3)

सैद्धान्तिक समीक्षा (जैनागम के परिप्रेक्ष्य मे)

इस महाकाव्य की आगम परिप्रेक्ष्य में सैद्धान्तिक समीक्षा करने पर अनेक विशेष तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं । जैसे वज्रसेन मुनि का उदाहरण देते हुए लिखा है कि वज्रसेन मुनि बाह्य द्रव्य लिग को धारण कर लेता है तथा घोर तप के माध्यम से तेजस ऋद्धि प्राप्त करके स्तबकगुच्छ नगर के समीप जाकर बैठ जाता है । वहाँ पर लोगों ने उसे लाठियो से मारना शुरु कर दिया तब उस ब्रजसेन (बाह्य लिगी) मुनि ने अपने बाये कधे से तेजस पुतला निकाल कर सपूर्णनगर को जला कर भस्म कर दिया तथा स्वय भी उसी पुतले से जलकर भस्म होकर नरक चला गया । (सर्ग -2 श्लोक 28 से 32) यहाँ पर यह बात विचारणीय है कि लेखक ने मुनि को बाह्य भेषधारी कहा तथा दूसरी ओर उसे तैजस ऋद्धि का धारक भी कहा सो यह बात आगम मे सिद्ध नहीं होती, क्योंकि धवलाकार ने ऋद्धि का अधिकारी भाव लिगी को ही बताया है, द्रव्य लिगी को नहीं । (देखिये पुस्तक 14/खण्ड 5/सूत्र 6/ पृ 241-328) धवला मे सजद शब्द जो आया ह, वह भाव लिङ्ग का ही प्रतीक है ।

तीसरे सर्ग मे लेखक ने कहा है कि समुद्र का पुत्र चन्द्रमा जन्मते ही समुद्र से दूर होकर लोगो को प्रसन्न करता हुआ । आकाश में विचरण करता है, अत चन्द्रमा को समुद्र का पुत्र कहना दिगम्बर जैन आगम के अनुसार सिद्ध नहीं होता । यह प्रसंग भी विद्वानो को विचारणीय है ।

इस काव्य में लेखक ने एक विशेष बात कही है कि स्वल्प काम वासना वाला जीव पुरुष शरीर को धारण करता है और उत्कृष्ट वासना जिसे सताती है वह स्त्री शरीर को प्राप्त करता है और जो विपरीत काम वासना को प्राप्त होता है, वह नपुंसक शरीर को धारण करता है । (सर्ग-4, श्लोक-30) यह प्रसंग पूर्णतया आगम से सिद्ध होता है और सामान्य जन मानस के लिये शिक्षा प्रदान करता है ।

सर्वावधि ज्ञान मोक्ष मार्ग मे कलेवा का काम करता है । इस सदर्भ में भी जब विचार करते हैं तो आगम तो यह कहता है कि अवधि ज्ञान एव मन.पर्यय मोक्ष मार्ग के लिये आवश्यक नहीं है । फिर लेखक ने अवधि ज्ञान को मोक्ष मार्ग का कलेवा किस अपेक्षा मे कहा है, यह विषय विचारणीय है दूसरा प्रसग यह भी विचारणीय है कि रानी रामदत्ता जब आर्यिका बन जाती है तो उसके बावजूद भी वह आर्यिका वेष में ही अपने पुत्र को ससार मार्ग से विरक्त कराने के लिये राज दरबार मे जाती है, जो उसका गृहस्थ अवस्था में घर था । (सर्ग-5, श्लोक-4)

जन्म जन्म के सस्कार

इस काव्य के कथनानुसार संसार मे जो भी राग-द्वेष, शत्रुता-मित्रता देखी जाती है वह पूर्वभवो के सस्कारों एवं सम्बन्धो पर आधारित होती है । काव्य में कहा है, कि सत्यघोष राजा सिहसेन के प्रति वैर बांधता है तो वह राजा के भण्डार मे सर्प बनकर उसे काटता है (सर्ग-4, श्लोक-11) दूसरा उदाहरण इस काव्य में ससार की विचित्रता को दर्शाने वाला दिया गया है कि यदि पुत्र भी मा की बात को नहीं मानता है और मां सक्लेश पूर्वक मरण को प्राप्त हो जाए तो वह मा भी पुत्र की बैरन बन जाती है । जैसे काव्य नायक का जीव भद्रमित्र दान देने मे रुचि रखता है लेकिन उसकी मा कजूस होने के कारण उसे रोकती है पर भद्रमित्र अपने दानशील स्वभाव का नहीं छोडता । परिणाम स्वरूप उसी सक्लेश के कारण मा मर कर व्याघ्री हो जाती है और अपने बेटे भद्रमित्र को खा जाती है (सर्ग-4, श्लोक-8) प्रेम के सस्कार को भी पूर्वभव का सस्कार बताते हुए काव्य में लिखा है कि भद्रमित्र के रत्नो को सत्यघोष के द्वारा हडपे जाने पर रामदत्ता रानी द्वारा वापस दिलाए जाने के कारण भद्रमित्र का जीव मरण को प्राप्त होकर रामदत्ता के गर्भ मे आकर उसके यहा पुत्र रूप मे जन्मता है । यहा यह बात स्पष्ट होती है कि माता और पुत्र के सम्बन्ध पूर्वभव के उपकार उपकारी भाव मे होते हैं ।

सिंहचन्द्र मुनि महाराज ने जो (काव्य नायक का जीव) आर्यिका रामदत्ता के कहने पर राजा पूर्णचन्द के पूर्वभवो का जो वर्णन कहा है, उससे भी यही सिद्ध होता है कि जो कुछ वर्तमान में देखा जाता है वह सब पूर्व भवो का ही सस्कार है । (सर्ग-4 श्लोक 9)

यही सिहचन्द्र मुनि दीक्षा धारण कर लेता है तथा रानी रामदत्ता आर्यिका व्रत अगीकार कर लेती हैं ।

सस्कार के वशीभूत होकर रामदत्ता आर्यिका दीक्षा लेने के बाद भी अपने छोटे पुत्र पूर्णचन्द्र को सम्बोधन करने के लिये राजमहल मे जाती है । ऐसा वर्णन पाचवें सर्ग में किया गया है । भद्रमित्र रामदत्ता, सिहसेन, सत्यघोष, (श्री भूति मंत्री) इनके भव भवान्तरों का संबंध इस काव्य में इस प्रकार किया गया है ।

भरत क्षेत्र के कौशल देश के वृद्ध गांव में मृगायण नामक ब्राह्मण था । जिसकी स्त्री मधुरा थी । (रामदत्ता का जीव) इन दोनों के वारुणी (पूर्णचन्द्र का जीव) नाम की पुत्री हुई । मृगायण ब्राह्मण मरकर अयोध्या के राजा की रानी सुमित्रा के गर्भ से हिरण्यवती नाम की कन्या के रूप में जन्म लेती है । (सर्ग-4, श्लोक-25) उस हिरण्यवती का विवाह पूर्णचन्द्र से हुआ, जिसकी कूख से मधुरा नाम की ब्राह्मणी मरकर रामदत्ता हुई तथा वारुणी नाम की पुत्री मरणकर रामदत्ता के गर्भ से पूर्णचन्द्र नाम से जन्मी । और दूसरा सिंहचन्द्र (काव्य नायक भद्रमित्र का जीव) के रूप में रामदत्ता के गर्भ से ज्येष्ठ पुत्र हुआ ।

पूर्ण चन्द्र मुनि के पास सिंहचन्द्र (भद्रमित्र) दीक्षा लेते हैं । इधर सत्यघोष का जीव सर्प होकर चमरमृग हुआ। (सर्ग-4, श्लोक 35) और उसके बाद वह मरकर पुन सर्प हुआ । जो पूर्व बैर के कारण अशनि घोष हाथी (सिंहसेन

राजा का जीव) को डस लेता है । तब इसे धमिल्ल नाम का मंत्री (श्री भूति मंत्री के बाद मंत्री पद पर बैठा था) जो मरकर बंदर हुआ है, उसने सर्प (सत्यघोष का जीव) को मार डाला (सर्ग-4, श्लोक-37)

यहां परिणामों की विचित्रता दृष्टिगोचर होती है कि पूर्व भवों के परस्पर बैर के कारण व्यक्ति वर्तमान में एक दूसरे मे कोई सम्बन्ध नहीं होने पर भी एक दूसरे को हानि पहुंचाते हैं ।

सिंहचन्द्रमुनि ने रामदत्ता आर्यिका को बताया कि पूर्णचन्द्र जिस हाथी दांत के पंलग पर बैठा है, वह हाथी दांत एवं गले में धारण करने वाला रत्नहार अशनिवेग हाथी की गज मुक्ताओं एवं दांतों का बना हुआ है । संसार का विचित्र परिणमन यहां स्पष्ट रूप से उजागर होता है कि वही पूर्णचन्द्र अपने पिता सिंहसेन जो हाथी की पर्याय में था । उसकी ही हड्डियों से पर्लंग बनाकर अपनी वैभव सम्पन्नता को प्रदर्शित कर रहा है । (सर्ग-4, श्लोक-39) बाद में रामदत्ता आर्यिका का जीव समाधिमरण कर 16 सागर की आयु वाल भास्कर देव होता है और पूर्णचन्द्र भी उसी महाशुक्र स्वर्ग में वैडूर्य नामक विमान में 16 सागर की आयु वाला अधिपति होता है । रामदत्ता का जीव स्वर्ग से चयकर विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में धरणी तल नगर के आदित्य वेग नामक राजा की रानी सुलक्षणा से श्रीधरा नाम की कन्या के रूप में जन्मा । (सर्ग 5, श्लोक 17से 20)

पूर्व भवों के संस्कार के वशीभूत पूर्णचन्द्र का जीव 'श्रीधरा' के गर्भ से यशोधरा नाम की कन्या के रूप में जन्मा । इस यशोधरा का विवाह राजा सूर्यव्रत के साथ हुआ । और इस यशोधरा के गर्भ से राजा सिहसेन का जीव जो हाथी की पर्याय से मरकर देव हुआ था । वह रश्मिवेग नाम का पुत्र हुआ । (सर्ग- 5 श्लोक -35)

इस प्रसंग को पढने के बाद बडा आश्चर्य होता है कि संसार मे एक पर्याय पूर्व स्त्री वह देव पर्याय में पुरुष हो गया । परिणामों की विचित्रता के फलस्वरूप वही देव मरकर पुन स्त्री पर्याय को धारण कर लिया । इसी प्रसग को आगे बढाते हुए लेखक ने लिखा है कि पूर्व भवों के द्वेष के कारण सत्यघोष का जीव जो सर्प की पर्याय से मरकर पुन अजगर हो गया था । जब रश्मि-वेग मुनि दीक्षा धारण कर लेता है एव श्रीधरा और यशोघरा आर्यिका व्रत धारण कर लेती है । एक दिन तीनो को सत्यघोष का जीव जो अजगर बना था वह इन तीनो को एक साथ निगल जाता है । (सर्ग 5, श्लोक 32)

तीनों मरण कर आठवे कापिष्ठ नामक स्वर्ग में 14 सागर वाली आयु वाले देवत्व को प्राप्त करते है (5-33) और वह अजगर का जीव (सत्यघोष) मरण कर पंकप्रभा नाम के चौथे नरक चला जाता है । (सर्ग 5, श्लोक-34)

भरत क्षेत्र के चक्रपुर नगर का अपराजित राजा था, उसकी सुदरी नाम की रानी थी । इन दोनो के संयोग से सिहचन्द्र का जीव (काव्य नायक) मरण कर नवम ग्रैवेयक मे गया था । वहाँ से आकर चक्रायुध नाम का पुत्र हुआ। जिस चक्रायुध का विवाह पाँच हजार कन्याओ से होता है । जिसमें मुख्य चित्रमाला नाम की रानी से रश्मिवेग की जीव (सिहसेन का जीव) स्वर्गों से चलकर वज्रायुध नाम का पुत्र होता है । (सर्ग 6 श्लोक 24) और अतिवेग नामक विद्याधर जिसकी प्रियकारिणी रानी से श्रीधरा का जीव (रामदत्ता रानी) स्वर्ग से च्युत होकर रत्नमाला नाम की पुत्र हुई । (6, 26) ।

जिसका विवाह सम्बन्ध वज्रायध (सिंहसेन का जीव) से होता है (सर्ग6, श्लोक 28) और यशोधरा का जीव (पूर्णचन्द्र) जो स्वर्ग गया था वहाँ से चयकर वज्रायुध और रत्नमाला के संयोग से रत्नायुध नाम का पुत्र हुआ । (सर्ग 6 श्लोक - 29) ।

सम्पूर्ण घटनाओं पढने के बाद यही सारांश निकलता है कि वर्तमान दुनियाँ में जितने भी राग द्वेष आदि सम्बन्ध देखे जाते हैं । वे सब जन्म जन्मान्तरों से सम्बद्ध होते हैं ।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुरुष :

(1) ऋषभदेव सर्ग 1 श्लोक -1 (जैन दर्शनानुसार -इस युग के प्रथम तीर्थङ्कर)

(2) वर्धमान सर्ग 1, श्लोक 2,3- (जैन दर्शनानुसार इस युग के अंतिम तीर्थङ्कर)

इन दोनों पौराणिक पुरुषों को लेखक ने मगलाचरण के रूप में स्मरण किया है । चक्रवर्ती शब्द का भी लेखक ने प्रयोग किया है लेकिन नाम नहीं दिया । (सर्ग 2, श्लोक 2) राम और लक्ष्मण का नाम भी सिंहचन्द्र और पूर्णचन्द्र भाइयों के परस्पर प्रेम की उपमा के लिये लिया है । (सर्ग 4, श्लोक 10) ।

ऐतिहासिक एव सामान्य पुरुषो में कुछ नाम आए हैं, जिनमें अधिकतर पात्रों के भव भवान्तरो के पर्यायों के नाम हैं जैसे सुदत्त वैश्य काव्य नायक भद्रमित्र का पिता (1-29)। भद्रमित्र काव्य नायक, महाकाच्छ राजा दामिनी रानी प्रियङ्ग श्री पुत्री एक आदर्श के रूप में इनको प्रस्तुत किया गया है, अर्थात् एक वैश्य पुत्र के कर्तव्यों को समझाने के लिये इन्हें उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया गया है (सर्ग 2 श्लोक 11, 13) । ऐरावण राजा एवं बज्रसेन भी इसी प्रसंग में आये हैं । (सर्ग 2 श्लोक 16 से 28)

राजा मेघ को एक आदर्श राजा के रूप में उपमेय इस काव्य मे किया गया । (सर्ग 2 श्लोक 12)

राजा सिहसेन-काव्य नायक भद्रमित्र का उपकारी राजा उसके राज्य मे भद्रमित्र व्यापार करने आया गया था । रानी रामदत्ता जिसने काव्य नायक के लुटे हुये रत्नो को अपनी कुशलता से वापस दिला दिये थे । (सर्ग 3 श्लोक 18-20) ।

श्री भूति राजा सिंहसेन का मत्री एव इस काव्य का खलनायक है जिसने भद्रमित्र के रत्न हडप लिये थे, जो सत्यघोष नाम से प्रसिद्ध था, जो बाह्य सत्यता को प्रदर्शित करने के लिये अपने जनेऊ मे छुरी डाले हुए था वह कहता था कि यदि मैं झूठ बोलू तो इस छुरी से मे अपने प्राण ले लूंगा । इसका वर्णन 3 मे 4 सर्ग मे विशेष रूप मे आया है । धम्मिल्ल मत्री जो सत्यघोष को पदच्युत करने के बाद मत्री बना था । (4-37)

पूर्णचन्द्र - सिहचन्द्र का भाई था, और सिहचन्द्र राजा-काव्य नायक का जीव (भद्र मित्र की दूसरी पर्याय) (सर्ग 4, श्लोक 9,10) एक दूसरा नाम भी पूर्णचन्द्र का आता है, जो पोदनपुर का का राजा था, मृगायण ब्राह्मण मथुरा ब्राह्मणी हिरण्यवती, वारुणी, धनमित्र श्रीधरा, यशोधरा, रत्नमाला, वज्रायुद्ध, चक्रायुद्ध, रत्नायुद्ध आदि नाम काव्य पात्रो की पूर्व पर्यायो के है, जो काव्य मे यथा प्रसग उल्लेखित किये गये हैं और अयोध्या नरेश रानी सुमती धनमित्र व्याध, आदित्यवेग रानी सुलक्षणा दर्शक राजा सूर्यावर्त अपराजित अतिवेग प्रियकारणी आदि नाम काव्यगत पात्रो के भव भवान्तरो के सबन्धित रहे हैं इसलिये काव्य मे इनको उल्लेखित किया गया है । यह प्राय सभी पुरुष अपने समय मे प्रभावशाली रहे हैं अत इन्हे ऐतिहासिक पुरुषो के अर्न्तगत ले सकते हैं । कुछ 2-4 नाम जरूर सामान्य है सो उन्हें सामान्य पुरुष के रूप मे स्वीकार कर सकते है ।

काव्य नायक एव काव्यगत खलनायक की मीमासा

इस समुद्रदत्त काव्य का नायक भरत क्षेत्र के श्री पद्म खड नामक नगर का सुदत्त वैश्य एवं सुमित्रा का पुत्र भद्रमित्र नाम से प्रसिद्ध हुआ है । (सर्ग 1 श्लोक 29-30) यही भद्रमित्र इस काव्य का नायक हैं ।

काव्य नायक एक बार अपने मित्रो के साथ खेल रहा था, उसी समय एक मित्र ने कहा, वैश्य पुत्र को पिता की कमाई पर आश्रित नहीं रहना चाहिए । (सर्ग 1 श्लोक 31)

एक बार महाकच्छ राजा ने निमित्त ज्ञानियो से अपनी पुत्री का पति स्तवकगुच्छ का राजा ऐरावण होगा ऐसा जानकर उसे अपनी कन्या ब्याहने जा रहा था तब रास्ते मे वज्रसेन नामक व्यक्ति ने उस कन्या को हठात् छीनना चाहा लेकिन महाकच्छ राजा ने उसे पराजित कर दिया वह अपमानित होकर बाह्य लिङ्ग को अर्थात् द्रव्य लिङ्ग को धारण

कर घोर तपस्या करके तैजस ऋद्धि को प्राप्त कर स्तवकगुच्छ नगरी के पास आकर बैठ गया, वहां जनपद वासियों ने उसे लाठियों से मारा । परिणामस्वरूप वज्रसेन मुनि ने क्रोध के आवेश में अपने बायें कंधे से अशुभ तेजस पुतला निकालकर स्तवकगुच्छ नगर को भस्म कर दिया एव उसी पुतले से स्वयं भस्म होकर नरक चला गया । (सर्ग 2 श्लोक 32)

इस उदाहरण को सुनकर काव्य नायक भद्रमित्र अपने पिता से आज्ञा लेकर भरत क्षेत्र के सिंहपुर नगर व्यवसाय के लिये जाता है (3-18) वहा पर राजा के मत्री श्री-भूति (सत्यघोष) से संगति हो जाती है, यहीं श्री भूति इस काव्य का खलनायक है । व्यापारी के कमाये हुए रत्नो को भद्रमित्र श्री भूति के विश्वास में आकर उसके पास रखकर अपने माता-पिता को लेने पद्मखण्ड देश जाता है । जब वहा से लौटकर वापस आकर श्रीभूति मे अपने रत्न वापिस मागता है, तब वह भद्रमित्र से कहता है, कि तूँने मुझे रत्न कब दिये ? और भाण्ड वचन बोलते हुए कहता है कि तूँने रत्न कभी देखे भी हैं, जो आज रत्न मागने आया । "उल्टा चोर कोतवाल को डांटे" वाली कहावत सत्यघोष अर्थात श्रीभूति के दुराचरण में पूर्णतया घटित होती है ।

भद्रमित्र राजा सिहरथ के पास अपनी शिकायत करता है लेकिन सिह नरेश तो सत्यघोष की सत्यता पर विश्वास रखता था, इसलिये भद्रमित्र की बात पर राजा को विश्वास नहीं हुआ । तब भद्रमित्र ने अपनी बुद्धि चातुर्य से सोचा कि अपनी वस्तु प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास करते रहना चाहिए । एक दिन सत्य की विजय अवश्य होगी । अत वह प्रतिदिन राजमहल के पास वृक्ष पर बैठकर प्रतिदिन कहता है कि विप्र सत्यघोष तुझे राजा की कृपा से किस बात की कमी है, जो तूँने मुझ गरीब के रत्न हडप लिये । ध्यान रख, यदि भगवान् ने चाहा तो यही तेरा दुष्कर्म तेरे यश को समाप्त कर देगा । (सर्ग 3- 33-36) यह बात प्रतिदिन रामदत्ता रानी सुना करती थी, एक दिन उसने राजा से कहा -स्वामिन् । यह व्यक्ति पागल नहीं है इसके कथन में कोई रहस्य है, अत आप राजदरबार मे जाकर दरबार लगाइये तब तक में इस रहस्य की खोज करती हूँ, रानी ने अपनी बुद्धि से विचार करके श्री भृति के साथ चौपड खेलती है, इसी खेल मे वह उसका सकल्पित जनेऊ व छुरी जीत लेती है व उनको दासी द्वारा उसके (मत्री) घर भेजकर कहलवाती है कि मंत्री जी (श्रीभूति) ने जो तिजोरी मे रत्नो का पिटारा रखा है, वह मगाया है, साक्षी के रूप मे यह जनेऊ एव छुरी भेजी है ।

इस प्रकार से रत्नो को मंगवा कर राजदरबार में ले जाकर अनेक रत्नो में मिलाकर रख देती है भद्रमित्र को अपने रत्न पहचानने के लिए कहा जाता है संतोष व्रत को धारण करने वाला भद्रमित्र मात्र अपने रत्नों को चुन लेता है । राजा सिह सत्यघोष को मिथ्याभाषी मानकर भद्रमित्र को नगर श्रेष्ठी घोषित कर देता है तथा सत्यघोष (श्रीभूति) को मत्री पद से हटाकर धम्मिल नाम के व्यक्ति को मंत्री पद दे देता है । सत्यघोष आर्त रौद्र ध्यान पूर्वक मरण कर राजा के भण्डार में सर्प हो जाता है । जीवो के परिणामो की विचित्र दशा है, लोभ कषाय के वशीभूत होकर सत्यघोष ने अपना सारा यश, अपयश के रूप में परिवर्तित कर लिया तथा मनुष्य पर्याय को खोकर तिर्यंच होना पडा, इसलिए कहा है कि लोभ पाप का बाप है । इधर काव्य नायक भद्रमित्र वरधर्म नाम के मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर दिल खोलकर दान देने में प्रवृत्त हुआ । लेकिन उसकी मा कंजूस होने के नाते उसको दान देने से मनी करती है फिर भी भद्रमित्र दानशील स्वभाव को नहीं छोड़ता परिणाम - स्वरूप उसकी माँ सक्लेश के साथ मरकर के व्याघ्री होकर अपने ही पुत्र भद्रमित्र भक्षण कर लेती है, भद्रमित्र का मरण कर राजा सिह सेन की रानी रामदत्ता के गर्भ से सिंहचन्द्र नाम से जन्म ले लेता है । इसी रामदत्ता से पूर्णचन्द्र नाम का एक और पुत्र जन्म लेता है ।

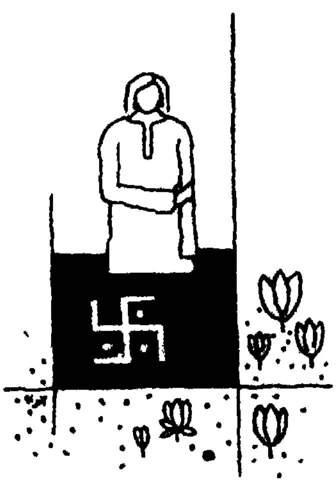
खलनायक सत्यघोष का जीव जो भंडार में सर्प हुआ । उसने राजा को खजाने से रत्न निकालते समय डस लिया जिससे राजा मरकर अशनिघोष नाम का हाथी हुआ । काव्यनायक भद्रमित्र का जीव मरणकर सिंहचन्द्र राजा बन गया कुछ दिन राज्य करने के बाद अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्र को राज्य देकर मुनि व्रत धारण करके मन पर्यय ज्ञान एव चारण ऋद्धि का धारी हो जाता है, एक दिन सिंहचन्द्र की माँ रामदत्ता (जो आर्यिका बन गयी थी) के अनुग्रह पर

सिंहचन्द्र मुनि अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्र के भव-भवान्तर बताते हैं, इन भव भवान्तरों का वर्णन लेखक ने चतुथ सर्ग में किया है, सिंहचन्द्र मुनि समाधि पूर्वक मरण कर अन्तिम ग्रवैयक में 31 सागर की आयु वाला देव होता है । पूर्णचन्द्र और आर्यिका रामदत्ता भी मरण कर 16 सागर की आयु वाले देवों में उत्पन्न होते हैं । वहां से चयकर रामदत्ता का जीव श्रीधरा एवं पूर्णचन्द्र का जीव उसकी पुत्री यशोधरा एवं राजा सिंहसेन का जीव यशोधरा के गर्भ से रश्मिवेग नाम का पुत्र हुआ ।

आगे जाकर श्रीधरा, यशोधरा, आर्यिका व रश्मिवेग मुनि बन जाते हैं, तीनों जब सिद्धकूट चैत्यालय में बैठे थे तब सत्यघोष का जीव जो मरकर अजगर हुआ उसने तीनों को एक साथ निगल लिया । तीनों समता परिणाम से मरकर 14 सागर की आयु वाले देव मे जन्म लिया तथा वह अजगर मरके 5 वे नरक में दुख भोगने लगा ऐसा वर्णन 5 वें सर्ग में आया है । 9 वें ग्रैवयक से काव्य नायक का जीव आयु पूर्ण कर चक्रपुर नगर के राजा अपराजित की रानी सुन्दरी के यहाँ वज्रायुद्ध नाम का पुत्र हुआ, जिसने चित्रमाला आदि 5000 कन्याओं से विवाह किया ।

एक दिन चक्रायुद्ध राजा दर्पण में चेहरा देख रहा था तो उसको एक सफेद बाल सिर पर दिखायी दिया । जिससे अपना अन्त समय जानकर वैराग्य को प्राप्त हुआ तथा अपने पिता अपराजित जो पिहिताश्रव मुनि के पास दीक्षित हुए थे, उनके चरणों में जाकर दीक्षा ले लेता है, चक्रायुध मुनि की चर्या का वर्णन लेखक ने 9वें सर्ग में विस्तार एव सुन्दरता से किया है । अन्त में चक्रायुद्ध (जो काव्य का नायक भद्रमित्र) कर्मों को क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त करता हुआ सिद्ध पद को प्राप्त हो गया । इस प्रकार से लेखक ने काव्य के उपसंहार मे लिखा है कि' सीधे से भद्रमित्र की आत्मा परमात्मा बन गई । इस प्रकार से लेखक ने समुद्रदत्त चरित्र में भद्रमित्र जैसे सरल सतोषी प्राणी के चरित्र को वर्णन करके जनमानस को अनुकरण करने के लिए एक सदेश दिया है तथा खलनायक सत्यघोष के मिथ्याचरण के फलाफल का वर्णन करके ससारी प्राणियो को मिथ्याचरण एवं लोभादिक मिथ्या परिणामो को त्यागने का संदेश दिया है ।

॥ इति शुभम् ॥



सुखी रहें सब जीव जगत् के कोई कभी न घबरावे,
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मगल गावे ।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्म फल सब पावे ॥

'सुदर्शनोदय' की पात्र योजना

डॉ सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

मानवीय यथार्थ के धरातल पर आत्मिक गुणो की स्थापना करना रचनाकार उद्देश्य होता है। यदि रचनाकार महान् हो तो उसकी कृतियों में भी महत्ता आती है । जिस रचनाकार का व्यक्तित्व एवं जीवनदर्शन महानता की श्रेणी में नहीं आता, उसकी रचनाओं में विशिष्टता या गुणात्मकता की खोज व्यर्थ है । परमपूज्य आचार्य श्री १०८ ज्ञानसागरजी महाराज ऐसे विशिष्ट रचनाकार हैं, जिनकी कृतियो में उनका पवित्र जीवनदर्शन प्रतिबिम्बित होता है। पूज्य आचार्य श्री द्वारा रचित 'सुदर्शनोदय' की पात्र योजना पर विचार से पूर्व यह जानना आवश्यक होगा कि किसी कृति में पात्रों की महत्ता या आवश्यकता क्या है ? इस विषय में ध्यातव्य है कि -

अपारे काव्यसंसारे कविरेक प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्व तथैव परिवर्तते ॥[1]

अर्थात् इस अपार काव्य ससार में कवि प्रजापति होता है उसे यह ससार जैसा रुचता है वैसा ही परिवर्तित कर देता है । यह कथन 'सुदर्शनोदय' के कथ्य एवं कवि पर लागू होता है । वे जिस सासारिक वैराग्य एवं धर्म-मोक्ष पुरुषार्थ के पक्षधर थे वैसा ही कथ्य उन्होंने 'सुदर्शनोदय' के माध्यम मे प्रतिपादित किया । किसी रचना एव पात्रो के सुमेल के विषय में 'कुन्तक' का मत है कि "पात्रों के माध्यम से ही कवि अपने अभीष्ट को पूर्ण कर सकता है ।"[2]

ब्रैंडर मैथ्यूज ने 'स्टडी ऑफ द ड्रामा' में लिखा है कि "कथा का स्वरूप भी पात्रो के व्यक्तित्व से ही निर्मित होता है, फिर भी पात्र उसी प्रकार के हो सकते हैं जैसा कि उन्हें कथानक बना दे । पात्र और कथानक का सयोग कोई आकस्मिक यान्त्रिक मित्रता नहीं, घनिष्ट रासायनिक यौगिक के समान है। पात्र और कथानक समानान्तर नहीं रखे जाते, वे परस्पर एकत्रित होते हैं, उनका अस्तित्व एक-दूसरे के लिए है और एक दूसरे के साथ है ।"[3]

डब्ल्यू, एच हडसन के अनुसार-"घटना को पात्र में ही रोपा जाता है और उसी के केन्द्र मे व्याख्यायित किया जाता है" (The incident is rooted in character and is to be explained in terms of it)[4]

श्रीयुत् हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार-"कवि या नाटककार का कोशल पात्रो के विशेषीकरण में होता है। हम उस कवि को सफल कवि मानते हैं जो पात्रों का विशेष व्यक्तित्व निखार सकता हैं ।"[5]

डॉ गुलाबराय के अनुसार-" महाकाव्य वह विषयप्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बडे आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओ का उद्घाटन किया जाता है ।"[6]

कवि का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं बल्कि वैचारिक उत्थान वाला भी होना चाहिए । राष्ट्रकवि श्री मैथलीशरण गुप्त के अनुसार -

केवल मनोरजन कवि का कर्म न होना चाहिए ।
उसमे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ॥[7]

---

1 आनन्दवर्धन , ध्वन्यालोक, 3/43
2 कुन्तक वक्रोक्तिजीवितम्, 4/18
3 नाटक साहित्य का अध्ययन ब्रैंडर मैथ्यूज, अनुवादक - इन्दुजा अवस्थी पृ 86
4 एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर, पृ 153
5 कालिदास की लालित्य योजना, पृ 112
6 काव्य के रूप, पृ 89
7 भारत-भारती, पृ 177

इस हेतु पूज्य आ ज्ञानसागरजी महाराज ने 'सुदर्शनोदय' की सृष्टि की । कवि की स्वयं मान्यता है कि -

मानव. प्रपठेदेनं सुदर्शनसमुद्गमम्
येनाऽऽत्मनि स्वयं यायात्सुदर्शनसमुद्गमम् ।।[8]

-जो मानव सुदर्शन के सिद्धि-सौभाग्यरूप उदय को प्रकट करने वाले इस सुदर्शन को पढ़ेगा, वह अपनी आत्मा में सम्यग्दर्शन के उदय को स्वयं ही प्राप्त होगा ।

'सुदर्शनोदय' की पात्र योजना के पीछे कवि का उद्देश्य परम्परागत कथानायक के चरित्रोद्घाटन एवं विकास के साथ-साथ धर्माचरण के प्रति आस्था एवं निष्ठा जताना रहा है इसलिये वे पात्र सृजन की दृष्टि से द्रष्टा और स्रष्टा दोनो रूपों मे दिखलाई पडते हैं । यह प्रसिद्ध ही है कि महान् चरित्र की सुरभि से काव्य सुरभित होता ही है, अत जहाँ काव्य के लिए पात्र आवश्यक हैं । वहीं पात्र परिकल्पना कवि की कसौटी भी है ।

पात्र जितने औचित्यपूर्ण होंगे उतनी ही कृति मे गम्भीरता एव प्रभावोत्पादकता आयेगी । इस दृष्टि से कवि ने सुदर्शनोदय में दो प्रकार के पात्र चुने हैं -

1 वे पात्र जो कवि के द्वारा नियंत्रित है और कवि की वाणी को स्वर एवं सार्थकता प्रदान करते हैं । जैसे -सुदर्शन,पण्डिता दासी आदि का चरित्र ।

2 वे स्वाभाविक पात्र, जिनपर कवि का नियत्रण नहीं रहता किन्तु कथाप्रवाह के लिए जिनकी आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ- नागरिक जो सुदर्शन को दिए जाने वाले दण्ड के अनदेखे पक्ष पर उँगली उठाते हैं ।

'सुदर्शनोदय' के पुरुष एव स्त्री पात्रो का वर्गीकरण इस प्रकार है -

पुरुषपात्र	स्त्रीपात्र
1 सेठ वृषभदास	1 सेठानी जिनमती
2 सेठ सुदर्शन	2 सेठानी मनोरमा
3 राजा धात्रीवाहन	3 रानी अभयमती
4 मुनिराज-4	4 कपिला (ब्राह्मणी)
5 सागरदत्त	5 देवदत्ता (वेश्या)
6 कपिल (मित्र)	6 पण्डिता (दासी)
7 सुभट	7 धाय
8 द्वारपाल	8 व्यन्तरी
9 चाण्डाल	9 दासी (कपिला ब्राह्मणी की दासी)

उक्त पात्रों की प्रमुख एव प्रासगिक दृष्टि से भी भेद किया जा सकता है, जो इस प्रकार है-

प्रमुख पुरुष पात्र- सेठ सुदर्शन, सेठ वृषभदास, राजा धात्रीवाहन

प्रासगिक पुरुष पात्र- मुनिराज, सागरदत्त, कपिल, सुभट, द्वारपाल, चाण्डाल

प्रमुख स्त्री पात्र - सेठानी जिनमति, मनोरमा, कपिला, अभयमती रानी, देवदत्ता वेश्या ।

प्रासंगिक स्त्री पात्र- पण्डिता (दासी),दासी (कपिला ब्राह्मणी की दासी) धाय व्यन्तरी ।

चूंकि यह काव्य लोक और अध्यात्म की भित्तियों पर खडा है अस्तु इसमें दोनों ही प्रकार के पात्र कवि ने रखे हैं ।[1] वे जो पूरी तरह से लौकिक हैं[2] वे जो पूरी तरह पारलौकिक हैं या जिनका लक्ष्य मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि करना है। एक तीसरी कोटि और है, जो पूरी तरह लौकिक दुष्चक्र में ग्रस्त हैं किन्तु सही मार्गदर्शन मिलते ही अपना लक्ष्य बदल लेते हैं ।

लौकिक पात्र हैं (पुरुष) - राजा धात्रीवाहन, कपिल, सुभट, नागरिक, चाण्डाल, द्वारपाल, सागरदत्त ।
पारलौकिक पात्र हैं (पुरुष) - सेठ वृषभदास, सेठ सुदर्शन, मुनिराज।
लौकिक (स्त्री) पात्र हैं - रानी अभयमती, कपिला, ब्राह्मणी, पण्डिता, दासी, धाय, व्यन्तरी,
पारलौकिक (स्त्री) पात्र हैं - मनोरमा, जिनमती ।

तृतीय कोटि में हम देवदत्ता (वेश्या) को ले सकते हैं, जो पूर्ण कामासक्त, निंद्य कर्म करने वाली है, किन्तु मुनिराज सुदर्शन की दृढ़ता एवं वैराग्य देखकर तथा वैराग्यमयी सम्बोधन से आर्यिका दीक्षा ले लेती है ।

यदि 'सुदर्शनोदय' के पात्रों का मानवीय एव दैवीय दृष्टि से भेद करें तो अभयमती रानी का जीव, जो व्यन्तरी थी वह देवीय कोटि में एव अन्य सभी पात्र मानवीय हैं ।

राजवर्ग और प्रजावर्ग की दृष्टि से भी कुछ पात्रो में भेद किया जा सकता है-

राजवर्ग

सरल पुरुष पात्र- राजा धात्रीवाहन ।
कुटिल स्त्रीपात्र- रानी अभयमती ।
राजसेवा वर्ग के पुरुषपात्र- चाण्डाल, सुभट ।
राजसेवा वर्ग के स्त्रीपात्र- पण्डिता दासी ।

प्रजा वर्ग

पुरुष पात्र- सेठ वृषभदास, सेठ सुदर्शन, सागरदत्त, नागरिक, कपिल ।
स्त्री पात्र- 1 जिनमती, मनोरमा, धाय (ये सरल धर्म एव कर्त्तव्यपरायणा हैं) ।
2 कपिला, देवदत्ता, दासी, (कपिला की दासी) पण्डिता, (ये कुटिलता की प्रतीक हैं) ।

पात्रो द्वारा उठाये गए प्रश्न

रचनाकार अपनी रचनाओ मे सामयिक प्रश्नों के समाधान करने की चेष्टा करता है । कहते हैं कि काल कृतियो से डरता है क्योंकि कृतियां कालजयी होती हैं । 'सुदर्शनोदय' के पात्र कुछ ऐसी शंकाये उठाते हैं, जो सदैव जिन सिद्धान्तो के विषय में उठती रहती हैं । 'सुदर्शनोदय' मे देवदत्ता (वेश्या) द्वारा तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये गये हैं - वह सुदर्शन से पूछती हैं कि-

1 इस सुकुमार बाल वय मे इतना कठिन आचार क्या विचारकर आपने अगीकार किया है[1] ।
2 पचभूतो (क्षिति जल, पावक, गगन, समीर) से निर्मित शरीर प्राणो के वियोग होने पर बिखरकर पचभूतो मे मिल जायेगा। प्राण वियोग के पश्चात् भी जीव नामक कोई पदार्थ बना रहता है, इस विषय मे क्या प्रमाण है ?[2]
3 परलोक सुखद बनाने के लिए तपस्या वृद्धावस्था में करना ही उचित है फिर युवावस्था मे शरीर को सुखाने वाली तपस्या करना उचित है ?[3]

'व्यन्तरी' मुनि सुदर्शन से प्रकारान्तर से प्रश्न करती है कि 'मै देवता बनकर आनन्द कर रही हूं । और तू निष्ठुर व्यवहार के कारण इस शोचनीय अवस्था को प्राप्त हुआ है ?[4] यहां यह प्रश्न है कि मानवीय गुणों का विकास कर मुनि बनना आनन्द का कारण है कि देवत्व प्राप्त करना ?

'सुभट' प्रश्न करता है कि साधु के वेश मे ठगी करना क्या उचित है ? वह कहता है कि हाथ मे जपमाला और हृदय में विष, स्वार्थपूर्ति के लिए ठगपना ? बगुला भक्ति सारे राष्ट्र का कंटक है । (सु 7/35 गान 1-4)

1 सुदर्शनोदय 9/14 2 वही 9/15 3 वही 9/16 4 वही 9/79

रानी अभयमती प्रश्न करती है कि - 'परलोक क्या है ? कुछ भी नहीं है फिर इसके लिए व्यर्थ क्यों कष्ट उठाया जाय ?'[1]

सुदर्शन को दण्ड की बात सुनकर एक नागरिक प्रश्न करता है कि- 'राजा ने इस घटना पर जरा- सी बात सुनकर विचार नहीं किया कि कहीं यह रानी का कोई षड्यन्त्र तो नहीं है ?'[2] उसका यह प्रश्न न्याय के पूर्व सभी सभावनाओं एव साक्ष्यो पर भली भाँति विचार करने का मन्तव्य प्रकट करता है भले ही पक्षकार स्वय अपना ही प्रियजन क्यो न हो ।

आज के युग में और सदैव धर्म के यथार्थ स्वरूप की पहचान कठिन रही है । सेठ वृषभदास ऋषिराज से प्रश्न करते हैं कि 'धर्म का स्वरूप क्या है ?'[3] इसके उत्तर मे ऋषिराज कहते हैं कि "जो विश्व को धारण करे 'अर्थात्' सारे जगत् का प्रतिपालन करे, शुद्ध वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं । इस धर्म को धारण करने वाला परकल्याण के लिए स्वशरीर को अर्पित कर देगा । किन्तु अपने देह की रक्षार्थ किसी भी जीव जन्तु को कष्ट नही पहुँचाना चाहिए ।[4]

जो गृहस्थ हैं, वे कहते हैं कि मैं भी मुनि बनना चाहता हू किन्तु पत्नी को नहीं छोड पा रहा हूं । एक ऐसा ही प्रश्न सुदर्शन अपने पिता की दीक्षोपरान्त मुनिश्री से प्रश्न करते हैं कि -हे नाथ हे स्वामिन्, मैं मानता हू कि यह ससार असार है विनश्वर है, पर देवाङ्गनाओ मे भी विकार के भाव को प्राप्त नहीं होने वाला मेरा यह मन रूप जल मनोरमा रूपी सरसी मे अवश्य ही रम रहा है । यह मेरे लिए बडी कठिन तपस्या है जिससे कि मैं मुनि बनने के लिए असमर्थ हो रहा हूँ ?[5]

इसके उत्तर में मुनिराज कहते हैं कि-"जीवो के परस्पर प्रीति और अप्रीति प्राय पूर्वभव के सस्कार वाली होती है ।[6] सुदर्शन स्वय एक प्रश्न करते हैं कि "यदि राजा अपराधी मनुष्य को दण्ड न दे तो लोक की स्थिति (मर्यादा) कैसे रहेगी ?"[7]

जब सुदर्शन मनोरमा को बताते है कि वे निवृत्तिपथ पर जाने वाले हैं तब मनोरमा कहती हैं कि "जो पति की गति सो मेरी गति । किसी कुलीन नारी के लिए इसके अतिरिक्त और आनन्द का कारण क्या होगा कि वह (पति) मुक्ति लक्ष्मी के लिए उनका परित्याग कर रहा है ?"[8]

विभिन्न पात्रो द्वारा उठाये गये इन प्रश्नो मे महाकवि ने ज्वलन्त प्रश्न ही नहीं दिए हैं अपितु धर्म, नीति, सम्बन्ध (नाते-रिश्ते) न्याय, साधुत्व आदि के विषय मे समुचित समाधान खोजने की ओर सकेत किया है साथ ही काव्य पढते समय थोडी देर रुककर विचारने योग्य विषय भी दिये हैं ।

"सुदर्शनोदय" के पात्रो से प्राप्त दिशाबोध

"सुदर्शनोदय" के कर्त्ता महाकविश्री ज्ञानसागरजी अपने पात्रो का विचारक के रूप मे स्थापित करते हैं । यदि एक भी पात्र को हटा दिया जाय तो लगेगा कि जैसे कुछ छूट गया है। पात्रो की स्थिति, कर्म एव उनकी मानसिकता के यथार्थ जानकार महाकवि ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह महाकाव्य लिखा है, उनके पात्र भी वैसे ही दिशा बोध देते हैं ।

---

1 वही 7/17 (गान 1 से 4) पृ 132 2 वही 8/3 3 सुदर्शनोदय 4/5
4 वही 4/6 5 वही 4/15 6 वही 4/16 7 वही 8/14 8 वही 8/27

"सुदर्शनोदय" के पात्रो से प्राप्त दिशाबोध इस प्रकार है

1 किसी के व्रताचरण में बाधक बनना अनुचित है (द्वारपाल) ।[1]

2 स्वामी की आज्ञा को स्वीकार करना ही सेवक की भलाई के लिए होता है ।[2]

3 अपनी आत्मरक्षा (धर्म रक्षा) के लिए झूठ बोलना भी ठीक है। जैसे कि सेठ सुदर्शन (पण्डिता दासी) कपिला से स्वयं को नपुसक बताकर अपने स्वदार सन्तोष व्रत की रक्षा करते हैं ।[3]

4 नारियों द्वारा पर पुरुष की रागात्मक चर्चा एव कुविचारी लोगो की सगति दुख एव अपयश का कारण बनती है, रानी अभयमती एवं कपिला ब्राह्मणी के वार्तालाप से एव बाद के वृत्त से यह सिद्ध होता है ।[4]

5 पदानुकूल कथन एव आचरण ही श्रेयस्कर है ।[5]

6 शीलवती स्त्री की जीवन भले ही चला जाय पर पतिव्रत्य धर्म से पतित नहीं होती ।[6]

7 सर्व प्राणियों का उपकारक धर्म स्वीकार करना चाहिए ।[7]

8 अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का फल जीव को प्राप्त होता है, अन्यथा किसी को सुख या दु ख देने के लिए कौन पुरुष समर्थ हो सकता है ।[8]

9 शिष्ट पुरुष का कर्तव्य है कि वह निमित्त कारण को बुरा भला न कहे । हाँ अपनी बुरी चेष्टा से वह दूसरे के लिए कदाचित् भी स्वय दुर्निमित्त न बने ।[9]

10 शरीर नश्वर है, मल मूत्र का घर है अत आत्मा के आनन्द का कारण नही हो सकता ।[10]

11 मृत्यु कभी भी आ सकती है अत विवेकीजनो को सदा आत्मकल्याण करने मे प्रयत्नशील रहना चाहिए ।[11]

12 जो कार्य अपने लिए अरुचिकर हो उमे वह दूसरे के लिए भी आचरण न करे ।[12]

13 इच्छा दुखदायी है, जिसके दूर होने पर सुख की प्राप्ति होती है ।[13]

14 भोग-उपभोग रूप विषयो के सेवन से इच्छा रूप ज्वाला जलती है, अत इच्छा निवृत्ति करे ।[14]

15 जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, ऐसे जितेन्द्रिय पुरुष धन्य हैं, 4 अत जितेन्द्रिय बनने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए ।[15]

इस महाकाव्य के नायक सुदर्शन स्वदार सन्तोषव्रत का विपरीत परिस्थितियो में भी पालन करते हैं और परीक्षा की कसौटी पर खरे उतरते हैं । प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी उनका सयम एव निर्भयता अनुकरणीय है। वे अपनी दृढ आस्था एव सयम के बल पर शत्रुपक्ष के भी आराध्य बन जाते हैं अत हमे भी दृढ श्रद्धालु एव सयमी बनना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि श्री ज्ञानसागर जी महाराज जहाँ वर्णन की दृष्टि मे अनुपम है उसी प्रकार उनकी "सुदर्शनोदय" की पात्र योजना भी अनुपम एव श्लाघनीय है ।

डॉ सुरेन्द्रकुमार जैन "भारती"
इन्दिरानगर, बुरहानपुर

---

1 सुदर्शनोदय 7/7 2 वही 6/29 3 वही 6/8 4 वही
5 वही 7/7 6 वही 6/23 गान 1 से 4 पृ 112 7 वही 4/45 8 वही 9/33
9 वही 9/35 10 वही 9/22 11 वही 9/24 12 सुदर्शनोदय 9/36
13 वही 9/38 14 वही 9/40-41 15 वही 9/राग 1 से 3 (पृ 173)

सुदर्शनोदय एवं दयोदय में प्रतिपादित अणुव्रत

डॉ शीतलचन्द जैन

भारतीय सस्कृति की सम्पोषक एव सवर्धक जैन संस्कृति में मानव के उत्थान के लिये व्रतों की महती आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है । इस सस्कृति में पर्व भी तभी सार्थक है, जब व्यक्ति के जीवन मे व्रत हो । इसलिये जहा मुनिराजों के अट्ठाइस मूलगुणों में पच महाव्रतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है वही श्रावको के लिए अष्टमूलगुणो में पंचाणुव्रतो का महत्त्वपूर्ण स्थान है । यही कारण है कि पू आ ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने सस्कृत काव्यो में अणुव्रतों के वर्णन की प्रमुखता दी । दयोदय चम्पूकाव्य में अहिंसा, भद्रोदय मे सत्य एव अचौर्य सुदर्शनोदय मे ब्रह्मचर्य और जयोदय मे अपरिग्रह का विशेष प्रतिपादन किया है । ये काव्य रंजन, मनोरजन के लिये नहीं है अपितु कवि ने मोक्षमार्ग पर चलने वाले मुनि श्रावकादि के उद्देश्य से निर्माण किये हैं ।

सुदर्शनोदय काव्य मे पचाणुव्रतो का संक्षेप में उल्लेख करके व्रतो मे सर्वोपरि ब्रह्मचर्य व्रत का उत्कृष्ट वर्णन किया है । यद्यपि ब्रह्मचर्य की महत्ता पर आज तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है परन्तु सस्कृत वाङ्मय को काव्य शैली मे आचार्य श्री ने प्रथम सफल प्रयास किया है आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व सेठ सुदर्शन भगवान् महावीर के समय में होने वाले दश अन्त कृत्केवलियों मे से पाँचवे अन्त कृत्केवली माने गये हैं । अन्त कृत्केवली उपसर्ग सहते-सहते ही कर्मों का क्षपण करते हुए मुक्त हो जाते हैं जैसे तीन पाण्डव उपसर्ग सहते हुए मुक्त हुए हैं । सुदर्शनोदयकार ने सुदर्शन को अन्तिम कामदेव के रूप मे उल्लेख किया है और ब्रह्मचर्याणुव्रत के वर्णन मे सेठ सुदर्शन को चरित्रनायक के रूप मे प्रस्तुत किया । सेठ सुदर्शन के माध्यम से ब्रह्मचर्यव्रत की महिमा लिखकर श्रावकों को सदाचारी बनने की प्रेरणा दी है । सेठ सुदर्शन के समय मे बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी । लोग अनेक विवाह करके भाग्यशाली समझते थे ऐसे समय मे सेठ सुदर्शन का एक पत्नीव्रत धारण करना और फिर तीन बार प्रबल बाधायें आने पर भी अपने व्रत पर अटल रहना, यह उज्ज्वल भविष्य का दिग्दर्शन तो कराता ही है परन्तु साथ मे पुरुष समाज के सम्मुख एक उत्तम आदर्श भी उपस्थित करता है ।

कवि ने सेठ सुदर्शन के चरित्र को निर्दोष ब्रह्मचर्याणुव्रती एव मुनि अवस्था मे महाव्रती के रूप में प्रस्तुत किया और पाठक को यह दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य अणुव्रत धारण करे तो उसके सामने व्रत खण्डन के अनेक निमित्त उपस्थित हो सकते है परन्तु सेठ सुदर्शन को विलासिनी कपिला ब्राह्मणी राजरानी ओर कामोत्तेजक वेश्या विकारी हेतु भी व्रताचरण मे रेचमात्र डिगा नहीं सके । आ ज्ञानसागरजी महाराज ने इस काव्य मे विलासिनी वेश्या के मुख से अमोघ कामास्त्रो का प्रयोग उपदेश द्वारा करवाया है और उस वेश्या ने जिनवाणी और सिद्धशिला की जो उपमाये दी हे वस्तुत उससे ज्ञात होता है नारी के भाव कितने विकृत हो सकते हैं ओर उन विकृत भावो को दूर करने का उपाय एक मात्र साधक पुरुष का सर्वोच्च सदाचरण ही है ।

कवि की विशेषता है रजन मनोरजन के साथ मूल सिद्धान्तो के प्रतिपादन को गौण नहीं किया । कवि का कहना है, धर्म रूप वृक्ष की अहिंसा जड है और साम्यभाव उसका स्कन्ध (पेड या तना) तथा सत्य संभाषण, स्तेयवर्जन, मैथुनपरिहार और अपरिग्रह ये इस धर्मरूपी वृक्ष की चार शाखाये है । यही बात आचार्य अमृतचन्द्र ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कही है ।

व्रतों के वर्णन में ग्यारह प्रतिमाओ का भी विवेचन किया है । जिसमें प्रथम प्रतिमा के पूर्व ही अष्टमूलगुणो का पालन, सप्तव्यसनों के त्याग के अन्तर्गत भाग, तम्बाकू, सुलफा, गाँजा, आदि नशीली वस्तुओ के त्याग का वर्णन तो सुन्दर रीति से किया ही है परन्तु कवि ने द्विदल त्याग का विशेष रूप से वर्णन किया ओर आ ज्ञानसागरजी का

अभिमत है कि द्विदल चना मूग, उड़द, अन्न के साथ बिना पका कच्चा दुध दही छाँछ नहीं खाना चाहिए । परन्तु चारित्र पाहुड की श्रुतसागर कृत टीका के अनुसार - कच्चे और पक्के दोनों ही तरह के गोरस के साथ द्विदल अन्न खाने वाला अपने सम्यक्त्व को भी मलिन कर देता है फिर व्रती पथ तो रहेगा ही कहाँ से ? आ. ज्ञानसागरजी महाराज ने लिखा है कि द्विदल के खाने पर थूक के सयोग से तुरन्त त्रसजीवों की उत्पत्ति हो जाती है । यह बात बुद्धिमानो को स्वीकार करना चाहिए ।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं कि आ ज्ञानसागरजी महाराज ने व्रतों के अन्तर्गत द्विदल का विशेष विवेचन क्यो किया । उसका एक मात्र कारण प्रतीत होता है कि आ श्री राजस्थान प्रान्त के थे और इस प्रान्त मे द्विदल का प्रयोग बहुतायत होता है जैसे गट्टे की शाक, छोला, रायता, दहीबडा, मंगोडी आदि इनके अभाव मे समारोह फीके रहते है अत लेखक ने यह प्रयास किया है कि इस काव्य को पढकर श्रावक सदाचारी एव व्रतो के पालन मे दृढता ला सकता है ।

अणुव्रतो में सार ब्रह्मचर्य है तो मूल व्रत अहिसा है । दयोदय काव्य में अहिसाव्रत का महत्त्व एव फल का वर्णन मृगसेन धीवर और उसकी उत्नी घण्टाघीवरी के साथ व्रत ग्रहण के प्रसग को लेकर वार्तालाप मे जो अहिंसा का महत्त्व प्रतिपादित किया है, वह पठनीय है ।

मृगसेन धीवर की आजीविका नदी मे जाल फैलाकर मछलियो को मारना था परन्तु जब व्रत लेने के लिये वह धीवर मुनिराज के पास जाता है और मुनिराज से कहता है कि मुझ पापी को भी कोई व्रत दीजिये । मुनिराज ने उसकी आजीविका को ध्यान मे रखकर धीवर को व्रत दिया कि तेरे जाल में सबसे पहले जो जीव आवे उसे नहीं मारकर वापिस ही जल मे छोड दे । उसने इस व्रत को स्वीकार कर लिया । अब विचारणीय प्रश्न है कि क्या इस प्रतिज्ञा को व्रत में ले सकते हैं या नहीं यदि व्रत में लेते हैं तो धीवर को क्या अहिसाणुव्रती की कोटि मे रखा जा सकता है । इसके सन्दर्भ में सोमदेव आचार्य की व्रत की परिभाषा को ध्यान मे रखें तो उक्त प्रतिज्ञा व्रत की कोटि मे ता आती है क्योंकि सकल्पपूर्वक से नियमो व्रतमुच्यते । प्रवृत्तिर्विनिवृत्ति र्वा सदसत्कर्मसभवे ।

अर्थात सकल्पपूर्वक सेवनीय वस्तु का त्याग करना व्रत है अथवा अच्छे कार्यों मे प्रवृत्ति और बुरे कार्यों मे निवृत्ति को व्रत कहते हैं । यहाँ धीवर ने सकल्पपूर्वक सेवनीय वस्तु का त्याग किया, अत व्रत तो है परन्तु अणुव्रती नही है, क्योंकि वह पूर्णरूपेण अहिसा का त्यागी नहीं था ।

त्रस हिसा का कुछ अश त्यागी था, फलत मरणोपरान्त मनुष्यगति के उच्चकुल में उत्पन्न हुआ और सोमदत्त की पर्याय में पाँच बार मरने से बचा । एक बार जीवन बचाने मे वेश्या भी सहायक हुई । पाठक के हृदय मे अशका उठती है कि सोमदत्त (पूर्व पर्याय मे धीवर) को पाच बार मारने की कोशिश की परन्तु मरा नहीं इसका क्या कारण है ? दयोदय मे यद्यपि स्पष्ट उल्लेख नही है परन्तु अन्य कथाकारो ने सकारण उत्तर दिया है चूकि धीवर की पर्याय मे सोमदत्त ने मछली का पाच बार जीवन दान दिया अत पाच बार इसको भी जीवनदान मे निमित्त बनाकर सहायक बनी ।

उक्त कथानक से निष्कर्ष आता है कि लेखक ने अहिसा की महिमा के साथ व्रत लेने का फल भी बताया और इस कथानक से यह भी स्पष्ट होता है कि व्यक्ति वर्तमान में पुरुषार्थ करे तो पतित व्यक्ति भी उठकर उच्च एव पवित्र दशा को प्राप्त कर सकता है ।

धीवर ने उठकर सर्वार्थ सिद्धि का अहमिन्द्र बनकर अगले भव मे मुक्ति को प्राप्त करेगा यह लेखक ने अतिलघु अहिसाव्रत का फल बताकर अणुव्रत पालन करने की प्रेरणा दी है ।

डॉ शीतलचन्द जैन
प्राचार्य श्री दिगम्बर जैन आचार्य
सस्कृत महाविद्यालय जयपुर ।

लघुत्रयी में श्रमण चर्या

क्षु श्री धैर्यसागरजी महाराज

प्रात. काल जब भानु पूर्व दिशा रूपी माता की गोद मे निद्रा छोड, उठकर उदयाचल रूपी पिता के समक्ष जाकर चरण वन्दन करता है, तब उसकी इस विनय को देखकर सरोवरो के कमल अपना मुख खोलकर के हसते हैं, उनके मुख से निकली हुई सुगन्धित वायु चहु ओर फैल जाती है ओर उस सुगन्धी के निमन्त्रण को पाकर भवरे, पराग का पान कर आनन्द लेते हैं । ठीक उसी प्रकार 20 वीं सदी के साहित्य जगत् के नक्षत्र लोक मे प भूरामल जी शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज) एक जाज्वल्यमान सूर्य के रूप में उदित हुए और माता सरस्वती के आर्शीवाद से एवं पिता सम्यग्ज्ञान की कृपा से परम तेजस्विता को प्राप्त कर अनेको ग्रन्थ रूप कमलो को विकसित किया है जिनकी मधुर सुगन्ध पाकर विद्वान् रूपी भवरे अपनी प्यास शान्त कर आनन्द पा रहे हैं ।

प भूरामल जी शास्त्री (आ ज्ञानसागर जी महाराज) का साहित्य जहा काव्य शास्त्रीय कसौटी को कस रहा है तो वहीं धर्म दर्शन सस्कृति के मूल्यो का स्थायित्व देकर नेतृत्व प्रदान कर रहा हे साध्यभूत मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करने मे ।

यही कारण है कि आपके द्वारा रचित जयोदय वीरोदय सुदर्शनोदय महाकाव्य के काव्य नायक साधना के उत्कर्ष को प्राप्त कर निर्वाण धाम को प्राप्त हुये । या यू भी कहा जा सकता है कि आपने अपने महाकाव्य की कथा वस्तु के चयन मे काव्य नायको की पतित से पावन बनने का आदर्श ही है । यह कुछ भी हो परन्तु आपका समग्र साहित्य भारतीय सस्कृति की प्रमुख शाखा, श्रमण सस्कृति का आधार लेकर मोक्ष तत्त्व एव उसकी प्राप्ति के साधकतम तत्त्वों का सरलतम प्रतिपादन करने वाले प्रतिनिधि साहित्य में से है ।

महाकवि पं भूरामलजी शास्त्री की सशक्त लेखनी के कालजयी हस्ताक्षर से प्रसूत सुदर्शनोदय महाकाव्य समुद्रदत्त चरित्र काव्य एव दयोदय चम्पू काव्य मे श्रमण चर्या की विभिन्न मुद्राये देखने को मिलती हैं, एक तो काव्य के कथा प्रसग मे श्रमणो के निमित्त रूप मे और एक कथा के काव्य नायक का स्वय श्रमण रूप धारण कर महावीर चर्या करने के रूप मे ।

लघुत्रयी के पढने से यह ज्ञात होता है कि रचयिता ने आचार्य समन्त भद्र स्वामी के द्वारा बताये गये श्रमण स्वरूप का आत्मसात् करके ही श्रमण स्वरूप की लक्ष्मण रेखा को खींचा हो । यथा -

''विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रह ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ।।'' रत्नकरण्डकश्रावकाचार, श्लोक 10

महाकवि ने श्रमणो के उपरोक्त स्वरूप को यथा अवसर तो सजोया ही है किन्तु अनेक प्रसग ऐसे भी दृष्टिगोचर होते हैं जहाँ आवश्यक न होते हुए भी उत्प्रेक्षाओ मे खूबी पिरोया है, जिससे प्रसग महनीय अनुभूत होने लगता है । यथा सुदर्शनोदय के प्रथम सर्ग का 22 वॉं श्लोक द्रष्टव्य हे -

''उद्योतयन्तोऽपि परार्थमन्तर्घोषा बहुव्रीहिमया लसन्त ।
यातित्वमञ्चन्त्य विकल्पभावान्नृपा इवामी महिषीश्वरा वा ।।''

जिसमें गुवालो को अविकल्पभाव मे यतिपने को धारण करने वाले बतलाया गया हे । इससे यह ध्वनित होता है कि साधु संकल्प विकल्प भावो से रहित होता है ।

और सुदर्शनोदय प्रथम सर्ग के 39 वें श्लोक में राजा को यति की उपमा दी है, यहाँ पर भी साधु के साधारण स्वरूप का दर्शन होता है कि साधु समता रस का पान करने वाले होते हैं । यथा -

"यतिरिवासकौ समरसङ्गतः सुधारसहित· स्वर्गिवन्मत· ।
पृथुदानवारिरिन्द्रिसमान एव नानामहिमविधान· ।

इसी तरह से समुद्रदत्त चरित्र में 1/25 में प्रसग बाह्य किन्तु हेतु पूरक रूप में साधुओ की वृत्ति का स्वरूप बतलाया है, यथा -

"द्वेधाजनोभूवलये विभाति, सयोग एकःखलु दु खजाति· ।
पीडाकरोऽन्यो विरहे परन्तु, सन्तोऽत्र माध्यस्थ्यमिता भवन्तु ॥"

इस भूतल पर दो प्रकार के आदमी हैं, उनमें से एक सयोग में दु·ख देने वाला होता है तो दूसरा वियोग मे पीडा करने वाला, इसलिये सन्त महात्मा लोग तो इन दोनों में ही माध्यस्थ्य भाव रखते हैं, न पहले वाले पर द्वेष करते हैं और न दूसरे से मोह ही दिखाते हैं ।

लघुत्रयी में महाकवि की एक और विधा देखने को मिलती है वह है श्रमण स्वरूप की प्रशसा अर्थात् स्तुति। जहा कहीं मुनियों का समागम एव उनसे उपदेश देने की प्रार्थना की गई, वहा पर आगन्तुक श्रद्धालु के द्वारा स्तुति कराने में श्रमण स्वरूप को रूपायित करने से चूके नहीं है, जिससे लगता है कि वे बता देना चाहते है कि श्रमणो को कैसे होना चाहिये ।

यथा - जितेन्द्रय पुरुषों के धैर्य को देखकर मुझे इस समय बहुत आनन्द हो रहा है, जिसका मन जगत् हितकारी मित्र रूप सूर्य के देखने पर तो कमल के समान विकसित हो जाता है और दोषाकर चन्द्र के समान दोषो के भण्डार पुरुष को देखकर जिनका मन मुदित हो जाता है। ऐसी जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है ये जितेन्द्रिय पुरुष धन्य हैं । ऐसे महापुरुष सम्पत्ति प्राप्त होने पर तो कोमल पत्रो को धारण करने वाली मृदुलता के समान तत्वत दूसरो के साथ नम्रता ओर परोपकार करने रूप पात्रता का धारण करते हैं । और विपत्ति आने पर धैर्य धारण कर वज्र के समान कठोरता को प्राप्त हो जाते है । ऐसी जिनकी अति उदार सात्विक प्रवृत्ति आने पर धैर्य धारण कर वज्र के समान कठोरता को प्राप्त हो जाते हैं । ऐसी जिनको अति उदार सात्विक प्रवृत्ति होती है । वे जितेन्द्रिय पुरुष धन्य हैं । जा जगत् मे दुख सन्तप्त जनो के लिये अमृत के समान आचरण करने वाले हैं। और सदाचार पर सदा दृष्टि रखने वाले हे, ऐसे उन महापुरुषों का आदरसत्कार करने के लिए यह समस्त भूमंडल भी वसन्त ऋतु समान सदा स्वय उद्यत रहता है ।

(सुदर्शनोदय - 9-11-3)

इसी तरह से समुद्रदत्त चरित्र मे राजा चक्रायुध को जब अपराजित मुनि महाराज का समागम मिला तो तब महाकवि ने राजा के मुख से मुनि महाराज की स्तुति कराते समय श्रमण स्वरूप उपमायें दे देकर के दिखाया हे यथा सप्तम सर्ग के 27 वे श्लोक मे निर्मल चेष्टा के धारी, काम चेष्टा के फन्दे मे दूर रहने वाले, और कर्मों के विरोधी अर्थात् बन्ध न करने वाले एव बन्धे हुओं को बाहर निकालने वाले हैं ।

श्लोक 28 व 29 मे महाकवि ने बतलाया है कि मुनि प्रिय वचन बोलने वाले, पुण्य चेष्टा करने वाले निर्मल आत्मा होने से पाप विध्वसक, सभी को प्रसन्न करने वाले अपनी बात पर पर्वत के समान अटल रहने वाले दिशारूप कपडों के धारक दिगम्बर रहने वाले, निष्कपट, सरल चित्त, परिग्रह रहित, क्षमा से युक्त समरस को प्राप्त होकर शान्त होते हैं -

और इसी प्रकार से दयोदयचम्पू काव्य मे सप्तम लम्ब मे आहार चर्या को निकले हुये मुनि को देखकर सोमदत्त काव्य नायक विचार करता हैं ।

"वह मुनि शरीर से विरक्त हैं, शरीर से जिन्हें मोह नहीं है और अनङ्ग अर्थात् काम-चेष्टा से भी विरक्त हैं। तपोधन तप को ही अपनी धर्म समझते हैं, और शान्त मूर्ति अर्थात् क्रोध रहित होते हैं । दर्शनाचारी पाच प्रकार के आचार को पालने वाले हैं, इसलिये सदाचारी हैं । सदा विचरने वाले हैं, किसी भी एक स्थान को अपना बनाकर नहीं रहते हैं । सभी प्रकार की आशाओं से रहित हैं और दिशा ही जिनके वस्त्र हैं (वस्त्र रहित हैं) सबको स्पष्ट रूप से इन्द्रिय-विजयी प्रतीत होते हैं । सत्य पर जिनका दृढ विश्वास है, इसलिये वह व्यभिचारिणी स्त्रियों का स्मरण भी नहीं करते हैं, समता भाव में प्रवृत्ति करने वाले हैं, अत किसी की भी बिना दी हुई कोई भी वस्तु नहीं लेते हैं, सभी प्रकार के सग (परिग्रह) से रहित है किन्तु जो प्रसग पाकर के गोचरी करने के लिए आ रहे हैं । हिंसा से सर्वथा दूर हैं इसलिये लोगों के द्वारा प्रशसा करने के योग्य हैं।"

उपरोक्त कथन को पढने से मन में एक प्रश्न उठ सकता है कि क्या इसी का नाम श्रमण है, दिगम्बर रहना तप करना आदि आदि । इसका समाधान प्रवचन सार -291 गाथा मे कुन्द-कुन्द आचार्य ने किया है कि -

"दंसणणाण समण्णो सो सजदो भणिदो ।"

अर्थात् दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण श्रमण को सयत कहा गया है । इसी बात की सपुष्टि के लिये महाकवि ने सुदर्शनोदय के द्वितीय सर्ग के 30वें श्लोक मे मुनि को सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी महारत्नो का धारी बतलाया है-यथा

"रत्नत्रयाराधनकारिणा वा प्रस्पष्ट मुक्तोचितवृत्तभावा ।
समर्पिताऽधारि महाशयाभ्या गुणावलीत्थ सहसाशयाभ्याम् ॥

और दयोदय चम्पू काव्य के सप्तम लम्ब मे 28-29-30 वें श्लोक मे रत्नत्रय की महिमा बतलाई है । यथा-

अर्थात् देखो भाईयो, यह ससार एक भयानक जगल के समान है, जिसके भीतर चारो ओर जाने वाले चार मार्ग है, उनमे से तीन मार्ग तो अनेक प्रकार के उपद्रवो से व्याप्त हैं, अतएव उनमे फसा हुआ जीव पार ही नहीं पा सकता । हाँ एक यह मनुष्य जन्म रूप मार्ग ऐसा है जिसमे कि यदि ठीक प्रयत्न किया जाय तो ससार का अन्त किया जा सकता है । किन्तु इसमे भी इन्द्रिय विषय रूप लुटेरे अपनी अड्डे जमाये हुये हैं उनसे बचकर पार हो जाना सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यकचरित्र रूप रत्नत्रय के धारक इस जीवात्मा के लिये आसान बात है किन्तु जब यह त्याग रूप कवच पहिन कर अपने आपको सुरक्षित कर ले ।

इस सम्बन्ध मे भगवती आराधना 736 वी गाथा म आचार्य शिवकोटि महाराज जी ने लिखा है कि-

अर्थात् जैसे नगर मे प्रवेश के लिए द्वार है, मुख मे लोचन हैं, वृक्ष मे मूल है वैसे ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र, आत्मशक्ति और तप के लिए आत्मा मे प्रवेश के लिए द्वारण के समान हैं ।

यही कारण है कि लघुत्रयी मे महाकवि ने रत्नत्रय मे अविनाभाव रखने वाला श्रामण्य को सूक्ष्मता से दर्शाया हैं क्योंकि रत्नत्रय के बिना संसार सागर मे उबर पाना सम्भव ही नहीं हैं जैसा कि भाव पाहुड, गाथा 30 मे कहा गया है ।

"रयणत्तये अलद्धे एव भमिओसि दीह ससारे "।

अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त नहीं करने के कारण यह जीवन दीर्घ ससार मे भ्रमण कर रहा है । इसलिये भौतिक संसाधनो एव पचेन्द्रियो के विषयों को छोड देना मात्र श्रमण जीवन नहीं है अपितु शरीर से ममत्व भाव हटा कर बारह प्रकार के तपो को तप कर कर्मनिर्जरा करना श्रमणों का प्रमुख लक्ष्य हुआ करता है । अत श्रमण अपनी शक्ति अनुसार ग्रीष्म शीत वर्षा कालो मे तप करते हैं । श्रमणमुनि का यह स्वरूप लघुत्रयी मे देखने को मिलता है । सुदर्शनोदय सर्ग चतुर्थ श्लोक 23 में दुर्धर तप तपते हुए श्रमण मुनि का एक उदाहरण देखे ।

''मुनि हिमर्तौ द्रुममूलदेशस्थित वनान्ताद्दिवसात्यये स ।
प्रत्याव्रजन् वीक्षितवानुदारमात्मोत्तमाङ्गर्पित काष्ठभार ॥''

समुद्रदत्त चरित्र में कविमहोदय ने काव्य नायक को भी सिहचन्द्र और चक्रायुध मुनि की पर्याय में दुर्धर तपस्या करते हुए बतलाया है ।

मुनिराज के पास सिंहचन्द्र भी मुनि बन गया और उसने बहुत ऊँचे दर्जे का तप किया जिससे कि सच्चे दृढ सयम का धारक होने से वह मन पर्ययज्ञान और चारणर्द्धि - धारक हो गया । (समुद्र 4/18)

राजा चक्रायुद्ध ने मुनि दीक्षा लेकर के विशेष तपस्या की, इसका उल्लेख नवम् सर्ग में देखने को मिलता है। इसी प्रकार से दयोदय चम्पू काव्य सप्तम लम्ब 38 वाँ श्लोक में काव्य नायक की तपस्या के बारे मे कवि ने उल्लेखित किया है ।

इस तरह से महाकवि ने लघुत्रयी मे श्रमण जीवन की एक मात्र ध्येयभूत वस्तु तपस्या को दिखला कर श्रामण्य का बोध करा दिया है । किसी कवि ने लिखा है कि

'तन मिला है तप करो, करो कर्म का ह्रास ।
रवि राशि से बढ़कर है तुममें दिव्य प्रकाश ॥''

अर्हत् मार्ग में अर्हत् से मिलने के लिये श्रमण की चर्या कैसी होती है और कैसी होनी चाहिए इम सम्बन्ध मे क्या कोई निश्चित सीमायें हैं चर्याये हैं ? तो प्रवचनसार की 208 न की गाथा याद आ जाती है - यथा -

''वदसमिदिदिपरोधो लोचो आवासमचेलमण्हाण ।
खिदिसयणमदतवणं ठिदिभोगणमेगभत्त च ॥''

अर्थात पंचमहाव्रत (अहिसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) पंच समितियाँ (ईर्या, भाषा एषणा, आदान निक्षेपण समिति उत्सर्ग समिति), पच इन्द्रिय निरोध (स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु, कर्ण), लोच, छ आवश्यक (समता स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग), अचेलकत्व (दिगम्बर), अस्नान भूशयन, अदतधावन, स्थितिभोजन, एकभुक्ति ये श्रमणाचार की प्रमुख अनिवार्य अर्हताये हैं ।

लघुत्रयी श्रमणाचार का एक मूलाचार ग्रन्थ हे जिसमे कुन्द-कुन्द आचार्य की प्रवचन सार की उपरोक्त गाथा की क्रियात्मक शक्ल का सुन्दर रूप झलकता हुआ दिखता हे । देखें सुदर्शनोदय नवम सर्ग श्लोक 1 से 8 तक ।

सुदर्शनोदय के सर्ग के श्लोक 70-71 वे मे श्रमण धर्म का स्वरूप बताते हुए लिखा हे कि - सुदर्शन मुनि वेश्या को सदुपदेश देते हुए धर्मरूप वृक्ष का स्वरूप बतला रहे हैं, कि धर्मरूप वृक्ष की अहिंसा जड है, साम्य भाव उसका स्कन्ध (पेडी या तना) है । तथा सत्य-सम्भाषण स्तेय-वर्जन मैथुन - परिहार और अपरिग्रहपना ये उस धर्मरूपी वृक्ष की चार शाखाएँ हैं, छह आवश्यक जिसके फल हैं, शीलव्रत जिसके पक्ष हैं और ईर्या, भाषा समितियाँ जिसकी छाया रूप हे । ऐसा यह श्रीमान् परम उदार धर्मरूप कल्पवृक्ष सदा जयवन्त रहे । इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनको श्रामण्य जन्म स्वरूप एव चर्या का ज्ञान था और वा उस चर्या का पालन करते थे ।

फिर कवि महोदय ने दो ऐसे विशेषण दे दिये हैं कि जिनको पढने से स्वत ही सिद्ध हो जाता है कि काव्य नायक का श्रामण्य श्रमणाचार युक्त था । यथा सदर्शनोदय सर्ग नवम श्लोक 5 देखे ।

''ज्ञानामृत भोजनमेकवस्तु सदैव कर्मक्षपणे मनस्तु ।
दिशैव वास स्थितिरस्ति येषा नमामि पादावहमाशुतेषाम्॥''

उपर्युक्त श्लोक में उन साधु महात्माओं को नमस्कार किया गया है । जो ज्ञानामृत का ही भोजन करते रहते हैं, जिसका मन सदा ही कर्म के क्षपण करने में उद्यत रहता हे, दशो दिशायें ही जिनके लिए वस्त्र स्वरूप हैं ।

इसी प्रकार से समुद्रदत्त चरित्र मे *काव्य नायक के श्रमण जीवन से श्रमणाचार को परिभाषित करते हुये महाकवि* को पाते हैं ।

लघुत्रयी में महाकवि ने मूलाचार को आधार बनाकर ही श्रामण्य को कसा हो, ऐसा प्रतीत होता है । जैसा कि मूलाचार के समयसार अधिकार की 109 वीं गाथा में जो श्रमण का स्वरूप बताया गया है यथा -

बाहरी भीतरी परिग्रह से रहित, पाप क्रियाओं से निवृत्त तथा भिक्षाचर्या में शुद्धभाव वाला अकेला ध्यान में लीन तथा सभी गुणों से सम्पन्न साधु श्रमण कहा जाता है ।

उपरोक्त कसौटी पर वैसा ही ममुद्रदत्त चरित्र के काव्यनायक का श्रामण्य एक निराली शान लेकर खरा उतरता है, देखें नवम् सर्ग मे -

श्लोक -1- परिग्रह त्याग रूप महाव्रत, शरीर से भी निस्पृह यथाजात रूप ।

श्लोक -2- अहिंसा महाव्रत का प्रतीक सयमोपकरण पिच्छी का रखना, बाह्य शुद्धि हेतु शौचोपकरण कमण्डलु का रखना ।

श्लोक -3- छल कपट से रहित होना, आभूषणों से रहित होकर के भी शोभना।

श्लोक -4- केशलोच रूप महाव्रत का पालन करना, मन से बुरे भावो को निकाल फेकना ।

श्लोक 5- बिना दी हूई कोई भी चीज का नहीं लेने रूप अचौर्यमहाव्रत का पालन करना, सत्यमहाव्रत रूप कभी झूठ नहीं बोलना ।

श्लोक -6- ब्रह्मचर्य महाव्रत के रूप मे स्त्री प्रसग का त्याग करना, अभयदान देते हुये अहिंसा महाव्रत का पालन करना ।

श्लोक 7 अपरिग्रह महाव्रत का प्रतीक परिग्रह रहित निर्ग्रन्थो में मुखिया होना, सतत ग्रन्थो का अध्ययन करना, जिससे उपयोग की निर्मलता बनी रहे, एकान्त वास करना ।

श्लोक -8- उपवास करना, अप्रमत्त रहने के लिए ।

श्लोक -9 दिन मे एक बार अल्प आहार लेने रूप में महाव्रत का पालना ।

श्लोक -10- आत्मा की खोज के लिये शरीर की आवश्यकता होती है, इसलिये शरीर को आहार देना किन्तु कभी दो दिन में कभी तीन दिन मे देनो भी उदास भाव से अर्थात रसपरित्याग पंचेन्द्रिय विजय रूप महाव्रत को पालना । अयाचित नवधा भक्ति पूर्वक ही आहार लेना ।

श्लोक -11- भंवरों के समान श्रावकों को बिना कोई कष्ट पहुँचाये आहार लेना ।

श्लोक -12- करपात्र मे खडे होकर भोजन करने रूप महाव्रत, मौन रहना ।

श्लोक -13- कायक्लेशादि 12 तप तपना, जिसमे कायोत्सर्ग आवश्यक रूप महाव्रत का पालना, माध्यस्थ वृत्ति रूप समता आवश्यक महाव्रत का पलना ।

श्लोक-14- समभाव को प्राप्त करना समता महाव्रत का पालना, गुणवानो के प्रति प्रमोद वात्सल्य भाव रखना ।

श्लोक-15- ध्यान में निरत रहना, स्वाध्याय करना, सामायिक करना, प्रायश्चित्त रूप में प्रतिक्रमण आवश्यक रूप महाव्रत का पालन करने मे तैयार रहना ।

श्लोक-16- निद्रा विजयी होना (जो कि भूशयन से ही सम्भव है) अत भू शयन रूप महाव्रत का पालना ।

श्लोक -17- अस्नान महाव्रत का पालना, अन्तरंग को धोना ।

श्लोक -18- नि-सग होकर वन में रहना, आत्मा की शून्यता से रहित होना ।

श्लोक -19- अशुभोपयोग से एकदम दूर होकर शुभोपयोग शुभयोग को धारण करना, जिसमें वन्दना एवं स्तुति रूप महाव्रत का समावेश हो जाता है ।

श्लोक -20- साम्यभाव से, विवेक से, आत्मशुद्धि करना ।

श्लोक -21- क्षमादि गुणों को धारण करना, पांच समिति रूप महाव्रतों का पालन करना, गुप्ति का पालन करना

और दयोदय चम्पू काव्य में भी श्रमण की प्रशंसा करते हुए मृगसेन धीवर के मुख से महाकवि ने श्रामण्य का प्रतिनिधित्व करने वाली चर्या का उद्घाटन किया है । देखें, द्वितीय लम्ब, श्लोक 8-9-10-11-12 । जिनमें लगभग वैसा ही श्रमण का हू-ब-हू रूप देखने को मिलता है, जैसा सुदर्शनोदय में एव समुद्रदत्त चरित्र में देखने को मिलता है । उदाहरण स्वरूप 11वॉं श्लोक देखें-

"भिक्षैव वृत्ति कर एव पात्र तप प्रसिद्ध्यर्थमिहास्तिकात्रम् ।
दिशैव वास समतैव शक्तिर्जगद्धितीया ऽऽस्मपरप्रसक्ति ॥"

इस तरह से लघुत्रयी के पढने से ज्ञात होता है कि श्रामण्य के शिखर पर कलशारोहण किया गया । यथाजात मुद्रा की महजसरल प्रवृत्ति का वास्तविक चित्रांकन कर महाकवि ने दिगम्बरत्व का आदर्श रूप मे लघुत्रयी के काव्य नायको को मोक्ष मार्ग में मील का पत्थर के प्रतीक में ला उपस्थित किया है ।

वास्तव में यदि देखा जाय तो मोक्ष महल की नींव श्रामण्य की सहज सरल साम्य वृत्ति है, जो आत्मानुशासित होकर नि सगत्व भाव से सन्तोष पूर्वक ज्ञानामृत का पान करते हुये आत्म स्वरूप में लीन हो जाना है । यही वास्तविक श्रमण जीवन की साधना भी है ।

लघुत्रयी के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो ही जाती है कि श्रमण जीवन का लक्ष्य मोक्षधाम की प्राप्ति करना होता है और इस हेतु कर्म निर्जरा करने के लिये श्रमण सतत रागद्वेष के निमित्तो को निर्ममता से परिहार करते रहते हैं । ये उनकी निरीह निस्पृहता का परिचायक है । किन्तु जब हम साधु का व्यवहारिक पक्ष देखते हैं, तो साधु को श्रीफल के समान भीतर से कोमल पाते हें । अर्थात साधु अपने शरीर के प्रति कठोर और पर के प्रति मृदु आचरण करने वाले होते हैं ।

सुदर्शनोदय का एक उदाहरण देखे नवमसर्ग मे -जब सुदर्शन मुनि पाटलिपुत्र में आहार चर्या के लिए निकले और देवदत्ता वैश्या के पडगाह कर (सर्ग9/13) घर मे ले जाकर बन्द कर लिया था (सर्ग 9/14) और कामेच्छा की पूर्ति के लिये भरसक कामास्त्रो का प्रयोग कर थक गई थी तो भी तीन दिन तक (सर्ग 9/30) सुदर्शन मुनि उस बालक के समान अपनी माता की गोद में दुबके रहे । जैसे बालक पिता की गोद में बैठा होकर के भी भय उत्पन्न होने पर पिता को याद नहीं करता अपितु माँ को ही पुकारता है अस्तु, ठीक उसी प्रकार सुदर्शन मुनि के पास ऋद्धि सिद्धयाँ थी, तो भी उनका प्रयोग नहीं किया । और अष्ट प्रवचन माताये (पच समिति, तीन गुप्ति रूप) की गोद मे जा छुपे, अर्थात् भाषा समिति के अवलम्बन से सुदर्शन मुनि ने वेश्या को हित मित प्रिय वचनो से सद् उपदेश दिया, ससार शरीर भोगो की वास्तविकता से अवगत कराकर उस अधर्म कार्य का विमोचन करने को प्रेरित किया । (सर्ग 9/20 से 27) किन्तु जब काले वर्ण पर शुभवर्ण का कोई असर न पड़ता दिखा तो आत्म गुणों के अनुरागी उन मुनि महाराज ने मन वचन काम गुप्तियों को धारणकर और काष्ठ निर्मित मानव पुतले के समान स्तब्धता धारण कर पाषाण तुल्य कठोर हृदय वाले बन गये, जिससे कि उस देवदत्ता के समस्त कटाक्ष वाणों का समूह भी उनके शरीर पर गिरकर विफलता को प्राप्त हो रहा था । (सर्ग 9/29) । इस तरह समक्ष आये उपसर्ग से अपने आपको बचा लिया और अन्त में वेश्या को अपने रंग मे रग ही लिया । (सर्ग 9/30)

यहाँ पर प्रश्न होता है कि जब मुनि ऋद्धि सिद्धि के धारी थे (सर्ग 9/10) तो फिर उसका प्रयोग कर के उपसर्ग का निवारण क्यो नहीं किया? इसका समाधान यही हो सकता है कि या तो उनको ऋद्धि सिद्धि की प्राप्ति

का ज्ञान नहीं होगा या फिर जानकारी होते हुए भी इन्होंने उनका प्रयाग नहीं किया । क्योंकि वो महान ज्ञानी थे (सर्ग 9/5) और यह बात अच्छी तरह जानते थे कि एक दिगम्बर वीतरागी साधु ख्याति लाभ पुजा के लिये कभी भी ऋद्धि सिद्धि का प्रयोग नहीं करते क्यों कि वीतरागता की हानि होगी, जो कर्म बन्धन कर मंसार मे रूलायेगी, जोकि उनको इष्ट नहीं थी ।

सुदर्शनोदय के प्रस्तुत प्रसंग मे तीन प्रश्न मन उठाते है । एक तो यह कि क्या वेश्या के यहाँ मुनि आहार चर्या के लिये जा सकते है । (सर्ग 9/13) दूसरा यह कि क्या एक स्त्री के पड़गाहन में मुनि जा सकते हैं (सर्ग 9/13)? तीसरा यह कि क्या चर्या के दौरान मुनि महाराज बोल मकते हैं । (सर्ग 9/20)?

मानस पटल पर उभरी ये शकायें नासमझी की देन हैं, क्योंकि इसमे विवेक ने सोचा ही नहीं क्या किसी के माथे पर लिखा होता है कि वह क्या है ? चेहरे से हृदय के भाव तो पढे जा सकते हैं । किन्तु किसी की पहचान नहीं की जा सकती है । हाँ, यदि कोई जान सकता है तो वो हैं मन पर्यय ज्ञानी मुनि जैसे महापुरुष, पर वो भी आहार चर्या के समय पर नहीं क्योंकि आगम मे अवधिज्ञान और मन पर्यय ज्ञान का प्रयोग करना आहार चर्या के समय पर निषिद्ध है ।

अत छल प्रपंच से भक्त श्रावक का रूप बनाना असम्भव नहीं है, बशर्ते विधि आनी चाहिये । इस संबंध में देवदत्ता को काफी कुछ ज्ञान था, क्यो कि सर्ग, । हिन्दी राग 1-9 एवं 1-3 मे उसके जिनधर्म विषयक ज्ञान ज्ञात होता है । इसलिये देवदत्ता वेश्या ने एक श्राविका का रूप बनाया होगा । तभी यह पडगाहन कार्य सम्भव हो सका क्योंकि सुदर्शन मुनि महाज्ञानी थे, श्रमण चर्या मे निष्णात थे । यह महाकाव्य के पढने से ज्ञात हो ही जाता है । इसलिये यह शका निर्मूल हो जाती है कि वेश्या के यहाँ मुनि का पडगाहन नहीं हुआ अपितु उनका पडगाहन श्राविका ने किया था ।

दूसरी शका के हार्द में झाकें तो उसकी कलुषता भी देखने मे आ जाती है और मुनि चर्या की निर्दोषता श्रद्धास्पद हो जाती है जिस व्यक्ति को जिनधर्म का ज्ञान हो तो क्या वो ऐसी गल्ती कर सकता है ? यही कारण है कि वेश्या को यह भी ज्ञात रहा होगा कि दिगम्बर साधू एक अकेली स्त्री के पडगाहन मे कैसे आवेगे अत वो अपने साथ अन्य बहरूपिया श्रावक श्राविकाओ को लेकर पडगाहन किया होगा ।

और फिर यह भी देखा जाता है व्यवहार मे कि व्यक्ति विशेष के कारण किसी सामूहिक कार्य को उस व्यक्ति विशेष का कह दिया जाता है । जैसे कि -युग के आदि मे भगवान ऋषभदेव को आहार दान देने वाला राजा श्रेयास प्रसिद्ध हुआ हैं, किन्तु यहाँ पर यह विचारणीय है कि क्या राजा श्रेयास ने भी मात्र आहार दिया होगा ? नहीं, बल्कि राज परिवार के अन्य सदस्यो ने भी दिया होगा किन्तु मुखिया होने के कारण राजा का ही नाम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। और यह बात भी नहीं कही जा सकती हे कि कवि महोदय को ज्ञान न हो कि मुनि स्त्री के पडगाहन मे नहीं जाते हैं बल्कि वे तो आगम मे वर्णित श्रमण चर्या का परिज्ञान रखते थे इस का प्रमाण दयोदय चम्पू में मिलता है । (सप्तम लम्ब पृ 112 से 116 तक) अत सुदर्शनोदय के प्रसग में कोई भूल नहीं की है । अपितु सम्भावना में निहित हैं इसलिये ऐसा कथन किया है ।

मुख्य बात समझने की यह है कि काव्य कार के समक्ष मुख्य विषय वस्तु को उपस्थित करने की बात सामने रहती है । आचार सहिता आदि नहीं । कवि काव्य के लालित्य पक्ष को मुख्यता देता है, कलेवर बढ़ाने के पक्ष में नहीं होता ।

तीसरी शंका भी मस्तिष्क की भूल की उपज है । कारण कि दृष्टि से यह बात फिसल कई कि जब देवदत्ता वेश्या ने मुनि का अपने घर के अन्दर प्रवेश होते ही दरवाजे लगाकर काम चेष्टा पूर्ण वचन बोलना प्रारम्भ किया (सर्ग (9/12 से 19), तो वो समझ गये कि यह कौन है और मैं ठगा गया हूँ अत असमय में आये हुये इस घनघोर संकट

रूप मेघ -समूह (उपसर्ग) को देखकर उन सुदर्शन महामुनि ने आहार करने के भावों का त्याग कर दिया और संकट का निवारण करने के लिये मधुर वचनों से समझाने लगे (उपदेश देने लगे) (सर्ग 1/20 से 26)

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि महोदय ने आगम परम्परा से कोई भिन्न कथन नहीं किया है। अपितु वो यह जानते थे कि उपसर्ग आदि कारणो के आ जाने पर मुनिराज आहार का त्याग कर देते हैं । जैसा कि मूलाचार ग्रन्थ गाथा 61 मे आया है ।

आदंके उवसग्गे तितिक्खणे बंभचेर गुत्तीओ ।
पाणिदया तवहेउ सरीर परिहार वोच्छेदो ।।''

अर्थात् आकस्मिक व्याधि के आ जाने पर भयकर उपसर्ग के आ जाने पर, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा हेतु, जीवन दया हेतु अनशन आदि तप के लिये और संन्यास काल के उपस्थित होने पर मुनि आहार का त्याग कर देते है ।

इसी तरह से समुद्रदत्त चरित्र एवं दयोदय चम्पू में भी महाकवि ने निस्पृहता से श्रमण को सजाया हे । जहा पर श्रमणों की तपस्या का दिग्दर्शन कराया है वहा पर निस्पहता का कथन छायावत् हो ही जाता है क्योंकि निस्पृहता के बिना तो दिगम्बर हुआ ही नहीं जा सकता । समुद्रदत्त चरित्र काव्य का एक उदाहरण देखे पचम सर्ग श्लोक 30 में, जिसमें श्रमणों की निस्पृह वृत्ति का प्रताप देखने को मिलता है । इसमे बतलाया गया हे कि दुष्टकर्मो को नष्ट करने वाला कठोर तप करके मुनिराज रश्मि वेग चारण ऋद्धि का प्राप्त होकर योगन से योगिराज बन गये, जिनके गुणो का वर्णन बहुत ही बड़े शब्दो मे हो सकता है ।

यद्यपि वे महान तपस्वी और ऋद्धि सम्पन्न थे । तथापि उन्होने अपने प्राण रक्षा के लिये धर्म के उत्सर्ग मार्ग को नहीं छोडा । जब वो एक गिरि गुफा मे विराजमान थे और उनकी वन्दनार्थ दो आर्यिकाये (साध्वीया) आई थी तब पापी ब्राह्मण सत्यघोष का जीव जो कि तीसरे नरक आदि अनेक कुयोनियो से भटकता हुआ अजगर मुनि और आर्यिकाओ को खा जाता है (सर्ग 5/31-32) और तीनो मुनि आर्यिकाओ ने दृढता पूर्वक समाधि मरण कर शरीर छाडा, जिससे आठवें कापिष्ठ नामक स्वर्ग मे जाकर चौदह सागर की आयु को प्राप्त कर दिव्य शरीर के धारक देव हुये (सर्ग 5/33)

यहाँ पर यह विचारणीय हे कि जब मुनि परम तपस्वी थे और चारण ऋद्धि सम्पन्न थे तो उन्होंने अपने प्राण बचाने हेतु तन्त्र मन्त्र विद्याये आदि का उपयोग क्यो नही किया ? इसका समाधान यही है कि वो परम भाव लिगी साधु थे और चूकि अहिंसा महाव्रत की आराधना मे पूर्ण तथा सावधान थे, अहिसक की उपासना के लिये तप तपते थे, फलस्वरूप उनका चारण ऋद्धि की प्राप्ति हुई थी जिससे वो आकाश मे चलते थे कि कहीं किसी जीव का हिसा न हो जावे । तब फिर वो एक सज्ञी पचेन्द्रिय जीव अजगर का कैसे मार सकते थे ।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक 122 में लिखा है

''उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजाया च नि·प्रतिकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहु· सल्लेखनामार्या · ।।''

अर्थात ''उपसर्ग में दुर्भिक्ष में (अकाल महामारी) बुढापा में असाध्य रोग हो जाने पर अपने आत्मधर्म के लिये शरीर को छोड़कर सल्लेखना धारण कर लेता है । ऐसी सल्लेखना भाव श्रमण ही धारण कर पाते हैं, जो धर्म के लिये होती है, भोगों के लिये नहीं । यही कारण हे कि उन मुनि एव आर्यिकाओ ने शरीर से निस्पृह हो शुभ परिणामो से मरण करके स्वर्ग प्राप्त किया, दुर्गति नहीं ।

इस तरह से लघुत्रयी आगम परिप्रेक्ष्य में निस्पृह श्रमण जीवन का एक सशक्त दस्तावेज प्रस्तुत करती है । जिसमें श्रमण जीवन का प्राप्त निदर्शन होता है ।

लघुत्रयी मे श्रमण चर्या के अन्तर्गत स्वाध्याय का क्या स्थान है, यह आवश्यक महत्वपूर्ण खोज है, जिसके बारे में अब यहाँ चर्चा करते हैं ।

श्रमण चर्या में स्वाध्याय को 28 मूल गुणों के अन्तर्गत नहीं रखा गया है तथापि "स्वाध्याय परम तप" कहा गया है । और तपसा निर्जरा च" (तत्त्वार्थ सूत्र 9/3), तप निर्जरा एवं सवर मे कारण हैं । किन्तु स्वाध्याय कहते किसको हैं । इस सबध में धवला पुस्तक 14 पृ 9 पर आया है कि "सुदत्थस्स सुदाणुसारेण चितणमणुपेहण णाम" अर्थात् शास्त्र से सुने हुये या पढे हुए अर्थ का श्रुत के अनुसार मनन चिन्तन या अभ्यास करना स्वाध्याय है । इसलिये श्रमणमुनि सतत स्वाध्याय करने में सलग्न रहते हैं क्योंकि मन एव इन्द्रिय रूपी घोडो पर यदि लगाम नही लगी तो ये स्वच्छन्द घोडे स्वामी (आत्मा) को संसार में भटका देगे । और मिथ्यात्व रूपी अधकार के गर्त मे गिरा देगे । अत परमार्थ को देखने के लिये ज्ञान रूपी प्रकाश चाहिये और वह प्रकाश स्वाध्याय से प्राप्त होता है, जैसा कि सावयधम्म दोहा 140 मे कहा गया है-

"सज्झाए णाणह पसरु रुज्झई इंदियगाउ ।
पच्चूसे सूरुग्गमणि धूयडकुलु णिच्छाउ ।।"

अर्थात स्वाध्याय से ज्ञान का प्रसार होता है और इन्द्रियो का व्यापार रुक जाता है जैसे प्रात काल मे सूर्योदय होते ही उल्लू कुल निष्प्रभ हो जाता है ।

इस सबध मे मूलाचार के समय सार अधिकार 11 गाथाओ मे तो आदेश ही दे दिया गया है-

"दव्व खेत्त काल भाव सत्ति च सुट्ठु णाऊण ।
झाणज्झयण च तहा साहू चरण समाचरऊ ।।"

अर्थात् द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव और शक्ति को भली भातिजान कर साधुओ को ध्यानाध्ययन समाचरण करना चाहिये।

देवदत्ता वेश्या ने अपनी कामचेष्टा द्वारा मुनिराज सुदर्शन को डिगाने मे असफल होकर मुनिराज से धर्मोदेश की प्रार्थना पर मुनिराज अत प्रदत्त उपदेश मे गहन अध्ययन, चिन्तन, मनन, रूप स्वाध्याय के माहात्म्य के सूत्र होते हैं ।

इसी प्रकार दयोदय चम्पू मे भी महाकवि ने श्रमणो की स्वभाविक वृत्ति मे ज्ञानध्यान को प्रमुखता से बतलाया है । यथा-लम्बप्रथम श्लाक 5वा देखे-

"यै शास्त्राम्बुनिधे पार समुत्तर्तुं महात्मभि ।
पोतायितमितस्तेभ्य श्री गुरुभ्यो नमो नम ।।"

द्वितीय लम्ब श्लाक 8 वा देखे जिसमे ज्ञानध्यान मे परायण मुनि के बारे मे बतलाया है-

"समान सुख- दु खे सन् पाणिपात्रो दिगम्बर ।
नि शङ्को निष्पृह· शान्तो ज्ञान ध्यान परायण ।।"

और सप्तम् लम्ब के 21 वाँ श्लोक मे भी शास्त्र स्वाध्याय मे तत्पर रहने वाले श्रमण का दिग्दर्शन कराया है यथा -

"द्वित्रीणि कवलानीह गर्तपूरणरूपत ।
उररीकृतानि यावद् ध्यानाध्ययनसंयुजा· ।।"

इसके साथ ही लघुत्रयी मे धर्मोपदेश रूप स्वाध्याय ("वाचना पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशा" तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय 9/25) की भी अति महिमा को देखने को मिलती है । यथा अवसर साधुओ का उपदेश एवं उसका प्रभाव दिखाया गया है ।

"मौनं साधयति इति मुनि:", मुनि वह है जो मौन की साधना करता है, तब धर्मोपदेश रूप स्वाध्याय कैसे ? यहा पर मौन से तात्पर्य हिसादि पाप का उपदेश नहीं देना एव आवश्यकता पडने पर धर्म का उपदेश देना है ।

धर्मोपदेश को स्वाध्याय क्यो कहा ? इसलिये हो सकता है कि श्रमण मुनि आगम प्रणीत आर्ष वचनो का आलम्बन लेकर के ही उपदेश देते हैं, सप्रमाण धर्म की उपस्थापना करते हैं । उनके वचनो मे आगम से बाधा नहीं होती, पूर्वापर अविरोध कथन करके स्ववचन बाधित नहीं होते । इस कारण से उनके मुख से निकला हुआ एक एक शब्द श्रुत है और दूसरो को सुनाने से पर कल्याण के साथ साथ स्वय का स्वाध्याय भी हो जाता है । यत स्थान स्थान पर लघुत्रयी मे श्रमण मुनि उपदेश के द्वारा पर कल्याण करते हुये देखने में आ जाते है । यथा सुदर्शनादय मे सर्ग चतुर्थ श्लोक 5 से 14 मुनि का धर्मोपदेश सुनकर के सेठ वृषभदास ने दिगम्बर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली, एव सर्ग नवम् मे श्लोक 33 मे 74 मे सुदर्शन मुनि के धर्मोपदेश का चित्रण और वेश्या का हृदय परिवर्तन होने से उसने पापो का विमोचन कर आर्यिका दीक्षा धारण कर ली ।

समुद्रदत्त चरित्र सर्ग 4/6 मे भद्र मित्र ने एक दिन वन में परधर्म नामक मुनिराज के दर्शन किये और उपदेश सुनकर मन मे संतोष हुआ और वह दिल को खोलकर दान करने लगा ।" और सर्ग पचम श्लोक 28-29 मे मुनि के उपदेशो को सुनकर रश्मिवेग राजा ने मानसिक तृष्णाओ की शाति प्राप्त कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया और योगिपने को स्वीकार कर लिया । अर्थात् दिगम्बर श्रमण बन गया" । एवं षष्टम सर्ग श्लोक 35 मे -"पिहिताश्रव मुनि के द्वारा ससार समुद्र में अनादि काल से जीव जन्म मरण करता आ रहा है । इस प्रकार से ससार का स्वरूप सुनकर राजा अपराजित (चक्रायुद्ध के पिता श्री) को वैराग्य हो गया है और वे यथाजात दिगम्बर भेष धारण कर मुनि बन गये"। अन्त मे अष्टम सर्ग मे श्लोक -1से 50 में "काव्य नायक राजा चक्रायुद्ध ने अपराजित महाराज के उपदेश के प्रभाव से यति धर्म को स्वीकार कर लिया अर्थात् दिगम्बर श्रमण बन गये। और कठोर तपस्या कर जिनधर्म को महती प्रभावना की"।

इसी प्रकार चम्पू काव्य दयोदय मे भी महाकवि ने एक निम्न वृत्ति करके आजीविका करने वाले मृगसेन धीवर का श्रमणमुनि के उपदेश से उद्धार दिखला कर भगवती अहिसा की प्राण प्रतिष्ठा की है -देखे लम्ब प्रथम पृ 11-12-13 ।

"चलो जहाँ तक हो सके, उचित मार्ग की ओर ।
सुख देता है मनुज को क्या न अमृत की कोर ॥"

"मृगसेन एतत्तु मया सहजमेव कर्तुं पार्यत इति मनसि कृत्वा सङ्गरयतिस्म यतिपादयोरग्रे "।

अर्थात मृगसेन ने, यह तो मे बहुत आसानी से पाल सकता हूँ ऐसा अपने मन मे विचार करके मुनि महाराज के चरणो मे उसने प्रतिज्ञा कर ली कि ठीक है महाराज मे पहिले आये हुये जीव को नहीं मारूँगा । और सप्तम लम्ब मे पृ 120-से 123 पर श्लोक 28 से 37 में श्रमण मुनि के मुख से महाकवि ने जिनवाणी रूपी गगा बहा कर सोमदत्त राजा के कर्मों को प्रक्षालित करा कर विशुद्धि रूपी अमृत के यान से मोह को नष्ट करा दिया और दिगम्बर श्रमण मुनि का बाना पहनाकर परमेष्ठि पद से विभूषित कर दिया ।

लघुत्रयी के उपरोक्त प्रसग को पढने से ज्ञात होता है कि महाकवि भूरामल जी ने श्रमणो का महत्त्व बतलाने के लिये जहाँ उनको ज्ञान वान बतलाया है वहाँ पर श्रमणो को प्रेरणा देने के लिये भी लघुत्रयी के श्रमणो को ज्ञानवान बतलाया है कारण है कि साधु जब भी बोलते हैं आगम के आलोक मे हेय उपादेय का ज्ञान करके बोलते हैं । तभी तो कुन्द-कुन्द आचार्य ने "आगम चक्खू साहू" कहा है । इसलिये साधु के वचनो पर विश्वास होता है ।

इस तरह से उपरोक्त कथन से सन्त समागम की सार्थकता पर भी प्रकाश पडता है और साधुओं को स्वपर के लिए ससार का वास्तविक चित्रण खीचने हेतु जिनवाणी की उपासना की अनिवार्यता का भी बोध होता है ।

प्रस्तुत प्रसंग से मन में यह प्रश्न उठता है कि पूज्यपाद आचार्य ने आत्मकल्याण करने के लिये बहुज्ञान की आवश्यकता नहीं बताई अपितु अष्ट प्रवचन मातृका का ज्ञान पर्याप्त बताया है । (सर्वार्थसिद्धि 9/47/913) ''जघन्येन निर्ग्रन्थाना श्रुतमष्टौ प्रवचनमातार ।'' अर्थात ''जघन्य से निर्ग्रन्थों को अष्ट प्रवचन मातृका (पांचसमितिया तीन गुप्तियाँ) प्रमाण श्रुतज्ञान होता है ।'' जबकि निर्गन्थ 11-12 वे गुणस्थान मे होते हैं ।12 वे गुणस्थान मे अन्तर्मुहूर्त रहकर 13वें गुणस्थान मे जाकर केवल ज्ञानी बन जाते हैं ।) तब फिर क्या आवश्यकता है बहुज्ञान करने के लिये शास्त्राभ्यास करने की ?

इसका समाधान यही है कि -श्रमण चूकि भौतिक जीवन को छोडकर आया हुआ होता है और अनादिकालीन सस्कार भी भोगोपभोग के रहते हैं अत मन एव इन्द्रियो का भटकना सम्भव है और आत्म साधना में उपयोग की स्थिरता का अभाव होना कोई कार्यकारी नहीं है । इसलिये साधक को शास्त्रभ्यास करते रहना पर आवश्यक है । और फिर पूज्यपाद स्वामी ने भी जघन्यता से श्रुत की अनिवार्यता ही दर्शायी है ।

अत मन एव इन्द्रियो को नियन्त्रण मे रखने के लिये बहुज्ञान की आवश्यकता तो नहीं है किन्तु आवश्यक श्रुत का होना अनिवार्य अवश्य है ।

इस तरह से लघुत्रयी मे महाकवि ने वेदुष्य के साथ विद्याराधना को प्रमुखता दी है और आये हुये श्रमण पात्रो को जहाँ विशाल हृदय एव कठोर उपसर्ग परिषद् विजेता के रूप मे खडा किया है वहा पीछे ओट मे जिनवाणी की उपासना का आशीर्वादात्मक सबल भी दिखा दिया है ।

लघुत्रयी के पढने मे ऐसा लगता है कि श्रमणो को अपना निर्दोष आचार विचार-आहार विहार रखने के लिये एव श्रामण्य की सफलता प्राप्त करने के लिये महाकवि ने वर्तमान समय के श्रमणो का स्वाध्याय की प्रेरणा देकर अपनी श्रामण्य जीवन सुधारने की कला बतलाई हो ।

श्रमण चर्या के अन्तर्गत आहार चर्या एक प्रमुख स्थान रखती है । आहार अनिवार्य नहीं किन्तु आवश्यक है शरीर की स्थिति के लिये और शरीर धर्म साधना मे पहला साधन है -''शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्''। अत साधु दिन मे, एक बार खडे हाकर के अपनी अजुली (हाथो) मे छयालीस दोष रहित, बत्तीस अन्तराय के बिना (टालकर) कोई श्रावक नवधा भक्ति पूर्वक आहार देता है तो लेते हैं ।

लघुत्रयी मे निर्दोषआहार चर्या करते हुये श्रमणो का दर्शन होता है । यथा सुदर्शनोदय नवम सर्ग श्लोक -2 मे ऐसे साधुओ की स्तुति की गई है ''जो अयाचित भिक्षा से उदरभरण करते हैं , हस्ततल ही जिनका भोजन पात्र है, जो अनुदिष्ट भोजी है''। आगे इसी सर्ग के 13वे श्लोक मे सुदर्शन मुनि के बारे मे कहा गया है '' जो अदीन भाव के धारक और क्या निर्धन ओर क्या भाग्यशाली धनी सबको समानभाव से देखने वाला उन सुदर्शन मुनिराज का देवदत्ता ने पडगाह लिया'' । इस प्रकार से आहार चार्य करने वाले श्रमण सुदर्शनोदय में सम्मान प्राप्त ह । समुद्रदत्त चरित्र मे भी काव्यनायक के द्वारा श्रामण्य अगीकार कराकर महाकवि ने आहार चर्या का उत्कृष्ट रूपक खींचा है यथा सर्ग नवम् श्लोक 9 में -''दिन मे एक बार और अल्पमात्रा मे आहार लेना'' । श्लोक 10 मे -''कभी दो दिन से कभी तीन दिन से आहार लेना, उदास भाव मे आहार लेना, बिना काई प्रयास के मात्र गृहस्थो की बस्ती मे जाना और कोई वहाँ पर भक्ति पूर्वक आग्रह करके आहार देता है तो उसी से लेना श्लोक 11 में ''जैसे कि भौंरा फूल को किसी भी तरह की अडचन न करके उसकी गन्ध का ग्रहण कर तृप्त हो जाता है उसी प्रकारसे प्रसन्नता पूर्वक गृहस्थ के द्वारा अर्पण किये अन्न को ही प्राप्त करके अपनी भूख को मिटा लेना''। और श्लोक 12 मे -''हाथ में भोजन लेना, एक जगह निश्चल खडे -खडे मौन पूर्वक बिना इशारा के ही आहार लेना ''। आदि रूप से आहार चर्या की वृत्ति का ज्ञान कराया है ।

और दयोदय चम्पू काव्य में तो श्रमण मुनि किस प्रकार से आहार चर्या करते हैं, इसका एक सुदर सा चलचित्र सामने ला उपस्थित किया है । यथा सप्तम लम्ब पृ 114-115-116-117 में ''मुनिराज चर्या करते हुए आ रहे हैं ।

गोचरी के लिये निकले मुनि को देखकर सोमदत्त बोला है प्यारी देखो तो सही कि एक परमहस साधु आ रहे हैं। यह सुनकर पत्नी बोली हे स्वामिन् उनकी प्रतिग्रह (स्वागत) करो। आज हमारा बडा भाग्य है जो इस समय हमारे घर की ओर साधु महाराज आ रहे हैं। और सोमदत्त एव विषा ने कहा -"हे स्वामिन् नमोस्तु, आइये आप अपने चरणों से हमारे घर को पवित्र कीजिये ऐमा तीन बार कहा"। तब इस पवित्र मगल भावना से ओत-प्रोत श्रावको को देख मुनि महाराज जो कि "समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरु के समान उन्नत और प्राकार-परकोटे के समान सद्वृत्त वे साधु उन विषा और सोमदत्त के आगे आकर खडे हो गये"। "फिर उन दोनो स्त्री पुरुषो ने मुनि महाराज को उच्चासन दिया, तीन प्रदक्षिणा की बार -बार नमस्कार किया, उनके चरणों का प्रक्षालन किया, पूजा की और मानो कोई बडी भारी निधि मिल गई हो इस प्रकार से मन मे वे बहुत बड़ा हर्ष मानते हुए दो वर्ष के बालक के ममान गद्गद शब्द बोलने लगे।

क्षु श्री धैर्यसागर जी महाराज

❑ ❑ ❑



ईति-भीति व्यापे नहिं जग मे वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ट होकर राजा भी न्याय प्रजा का किा करें।
रोग, मरी, दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में पहले सर्व हित किया करे॥

जैन साहित्य वर्णित सुदर्शन कथा एवम् सुदर्शनोदय

'सुदर्शन चरित सम्बन्धी साहित्य एव सुदसण चरिउ तथा सुदर्शनोदय की कथा का तुलनात्मक अध्ययन'

डॉ अशोककुमार जैन

सस्कृत जैन काव्य परम्परा मे आचार्यो ने चरित्र नामान्त अनेक काव्यो का प्रणयन कर राष्ट्र और समाज का महान् उपकार किया । जैन काव्यो के नायक देव, ऋषि, मुनि नहीं है अपितु राजाओ के साथ सेठ, सार्थवाह, धर्मात्मा व्यक्ति, तीर्थङ्कर शूरवीर या सामान्य जन आदि हैं । नायक अपने चरित्र का विकास इन्द्रियदमन और सयमपालन द्वारा स्वय करता है । आरम्भ मे ही नायक त्यागी नहीं होता, वह अर्थ और काम दोनो पुरुषार्थों का पूर्णतया उपयोग करता हुआ किसी निमित्त विशेष को प्राप्त कर विरक्त होता है और आत्मसाधना मे लग जाता है ।[1] अनेक शास्त्रो मे सेठ सुदर्शन के लोकोत्तर चरित्र का वर्णन किया गया है । वे आत्मसयम के उन्नतम आदर्श हैं । सुदशन मुनि की कथा सस्कृत प्राकृत और अपभ्रश ग्रन्थो मे समान रूप मे पायी जाती है । किन्तु पूर्ण चरित ग्रथ के रूप मे सुदसण चरिउ पहली कृति है । प्राचीन साहित्य मे सुदर्शन मुनि के जीवन चरित्र का सकेत हमे शिवार्य कृत मूलाराधना (भगवती आराधना) मे मिलता है । यहाँ कहा गया है -

अन्नाणी वि य गोवो आराधित्ता मदो नमोक्कार।
चपाए सेट्ठिकुले जादो पत्तो य सामन्न ॥762॥

अर्थात् अज्ञानी होते हुए भी सुभग गोपाल ने णमोकार मन्त्र की आराधना की । जिसके प्रभाव से वह मरकर चपानगर के श्रेष्ठिकुल मे (सुदर्शन सेठ के रूप मे) उत्पन्न हुआ और वह श्रमण मुनि होकर श्रमणत्व के फलस्वरूप मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

भगवती आराधना मे दृष्टान्तो के रूप मे सूचित कथाओ को विस्तृत रूप से वर्णन करने वाली प्रमुख दो रचनाये उपलब्ध हुई है । पहली रचना हरिषेणाचार्य रचित बृहत्कथा कोष है । इसमे कुल 157 कथानक है, जिनकी रचना सस्कृत मे हुई है । इसमे 60वी कथा सुभगगोपाल शीर्षक है और वह 173 पद्यो मे पूर्ण हुई है । उसके अन्त मे कहा गया है

''इति श्री जिननमस्कारसमन्वित सुभगगोपाल कथानकमिदम्''

इस ग्रथ की रचना उसकी प्रशस्ति के अनुसार वि स 989 तथा शक सवत 853 मे हुई थी ।

दूसरी रचना मुनि श्री चद कृत कहाकोसु (कथाकोष) है । इसकी रचना अपभ्रश पद्यो मे हुई है और उसमें 53 सन्धियाँ है । जिनमें 190 कथाओ का समावेश है । इसका कथानक हरिषेणकृत कथाकोश के समान ही है । यद्यपि इस ग्रथ मे उसकी रचना काल का उल्लेख नहीं है तथापि इन्हीं श्रीचन्द मुनि का एक दूसरा ग्रथ 'दसणकहारयण करड' (दर्शन कथा रत्न करण्ड) है और उसमें उसका रचनाकाल वि स 1123 निर्दिष्ट है । अतएव उनका प्रस्तुत कथाकोश इसी समय के कुछ काल पश्चात् रचित अनुमान किया जा सकता है ।

इसी विषय की तीसरी रचना नयनंदि कृत सुदसण चरिउ (सुदर्शन चरित) है । यह अपभ्रश भाषा का महाकाव्य कहा जा सकता है । यह काव्य गुणो से भरपूर है । यह काव्य 12 सन्धियो मे समाप्त हुआ और ग्रन्थ की प्रशस्ति के अनुसार उसकी रचना अवन्ती (मालवा) प्रदेश की राजधानी धारी नगरी के बडविहार नामक जैन मन्दिर में राजा भोज के समय वि स 1100 मे हुई थी । इस प्रकार इस काव्य का रचनाकाल हरिषेणकृत कथाकोष के पाश्चात् व श्रीचन्द कृत कथाकोश के लगभग 25 30 वर्ष ही पूर्व सिद्ध होता है ।

---

1 डॉ नेमिचन्द शास्त्री सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियो का योगदान पृ 11

रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्यास्रव कथाकोष मे पंच नमस्कार मन्त्र की आराधना का फल प्रकट करने वाली आठ कथाये हैं, जिनमे सुदर्शन सेठ के अतिरिक्त सुग्रीव, बैल, बन्दर, विन्ध्य श्री, अर्द्धदग्ध पुरुष सर्प सर्पिणी कीचड में फंसी हस्तिनी और दृढ़सूर्य चोर के कथानक की हैं ।

ब्रह्मचारी नेमिदत्त विरचित आराधना कथाकोश मैं वर्णित 'पचनमस्कार मन्त्र प्रभाव कथा' का वर्णन मिलता है। भट्टारक सकल कीर्ति ने भी संस्कृत सुदर्शन चरित को लिखा । एक और अन्य सुदर्शन चरित सस्कृत मे प्राप्त होता है जो मुमुक्ष श्री विद्यानन्दि विरचित्त है । इस काव्य मे द्वादश अधिकार हैं । इस सुदर्शन चरित की रचना उन्होंने गधारपुरी के छत्र ध्वज आदि मे सुशोभित जैन मन्दिर में की थी । डॉ हीरालाल[2] ने अनेको प्रमाणो के बाद निष्कर्ष में कहा है कि गधारपुरी या तो सूरत नगर का ही नाम था, या इसके किसी एक भाग का अथवा उसके समीपवर्ती किसी अन्य नगर का और वहीं स 15/3 के लगभग विद्यानन्दि द्वारा सुदर्शन चरित्रम् ग्रथ की रचना हुई थी ।

इन सबके बाद वीर निर्वाण सवत् 2470 में बालब्रह्मचारी महाकवि प भूरामल जी, जो बाद मे आचार्य ज्ञानसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए, उन्होंने सुदर्शनोदय काव्य का सस्कृत मे प्रणयन किया । जिसमे नव सर्ग ह उसमे इनकी विलक्षण प्रतिभा तथा पाण्डित्य के दर्शन होते हैं ।

सुदसण चरिउ अपभ्रश भाषा मे रचित महाकाव्य हे तथा सुदर्शनादय सस्कृत भाषा मे रचित महाकाव्य हे । दोनो का मूल कथा स्त्रोत एक ही है फिर भी दोनो काव्यो की कथावस्तु एव वर्णनात्मक प्रसगो मे भिन्नताये प्राप्त होती हैं वे निम्न हे ।

1 सुदसण चरिउ मे वर्णित राजा श्रेणिक आर उनके राजपरिवार का सुदर्शनोदय मे उल्लेख नहीं हे ।[3]

2 सुदसण चरिउ मे सेठानी का नाम अर्हद्दासी ह[4] जब कि सुदर्शनोदय मे जिनमती ह

3 सुदसण चरिउ मे ग्वाले का वृत्तान्त कथा के प्रारम्भ मे हे[6]
सुदर्शनोदय मे यह वृत्तान्त पूर्व जन्म वणन के प्रसग मे हे।[7]

4 सुदसण चरिउ मे बहुत सी गायो के गगा नदी मे प्रविष्ट होने का वर्णन ह[8] किन्तु सुदर्शनादय मे केवल एक भैस के सरोवर मे घुसने का वर्णन ह ।[9]

5 सुदसण चरिउ के अनुसार नदी मे स्थित ठूँठ की नोक से हृदय बिधने के कारण मृत्यु को प्राप्त ग्वाले ने मरने के पहले सेठ के यहाँ पुत्र रूप मे उत्पन्न होने की कामना की[10] किन्तु सुदर्शनोदय मे ऐसा उल्लेख नही मिलता।

6 सुदसण चरिउ मे सुदर्शन का पोष मास शुक्लपक्ष की चतुर्थी बुधवार को जन्म[11] वैशाख मास मे शुक्ल पक्ष की पचमी रविवार को विवाह[12] तथा पोषमास की पचमी तिथि दिन सोमवार को मोक्ष गमन[13] का उल्लेख ह । सुदर्शनोदय मे इनका अभाव हे ।

7 सुदसण चरिउ के अनुसार मुनिराज ने सेठ के पुत्र का नामकरण किया ।[14] सुदर्शनादय मे सेठ ने स्वय पुत्र का नामकरण किया ।[15]

8 सुदसण चरिउ के अनुसार विद्याप्राप्ति के बाद सुदर्शन 16 साल का था।[16] पर सुदर्शनोदय मे सुदर्शन की अवस्था का काई उल्लेख नहीं है ।

9 सुदसण चरिउ में उल्लिखित मनोरमा की माता सागर सेना[17] का सुदर्शनोदय मे काई उल्लेख नहीं हे ।

---

3 सुदसणचरिउ 1 2-1
4 वही 4/5
5 सुदर्शनोदय 2/4
6 सुदंसण चरिउ 2/6-15
7 सुदर्शनोदय 4/18 22-27
8 सुदंसण चरिउ 2/14
9 सुदर्शनोदय 4/26
10 सुदसण चरिउ 2/14
11 वही 3/3
12 वही 5/3
13 वही 12/7
14 सुदसण चरिउ 3/6
15 सुदर्शनोदय 3/15
16 सुदसण चरिउ 3/9
17 वही 4/1

10 सुदसण चरिउ के अनुसार सुदर्शन ने बाजार में जाते हुए मनोरमा को देखा ।[18] सुदर्शनोदय के अनुसार जिन मन्दिर में दोनों का प्रथम साक्षात्कार हुआ ।[19]

11 सुदंसण चरिउ के अनुसार सेठ सागरदत्त और सेठ वृषभदास अपनी पुत्री एवं पुत्र के विवाह के लिए परस्पर वचनबद्ध थे ।[20] सुदर्शनोदय मे ऐसा वर्णन नहीं है ।

12 सुदसण चरिउ में उल्लिखित श्रीधर ज्योतिषी[21] का सुदर्शनोदय में उल्लेख नही मिलता ।

13 सुदंसण चरिउ के अनुसार सेठ के साथ सेठानी ने भी तपश्चरण किया ।[22] किन्तु सुदर्शनोदय मे केवल सेठ वृषभदास के ही दीक्षित होने का वर्णन है ।[23]

14 सदसण चरिउ के अनुसार कपिला सुदर्शन के गुणो को सुनकर मोहित हो गयी ।[24] किन्तु सुदर्शनोदय के अनुसार कपिला सुदर्शन को देखकर मोहित हुई न कि उसके गुणो को सुनकर ।[25]

15 सुदसण चरिउ मे वर्णित कपिला की सखी के पचम राग गाने[26] का सुदर्शनोदय मे कोई उल्लेख नहीं है ।

16 सुदसण चरिउ मे सात पुतलो द्वारा दासी के सात द्वारपालो के वश मे करने का वर्णन है ।[27] जबकि सुदर्शनोदय मे एक ही द्वारपाल का उल्लेख है ।[28]

17 सुदसण चरिउ मे उल्लिखित सुदर्शन के अपशकुनों[29] का सुदर्शनोदय मे कोई उल्लेख नहीं है ।

18 सुदसण चरिउ मे दासी के सुदर्शन के पास दो बार जाने का वर्णन है।[29] सुदर्शनोदय के अनुसार दासी एक ही बार सुदर्शन के पास गयी । और उसे रानी के पास ले आई ।[30]

19 सुदसण चरिउ मे रानी ने अपने शरीर का नखो से क्षत विक्षत करके सुदर्शन को दोषी बताया है 31। जबकि सुदर्शनोदय मे नख क्षत बना लने का उल्लेख नहीं है ।

20 सुदसण चरिउ मे वर्णित व्यन्तर द्वारा सुदर्शन की रक्षा का वृत्तान्त[32] सुदर्शनोदय मे नही है ।

21 सुदसण चरिउ मे राजा व्यन्तर से वास्तविकता को जानकर सुदर्शन से क्षमा याचना करता है ।[33] सुदर्शनोदय मे राजा आकाश वाणी से वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करता है ।[34]

22 सुदसण चरिउ मे वर्णित पूर्वजन्मों के प्रसग मे भील से सम्बद्ध राजा भूमिपाल का वर्णन है ।[35] सुदर्शनोदय में नहीं है ।

23 सुदसण चरिउ मे अभया वृत्तान्त के बाद सुदर्शन विमलवाहन मुनि से अपने पूर्वजन्मो के विषय मे जानता है[36] सुदर्शनोदय मे यह घटना सेठ वृषभदास के दीक्षित होने के बाद की है ।

24 सुदसण चरिउ मे राजा एव अन्य लोगो के सुदर्शन के आचरण से प्रभावित होकर दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है ।[37] पर सुदर्शनोदय मे इस घटना का उल्लेख नहीं है ।

25 सुदसण चरिउ के अनुसार देवदत्ता वेश्या अपने प्रयास मे असफल होकर सुदर्शन को पुन श्मशान मे छोड आई। पण्डिता के साथ उसने तप तब ग्रहण किया जब सुदर्शन को कैवल्य की प्राप्ति हो गयी ।[38] सुदर्शनोदय के अनुसार सुदर्शन की दृढता से प्रभावित होकर वेश्या ने अपने कुकृत्यो की निन्दा की और पण्डिता के साथ सुदर्शन से दीक्षा ग्रहण की ।[39]

---

18 वही 3/3 5/4 4/1
19 सुदर्शनोदय 3/34 35
20 सुदसण चरिउ 5/2
21 वही 5/2
22 वही 6/20
23 सुदर्शनोदय 4/14
24 सुदसण चरिउ 7/2
25 सुदर्शनोदय 5,1
26 सुदसण चरिउ 7/2
27 वही 8/11
28 सुदर्शनोदय 6/29
28 सुदसण चरिउ 8/15
29 वही 8/15
30 सुदर्शनोदय 7/36
31 सुदसण चरिउ 8/34
32 वही 8/143, 9/1 18
33 वही 9/18
34 सुदर्शनोदय 8/9 10
35 सुदसण चरिउ 10/4
36 वही 10/4
37 वही 10/4
38 वही 11/11, 12/6
39 सुदर्शनोदय 9/30, 74

26 सुदसणचरिउ के अनुसार सुदर्शन के लिए इन्द्र द्वारा समवसरण मण्डप निर्माण वर्णन[40] सुदर्शनोदय में नहीं है ।

27 सुदसण चरिउ के अनुसार अभया के व्यन्तरी रूप से उसी व्यन्तर ने पुन सुदर्शन की रक्षी की, जिसमें राजा द्वारा बध करवाते समय उसकी रक्षा की थी ।[41] किन्तु सुदर्शनोदय के अनुसार सुदर्शन अभयमती द्वारा किये गये उपसर्गों को सहन करते रहे ।[42]

28 सुदसण चरिउ मे वर्णन है कि मनोरमा सुदर्शन के कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति के बाद आर्यिका बनी[43] सुदर्शनोदय के अनुसार सुदर्शन द्वारा तपश्चरण की इच्छा प्रगट करन के बाद मनोरमा भी उसके दीक्षित होने पर आर्यिका धर्म में दीक्षित हो गयी ।[44]

29 सुदसण चरिउ मे व्यन्तरी के सम्यक्त्व धारण का उल्लेख है[45] किन्तु सुदर्शनोदय मे नहीं ।

30 सुदसण चरिउ का कथानक पुन राजा श्रेणिक के उल्लेख से समाप्त हुआ है ।[46] सुदर्शनोदय के कथानक की समाप्ति सुदर्शन मुनि की मोक्ष प्राप्ति के उल्लेख मे हुई है ।[47]

सुदसण चरिउ की विशेषताये

इस काव्य की कतिपय प्रमुख निम्न विशेषताये हैं -

1 इसमे सुदर्शन की बाल-लीलाओ का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है ।

2 मनोरमा के शरीर सौन्दर्य का वर्णन करते हुए प्रसग वश नयनन्दि ने विभिन्न देशो की स्त्रियों के स्वभावगत एव शरीरगत विशेषताओ का अपूर्व वर्णन किया है ।

3 मद्य, मास, मधु के दोष, अणुव्रत गुणव्रत, शिक्षाव्रत, रात्रि-भोजन के दोष, मुनिधर्म आदि का सम्यक् निरूपण किया है ।

4 वर्णन शैली का सौन्दर्य, खाद्य पदार्थों नदियाँ, वन के वृक्षो मनुष्याकार माटी के पुतलो के वर्णन के देखने योग्य है ।

5 लोकोक्तियो के प्रयोग से भाषा मे स्वाभाविकता और लालित्य आया है ।

6 नयनन्दि का यह चरित्र काव्य आलकारिक काव्य शैली की परम्परा मे है । अलकार बहुधा श्लेषाधारित है । जिसमे कवि का कल्पना और शब्द चातुर्य का अच्छा परिचय प्राप्त होता है । उपमा रूपक उत्प्रेक्षा व्यतिरेक आदि अलकारो का पद-पद पर प्रयोग मिलता है। यहाँ क्रमश उपमा और उत्प्रेक्षा का एक-एक उदाहरण दिया है जैसे "तहाँ सुहओ णामे गोवालउ णवकलतु जिह भुभुरभोलउ ।।"[48]

अर्थात् उन सेठ-सेठानी का एक सुभग नाम का ग्वाला था, जो नई बहु के समान अत्यत भोला था ।

यथा - वह गोप जिसकी आयु थोडी रह गयी थी परमेष्ठी पदों का स्मरण करके नदी में कूद पडा जैसे मानो विष से भरी नागिनी के मुख मे या यम की दृष्टि मे जा पड़ा हो ।[49]

सुदर्शनोदय की विशेषताये

सुदर्शनोदय काव्य की कतिपय निम्न प्रमुख विशेषताये हैं ।

1 इसके निर्माता ने सुदर्शन की भील के भव से लेकर उतरोत्तर उन्नति दिखाते हुए सर्वोत्कृष्ट अभ्युदय रूप निर्वाण की प्राप्ति का वर्णन कर इसके सुदर्शनोदय नाम को सार्थक किया है ।

2 इसमे सुदर्शन की बाल लीलाओ का बहुत ही स्वभाविक वर्णन किया गया है ।

3 इसमे द्वीप, क्षेत्र नगर, ग्राम हार, उद्यान पुरुष स्त्री, शिशु, कुमार, गृहस्थ और मुनि का वर्णन पूर्ण आलङ्कारिक काव्य शैली मे किया गया है ।

---

40 सुदसण चरिउ 12/3 41 वही 1/12-22 42 सुदर्शनोदय 9/76-43
43 सुदसण चरिउ 12/3 44 सुदर्शनोदय 8/33-34 45 सुदसण चरिउ 12/5-6
46 वही 12/7 47- सुदर्शनोदय 9/85-93

4 इसकी रचना में संस्कृत में प्रसिद्ध इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा उपजाति, वियोगिनी वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित और शार्दूल विक्रीडित छन्दों का उपयोग किया ही है साथ ही देशी भाषा के प्रसिद्ध प्रभाती काफी, होली, सारंग, रसिक, श्यामकल्याण, सोरठ छंद, भाल और कव्वाली आदि के रागो में इसमे भी अनेक सुन्दर गीतो की रचना की है। अन्त्यानुप्रास की छटा तो देखते ही बनती है । जिसे पढने पर पाठक का हृदय आन्दोलित हुए बिना नहीं रह सकता।

5 ऋषभदास के पूछने पर मुनिराज के द्वारा धर्म के स्वरूप का वर्णन, सुदर्शन के पूछने पर गृहस्थ धर्म के स्वरूप का वर्णन, सुदर्शन के पूँछने पर गृहस्थ धर्म का निरूपण स्वीकृत उपसर्गों की दशा मे सुदर्शन के द्वारा शरीरगत विरूपता का चिन्तवन, घर जाते हुए मोहिनी माया का दर्शन, सुदर्शन मुनिराज के रूप में मुनिधर्म के आदर्श का वर्णन और वेश्या को लक्ष्य करके दिया गया श्रावक धर्म का उपदेश मननीय एव ग्रन्थ निर्माता के अगाध धार्मिक ज्ञान का परिचायक है ।

सुदर्शनोदय में कहा है

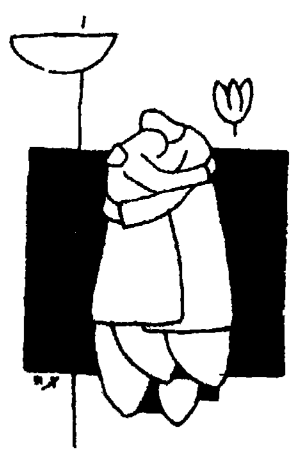
जैसे जल एक बिन्दु सीप के भीतर जाकर मोती बन जाती है, उसी प्रकार सन्त जनों के सयाग से प्राणियो के भी अभीष्ट फलदायी महत्त्व पद शीघ्र मिल जाता है जसे नीच कुलीन धोबिन भी आर्यिकाओ के समागम मे क्षुल्लिका बनकर कुलीन पुरुषों के द्वारा पूजनीय बन गयी ।

इस प्रकार दोनों काव्यो मे सेठ सुदर्शन ने अखण्ड उज्जवल चरित्र का मनोहारी वर्णन है । सुदर्शनोदय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने अन्त कथाओं का नहीं बढाया है । कथा को काव्य रूप परिणत करने मे उन्हे सफलता मिली है । कवि द्वारा किये गये परिवर्तन एव परिवर्धनो से काव्य मे पर्याप्त रोचकता आ गयी है । साथ ही काव्य के नायक का स्थान भी पाठक के समक्ष ऊँचा हो गया है । हमे इन काव्यो का अध्ययन कर व्रतों के परिपालन की प्रेरणा लेकर अपने जीवन का सार्थक बनाना चाहिए ।

7 अपकारी के प्रति भी उपकार की भावना का होनी चाहिए जसे सेठ सुदर्शन का निर्दोष मित्र होने पर भी राज्य के प्रति भाव था ।

डॉ अशोककुमार जैन
प्रवक्ता जैन विद्या विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूँ (राज) 341306

❑ ❑ ❑



फैले प्रेम परस्पर जग मे मोह दूर ही रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे ।
बन कर सब "युगवीर" हृदय से देशोन्नति रत रहा करे,
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से सब दुख-सकट सहा करे ।।

लघुत्रयी में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति

डॉ भागचन्द जैन "भास्कर"

सम्कृति सस्कारो से सम्बद्ध होती है और संस्कार भारतीय सस्कृति मे कर्म का पर्यायार्थक शब्द है । साधारण तौर पर समूचा भारतीय परिवेश कर्म के आसपास ही मंडराता दिखाई देता है । इसलिए समग्र भारतीय सस्कृति को कर्मवादी सम्कृति कहने में किसी को सकोच नहीं होगा । कर्मवाद का सदर्भ आते ही अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे व्रतो के परिपालन का उत्तरदायित्व व्यक्ति पर स्वत आ जाता है पर सासारिक वासनाओं के घटाटोप से, मिथ्यात्व के दुष्टप्रभाव मे उसके इस उत्तरदायित्व पर अविवेक का कठोर आवरण चढा रहता है । फलत भौतिकता मे आपाद मग्न रहकर वह आध्यात्मिकता से कोसो दूर अपने से कर लेता है ।

जैन सम्कृति मानवतावादी सम्कृति है । उसमे प्राणिमात्र के कल्याण की प्रतिष्ठा हुई है । आचार्य श्री ज्ञानसागरजी उसी महा सस्कृति के एक परम वीतरागी दिगम्बर सन्त थे, महापथिक थे, जिन्होंने अपना समूचा जीवन उसी की आराधना मे लगा दिया और हमे ऐसा साहित्य दिया, जो पाठक को धर्म के अन्तस्तल तक पहुचने मे सहायक बनता है । पौराणिक परम्परागत कथानको का आधार लेकर आध्यात्मिक तत्त्व को आधुनिक मानस के गले उतार देना उनकी लेखनी की, प्रतिभा को बेजोड विशेषता रही है । नैषध के टक्कर मे अपने काव्य को खडा कर देने का सकल्प लेकर चलने वाले इस अजेय व्यक्तित्व ने अपने सकल्प को पूरा ही नही किया है बल्कि दस कदम आगे बढकर अपनी प्रतिभा को प्रस्तुत कर दिया है ।

प्रस्तुत शोधपत्र आचार्य श्री के मात्र लघुत्रयी- दयोदय, समुद्रदत्त (भद्रोदय) और सुदर्शनोदय- काव्यो पर आधारित है । इन काव्यो मे महाकवि ने क्रमश अहिसा, सत्य और अचोर्य तथा ब्रह्मचर्याणुव्रत को सुप्रतिष्ठत करने का सफल आयास किया है । उस आयास को पूरा करने के दौरान जो भी सास्कृतिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व आये हैं, उनका सक्षिप्त आकलन करने का प्रयत्न करेगे। सस्कृति यद्यपि एक व्यापक शब्द है, जीवन के सारे कोण उसमे समाहित हो जाते है पर यहाँ हम कतिपय ऐतिहासिक और दैनिक जीवन के साथ घटित होने वाले सास्कृतिक तत्त्वो को उद्घाटित करने तक ही अपने को सीमित रखेगे ।

ऐतिहासिक तत्त्व

मृगसेन धीवर जैसे निम्न कुलोत्पन्न व्यक्ति का जीवन सत्पुरुषो की सगति से कितना पवित्र बन सकता है इसका उदाहरण जयोदय चम्पूकाव्य का कथानक है । सीप के पेट मे गया हुआ जल का कण भी मोती बन जाता है, इस सुभाषित को चरितार्थ करने वाले इस काव्य (2 1) के द्वितीय लम्ब मे साधु के परमहस रूप-स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले प्रसगो के वैदिक साहित्य से खोज निकाला है, जो आचार्यश्री के गहन अध्ययन और चिन्तन का परिणाम है ।

जैनधर्म प्राणिमात्र का है

जैनधर्म प्राणिमात्र का है सभी का है, किसी वर्ग विशेष का नहीं है । इस तथ्य को आचार्य श्री ने अपने साहित्य मे अनेक बार स्पष्ट किया है । मृगसेन जैसा धीवर कुलोत्पन्न व्यक्ति और मेंढक जैसा साधारण प्राणी भी जब अर्हद् भक्ति से अपना कल्याण कर सकता है तो उन्हे क्या कठिनाई है जिन्हें अहिंसक परिवेश मिला है । जैनधर्म भवो की विशुद्धि पर आधारित धर्म है । वह जातिवादीय तत्त्वों को प्रश्रय नहीं देता (दयोदय 2 1) श्रीधर चाण्डाल ने भी जैनमुनि से उपदेश पाकर अपना जीवन सुधारा (वहीं 1 6-7) सत्सगति को सीप की उपमा देना भी इसी विचार को पोषित करता है (2 1) सुदर्शनोदय (४ २८-३९) मे भी यह बताया गया है कि धोबिन ने क्षुल्लिका व्रत धारण किये । णमोकार मन्त्र के प्रभाव से ग्वाला मरकर ऋषभदास सेठ का पुत्र हुआ (सुदर्शनोदय ४ २६-७)

अतिथि सत्कार

अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति का प्रमुख अग है । जैनधर्म ने तो उसे शिक्षाव्रतो के अन्तर्गत नियोजित कर उसको और अधिक महत्त्व दिया है । आचार्य कुन्दकुन्द ने चारित्र प्राभृत (गाथा २४-२५) मे चार शिक्षाव्रतो मे अतिथिपूजा' के नाम से तथा उमास्वामी समन्तभद्र जिनसेन, अमितगति वसुनन्दि ओर आशाधर ने अतिथि सविभाग नाम देकर अतिथि के प्रति अपनी विनम्रता व्यक्त की है । आचार्य श्री ने अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ वर्ग का मुख्य कर्तव्य माना है । उन्होंने उसे मुख्य सदाचार माना गुणों का उद्घाटक कहा और भगवत स्मरण करने का सर्वोत्तम ढग स्वीकार किया। इसलिए कि अतिथि देव स्वरुप है (दयोदय 4 3 4 7 10) धर्मशाला भी एक अतिथि गृह है आर उन्होंने उसे 'देवकुल' ''जैसे शब्द का प्रयोग कर एक नया चिन्तन दिया है (वही 2 29 0) अतिथि सत्कार वस्तुत एक परोपकार है ओर परोपकार करना वृक्षो के समान सत्पुरुषो का स्वभाव होता है (वहीं ,५) पडौसी की व्याख्या भी यही है कि जो अवसर आने पर सहायता करे । (वही ६ ६) ।

उत्सव

सासारिक जीवन मे अनेक ऐसे प्रसग आते हैं जब बडी प्रसन्नता पूर्वक उत्सव किये जाते हैं । जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, आदि ऐसे ही प्रसगो का उल्लेख प्राचीन साहित्य मे बहुत मिलता है । आचार्य ज्ञानसागरजी ने भी पुराख्यानों के आधार पर ऐसे ही प्रसगो का आधार लेकर उत्सवो की रुपरेखा की ओर सकेत किया है ।

पुत्र को अपनी गोद मे पाकर मा को अपार आनन्द की अनुभूति होती है, उसकी शोभावृद्धि होती है उसी तरह जिस तरह पूर्णचन्द्र से रात्रि आर हस से सरोवरी सुशोभित होती है (सुदर्श ३ ३) दत्तक पुत्र के आने पर भी उत्सव मनाया जाता था । (दयो ३ १० ०) वस्तुत माता वही है जो अच्छी तरह से पुत्र को खिला-पिलाकर उसका पालन-पोषण करे आर पिता वही है जो उसे बुरी आदतो मे न पडने दे भली बातो की शिक्षा दे इसी तरह पुत्र वही है, जो अपनी चेष्टाओ से व्यक्ति की आत्मा को प्रसन्न करे, पारस्परिक प्रेम व्यवहार करे (दयो ३ १० ११) पिता का मुख्य कार्य पुत्र को शिक्षित करना है अन्यथा वह शत्रुवत माना जाता है (दयो ४ ६)

पुत्र जन्म का शुभ समाचार पाकर उत्सव मनाया जाता था । जैन सस्कृति मे ऐसा समाचार पाकर पिता सर्वप्रथम जिन मंदिर जाकर अभिषेक पूजा पाठ करता है दान देता है और गन्धोदक को घर लाकर पुत्र दर्शन कर उसे उस पर छिडक देता है वृद्धाये मगलद्वीप जलाती है पिता सद्य जात पुत्र के नाभिनाल को कोमल यज्ञसूत्र से बाधकर उसे दूर कर देता है बाद मे बालक को स्नान कराया जाता है । (सदर्श ३ २-१४)

इस प्रसग मे बाल क्रीडा तथा लोरियो का भी उल्लेख है । माता पिता तथा धाया द्वारा बालक का परिपालन होता था । उसे सुयोग्य शिक्षक के पास शिक्षा पाने के लिए भेज दिया जाता था ।

नवयुवक मे आचार्य श्री की दृष्टि मे सुशीलत्व विनीतभाव, विद्या समवयस्कता वाक्चातुर्य आदि कुछ ऐसे गुण आवश्यक रूप मे होना चाहिए जो लडकी का पिता कन्यादान के समय सोचता है (उत्तम मुहूर्त मे विवाह कर दिया जाता था) सुदर्शनोदय ३ ४५ ४० दयोदय ४ १८ २२)गले मे वरमाला डालना ही पर्याप्त था (दयोदय ७ २३) उस समय बहुपत्नी प्रथा थी (वही ७ १५) पुत्र को माता-पिता आशीर्वाद देते थे ओर आशीर्वाद के रुप मे धान्य खीलें शिर पर रखी जाती थी ।(समुद्रदत्त चरित्र ३ १०-१५) समुद्रदत्तचरित्र (२ २७) मे लडकी की शादी लडके के घर मे भी होने का उल्लेख है । प्राचीनकाल मे यह प्रथा थी ।

कतिपय अन्य प्रसग

लघुत्रयी मे प्राप्त कुछ आर प्रसग उल्लेखनीय है धर्म की अनेक परिभाषाओ मे वस्तुस्वभाव वाली परिभाषा पर विशेष बल देना (सुदर्शना ४ ६) सात्त्विक भाव धर्म ओर तामसिक भाव अधर्म (वही ४ १२) पूर्व सस्कार वश प्रीति अप्रीति भावो का आना (वही ४ १६) जिनमूर्ति के समक्ष पुष्प चढाना (वही ४ २१,८ २८), जिन भक्ति से रोगमुक्ति

तथा भगवद् भक्ति का भावपूर्ण वर्णन (पंचम लम्ब) सहकारिता भावना का प्रसार (७ ३)तत्त्वार्थसूत्र, भगवती अराधना जैसे ग्रन्थो का उल्लेख (७०१-४८)शान्तिसागरजी का आदरपूर्ण उल्लेख (७०१-४)विश्वलोचनकोश (१ ३२) अंग्रेजों के जाने से कायरता का दूर हो जाना (५ १-३), गाय का दूध सर्वोत्तम (६ ११), परिवारो मे कामुकता का दृश्य (६ १८-२०), पचादम्बरफल तथा द्विदल की व्यवस्था (९ ५७-५८) नागदेवता मन्दिर (दयोदय, ५ १०0), सत्य प्रतिष्ठा (१ ८-१0) गाय प्रतिष्ठा (१ १९), पुत्र स्वयं धनार्जन करे (१ ३१-३४), आजीविका हीन गृहस्थ हीन होता है, अपना पेट पालने के लिए दूसरो का मुह ताकना कुत्ते की भांति निंद्य है (३ ३३-३४), राजा के गुण-भलाई दानादि (२ १५-१६), धनार्जनार्थ विदेशगमन (३ ४) पिहिताश्रव मुनि (५ ३१) गंगानदी की पवित्रता (१ ७) मालवा देश का वशिष्ट्य (दयोदय१ १.0) - प्राकृतिक सौन्दर्य कृषि, पचाग के रूप मे पशुपालन, उज्जयिनी (१ १0) सिप्रा नदी (१ २१ 0) शिशपा जैसी छोटी बस्ती मे जिनमंदिर का होना और वहा जिन मुनि का विचरण (१ २१ 0), चम्पा नगरी का सौन्दर्य (सुदर्शनोदय), (१ २४-३७), कांग्रेस का जोर होने पर अंग्रेजो का हमारी मातृभूमि मे वापिस चला जाना (दयोदय ३ ८) अहिंसा प्रतिष्ठा और स्वसंरक्षिणी हिंसा को विहित मानना (दयोदय २ ४) आदि ।

लघुत्रयी काव्य वस्तुत कथानको का संक्षिप्त विवरण हैं । उनमे कवि ने अपनी कल्पनाओं का अधिक सहारा नहीं लिया है विषय विस्तार भी नहीं हो सका । इसलिए विषय सामग्री भी अधिक नहीं मिलती । फिर भी हमारी संस्कृति की सामान्य रूपरेखा अंकन उनमे हुआ ही है जो अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है ।

डॉ भागचन्द जैन "भास्कर"
न्यू एक्सटेंशन एरिया
सदर नागपुर 440001

❑ ❑ ❑

समुद्रदत्त चरित्र काव्य में वर्णित श्रावकाचार

डॉ फूलचन्द जैन प्रेमी

प्राचीन जैन साहित्य की समद्ध परम्परा का सफलता से निर्वाह करने वाले बीसवीं सदी के दिगम्बर जनाचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का योगदान महनीय है । उन्होंने जैन धर्म और आध्यात्मिक क्षेत्र में तो अपने सत्साहित्य से इसे गौरवान्वित किया ही है सस्कृत काव्य साहित्य का जयोदय दयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय और भद्रोदय (समुद्रदत्त चरित्र) जैसे महान् काव्य ग्रन्थो की रचना करके जैन जगत् का नाम ही गौरवान्वित नहीं किया अपितु संस्कृत भाषा पर अपना एकाधिकार समझने वालो को भी आश्चर्य मे डालकर संस्कृत जैन वाड्मय की महत्ता समझने के लिए भी बाध्य किया।

सादा जीवन उच्च विचार की उक्ति को चरितार्थ करने वाले वाणीभूषण बालब्रह्मचारी प भूरामल जी शास्त्री ने *अपने इस मानव जीवन को सफल बनाते हुए क्रमश क्षुल्लकावस्था मे ज्ञानभूषण और मुनि तथा आचार्य अवस्था मे* ज्ञानसागर नाम से प्रसिद्ध आचार्यवर जैन-धर्म दर्शन के एव सिद्धान्तो के गहन अध्येता ही नही अपितु उन्हे अपने जीवन में चरितार्थ करने वाले महात्माओ मे अग्रणी थे। इन्होंने अपनी तीन अवस्थाओ मे अनेक मौलिक एवं अनूदित कृतियो द्वारा वर्तमान और भावी पीढी का महान् उपकार किया है ।

सम्पूर्ण सस्कृत वाड्मय मे विशेषकर जैन सस्कृत साहित्य मे बालकोपयोगी काव्य साहित्य की बहुत बडी कमी थी । जिसकी पूर्ति उन्होंने समुद्रदत्त चरित्र 'अपरनाम' भद्रोदय नामक काव्य लिखकर की । यह उनकी एक अन्यतम कृति है जिसे उन्होंने क्षुल्लक अवस्था मे ज्ञानभूषण लेखक के रूप मे पूर्ण की थी । उन्होने इस ग्रन्थ की अन्त्य प्रशस्ति मे लिखा है

ज्ञानभूषण सूक्तेन, चैकशाटकधारिणा ''
तेन भूरामलेनेदमुदित भद्रवृत्तकम् ।
भद्र दिशतु लोकेऽस्मिन्यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥6॥

कुल नौ सर्ग और ३४५ श्लोको मे पूर्ण इस काव्य कृति मे समुद्रदत्त (भद्रदत्त) के अनेक भवो से युक्त पवित्र जीवन का और उनके द्वारा सत्यधर्म की रक्षार्थ किये गये संघर्ष का वर्णन है। नीति और सूक्तियो के परिपूर्ण इस कृति की तुलना हम वादीभसिह सूरि कृत 'क्षत्रचूडामणि' नामक प्राचीन काव्य ग्रन्थ से कर सकते है । इसमे जैन आचार का विस्तृत एव स्वतत्र विवेचन न करके उसके सारभूत सूत्रो का यत्र-तत्र सर्वत्र विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

समुद्रदत्त चरित्रकार महाकवि ने प्रस्तुत काव्य की कथा का मूलस्रोत आचार्य गुणभद्राचार्य विरचित महापुराण और इसका उद्देश्य बतलाते हुए कहा है कि -

जिनके द्वारा महापुराण का जन्म हुआ है उन गुणभद्राचार्य की वाणी गगानदी के समान है । वह वाणी संसारी जीव के लिए पवित्र मानी गई है । अगाध जल आदि गुणो से युक्त है और जो कि बहुत पहले से चली आई हुई है । मेरी यह सत्य सम्पत् रूप रचना भी गगा से निकली नहर के समान महापुराण से उद्भूत है, जिसका सत्य की प्रतिष्ठा ही एक मात्र प्रयोजन है, जिस प्रकार धान्य की फसल को बढाना नहर का प्रयोजन है । (समुद्र १/७)

आगे कवि कहते हैं -

हे सुन्दर अन्तरङ्ग वाले पाठको हमारी इस कृति मे सत्य बोलने वाले का बोलबाला और झूठ बोलने वाले का मुंह काला जिस प्रकार हुआ, उन दोनो बातों का स्पष्टीकरण इस काव्य मे दर्पण की तरह दृष्टिगत होगा । (समुद्र १/२८)

जीवन मे आचार का महत्त्व

मनुष्य की श्रेष्ठता दीर्घ आयुष्य के कारण नहीं, अपितु उसे प्राप्त हुई मानवता के कारण है और वह मानवता जीवन की शुद्धि पर अवलबित है । चित्त की निर्मलता, कर्मों की परिशुद्धि सद्गुणो की पूर्णता, सदैव सजगता, विवेक की सूक्ष्मता आदि आत्मोत्कर्ष के साधन है और इन्हीं मे श्रेष्ठ मानवता की उपलब्धि होती है ।

धर्म और उसके आचार का वह स्वरूप श्रेष्ठ है, जो मानवीय दृष्टिकोण को सबसे ज्यादा अहमियत देता है और जिसमे प्रत्येक मानव के लिए उत्स की खोज की जाती है । धर्म को विश्व धर्म के रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति आचार एव विचार शुद्धि एव उसके समन्वय को प्रधानता दे । जैन आचार मे वे सब विशिष्टतायें हैं, जिन्हें विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अपना सकता है तथा उससे वह इस जीवन के परम लक्ष्य को पा सकता है ।

श्रमण संस्कृति का आचार पक्ष प्रारम्भ से ही उच्च आदर्श की पराकाष्ठा का प्रतीक रहा है । श्रम और शम (शान्ति) के मूल्यो की स्थापना के लिए सदैव सजग यह पुरुषार्थ प्रधान सस्कृति है । उसने भारतीय सस्कृति के विविध क्षेत्रो के विकास में और मूल्यो की रक्षा मे तो अह भूमिका का निर्वाह किया ही है साथ ही देशभक्ति में भी सदव अग्रणी रही है ।

जन धर्म मे आचार मार्ग दो पक्षो मे विभक्त है श्रावकाचार और श्रमणाचार । आध्यात्मिक विकास की पूर्णता मे श्रावक का आचार पूर्वार्ध है और श्रमणाचार उत्तरार्ध । श्रमण धर्म की नीव श्रावकधर्म पर मजबूत होती ह । श्रावक त्याग पूर्वक भाग के समन्वय को ध्यान मे रखकर आध्यात्मिक विकास मे आगे बढता है । नैतिक मूल्यो का प्रचार प्रसार करते हुए श्रमण बिना किसी भेदभाव के समाज और राष्ट्र के चरित्र निर्माण मे प्रशस्त भूमिका का निर्वाह करते ह वही श्रावक अपने सुसस्कारो और शुभ सकल्पो से देश का सच्चा नागरिक बनकर सस्कृति राष्ट्र और समाज मे महान योग कर सकते है ।

समुद्रदत्त चरित्र मे श्रावकाचार और व्रतो की महत्ता

श्रावकाचार मे अहिसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह - इन पाच व्रतो को अणुव्रत के रूप मे धारण करना महाव्रतो के धारण की भूमिका के लिए प्रस्थान माना जाता है । इसीलिए प्रस्तुत कवि ने सर्वप्रथम व्रत धारण की महत्ता कही है -

विना व्रतेर्जीवनमस्त्यपार्थकम्- (४/३२) अर्थात् व्रत धारण किये बिना यह नर जन्म व्यर्थ ही माना जाता है ।

जहा तक पाच अणुव्रतो की बात है उनका स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ मे कम ह किन्तु जिस काव्य मे चतुर्विध सघ अर्थात मुनि, आर्यिका श्रावक और श्राविकाओ को अनेक पात्रो के रूप मे अनेक भवो तक का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया हो वहाँ स्वाभाविक रूप मे पाच अणुव्रतो का विस्तृत और स्पष्ट विवेचन भले ही न हो किन्तु उनकी गन्ध तो रहती ही है ।

समुद्रदत्त चरित्र काव्य में पचम सर्ग मे आर्यिका रामदत्ता पोदनपुर के राजा पूर्णचन्द्र को जब गृहस्थधर्म रूप नीतिसूक्तो का उपदेश करती है, तो उस राजा का चित्त उसी प्रकार प्रसन्न हो जाता ह जैसे सूर्य की प्रभा के तेज से कमल खिल जाता है (५/१०) उस राजा के अन्तर मे अहिंसाणुव्रत की भावना इतनी समाहित हो जाती है कि - वह निरपराधी का दण्ड मिलने की कल्पना से भी भयभीत था । (वही - ५/१३)

सत्याणुव्रत के अन्तर्गत सत्य के विषय मे इस काव्य मे कहा है कि सत्य के द्वारा ससार में इज्जत होती है, सत्य मे लक्ष्मी वृद्धि होती ह सत्य मे ही मनुष्य के वचन की सफलता है सत्य महान् वस्तु है तथा असत्य बोलने

से स्वयं का घात होता है और वह नरक मे जाता है तथा असत्य भाषी का कोई विश्वास भी नहीं करता । अत कवि कहते हैं कि हे माता तुम कभी भी असत्य भाषी को जन्म मत देना ।[1]

वस्तुत समुद्रदत्त चरित्र समुद्रदत्त और सत्यघोष के माध्यम से सत्य की विजय और असत्य की पराजय के आदर्श वाक्य को चरितार्थ करने वाला काव्य है । इसलिए इसमे सत्याणुव्रत का यत्र तत्र विवेचन मिलना स्वाभाविक ही है ।

इसी तरह समुद्रदत्त अस्तेय (अचौर्य) व्रत के पालन की वह पराकाष्ठा है, क्योकि अपने धनी पिता के भी धन के उपभोग के प्रति भी वह स्वाभिमान के कारण विरक्त है और स्वय श्रम पूर्वक आजीविका हेतु रत्नद्वीप जाता है। भद्रमित्र का मानना है कि जो व्यक्ति सिह सदृश साहसवान् है, उसे स्वय अपने हाथो से अपनी आजीविका करना चाहिए। दूसरे के आश्रित न रहे । क्योंकि जा व्यक्ति अपना पेट भरने के लिए दूसरे के आश्रित न रहे । क्योंकि जा व्यक्ति अपना पेट भरने के लिए दूसरो का मुह ताका करता है वह दुनियाँ मे श्वान की भाति निन्द्य माना जाता है ।[2]

जहा तक चोथे ब्रह्मचर्याणुव्रत की बात है, तो इस काव्य मे चक्रायुध राजा जब अपराजित मुनिराज जो कि ससारपक्षीय पिता थे उनसे धर्मोपदेश, सुनकर ब्रह्मचर्य अणुव्रत ही क्या सभी व्रत धारण करता है ।

परिग्रह परिमाण व्रत के विवेचन मे आवश्यकता से अधिक सग्रह को दु ख का कारण बतलाया है ।[3] इतना ही नहीं इस काव्य मे कवि ने बाह्य परिग्रह की उपेक्षा अहकार और ममकार रूप प्रबल आन्तरिक परिग्रह पर अधिक बल दिया है । उन्होंने कहा है -

यद्यपि कर्मों का आना तो भोगो मे होता है परन्तु उनको आत्मा के साथ एकमेक करके रखना यह अहकार और ममकार रूप परिग्रह का कार्य है । अत उन कर्मो का नाश करने के लिए मनुष्य को परिग्रह का त्याग करना चाहिए ।[4]

कवि ने आगे ममकार के चार भेद बतलाये । प्रथम जिससे यह जीव अन्याय का पक्ष लेकर न खाने योग्य चीजो को भी खाने लगता है । दूसरा वह असत की ओर कभी मन न जावे और सच बोलना, सबका भला करना, किसी का भी बिगाड ना करना आदि अच्छे कार्यों मे सलग्न रहे । तीसरा ममकार वह जिससे सत्यप्रवृत्ति की भी व्यग्रता छोडकर स्वस्थ (आत्मावलबी) नहीं बन सकता । चोथा ममकार वह आत्मावलम्बी होकर भी उस पर दृढता के साथ नहीं रह सकता । इन चारो ही ममकार का उल्लघन कर पूर्ण स्वस्थ एव कृत-कृत्य हो जाता है तो दिव्य ज्ञान को प्राप्त होते हुए अखण्ड सतोष को प्राप्त कर लेता है ।[5]

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य मे प्रकीर्णक रूप मे पांच अणुव्रतो का सुन्दर विवेचन मिलता है ।

श्रावक के षटकर्म

श्रावकाचार मे श्रावक के आधारभूत दैनिक षट्कर्मों का और मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ इन चार भावनाओ का अच्छा विवेचन किया गया है प्रथमत यहा देवपूजा, गुरु उपासना स्वाध्याय, सयम, तप और दान श्रावक के इन षट्कर्मों का विवेचन प्रस्तुत है

1 देवपूजा- प्रत्येक श्रावक का यह प्रथम कर्तव्य है कि सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु की नित्य पूजा-भक्ति करे । प्रस्तुत ग्रन्थ मे शुभोपयोग की चर्चा के प्रसग मे चक्रायुध राजा के पिता अपराजित मुनिराज स्वय वैराग्य सम्पन्न एव दीक्षा के लिये उद्यत ससारपक्षीय पुत्र राजा चक्रायुध को समझाते हुए कहते हैं कि इस अपने शरीर के द्वारा सच्चे देवो की पूजन-अर्चन आदि करना शुभयोग कहलाता है जो कि शुभोपयोग रूप होने से प्रशस्त पुण्य की

---

1 समुद्रदत्त चारित्र 1/8 2 वही 2/37 3 वही ९/८ 4 वही 8/44 5 वही 8/168 167

वृद्धि करने वाला है ।[1] इतना ही नहीं अपितु अशुभोपयोगी जीव भी यदि कहीं शुभपयोग कर लेता है तो उसमे जो पुण्यबंध होता है, उसके द्वारा वह भोगों को प्राप्त जरूर करता है । परन्तु अपनी दुराशा के वश होकर उसमें लीन होता हुआ वह आगे के लिए पाप का उपार्जन करके बुरी तरह अध पतन को प्राप्त होता है ।[2]

2 **गुरूपास्ति**- समस्त परिग्रह रहित यथाजात मुद्राधारी निर्ग्रन्थ मुनि सच्चे गुरु कहलाते है । इनका यथोचित सम्मान वैयावृत्ति, भक्ति करना गुरूपास्ति है । समुद्रदत्तचरित मे कहा है, इति तमोऽपगमात् स (८/२६) अर्थात् अज्ञान का नाश हो जाने से गुरुदेव की वदना के इच्छुक उस चक्रायुध राजा ने परम तपस्वी मुनिराज के, जो कि ससार के प्रत्येक प्राणी को प्रसन्न करने वाले हैं ऐसे मुनिराज के समीप पहुँचा और बोला- विनतिरस्तु सते परमर्हतेऽपि मम भो करमभृतवर्हते (७/१७)अर्थात् उन सज्जनो के शिरोमणि अर्हन्तदेव तथा मयूर पिच्छिका धारी साधु को मेरा नमन हो । इस तरह इसमे गुरूपास्ति के अनेक सन्दर्भ हैं ।

3 **स्वाध्याय** - आत्मकल्याण हेतु जिनवाणी रूप सत्साहित्य का नित्य पढना-पढाना सुनना- सुनाना, पाठ चर्चा चिन्तवन आदि करना स्वाध्याय है । यह आत्मविकास हेतु श्रावक का नित्य कर्तव्य है । प्रस्तुतकाव्य मे भद्रमित्र का जीव चक्रायुध राजा जब मुनिदीक्षा धारण कर लेता है तो "प्रायश्चित्त चकारेष ध्याने स्वाध्ययने रत (९/१५) अर्थात् वह सदा अपने मन को ध्यान और स्वाध्याय मे ही लगाये रखता है ।

4 **संयम**- समस्त जीवो की रक्षा हेतु प्रवृत्ति और अपनी समस्त इन्द्रियों एव इच्छाओ को वश मे रखने वाला सयम का पालन आत्मकल्याण हेतु प्रत्येक श्रावक को आवश्यक है । प्रस्तुत काव्य मे अनेक मुनिराज आदि इसका उपदेश देते हुए स्व-पर कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं । आर्यिका रामदत्ता कहती है कि यह ससारी प्राणी भोगो मे फसकर नरक मे पडता है कष्टकारी पशु पर्याय मे पाता है, कभी भाग्य से स्वर्ग भी गया तो वहा पूर्वोपार्जित कर्मों को भोगकर अन्त मे बिना पानी के सूखे हुए पेड की तरह धडाम से नीचे गिरता है ।[3] आगे आर्यिका रामदत्ता जी पाचो इन्द्रिया मे प्रत्येक के भोग का उदाहरण देती हुई कहती हैं कि

हे वत्स । हम देखते है कि हाथी, मछली भौंरा पतग और सर्प ये सब स्पर्शनादिक एक-एक इन्द्रियो के वशीभूत होकर ही जब अपना इस प्रकार नाश कर लेते है । तो पाचो ही इन्द्रियो के विषयो का भोगने लगे रहने वाले इस मनुष्य की क्या दशा होगी ? (स च ५/७)

5 **तप**- इच्छाओं का निरोध तप है । इसके मुख्यत दो भेद है - बाह्य और आभ्यन्तर । अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान रस परित्याग कायक्लेश और विविक्तशय्यासन ये छह बाह्यतप हैं और प्रायश्चित्त विनय वयावृत्त्य स्वाध्याय ध्यान, और व्युत्सर्ग ये छह आभ्यन्तर तप हैं । ये बारह तप जहाँ मुनियों के उत्तरगुणो मे हैं वहीं श्रावको का भी इनके यथाशक्ति पालन का विधान है, ताकि वह इनके अभ्यासपूर्वक मुनि धर्म धारण कर सके । प्रस्तुत काव्य में भी यत्र-तत्र इनका विवेचन तो है ही सिंहचन्द्र मुनिराज वर्षा योग धारण करते हुए अत्यन्त दुष्कर तप करते हुए वर्णित है। ध्यान तप का तो इसमे विशेष विवेचन किया गया है ।[4] कहा है आत्मा के उपयोग मे एकाग्रता का होना, किसी एक ध्येय वस्तु पर केन्द्रित करके उसमे निश्चलता आ जाना ध्यान कहलाता है ।

धर्मध्यान की महत्ता बतलाते हुए कहा है- धर्मध्यान का अभ्यास करते-करते अपने मन, वचन, काय की क्रिया को अच्छी तरह से अपने वश में करके अपने उपयोग को ओर सब तरफ से हटाकर बेलाग बनाता हुआ यह आत्मा अपने मन के द्वारा अपने आपका ही विचार करने लग जाता है और साहस के द्वारा उसमे ऐसा अडोलपना प्राप्त कर लेता है कि ध्यान ध्याता और ध्येय - इन तीनो मे कोई भेद नहीं रह जाता है, बस इस प्रकार की दृढता के साथ उसी धर्मध्यान को शुक्लध्यान के रूप मे ढाल लेता है। परन्तु ऐसी अवस्था को प्राप्त करने वाला, यदि हो तो, एक इस मनुष्य पर्याय मे ही हो सकता है और किसी में नहीं ।[5]

---

1 समुद्रदत्त चरित्र ३० 2 वही ८/८९ 3 समुद्रदत्त चरित्र ५/९
4 समुद्रदत्त चरित्र ८/३६ 5 वही ८/४०

6 दान- श्रावकों के छह कर्तव्यो में दान की महत्ता को विशेष इसलिए माना है कि चूँकि चतुर्विध सघ के सचालन का आधार श्रावक संघ माना गया है । अत औषधि, शास्त्र, अभय और आहार- इन चारो दान सत्पात्रो तथा दीन हीन और दु खी जीवों के प्रति करुणा करना आवश्यक है इससे उसके परिग्रह परिमाण व्रत का भी पालन होता रहता है । समुद्रदत्त चरित्र में भी "दानार्चन सत्क्रियादि (८/२९) कहकर दान को सज्जनों का सत्कार माना है ।

दान से त्याग धर्म भी प्रवर्धमान होता रहता है । प्रस्तुत काव्य मे कहा है यह जीव उस पिजडे में बद हुए तोते के समान या भूगडो के (चने) घडे पर जाकर भूगडो को ही ग्रहण करने से पकडे जाने वाले बन्दर के समान अन्त में त्याग करने से ही आपत्ति से मुक्त होता है' - अत धन को सदा अपने काम मे लाते हुए ओरो की भलाई के लिए खर्च करना अच्छी रीति है ।[2]

इस प्रकार श्रावक के षट्कर्मों का दिग्दर्शन प्रस्तुत ग्रन्थ मे कराया गया है ।

चार भावनाये

श्रावकाचार के प्रसंग मे मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ- इन चार भावनाओ को सांसारिक सुख शान्ति और आत्मिक उत्कर्ष का हेतु माना जाता है । इसीलिए जैनाचार्य अमितगति ने कहा है -

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोद क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

इन्हीं चार भावनाओ की यत्र तत्र अभिव्यक्ति भी इस काव्य की विशेषता है ।

इन चारो भावना का हार्द प्रगट करते हुए क्षुल्लक ज्ञानभूषण जी मार्मिक शब्दो में कहते हैं कि-

जिसके अनुशीलन से मेरी प्राणी मात्र मे समानबुद्धि हो जावे, सबको मैं अपना मित्र समझने लग जाऊ । हाँ, मेरे मे जो अधिक गुणवान् हो उनमे मेरा आदरभाव जरूर रहे ताकि आगे बढने की चेष्टा करता रहूँ । यह प्रमोद भावना है । जो पिछडे हुए हो पाप के योग मे भूल रहे हो उनके प्रति करुणा भाव बना रहे । उन्हे मैं प्रोत्साहन देकर उन्नति के मार्ग पर चलाने मे सहायक बन सकूँ । यह कारुण्य भावना है । इसमे लोक कल्याण अर्थात् जनमगल की भावना निहित होती है । चौथी माध्यस्थ भावना के लिए कहा है "दुरितयोगिषु चेतस आर्द्रता अर्थात् जो लोग मेरे प्रतिकूल है, जिनकी वृत्ति मुझमे विपरीत है, उनके प्रति मेरे मन में आर्द्रता हो, तटस्थ भाव हो । (स च ७/१६)

माध्यस्थभावना की और भी महत्ता बतलाते हुए कवि कहते हैं -

ससार की भली ओर बुरी वस्तुओ को अच्छा बुरा मानकर उनमें राग और द्वेष न करे अपने विचार मे मध्यस्थ होकर उदासीन बना रहे एव अपने मन वचन और काम की चेष्टा को कम से कम करते हुए अपने उपयोग को भी निर्मल से निर्मल बनाते हुए उत्तरोत्तर कषायो से रहित होता चला जावे । इसी का नाम प्रयत्न करना है ओर यही इस आत्मा को सफल बनाने वाला होता है । (स च ८/१८) .

इन चार भावनाओ के हार्द के गुणो से युक्त इस काव्य मे इसी तरह अनेक प्रयोग मिलते है ।

इस प्रकार समुद्रदत्त चरित्र में श्रावकाचार का प्रतिपादन किया गया है, जो प्रत्येक श्रावक को निरन्तर आत्मोत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

डॉ फूलचन्द जैन, प्रेमी
अध्यक्ष जन दर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी -2

❑ ❑ ❑

1 वही ४/८ 2 वही ६/८

'दयोदय' का काव्यगत वैशिष्ट्य

डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय

इस युग के अप्रतिम सस्कृत कवि युगीन चेतना के सवाहक चारित्रचक्रवर्ती आचार्यप्रवर पूज्य श्री ज्ञानसागरजी प्रणीत सस्कृत-रचनाओ मे 'दयोदय' का अपना विशिष्ट महत्त्व है, यह तथ्य प्रकृत कविवरेण्य की संस्कृत कृतियों का अवगाहन कर चुके व्यक्तियो के लिए अविदित नहीं है । सस्कृत सहित समस्त जैन वाङ्मय के विश्रुत विद्वानों की इस गोष्ठी में मै इसी काव्य-कृति के काव्यत्व से सम्बद्ध कतिपय पहलुओ पर अपने विचार प्रकट करने का प्रयास करूँगा। ये पहलू या पक्ष हैं- 1 दयोदय का काव्य प्रकारत्व 2 नामकरण 3 कथानक 4 भावपक्ष और 5 अभिव्यक्ति पक्ष । यहा इसी क्रम से इनको लिया जा रहा है ।

१ 'दयोदय' का काव्य प्रकारत्व

'दयोदय ' के वर्तमान द्वितीय सस्करण की प्रथम सर्ग के ऊपर विद्यमान 'दयोदय चम्पू' इस काव्य शीर्षक और प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा षष्ठ लम्बो के अन्तिम पुष्पिका वाक्यों मे आने वाले - 'दयोदय पदे चम्पू प्रबन्धे - 'जैसे पद सन्दर्भों से यह विदित होता है कि कविप्रवर ने इसका प्रणयन चम्पू-काव्य के रूप मे किया है । चम्पू मध्यकालीन संस्कृत काव्यधारा की वह विशिष्ट विधा है, जिसमें निम्नलिखित सस्कृत काव्य शास्त्रियो के समुचित लक्षणो के अनुसार विशेषताओ का होना आवश्यक होता है-

1 इसमें कथानक महाकाव्यो और नाटको के समान होता है ।
2 कथानक का सन्धियों और सध्यङ्गो मे विभाजन होता है ।
3 पात्रो का सयोजन भी महाकाव्यादिवत् होता है ।
4 इसकी रचना केवल सस्कृत मे होती है ।
5 इसमे गद्य और पद्य का लगभग समानुपाती प्रतिनिधित्व होता है । 'विरुद' भी गद्य पद्यात्मक रचना होती है । किन्तु उसमे केवल राजा की स्तुति होती है, इसलिए यह उससे भिन्न होती है । दृश्यकाव्य न होने से नाटकादि दृश्यकाव्यों से तथा पद्य का प्रचुर प्रयोग होने से गद्यकाव्यो से भी भिन्न होता है ।
6 इसके कथानक का अवान्तर विभाजन उच्छ्वास आश्वासो या लम्ब आदि मे होता है, सर्गों मे नहीं ।
7 इसके प्रत्येक आश्वास के अन्त मे कवि के नाम का प्राय अंकन होता है ।
8 भावपक्ष और कलापक्ष नियोजन कभी महाकाव्यवत् और गद्य काव्यवत् होता है आदि ।

इस कसौटी पर जब हम प्रस्तुत कृति को कसते हैं तो वह उस पर खरी उतरती है क्योंकि इसकी कथानक-योजना, कथानक का विभाजन, पात्र-योजना महाकाव्यादिवत् है । इसकी रचना केवल संस्कृत में नही और वह भी गद्य तथा पद्य दोनो मे हुई है । अवान्तर भागों का विभाजन लम्बो में हुआ है तथा प्रत्येक लम्ब के अन्त मे कवि के नाम का अकन हुआ है । भावादि का नियोजन भी महाकाव्यादिवत् हुआ है ।

हिन्दी में इस प्रकार की रचना मेथली शरण गुप्त की 'यशोधरा' है ।

२. नाम

प्रस्तुत कृति का नाम, जैसा कि उसके शीर्षक और तत्तत् लम्बो की पुष्पिकाओ से स्पष्ट है 'दयोदय' है । 'दयोदय' नाम क्यों रखा ? ~~इसका कारण यह~~ प्रतीत होता है कि काव्य के प्रथम लम्ब के छठे श्लोक में कवि ने 'दयोदय '

शब्द का प्रयोग, सम्भवतः छन्द के अनुरोध पर किया था 'येषा सद्‌कितो वीक्षे धीवरस्य दयोदयम्।' अपनी कोमलता, सक्षेप और शाब्दिक चमत्कार के कारण शब्द कवि को इतना भाया कि काव्य का नाम ही उस पर रख दिया ।

वैसे, दया एक ऐसा व्यापक भाव है, जिसके कारण ही अहिंसा जैसी वृत्ति हृदय मे उदित होती है । इस प्रकार दोनों में कारण-कार्य का सम्बन्ध है और कवि परम्परा अनादिकाल से कारण-कार्य में प्राय· अभेद मान कर दोनो में से किसी एक का व्यवहार भी करती रही है । इस दृष्टि से इसका 'दयोदय, नाम, मूलभावना से दूर नहीं है । इस ग्रन्थ का नाम अहिंसोदय भी रखा जा सकता था । अस्तु।

३ कथानक

प्रबन्धात्मक काव्यो में विषय वस्तु के आधार रूप में किसी कथानक का निबन्ध अत्यन्त आवश्यक होता है। कथानक की सुन्दरता और लोकप्रियता कभी-कभी काव्य के अन्य तत्त्वो की अपेक्षा काव्य की ग्राह्यता का अधिक कारण बनता है यह तथ्य 'मैथिलीशरण गुप्त की 'राम तुम्हारा चरित स्वय ही काव्य है । कोई कवि बन जाय सहज सभाव्य हैं, 'जेमी उक्तियो मे प्रमाणित ही हे । मभवत इसी कारण प्रस्तुत कवि ने भी अपनी काव्य सृष्टि के मुख्य प्रयोजन अहिसा के महत्त्व को उद्घाटित कर लोगो के मानस मे व्याप्त मलो अपसारण कर राष्ट्र को निष्कण्टक बनाने हेतु मृगसेन धीवर और घण्टा धीवरी की उस प्रसिद्ध कहानी को लिया है जो आचार्य हरिषेण के 'बृहत्कथाकोष', सोमदेव सूरि के यशस्तिलक चम्पू, और 'नेमिदत्त ब्रह्मचारी के 'आराधनाकथाकोष' जैसे विश्रुत ग्रन्थो मे पाई जाती है। कवि ने कथा के इस परम्परा प्राप्तत्व को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है और अपने काव्य मे उसकी उपात्त मात्रा को नदी के विस्तृत जलप्रवाह से घडे मे लाए गए जल के तुल्य कहा है (दयो 1/7) ।

नदी और घट की इस तुलना से कवि ने यह सूचित किया है कि परम्परा की अति विस्तृत कथा से वह उसके कुछ सारभूत तत्त्वो का ही ग्रहण कर रहा है, जो उसके यशस्तिलकचम्पू आदि प्राचीन चम्पूकाव्यो की तुलना मे पर्याप्त लघु प्रस्तुत काव्य का कथानक बनकर उसकी लक्ष्यसिद्धि में सहायक बन सकें ।

उज्जयिनी के मृगसेन धीवर ओर घण्टा धीवरी किन परिस्थितियो मे दूसरे भव मे सोमदत्त और विषा के रूप में जन्मे, किस प्रकार उनका विवाह हुआ, किस प्रकार सोमदत्त विषा के पिता गुणपाल के द्वारा अनेकश प्रयुक्त मारण प्रयोगो मे बाल-बाल बचा किस प्रकार राजकुमारी के साथ उसका दूसरा विवाह हुआ और किस प्रकार मुनिराज सुकेतु के उपदेश से तपस्या मे निरत होकर उन सबने स्वर्गादि प्राप्त किए । इस कथानक को जिस कोशल से कवि ने सात लम्बो मे विभक्त किया हे ओर जिस प्रकार तत्तत् लम्बो के भीतर आने वाले विषयो का उसने चित्रण किया है, उसके लिए उसकी जितनी प्रशसा की जाए कम हे ।

किन्तु इस सन्दर्भ में दो बाते विचारणीय हैं । पहले हम सातवें लम्ब के कथानक की एक अत्यन्त साधारण सी त्रुटि को लेते हैं । लम्ब के अन्त से कुछ पहले राजकुमारी को विषा और सोमदत्त के साथ मुनिराज सुकेतु का गुणगान करते हुए दिखाया गया है जैसे -

अथ प्रसक्तिमवाप्य सोमो विषा राजकुमारी च त्रयोऽपि गायन्ति -'जयजय ऋषिराज इति ॥

इसके पश्चात् सुकेतु मुनि का त्यागपरक उपदेश होता है जिससे प्रभावित हो सोमदत्त तो तपस्या करके सवार्थसिद्धि को प्राप्त करता है तथा विषा और वसन्तसेना वेश्या जो साधु शिरोमणि को वहा देखकर सुवृत्तभाव का सम्पादन करने को उद्यत हो गयी थी (वसन्तसेना वेश्यापि तत्र वसन्तं साधुशिरोमणि दृष्ट्वा सुवृत्तभावं सम्पादयितुमुद्यताऽभूत् (पृ 124) दोनों स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ।

किन्तु राजकुमारी यहां काव्य के दृश्य फलक पर कहीं दृष्टिगत नहीं होती । उसका क्या हुआ ? यहाँ कवि से कोई भूल हो गयी है या अन्य कोई शास्त्रीय रहस्य है ? इस पर विचार किया जाना चाहिए ।

दूसरी बात दूसरे लम्ब से मम्बद्ध है । वहाँ घण्टा धीवरी के द्वारा देर से आने का कारण पूछने पर मृगसेन एक महात्मा से अपनी भेट को उसका कारण बताता है । इसी प्रसंग में वह अथर्ववेद से सम्बद्ध जाबालोपनिषद् से 'परमहंस' से सम्बद्ध एक लम्बे अनुच्छेद का करते हुए बताता है कि वह महात्मा इम अनुच्छेद मे बताए गए परमहंस के तुल्य हैं । इस बीच धीवरी के द्वारा उसे वेद बाह्य कहे जाने पर वह उसका निगकरण करने के लिए विभिन्न वैदिक सहिताओ और पुराणो के वाक्यों को अक्षरश उद्धृत करके जैनधर्म की प्राचीनता के साथ-साथ दिगम्बरत्व, अर्हत्, अरिष्टनेमि, नेमिनाथ और ऋषभनाथ उन ग्रन्थो के द्वारा की प्रशसा का वर्णन करता है । शास्त्रोद्धरण का यह प्रसङ्ग कितना बडा है, इसका अनुमान इसी बात को होता है कि इसमे 17 ग्रन्थों मे 21 अवतरण आए हैं । प्रसिद्ध काव्यशास्त्री भामह के-

'न तज् ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला ।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान् कवे ॥'

इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी विषय काव्य मे प्रवेश पा सकता है ।

४ भावपक्ष

काव्य का भावपक्ष अत्यन्त समृद्ध है । कवि को कथानक से सम्बद्ध प्रत्येक पात्र की मन स्थिति और मार्मिक स्थलो की सम्यक् जानकारी है, इसलिए तत्तत् पात्रोकी की तत्तत् स्थितियो के कतिपय मनोहारी चित्र अकित करने मे पूर्णतया सफल रहा है । जिन्हे कतिपय रसो के उदाहरणो मे समझा जा सकता है

1 **शान्तरस** - काव्य का प्रधान रस शान्त है, जिसका प्रारम्भ प्रथम लम्बस्थ दिगम्बर मुनि की -
'अहिसा भूताना जगति विदित ब्रह्म परमम्' मे तथा पर्यवसान सातवे लम्ब के

'अहिसाया फलं विश्वसमक्षमिति वर्तते ।
यदास्वाद्यामरत्व द्रागनुयान्तु मनीषिण ॥(7/39)

से होता है । अहिसा जैन शासन के पञ्च महाव्रतो मे अन्यतम है, जिसका सम्यक् पालन आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित करा कर उसे ससार से ऐकान्तिक और आत्यन्तिक मुक्ति दिलाने मे समर्थ होता है। इस प्रकार पूरे काव्य मे शान्त रस का साम्राज्य है ।

मुनि सुकेतु के उपदेश - 'अहो ससार कान्तारे रत्नत्रितयधारिण (7/28-30) मे भी इसका अच्छा परिणाम मिलता है ।

2 **शृंगाररस** - इसके दो सुन्दर उदाहरण सातवे लम्ब के 23 वे और 24 वे पद्य मे प्राप्त होते है जिनमे से प्रथम मे आलम्बन पुरुष अर्थात् सोमदत्त दूसरे मे स्त्री अर्थात् राजकुमारी है। उनमे से पहला यह है

कामोऽस्त्यय किमुत मे हृदय विवेश सम्मोहनाय किमिदागत एष शेष , ।
आखण्डलोऽयमथवा मृदसन्निवेशश्चन्द्रो ह्यवातरदयं मम सम्मुदे स. । 7/23

करुण - करुण रस का पूर्ण परिपाक प्राप्त होता है मृगसेन की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी विलाप मे जैसे-

'हास्तंगतो मे व्यवहारसूर्य नात्रास्त्यहो धीवरकर्मधूर्य ।
मयैव मे मूर्द्धनि वज्रपात कृत सुरोद्रौ च कुठारघात ॥ (2/32)

ऐसा ही करुण रस प्लावित दृश्य चित्रित है गुणपाल की मृत्यु की विषादपूर्ण स्थिति में (पृ 87)

4 अद्भुत - इस रस स्थायी भाव की सम्यक् अभिव्यक्ति दिखाई पडती है विषा और सोमदत्त के द्वारा भक्तिपूर्वक समर्पित भोजन को मुनिवर सुकेतु के द्वारा ग्रहण कर लेने पर देवताओ के आश्चर्य को व्यक्त करने वाले निम्न सन्दर्भ में-

देश पतत्रिण इव नभोगामिनस्तावज्जय जयेत्युच्चै कलकलं चक्रु -

'अहो दानमहोदाताऽहो पात्रस्य परिस्थिति ।
अहो विधानमप्येतत् विश्वकल्याणहेतवे ॥ (7/22)

५. अभिव्यक्ति पक्ष

इसके अन्तर्गत भाषा और उसके अङ्गभूत अलकार और छन्द आते हैं । ग्रन्थ की भाषा की दोनो शैलियो - गद्य और पद्य के सम्बन्ध में चर्चा करने से पूर्व यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि पूरा का पूरा गद्य भाग महाकवि की अपनी रचना है, उसमे किसी अन्य कवि की रचना का मिश्रण नहीं है किन्तु ग्रन्थ के समस्त 177 पद्यो मे से लगभग 20 पद्य पञ्चतन्त्र आदि ग्रन्थो से प्राय ज्यो के त्यो ले लिए गए हैं । ये वे पद्य हैं, जो कथा प्रवाह अनायास ही बोलचाल की भाषा मे सूक्तियो या लोकोक्तियो के समान स्वत आ गए हैं । ऐसे पहचाने गए कुछ पद्य ये हैं 2/3, 4, 4/6 5/8, 11, 12, 13, 7/10 मेरी समझ मे इस प्रकार के कुछ पद्यो को ले लिए जाने के कार्य को ग्रन्थकार ने जानबूझ कर किया है क्योंकि उन्होने कहा है ।

सम्पल्लवै समाराध्या प्रवृतालम्बनाक्वचित् ।
वनितेव लतेवाथ मदुक्ति प्रीतये सताम् ॥

इस पद्य के 'प्रवृत्तालम्बना क्वचित्' इस पद सन्दर्भ (1/8)का उक्ति के पक्ष मे यह अर्थ बनता है कि कभी कभी उनकी वाणी अन्य कवियो की कविताओ का कथानक आदि का आश्रय लेती है । अस्तु ।

भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार है इस लिए वह गद्य तथा पद्य दोनो मे भाव, परिस्थिति और वर्णनीय विषय के अनुरूप भाषा को यथेष्ट मोड देने मे सफल रहा है । उसकी शैली प्राय वैदर्भी रहती ह किन्तु कभी-कभी पाञ्चाली (जिसमे समासो का कुछ अधिक होता है) का भी आश्रय लेता दिखाई पडता है । गुणो मे सर्वत्र प्रसाद गुण का प्रयोग अधिक हुआ हे । गद्य तथा पद्य रचना दोनों मे कवि की एक समान प्रौढता को देखकर एक प्राचीन घटना याद आती है । बाणभट्ट ने अपनी गद्यात्मक कादम्बरी के पश्चात् पद्य कादम्बरी की रचना भी की थी, ऐसा सुना जाता है । दोनो ग्रन्थो की तुलना करने पर महाकवि क्षेमेन्द्र ने कहा था- यादृग गद्य विधा बाण पद्यबन्धे न तादृश अर्थात बाणभट्ट के गद्य जैसा पद्य नहीं हे । परन्तु प्रस्तुत महाकवि के गद्य और पद्य रचनाओं की समीक्षा करने पर कह सकते हैं- यादृग् पद्यविधौ ज्ञान पद्यबन्धेऽपि तादृश ।' अर्थात ज्ञानसागर का गद्य भी पद्य जैसा ही है ।

उनकी सरल और अपेक्षाकृत कुछ कठिन भाषा के उदाहरण निम्न हैं -

1 नन्दगोप इव श्रीमान् यशोदा तव भामिनी ।
अपिच कृष्णवद्भाति सुदामस्थायिनो मम ॥

2 समस्ति कोशाम्बी नाम नगरी । तस्य राजा प्रजापाल, तस्य राजपण्डित शोक शर्मा ।

3 यथास्था ग्रामा अविकल्पप्रत्यक्षतया ताथागतत्वम् गोचराधरतया पचाग चेष्टाम् महिषीसनाथतया नरनाथवृत्तिम् बहुब्रीहिप्रभृतिसम्पन्नतया वैयाकरणगतिम् नक्षत्रद्विजराजवत्तया निशीथभावमनुसरन्ति ।

अप्रचलित शब्दो से यथासभव बचा गया हे । 'खलितोत्तमाग एव करकापनिपात सम्भाव्यते जसी लोकोक्तियो और स्थान स्थान पर छोटी-छोटी कहानियों के प्रयोग से भाषा और भाव सौन्दर्य को पर्याप्त बढाया गया है ।

अर्थालकारो में सादृश्यमूलक अलकारो का विशेषकर उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग उसमे बाहुल्येन किया है । इनके विशद-विवेचन के लिए पृथक् प्रयास की आवश्यकता है । इसलिए यहा केवल सकेत ही किया जा सकता है ।

उपमा का एक सारगर्भित उदाहरण लीजिए -

ज्ञप्ति-वृत्ति युतस्येव सन्मतस्य परिस्थितिः ।
विषाराजकुमारीभ्यां वृतस्य समभूदिति ।।

अर्थात जैसे ज्ञप्ति और वृत्ति से युक्त सन्मत की शोभा होती है वैसी ही शोभा विषा और राजकुमारी से युक्त सोमदत्त की हो रही थी ।

रूपक के उदाहरण के लिए सातवे लम्ब के 28, 29, 30, तीनो श्लोको के विशेषक को लिया जा सकता है जिसमे ससार को ऐसा जगल बताया गया है जिसमें से केवल सम्यक् ज्ञान आदिरूप रत्नत्रितय को धारण करने वाला ही बचकर जा सकता है ।

उपर्युक्त सद्म श्मशानम् 'तथा' शय्येवमुर्वी' भी इसके अच्छे उदाहरण हैं ।

उत्प्रेक्षा के लिए यह उदाहरण पर्याप्त होगा -

तावत्तैवामानुषलाकोचितमेतत्कर्म समालोक्य पूतकर्तुमिव जगतामग्रे ताम्रचूडेन शब्दायितम् । पश्यन्त सन्त किल श्रमणसूक्तमप्यन्यथाकर्तुं प्रयत्यते स्वार्थपरायणैरितीव सरोजिनी जहासेदम् ।

इसी प्रकार अन्य प्रमुख अलकारो को भी उदाहरण किया जा सकता है।

छन्द- समस्त रचना में कवि ने कुल 177 पद्यो का प्रयोग किया है । विषय के सरल और उपदेश प्रधान होने के कारण अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है । उसके बाद उपजातियो और शार्दूल विक्रीडितों का स्थान आता है । अन्य छन्दो मे द्रुतविलम्बित, इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा और वशस्थ आदि हैं ।

इस विवेचन मे निकले निष्कर्ष के रुप मे कहा जा सकता है कि 'दयोदय' वर्तमान युग का एक ऐसा लघु चम्पू काव्य है जो अहिसा जैसे समस्त उपद्रवो समस्त असमानता और अराजकता का अन्त कर देने वाले तथा मानवता का आत्यन्तिक और ऐकान्तिक कल्याण को करने वाले तत्व को अपना विषय बनाता है तथा जो कथानक के सन्तुलन भावपक्ष की सुन्दरता भाषा के लालित्य और अलकारो एव छन्दो के मजुल प्रयोग से समन्वित है ।

कवि की भाषा मे कभी-कभी कितना प्रवाह, कितनी सरलता और कितना माधुर्य आ जाता है । इसके निदर्शन रूप में वैदर्भी रीति में लिखे निम्न प्रस्तुत पद्य को रखा जा सकता है-

सद्म श्मसान निधन धन च विनिन्दन श्वस्य समर्चनञ्च ।
सकण्टक पुष्पमयञ्च मञ्च समानमन्त करणे समञ्चन् ।। (2/7)

अलकार

कवि ने प्राय अपने काव्य को सुन्दर बनाने तथा कभी-कभी अपने पाण्डित्य एव रचना कौशल का प्रदर्शन करने के लिए विभिन्न अलकारो का स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है । इनमें शब्दालकार और अर्थालकार दोनो है । शब्दालकारो में अन्त्यानुप्रास कवि का सर्वाधिक प्रिय अलकार है, जो उसके अन्य ग्रन्थो के समान यह भी व्यापक रूप मे प्रयुक्त है । जैसे -

'शय्येवमुर्वी गगन वितान दीपो विधु मुर्ज्जुभुजोपधानम् ।
मैत्री पुनीता खलु यस्य भार्या तमादुश्ने सखिनं सदार्या ।।(2/10)

इस पद्य मे - उसकी इस प्रवृति का दर्शन गद्य में भी प्रचुर रुप में मिलता है जैसे-

(1) इत्येवं विचार परिपूर्णस्वान्त· स्वस्यान्तरङ्गेऽजीवशान्त, पुन पुन सस्मृतसाधुवृत्तान्त, भोगोपयोगोचितविचारत क्लान्त शून्यमेवकुलान्त ।

(2) अस्माकं भवन्मनोरथं सफलयिष्यामि । अस्माकं कुलकर्म सफलयिष्यामि । बालकमिमं कृतान्तस्य कृते सम्वलयिष्यामि। श्रीमतामुद्देशमार्गस्य कण्टक दलयिष्यामि ।

यमक के प्रशोषितपान्यजन शिप्रा-शिप्रा नाम नदी (पृ 9)जैसे स्वल्प ही उदाहरण प्राप्य है ।

एक श्लेष के प्रयोग में कवि सिद्ध-हस्त हैं । महाकवि त्रिविक्रम भट्ट ने श्लिष्टप्रयोग करने वाले कवियो को भाग्यशाली माना है ।

'प्रसन्ना·कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।
भवन्ति कस्यचित् पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥

कहना न होगा कि प्रस्तुत महाकवि ऐसे पुण्यात्माओ में अन्यतम है । उसका श्लेष क्षेम बहुत विशाल और समृद्ध है वह प्रसन्न श्लेषो का प्रयोग करने में समर्थ है जैसे-

1– तिष्ठन्तु तरला पादा. भवतः प्रतिभावत· ।
मृदुनीव रवे पद्मे पीठे वृत्ते कवेरिव ॥ (7/8)

इसमे पाद शब्द के पद्म पीठ ओर वृत्त इन तीनो के अनुकूल तीन अर्थ होते हैं । जो बोधगम्य है।

डॉ श्रीकान्त पाण्डेय
दिगम्बर जैन कॉलेज
बडौत

❑ ❑ ❑

'लघुत्रयी में नारी पात्रों का चरित्र वैशिष्ट्य'

डॉ कोकिला जैन

जिस प्रकार संस्कृत साहित्य मे कालीदास के तीनो ग्रन्थ-रघुवंश कुमार सम्भव एवं मेघदूत की गणना की गई है । उसी प्रकार आचार्य ज्ञानसागर के तीनो ग्रन्थ सुदर्शनोदय दयोदय, समुद्रत्त चरित्र लघुत्रयी के रूप में प्रतिष्ठापित है । संस्कृत भाषा मे रचित ये तीनो ग्रन्थ जैन साहित्य के ग्रन्थो मे विशिष्ट स्थान रखते है । ये ग्रन्थ मानव जीवन को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं । प्राचीन पुराण ग्रन्थ एव चरितकाव्य हमारे मार्ग को प्रशस्त करते हैं, उसी प्रकार इन तीनो काव्यग्रन्था में वर्णित कथावस्तु-पात्रो का चरित्र-चित्रण मुनिराज द्वारा दिये गये उपदेश आदि हमारी जीवन शैली निर्धारित करते हैं तथा धर्म पिपासा जागृत करते हैं । यद्यपि कलेवर छोटा है तथापि सभी घटनाओ का यथाक्रम वर्णन है । यह कहने मे कोई अत्युक्ति नहीं होगी आ ज्ञानसागर ने गागर मे सागर भर दिया है । तीनो काव्य सत्काव्य की सभी विशेषताओ मे मण्डित है । तीनो ग्रन्थ पुरुष चरित्र प्रधान है । नायक के चरित्र को विकसित किया गया है । नारी पात्रो का चरित्र गोण रूप से ही वर्णित है । सुदर्शनोदय महाकाव्य मे तो नारी पात्र नायक के उत्थान के लिए ही समविष्ट है । लघुत्रयी के नारी पात्रो का क्रमश वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(१) सुदर्शनोदय

सुदर्शनादय महाकाव्य मे नारी पात्र इस प्रकार है 1 रानी अभयामती 2 कपिला ब्राह्मणी 3 देवदत्ता वेश्या 4 सेठानी जिनमती 5 मनोरमा 6 पण्डिता दासी

जिस प्रकार काली पृष्ठभूमि पर चित्र भलीभाँति उभर कर आता है उसी प्रकार आ ज्ञान सागर ने देवदत्ता वेश्या, रानी अभयमती एव कपिला ब्राह्मणी रूपी काली पृष्ठभूमि मे सुदर्शन (जा कि काव्य का नायक है) के चरित्र को उभार कर प्रस्तुत किया है । नारी पात्रा का वैशिष्ट्य में दोनों पक्ष आते हैं, कृष्ण पक्ष एव शुक्ल पक्ष ।

२ अभय मती

चम्पापुर नगरी के राज धात्रीवाहन की रानी थी । नारी सुलभ गुणो से सुशोभित थी । रानी ने अपने रूप लावण्य एव गुणो के कारण राजा को वश मे कर रखा था । जैसे पार्वती ने शिव को लेखक ने रानी के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि -

अभयमती रानी रति के समान अत्यन्त रूपवती थी ओर कामदेव की माता लक्ष्मी के समान जगत् का मोहित करने वाली थी , चन्द्रमा की नित्य बढने वाली कला के समान वह जनमानस का नित्य नवीन आह्लाद उत्पन्न करती थी । ओर राजा के शोक सन्ताप का नष्ट करने के लिए पूतना राक्षसी सी थी । (1-41)

कई उपमाओ के द्वारा लेखक ने रानी के सौन्दर्य का वर्णन किया है । यथा -

जैसे धनुषलता उत्तम वश (बास) से निर्मित होती है उसी प्रकार यह रानी भी उच्च क्षत्रिय वश में उत्पन्न हुई थी । जैसे धनुष गुण अर्थात डोरी से सयुक्त रहता है उसी प्रकार यह रानी भी सौन्दर्य आदि गुणो से सयुक्त थी । जैसे धनुर्लता वक्रता को धारण करती है । उसी प्रकार यह रानी भी मन मे कुटिलता धारण करती थी । जैसे धनुर्लता अपने द्वारा फेके गये बाणो से दूसरे लोगो के हृदय मे प्रवेश कर जाती है उसी प्रकार यह रानी भी अपने कृत्रिम हावभाव बाणो से दूसरे लोगो के हृदय मे प्रवेश कर जाती थी । अथात् उन्हे अपने वश` कर लेती थी ।

वह रानी नीचे की ओर बहने वाली नदी के समान सरसता मे सयुक्त थी । बिजली के समान चपलता से युक्त चित्तवाली थी और दीपशिखा के समान कान्तिवाली थी । उसके इन गुणो का प्रभाव राजा पर क्या पड़ता था । कवि

ने बडे ही सार्थक शब्दों में वर्णन किया है । यहाँ उपमा हेतु किया गया शब्द चयन बहुत ही सटीक है । जो कि राजा रानी की परस्पर प्रगाढ प्रीति को अभिव्यक्त करता है । जैसे मछली बहते हुए जल में कल्लोल करती हुई आनन्दित होती है चातक पक्षी चमकती बिजली को देखकर पानी बरसने के आसार से हर्षित होता है पतगा दीपशिखा को देखकर प्रमोद को प्राप्त होता है उसी प्रकार राजा भी अभयमती रानी की सरसता को देखकर मीन के समान बिजली सी चपलता को देखकर चातक के समान और शारिरिक कांति को देखकर पतगा के समान अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होता था ।

इतनी अधिक रूपवती रानी केवल बाह्य गुणो की धनी थी, आन्तरिक गुणो मे कमजोर थी । कपिलाब्राह्मणी की रस भरी वाणी के प्रभाव मे आ गई और आत्म विश्वास खो दिया । सुदर्शन को पाने के लिए चिन्तित (6/9) एवं व्यग्र रहने लगी । अपनी दासी से पूछने पर यह कहा कि -सुदर्शन के स्मरण से मैं कामार्त हो रही हूँ । अभयमती रानी होकर भी इस प्रकार के तुच्छ विचार रखती है । उसने नारी निष्ठा को खो दिया । नारी का सद्‌गुण पातिव्रत्य धर्म का उल्लघन कर कुशीला बन गई । दासी द्वारा कई प्रकार से समझाये जाने पर भी हठ को नही छोडा । दासी से कुतर्क करने लगी । उसने कहा कि मनुस्मृति मे कहा गया है कि यदि पति परदेश गया हो जाति पतित हो, नपुसकत्व आदि शारीरिक दोषो से युक्त हो तो वह अपनी इच्छानुसार किसी भी पुरुष को स्वीकार कर सकती है । क्या पाच भर्तार वाली द्रोपदी ने पातिव्रत्य पद नहीं पाया । स्त्री को सदैव बलवान् पुरुष की भोग्या बनना चाहिए ।

दासी एवं अभयमती की वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि वे दोनो ही कुशाग्र बुद्धि की धारक थी । रानी ने अनेकान्त वाद की सिद्धि अपने पक्ष मे की है यह सिद्धि उसकी तार्किक शक्ति की परिचायक है ।

दुराचारिणी रानी ने पण्डिता धाय की चालाकी से सुदर्शन को, जो कि श्मशान मे तप कर रहा था, राजमहल में बुलाने मे सफल हो गई । उसने सोचा कि अब मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा । रानी ने सुदर्शन को चार्वाक दर्शन की युक्तियाँ देकर समझाया साथ ही प्राणायाम की विधि पर भी प्रकाश डाला । इस वर्णन से रानी का घोर निन्दनीय चरित्र प्रकट होता है । प्राणायाम विधि का वर्णन करने मे उसने अपने वचन पर भी सयम नही रखा और कामक्रीडा की विधि को कह डाला । बुरी -बुरी चेष्टाओ को करने पर भी जब उसकी कोई भी इच्छा सफल नहीं हुई तब उसने दासी से कहा कि हे सखि, खण्डित हुए देव बिम्ब के समान अब इसका विसर्जन कर दो । लेकिन दिन निकलने के कारण तथा अपनी रहस्य प्रकट होने के भय से उसे इस प्रकार निकाल भी नहीं सकती थी तब उसने रानी ने त्रिया चरित फैलाना प्रारम्भ किया और जोर से चिल्लाकर सुदर्शन को अनेक प्रकार से लाछित करने लगी । यह उसकी कुटिलता की पराकाष्ठा थी । इतने अडिग चरित्र के सामने भी उसके भावो में परिवर्तन नहीं आया । किसी भी प्रकार का पश्चाताप नहीं किया बल्कि एक त्रुटि और कर ली कि सक्लेश परिणामो के साथ आत्म हत्या कर ली और पाटलीपुत्र नगर में व्यन्तरी हो गई । (8 35)

अभी भी निरन्तर पतन

अभयमती रानी द्वारा बदला लेने की भावना - सुदर्शन मुनि श्मशान मे तप कर रहे थे वे ध्यानारूढ थे । व्यन्तरी हुई अभयमती ने पूर्व भव का बैर निकालने के लिए घोर विघ्न एव उपद्रव किए ।

पूर्वभव की अभयमती रानी यही समझ रही थी कि सुदर्शन ने अपने अभिमान के कारण उसकी कुत्सित इच्छा पूर्ण नही की थी व्यन्तरी होकर भी वह अपनी योनि मे सन्तुष्ट थी क्योंकि उसने ध्यानस्थ सुदर्शन से कहा कि हे सुदर्शन, देख मैं देवता बनकर आनन्द कर रही हूँ और तू निष्ठुर व्यवहार के कारण इस शोचनीय अवस्था को प्राप्त हुआ है।वह अज्ञानी व्यन्तरी सुदर्शन की महानता एव गुणो को नहीं समझ सकी बल्कि विपरीतता को ही धारण किया। (9-79)

अभयमती रानी के चरित्र को पढकर यह ज्ञात होता है कि मानव किस प्रकार अपने चरित्र का निरन्तर पतन भी करता है । यहा काव्यकार यह बताना चाहते हैं कि व्यक्तित्व केवल बाह्य सयोगो से नहीं बनता है बल्कि आन्तरिक गुणों के विकास से संवरता है । तब जीवन में सफलता प्राप्त कर पूजनीय बन जाता है ।

रानी को अपने कुल का ऐश्वर्य का रूप लावण्य का मद था और आन्तरिक भाव कुत्सित थे । परिणामत चारित्रिक पतन और मनुष्य गति से कुदेव योनि को प्राप्त कर व्यन्तरी बनी ।

कपिला

ब्राह्मणी कपिला चचल स्वभाव वाली थी । अत सुदर्शन को देखकर वह मोहित हो गई । उसने छल पूर्वक सुदर्शन को अपने शयनकक्ष में बुला लिया । और उसे वाग्जाल में फसाकर कामोपभोग के लिए प्रेरित करने लगी। लेकिन उसके छल कपट का प्रभाव सुदर्शन पर नहीं पडा । (5/20)

कपिला सासारिक विषय भोगो का ही भला मानती थी उसने अभयमती रानी के समक्ष यह स्वीकार किया कि एक बार एकान्त में सुदर्शन से कामसेवन की प्रार्थना की थी । तब सुदर्शन ने स्वय कहा कि मैं नपुसक हूँ तेरी प्रार्थना स्वीकार करने मे असमर्थ हूँ । रानी ने कहा कि तुम ठगी गई हो इस से उसे लज्जा महसूस हुई लेकिन उसकी स्वभाव ही चचल था । उसने यह कहा कि - को न मुह्यति भूतले । (6/13) अर्थात् ससार मे ऐसा कौन है जो कि ठगा न जाता हो । इससे उसकी चारित्रिक धृष्टता का पता लगता है । वह अत्यन्त कुटिल थी उसने अपनी रस भरी वाणी से रानी के चित्त मे सुदर्शन के साथ समागम करने की इच्छा अच्छी तरह से अकित कर दी ।

कपिला ने सुदर्शन को गृहस्थ अवस्था में डिगाने का प्रयास किया भी करवाने की भी प्रयास किया ।

देवदत्ता वेश्या

पाटलीपुत्र नगर की प्रसिद्ध वेश्या थी । शारीरिक सौन्दर्य में अनुपम थी । वह अभयमती रानी की दासी पण्डितों के उकसाने मे आ गई और सुदर्शन मुनिराज को पदच्युत करने मे अपने चित्त को लगाने लगी । सयोग वश मुनिराज गोचरी के लिए निकले तब कपटी देवदत्ता वेश्या ने पडिगाह लिया । घर के भीतर ले गई । वह कामरूप वचन बोलने में प्रवीण थी । अत उसने अपने इस अस्त्र का प्रयोग प्रारम्भ किया और अनेक तर्कों द्वारा संभोग के लिए प्रेरित करने लगी ।

उसने प्रार्थना की कि हे । महाशय, आपका यह शरीर अतिरूप वाला है और आप इसका आदर नहीं कर रहे हैं, प्रत्युत तपस्या से श्रीविहीन कर रहे ह । अभी आपका विषयो को भोगने का समय है और तुमने यह दुष्कर तप धारण कर लिया है । भोजन करने के पश्चात् उसके पचाने के लिए जल का पीना उचित है पर भोजन किए बिना ही पीना क्या उचित कहा जायेगा । 8/14-19

देवदत्ता को सुदर्शन ने अनेक प्रकार से समझाया लेकिन उस पर तो काम का भूत सवार था । मुनिराज पर जब वाणी रूपी शस्त्र सफल होते नहीं दिखे तब उसने सुदर्शन को काम युक्त बनाने के लिए जबरदस्ती से शय्या पर पटक दिया और स्वय जिनवाणी एव सिद्धशिला के समान अद्वितीय आनन्द का स्थान तथा कल्याण परम्परा वाली स्वय को बताकर सेवन करने को कहा । इस वार्तालाप से देवदत्ता की व्यक्ति के अनुरूप भाषा का प्रयोग करने में कुशलता प्रदर्शित होती ह ।

तीन दिन तक देवदत्ता ने मनुष्य को वश मे करने वाली कुचेष्टाएं की । वह अपने पेशे के अनुरूप सगीत गान मे परायण थी । (9/28)

लेकिन उसके सभी अस्त्र शस्त्र विफल हो गये । तत्पश्चात् देवदत्ता के भावो में एकदम परिवर्तन आया और मुनि के चरणो मे गिर कर पश्चाताप किया । अपनी अज्ञानता को स्वीकारा तथा मुनिराज की स्तुति की। क्षमा मागती हुई अपने लिए सदुपेदश करने को कहा । मुनि के उपदेश से उसका मोह दूर हो गया और देवदत्ता वेश्या ने उन्हीं मुनि से आर्यिका के व्रत धारण किए ।

इस नारी पात्र के माध्यम से आ ज्ञानसागर यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि सगत का प्रभाव अवश्य पड़ता है । जिस प्रकार देवदत्ता वेश्या ने दासी का साथ किया तो उसके दुष्कर्म करने के भाव हुए और चरित्र का पतन हुआ। लेकिन मुनिराज का सम्पर्क हुआ तो चरित्र का उत्कर्ष हुआ और जीवन सफल हुआ आ ज्ञानसागर ने कहा भी है-

स्वर्णत्वं रसयोगतोऽत्र लभते लोहस्य लेखायत. ॥ 9/74

अर्थात् इस जगत् में लोहे की शलाका भी रसायन के योग से सुवर्ण पने को प्राप्त हो जाती है । रानी एव कपिला के भावों में परिवर्तन नहीं आया लेकिन देवदत्ता वेश्या के भावों में निर्मल परिणमन हो गया ।

मनोरमा

समुद्रदत्त सेठ की पुत्री थी । सुदर्शन से विवाह हुआ था । मनोरमा अपने पूर्व भव में भीलनी थी । जीवो का वध करना उसकी आजीविका थी । भीलनी मर कर भैंस हुई पुन मरकर धोबी की लडकी हुई । वहाँ उसके योग से आर्यिकाओ के सघ के साथ समागम हो गया । जिससे उसके भावो में परिवर्तन आया और वह क्षुल्लिका बन गई। क्षुल्लिका की अवस्था मे एक श्वेत साडी तथा कमण्डलु ओर थाली दो पात्रो के अतिरिक्त शेष सर्व परिग्रह का उसने त्याग कर दिया था । 4/31-36

उसने आरम्भिक एव साङ्कल्पिक दोनो प्रकार की हिसा का परित्याग कर दिया था । अत उसमें दया, क्षमा, शील सन्तोष आदि गुण स्वत प्रकट हो गये थे । इस प्रकार वह उत्तरोत्तर पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी । वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती अष्टमी चतुर्दशी पर्व मे उपवास करती तीनो सन्ध्याकालो मे सामयिक करती थी । दिन मे एक बार खाना एवं वही पानी पीकर सघ मे रहकर मोक्ष मार्ग के नेता जिनेदव का स्मरण करती थी । वह सदैव प्राणी मात्र पर मैत्री रखती करुणा भाव रखती । दूसरो के दुखों को दूर करने का प्रयत्न करती । गुणीजनो का आदर करती तथा विरोधी विचार वालों मे माध्यस्थ भाव रखती थी । इन्हीं पुण्य भावो एव पूर्व भवों मे लगाये गये धर्मरूप कल्पवृक्ष का ही फल ह । यह मनोरमा प्रतिदिन अर्हन्त देव की पूजा नवधा भक्ति पूर्वक दान कार्य आदि जीवन को सफल बनाने वाले कार्यो मे रत रहती थी ।

एक दिन मनोरमा वनविहार हेतु गमन कर रही थी । तब कपिला नामक ब्राह्मणी ने मनोरमा के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया कि यह सीप के समान सुन्दर है और पवित्र हे । उसी समय अभयमती रानी ने भी सुख दायिनी एव सौभाग्य वती बताया । 6/3-4

मनोरमा सुदर्शन को अत्यन्त पिय थी । वह उसे मनोहारिणी अर्धाङ्गिनी कहकर सम्बोधित करता हे । सुदर्शन ने जब मनोरमा का कहा कि अब मे दीक्षा लेना चाहता हूँ तब उस भद्रपरिणाम वाली मनोरमा ने अपने पति की इच्छा का ही समर्थन करते हुए कहा कि मे आपकी अनुगामिनी हूँ, जो तुम्हारी गति सो ही हमारी गति । मैं भी आर्यिका व्रत धारण करूगी । यह मेरा निश्चय है । वह धार्मिक सस्कार शीला थी । इस प्रकार वह मनोरमा अपने पति मे पूर्ण रूप मे अनुरक्त रहती हुई उसी के साथ मन्दिर जाकर पूजन स्तवन आदि सभी कार्य सम्पादित किए । (8/25-26)

सुदर्शन के मुनि बन जाने पर उन्हीं के वचनो को प्रमाण मानकर आर्यिका दीक्षा धारण कर अपने नारी जन्म को सार्थक बनाया सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर तन पर एक श्वेत साडी मात्र का परिग्रह रखा ।

अन्य नारी पात्रा मे श्रेष्ठ पात्र ह । पूर्वभवों के वर्णन से ज्ञात हाता हे कि उसने उत्तरोत्तर जीवन को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास किया है ।

सुदर्शन की माता

जिनमती - चम्पापुर नगर के सेठ वृषभदास की सेठानी का नाम जिनमती था । वह यथानाम तथा गुण को धारण करती थी । वह जिन भगवान् की मति के समान ही पवित्र रूप वाली थी । जैसे जिनमत के अभ्यास से कामवासना मिट जाती हैं उसी प्रकार सेठानी की चेष्टा से कामदेव उसके वश मे हो रहा था । वह सेठानी लता के समान कोमलाङ्गी मेघमाला के समान पीन पयोधरा थी । वह कामरूप उत्तान पर्वत की मेखला युक्त उपत्यका सी प्रतीत होती थी । जैसे

उपत्यका कहीं समस्थल तो कहीं विषमस्थल होती है, वैसे ही वह सेठानी भी करधनी से युक्त थी । उदर भाग में समस्थल तथा नितम्ब भाग में उन्नत स्थल वाली थी ।

वह सेठानी जल से भरी हुई वापी के समान सरल थी, मुद्रिका के समान सुवृत थी, जिस प्रकार अगूठी सुवृत्त अर्थात गोल होती है, उसी प्रकार वह सेठानी सुवृत्ता अर्थात उत्तम आचरण करने वाली थी । जिस प्रकार साडी गुण अर्थात धागों से बुनी होती है उसी प्रकार वह भी पतिव्रत्यादिगुणों मे सयुक्त थी । चन्द्रमा की कला के समान तिथि सत्कृती थी । जिस प्रकार चन्द्रमा की बढती हुई कलाएं प्रतिदिन तिथियो का प्रकट करती हैं वैसे ही वह सेठानी प्रतिदिन अतिथियो के आदर सत्कार मे तत्पर रहती थी । वह अलकार परिपूर्ण कविता के समान थी । जैसे उत्तम कविता उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो से परिपूर्ण होती है । वैसे ही सेठानी ने गले, कान, हाथ, आदि में नाना प्रकार के आभूषणों को धारण किए हुए थी ।

वह पवित्र सौन्दर्य रूप अमृत से भरी हुई नदी की प्रतीत होती थी । भुजाए कमल नाल के समान लम्बी और सुकोमल थी । बाल शेवाल (काई) के समान चिकने और कोमल थे । मुख खिले हुए कमल के समान शोभित था। नेत्र बडे-बडे थे, कानो तक विस्तृत थे । विकसित फूलों के समान उसके मुख पर सदैव हास्य बना रहता था । वह माला के समान शीलरूप सुगन्धि से युक्त थी । शाला के समान उत्तम पुण्यो की भण्डार थी । राजहसी के समान शुद्ध भावो की धारक थी । वशी के समान मधुर भाषी थी । माता गुणो की खान सौन्दर्य का भण्डार थी । अत पुत्र भी सुदर्शन था ।

कवि ने जिनमति के सौन्दर्य का इस प्रकार वर्णन किया है, मानो वह समस्त गुणो को समेटे हुए हमारी आखो के सामने खडी जीवन्त शब्दावलि है ।

सेठानी विनयसम्पन्न और बुद्धिमान थी । उसने सेठ वृषभदास को प्रेरित किया कि मुनिराज के स्वप्न फल पूछना चाहिए । मुनिराज से स्वप्न फल सुनकर कि श्रेष्ठ पुत्र रत्न होगा जिनमती अत्यधिक प्रसन्न हुई ।

सेठानी की गर्भावस्था का वर्णन करने मे कवि ने कुशलता का परिचय दिया है । सुदर्शन नामक पुत्र रत्न को प्राप्त कर माता जिनमति ने उसे सुसस्कार दिये । जिससे आगे चलकर उसने अभ्युदय को प्राप्त किया । केवली की माता होने का गौरव प्राप्त था ।

दयोदय

यह चम्पूकाव्य है । इसमें सात लम्ब है गद्य पद्य मिश्रित काव्य को चम्पू कहा जाता है । इस काव्य मे मृगसेन धीवर तथा घण्टा नामक धीवरी की कथा के माध्यम से अहिसा व्रत धर्म की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है । इस काव्य मे भी पुरुष चारित्र की प्रधानता है । अत नायक के चारित्रिक विकास पर ही जोर दिया गया है । काव्य के नारी पात्र घण्टा धीवरी धनश्री सेठानी बसन्तसेना वेश्या एव राजकुमारी गुणमाला है । इनमे से घण्टा धीवरी का चारित्र प्रमुख हैं । क्योंकि वही पात्र नायक के साथ साथ चलता है ।

घण्टा धीवरी

मृगसेन धीवर की पत्नी है । इस दम्पती के जीवन निर्वाह का साधन है, मछलियो को पकड़ना । घण्टा धीवरी यद्यपि जाति से नीच कुल की थी । लेकिन थी बहुत समझदार, सरल, पति परायणा गुणग्राही । ये सभी गुण कथावस्तु पढने पर ज्ञात होते है ।

एक बार धीवर देर रात्रि तक घर नहीं आया तब उस धीवरी की व्याकुलता बढी और व्यग्र होकर आशका करने लगी की कहीं मेरे पति के साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई है । इस प्रकार की व्यग्रता पत्नी के लिए स्वाभाविक

भी है । लेकिन वह व्यवहार कुशल है । देर से आने के साथ ही खाली हाथ भी पति पर एकदम व्यंग्य बाणो की बौछार नहीं करती बल्कि शान्ति एवं प्रेम पूर्वक देरी होने का कारण पूछती है ।

धीवर के देर से आने के कारण को ज्ञात कर मन ही मन को प्रसन्न है लेकिन यह विचार कर कि कहीं यह फिर ऐसा नहीं कर ले निष्ठुर होकर उसने कहा कि अपने जैन मतानुयायी नगे साधु से प्रतिज्ञा ले उचित नहीं किया। क्योंकि उसे अपने एवं परिवार पालन की चिन्ता थी ।

धीवर के द्वारा मुनि की जब बहुत प्रशसासुनी तब किसी आशंका के भय से उसने व्यावहारिक बात कहीं कि वह परमहस है तो हमें क्या ? हम तो गृहस्थ है उसका और हमारा मार्ग परस्पर विरुद्ध है । और कहा भी गया है कि जो आदमी अपने कर्तव्य को भूलकर आरो के करने योग्य कार्य करने मे तत्पर होता है वह कील का उखाडने वाले वानर की भाति शीघ्र ही मरता है । (13)

उसकी भूमिकानुसार चिन्तन उचित ही था । लेकिन धीवर का मन तो त्याग मे रम चुका था । अत वह धर्म ही धर्म की बातें करने लगा । घण्टा भाग प्रिय थी अत उसे चिन्ता थी कि कहीं उसका पति विरागी नहीं बन जाये। उसने धीवर से तर्क पूर्ण एव प्रेरक शब्दावली के माध्यम से समझाया कि हे नाथ पुरुष की जितनी भी क्रियायें है उनमे पहला कार्य पेट पालन हैं और सब काम उसके बाद मे । (17)

धीवर ने कहा अन्य जीवो को मारने रूप आजीविका वृत्ति ठीक नहीं है । जहाँ प्राणिमात्र का जीवन हो वही आजीविका है । इस पर उस हाजिर जवाबी घण्टा न कहा कि क्या कृषि करने मे जीवो की हिसा नहीं होती । और क्रोधित होकर बोली कि फिर तो आपके और साधु के कहने मे तो हम लोगो को भूख के मारे मर जाना चाहिए। ऐसा धर्म तो हम लोगो को अच्छा नहीं लगता । जाइये आप उन साधु के ही पास इस प्रकार तिरस्कृत कर के मृगमेन को बाहर निकाल कर दरवाजा बन्द कर लिया ।

लेकिन वह पतिपरायणा थी अत कुछ देर पश्चात् क्रोध पर सयम धारण कर पश्चाताप करने लगी 'धिगिद स्वभावत एव चञ्चलं चित्तम्, पति के प्रति की गई निर्दयता को कोसा । (लम्ब 2/30) धीवर को और पति को खोज मे निकली । धर्मशाला मे धीवर को मरा हुआ देखकर सिर कूट-कूट कर रोने लगी । सुलझे हुए विचारो वाली सरल स्वभावी थी, अत विचार करने लगी कि जो हो गया सो हो गया । साप की लकीर को पीटने से क्या हो सकता है। मुझे इस बात से सन्तोष है कि मेरे आनन्द रूपी तालाब का हस व्रतपूर्वक मरा । उसने व्रत की अनुमोदना की तथा यह भी विचार किया कि मुझे भी वही व्रत को लेना चाहिए । जीवन के लिए इतर प्राणियो का सहार करना ठीक नहीं है । ऐसा विचार कर ही रही थी कि वही साप जिसने मृगसेन को डसा था, आकर उसे भी डस गया।

निर्मल परिणामो के कारण वह मरकर सेठ के घर मे लडकी हुई । जिसका नाम विषा रखा गया था । नाम उसका विषा था लेकिन वह अपने नाम से उल्टे गुण वाली थी । पुण्यवान थी । उसका विवाह सोमदत्त के साथ हुआ। यह उनका पूर्वभव का सस्कार था ।

सपत्नी ईर्ष्या का अभाव

सोमदत्त के दूसरे विवाह करने पर भी वह नाराज नहीं हुई बल्कि राजा से प्रशसा पूर्वक बोली कि आज तक मैं अकेली थी अब इसे पाकर एक और एक ग्यारह इस कहावत के अनुसार एकादशी के समान पुण्य सम्पादन करने वाली बन जाऊँगी । एव द्वितीया तिथि के पुण्य सम्पदान करने वाली बन जाऊँगी, एव द्वितीया तिथि के समान भद्रा भली कहलाने योग्य बन जाऊंगी ।

विषा मुनि भक्ति को परम सौभाग्य मानती थी। उसका मानना थी कि गृहस्थ के जब कोई अपूर्व पुण्य का उदय होता है, तभी साधुओ का समागम होता है । (लम्ब 7/18) एक बार सोमदत्त के साथ द्वार पर खडी थी । साधु को

देखकर पडगाहा । उच्चासन दिया । तीन प्रदक्षिणा की, अम ब्युर नमस्कार किया, उनके चरणो का प्रक्षालन किया, वह इतनी प्रसन्न थी मानो उसे कोई निधि मिल गई हो । पहले से बनाकर तैयार किए गये निर्दोष प्रासुक सिद्धान्न को मुनिराज के लिए अर्पण किया । मुनि के केवल दो ग्रास लिए थे कि आकाश में देवों ने जयघोष किया ।

साधु तपस्वी के उपदेश से मोह भाव को त्याग कर आर्यिका का व्रत स्वीकार किया । और अपने जीवन का विकास किया । विषा ने सभी समय एव सदैव अपने परिणामों को निर्मल रखे । पूर्व भव में धीवरी घण्टा के रूप में भी दुष्परिणाम आये लेकिन पश्चाताप कर लिया ।

समुद्रदत्त चरित्र

आ ज्ञानसागर द्वारा रचित यह चरित्र खण्ड काव्य है । इसमे नो सर्ग हैं । इस काव्य मे समुद्रदत्त का चरित्र, समुद्रदत्त के पश्चात् होने वाले भवो महित वर्णित किया है । और उसका क्रमश चारित्रिक उत्थान बताया गया है । इस काव्य मे नारी पात्रो का नाम भर गिनाया गया है । वह भी कई भवों का वर्णन करने के कारण माता के रूप में नारी पात्र आये है । फिर भी ममुद्रदत्त के भव में उसकी माता सुमति एव रामदत्ता नाम की रानी इन दो पात्रों की चारित्रिक विशेषता को पाते हैं ।

रामदत्ता रानी

रानी की सभी चारित्रिक विशेषताओं का कवि ने इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है ।

अर्थात्, रामदत्ता रानी शीलादि गुणो को सहज स्वभाव से ही धारण करने वाली थी । आर रूप और सोन्दर्य का भी भण्डार थी । लोक हित के कार्यो मे दासी के ममान हर समय जुटी रहती थी । (3/20)

उसने एक बार समुद्रदत्त का दीन एव करुणा जनक स्वर मुना वह मत्री सत्यघोष को अपने रत्न हडप लेने से कोस रहा था । रानी बुद्धिमती थी । उमने राजा मे कहा कि यह प्रवासी रोज सवेरे ही इसी पेड पर आकर ठीक उसी एक बात को लेकर रोता है इसमे कोई न कोई रहस्य भरा हुआ हे । इमकी जाच करनी आवश्यक हे । रानी ने राजा को सलाह दी कि आप तो राज दरबार लगाकर कुछ देर वहीं बैठना । मै इस रहस्य की स्वय जाँच करूगी।

व्यावहारिक

रानी ने शतरज खेल मे सत्यघोष के जनेऊ व छुरी जीतकर चतुराई पूर्वक समुद्रदत्त के रत्न मँगवा लिये । इस घटना से रानी की राजनीतिज्ञता की झलक मिलती है । राजा की मृत्यु के पश्चात् वह बहुत दु खी हुई । लेकिन आर्यिकाओ (दान्तमति और हिरण्यवती) के समझाने पर वह आर्यिका बन गई । 4/16

एक बार रामदत्ता आर्यिका सिहचन्द्र मुनि वन्दना करने गई । उसने सोचा कि मेरा छोटा बेटा आपका छोटा भाई क्या कभी धर्म मे लगेगा । रामदत्ता की अभिलाषा यह थी कि वह अपने साथ साथ अपने परिवार का भी कल्याण करे ।

वह अपने द्वितीयपुत्र पूर्णचन्द्र को धर्म का मार्ग बतलाने के लिए आतुर हे ।

वह राजमहल पहुँची और पूर्णचन्द्र को ससार की निरर्थकता तथा गतियो के दु खो के बारे मे बताती है । मनुष्य गति को उत्कृष्ट बताती हुई कहती है कि हे पुत्र यह मनुष्य गति ही है, जिसमें आत्मा को बुराईया से बचाकर पवित्र किया जा सकता है तुम्हे यह सुयोग मिला है । उतम कुल वश , उत्तम धर्म, उत्तम शरीर, इस योग को भोग भोगते हुए नष्ट मत करो ।

आगे उदाहरण पूर्वक समझाती है कि हाथी मछली भौरा, पतग, सर्प आदि एक एक इन्द्रियों के वशीभूत होकर अपना नाश कर लेते हैं तो फिर पाचो ही इन्द्रियो के विषय को भोगने में लगे रहने वाले इस आदमी की क्या दशा होगी।

त्याग का महत्व बतलाते हुए कहती है कि हे वत्स बन्दर ने चने का त्याग किया, तभी वह आपत्ति से मुक्त हुआ। इसी प्रकार यह जीव संग्रहण करन से तो दु:खी किन्तु त्याग करने से मुक्त होकर सुख को अवश्य प्राप्त करता है ।

उसके आत्मविश्वास को जगाती हुई कहती है कि हे पुत्र, तू पुण्यो का भण्डार है, यह बात तुझे अपने पूर्व भवों से ज्ञात होगी । अत तुझमें वह शक्ति है कि तू धर्म का मार्ग अपना सकता है और आत्म कल्याण कर सकता है । आर्यिका से सदुपदेश से प्रभावित होकर पूर्णचन्द्र ने अपने आचरण को सदाचरण मे परिवर्तित कर लिया ।

इस प्रकार आर्यिका रामदत्ता ने समाधि पूर्वक अपने शरीर का त्याग किया और भास्कर नाम का देव हुई । देव के बाद फिर राजकुमारी श्री धरा बनी और राजा से विवाह कर राजरानी बनी । आर्यिकाओं का समागम पाकर उसने पुन. आर्यिका व्रत दीक्षा धारण की । (5/25)

सत्यघोष जो कुयोनियो में जन्म मरण करते करते अजगर बना था, श्रीधरा आर्या को खा गया । श्रीधरा ने दृढ़ता से समाधि पूर्वक प्राण छोड़े तथा आठवे कापिष्ठ नामक स्वर्ग में चौदह सागर की आयु को प्राप्त कर दिव्य शरीर की धारक देव हुई ।

वहा से चय कर पुन रत्नमाला नाम की राजकुमारी हुई (राजा अतिवेग और प्रियकारिणी रानी से) रत्नमाला के चक्रायुद्ध नाम के केवली की माता होने का गौरव प्राप्त हुआ ।

डॉ कोकिला जैन
सेठी कॉलोनी
जयपुर (राज) 302004

❑ ❑ ❑

लघुत्रयी में जैनेतर प्रसङ्ग

डॉ सन्तोष कुमार जैन

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का संस्कृत वाङ्मय की श्रीवृद्धि मे महत्त्वपूर्ण योगदान है । वे भारतभू के ऐसे तप पूत सपूत हैं जिनका स्मरण भवजलधि मे निमग्न मानवो का पोत के समान है । उनके द्वारा प्रणीत काव्यो मे लघुत्रयी का सरल भाषा मे रचित होने के कारण विशेष स्थान है । सुदर्शनोदय में ब्रह्मचर्य एव शीलव्रत में अनुपम प्रसिद्धि प्राप्त सेठ सुदर्शन का चरित्र वर्णन किया गया है । समुद्रदत्तचरित महाकाव्य में असत्य बोलकर चोरी करने वाले एव दूसरो का धन हडपने वाले सत्यघोष (श्रीभूति ब्राह्मण) की कथा के माध्यम से असत्य सभाषण एव परधनापहरण का बुरा फल बताकर 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष किया गया है । दयोदय काव्य मे अहिसा के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है । इस काव्य का कथानक एक ऐसे व्यक्ति का कथानक है, जिसकी आजीविका की हिसामय थी । एक छोटे से व्रत का ग्रहण करने के कारण उसकी महत्ता मननीय है ।

लघुत्रयी के तीनो ग्रन्थ जैन परम्परा मे प्रतिपादित इतिवृत्त को आधार बनाकर लिखे गये काव्य है । अत इनमे प्रधान रूप मे जैनधर्म, दर्शन एव सिद्धान्तो का ही विवेचन हुआ है । किन्तु महाकवि कभी भी सकीर्णता की सीमाओ मे आबद्ध नहीं होता है परिणामत उसके काव्यो मे इतर दर्शन सिद्धान्त एव प्रचलित आख्यानो मान्यताओ आदि का स्थान मिलना नैसर्गिक है । सुदर्शनोदय महाकाव्य मे ब्रह्मचर्य का विषय विवेच्य होने से इतर प्रसङ्गो को अधिक अवसर नहीं मिला है फिर भी यथावसर महाकवि ने उन्हे सकेतित किया है । जब रानी अभयमती सेठ सुदर्शन एक आसक्त हो जाती है तथा दासी के गुणयुक्त वचनो को नहीं मानना चाहती है तो वह अपनी कामान्धता के समर्थन मे स्मृति मे तो स्पष्ट कहा गया है कि यदि पति परदेश गया हो अथवा जाति पतित हो और स्त्री ऋतुमती हो तो वह किसी भी पुरुष को स्वीकार कर सकती है ।[1]

अपनी बात को और अधिक दृढ करने के लिए रानी द्रुपदतनया द्रौपदी को पञ्चभर्तृका सती कहती है तथा जनकसुता सीता आदि के वृत्तान्त को जनमनरजक बताती है । ससारी जीवो की माया बडी ही मोहनीय है । इसका चित्रण करते हुए महाकवि कुछ पौराणिक सकेत करते है । वे कहते हैं कि इस मोहनी माया रुप लक्ष्मी को पाकर श्री कृष्ण नागशय्या पर सोये रहे । महादेव जी इसी माया के चक्कर मे पशुपतिपने को प्राप्त हुए विषभक्षण किया तथा निर्लज्जता अगीकार कर पार्वती से रमण करने लगे । अन्यत्र कवि ने जैनेतर परम्परा मे स्वीकृत पौराणिक मान्यताओ के अनुसार सरस्वती का वीणा पुस्तकधारिणी होना[2] गरुड (वैनतेय)का सर्पों का विनाशक होना[3] आदि घटनाओ का भी सकेत किया है । रानी अभयमती सुदर्शन को रिझाने के लिए चार्वाक् दर्शन के सिद्धान्त का वर्णन करती हुई कहती है कि शरीर पञ्चभूतो से उत्पन्न हुआ है । प्राण वियोग के पश्चात् जीव नामक कोई तत्त्व शेष नहीं रहता है ।[4]

समुद्रदत्तचरित मे क्रोधी साधु का उपमान बनाकर व्यवसायहीन गृहस्थ को उपमेय बनाया गया है तथा उस गृहस्थ का क्रोधी मुनि के समान दूसरो की हानि करने वाला एव रौरव नामक नरक को जाने वाला कहा गया है ।[5]

---

1 सुदर्शनोदय, षष्ठ सर्ग/२४ के बाद का गीत
2 सुदर्शनोदय, ८/२३ के बाद गान पृ १५३
3 वही ३/३१
4 वही ३४२८
5 समुद्रदत्त चरित्र १/३४

पौराणिक मान्यता के अनुसार कामदेव की पत्नी रति मानी गई है । इस बात का उल्लेख महाकवि ने भी किया है ।[1] दयोदयचम्पू में समुद्र से लक्ष्मी की उत्पत्ति होना,[2] रामचन्द्र को वनवास मिलना तथा पुन: राज्याधिरूढ होना,[3] पाण्डवों का वनवास होना तथा उनका फिर से राज्यारुढ होना[4] दोनो अश्विनीकुमार देवों का हमेशा एक साथ रहना[5], इन्द्र का वृद्धश्रवा कहा जाना[6], कामदेव का अनङ्ग होना[7] आदि पौराणिक विचारों का उल्लेख किया गया है ।

महाकवि ज्ञानसागर ने दिगम्बरत्व के समर्थन के लिए जाबालोपनिषद् में कथित परमहस साधु के स्वरूप का विवेचन करते हुए उन्हें बालक के समान निर्विकार, निर्ग्रन्थ एव निश्छल कहा है ।[8] यहा परमहस साधुओं का जैसा स्वरूप वर्णित किया है । वह दिगम्बर साधुओ के स्वरूप के काफी निकट कहा जा सकता है । महाकवि मृगसेन धीवर से कहलवाया है कि जैन साधुओं को वेदवाह्य कहना उचित नहीं है, क्योंकि वेदों में भी साधु का स्वरूप वैसा ही प्रतिपादित किया गया है जैसा कि परम्परा में जैन साधुओ का आचरण है । इस सन्दर्भ में महाकवि ज्ञानसागर ने यजुर्वेद, नारदपारिव्राजक उपनिषद्, मैत्रेय उपनिषद्, तुरीय उपनिषद्, संन्यास उपनिषद् के कथनों को उद्धृत किया है । अपनी बात का समर्थन करने के लिए उन्होने पद्मपुराण (वैदिक),स्कन्दपुराण आदि मे की गई दिगम्बर साधुओ की प्रशसा के प्रसङ्गों का वर्णन किया है । ऋग्वेद के विविध सूक्तो में आये अर्हत् , अर्हन्, अर्हत् आदि की स्तुति को जैन तीर्थङ्करो का स्तवन माना है तथा अथर्ववेद एव यजुर्वेद के उन स्थलों को उद्धृत किया है । जिनमें अरिष्टनेमि का वर्णन आया है ।[9] जैन परम्परा के अनुमार अरिष्टनेमि ही बाइसवे तीर्थङ्कर नेमिनाथ हैं, जो श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे ।

श्रीमद्भागवत के षष्ठ अध्याय एव तृतीय अध्याय मे तीर्थङ्कर ऋषभदेव को अवतार मानकर उनकी स्तुति की गई है । महाकवि ज्ञानमागर ने इन प्रमगो को सबहुमान उद्धृत किया है । श्रीमद्भागवत के अनुसार नाभिराज का पुत्र ऋषभदेव ने ही तपस्या करके परमहस मार्ग का प्रकट किया था ।[10] श्रीमद्भागवत का कथन है कि विष्णु भगवान् ने ही नाभिराजा को प्रसन्न करने के लिए मरुदेवी की कुक्षि मे अवतार लिया था । यहां ऋषभदेव का वातरशना (दिगम्बर) और श्रमण ऋषियो मे अग्रणी कहा गया है ।[11] भागवत् मे उल्लिखित ऋषभदेव का वर्णन जैन परम्परा मे अधिक दूर नही है ।

दयोदयचम्पू मे महाकवि आचार्य ज्ञानमागर ने विभिन्न दार्शनिकों के मन्तव्यो का उल्लेख किया है । जब गुणपाल अपने उद्योग मे सफलता प्राप्त नहीं कर पाता है तो उसकी पत्नी गुणश्री कहती है कि आप देखते रहे, मै उपाय करती हू । वह साख्य दर्शन का दृष्टान्त देती है कि साख्य मत के अनुसार भी तो पुरष केवल अनुभव मात्र करता है, ससार के अहकार आदि कार्यो को तो प्रकृति ही उत्पन्न करती है ।[12]

एक अन्य स्थल पर महाकवि ने साख्य दर्शन के आचार्य उलूक का उल्लेख श्लेषानुप्राणित उपमा मे किया है ।[13]

बौद्ध दार्शनिक अविकल्प प्रत्यक्षवादी हैं । प्रत्येक वस्तु को क्षणिक मानने के कारण उनके अनुसार सविकल्प प्रत्यक्ष बन ही नहीं सकता हैं । मालवा देश का वर्णन करते हुए महाकवि ने कहा है कि उस देश के गाव भेडों के झुण्ड बनाकर चलने के कारण विकल्प प्रत्यक्ष वाले हैं । अतएव वे बोद्ध दर्शन के अनुकरण करने वाले हैं ।[14] क्षणभङ्गुरता के कारण बौद्धो मे निश्चय नहीं बन सकता । अतएव योग्यायोग्य का ध्यान नहीं बन पाता है। रात्रि का वर्णन करते हुए कवि ने उसे बौद्धो की प्रथम वार्ता के समान निश्चय या योग्यायोग्य से रहित कहा है ।[15] मालवा देश के ग्रामों का वर्णन करते समय श्लेषानुप्राणित उपमा में महाकवि के ब्रह्मवादियों (वेदान्तियो)के अद्वैतवाद एव वैयाकरणो के समासवाद का भी उल्लेख किया है ।[16] केवल प्रत्यक्ष को ही स्वीकार करने वाले विज्ञानवादी (चार्वाकों) जनों का उल्लेख

1 वही 2/20
2 दयोदय पृ 6
3 वही पृ 8
4 वही पृ 8
5 वही पृ 68
6 वही पृ 68
7 दयोदय पृ 22
8 वही पृ 24/28
9 वही पृ 30/39
10 दयोदय पृ 31
11 दयोदय षष्ठ लम्ब/5 पृ 86
12 दयोदय पृ 41
13 वही पृ 4
14 वही पृ 41
15 वही पृ 4
16 वही पृ 4

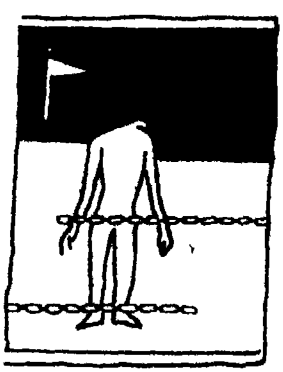
करते हुए पूज्य महाराजश्री ने उन्हें जड़वाद में दक्ष कहकर मीठी चुटकी ली है । चार्वाक जीव की पृथक् सत्ता न मानकर सब कुछ पृथिवी आदि पञ्चभूतो के मेल से होने वाला मानते हैं । इसी कारण भूतो से व्याप्त रात्रि को महाकवि ने पञ्चभूतों से व्याप्त चार्वाक विचारधारा (लोकायतिक) के समान कहा है ।

उक्त विवेचन मे स्पष्ट है कि दयोदय में जैनेतर प्रसङ्गों को सुदर्शनोदय की अपेक्षा अधिक स्थान मिला है । समुद्रदत्तचरित में तो मात्र एकाध स्थल ही ऐसा है जहा जैनेतर प्रसग का उल्लेख है ।

लघुत्रयी में सांख्य वेदान्त, बौद्ध, चार्वाक दार्शनिकों के सिद्धान्तों की चर्चा के साथ जैनपरम्परा सङ्गत वैदिक पौराणिक, आर्षकाव्य (महाभारत, रामायण) एव श्रीमद्भगवत की विचारधारा का सबहुमान उल्लेख किया गया है । महाकवि ज्ञानसागर ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, तुरीयोपनिषद, नारदपरिव्राजकोपनिषद, मैत्रेयोपनिषद्, सन्यासोपनिषद, अग्निपुराण, कूर्मपुराण, पद्मपुराण, मार्कण्डेय पुराण, वायुपुराण, विष्णु पुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, श्रीमद्भागवत एव अथर्वणकाण्ड, इन 17 ग्रन्थो के उद्धरण दिये हैं । इससे महाकवि ज्ञानसागर की अगाध विद्वत्ता, गुणग्राहकता, समन्वयात्मक दृष्टिकोण तथा अन्य दार्शनिको के प्रति विचारधारा का सहज ही पता चल जाता है ।

डॉ सन्तोषकुमार जैन
श्री दि जैन सीनियर सै स्कूल
सीकर (राज)

❑ ❑ ❑



स्वाधीनता अनिवार्य

गुलाम और अत्याचार - पीड़ित प्रजा में वास्तविक धर्म का विकास नहीं हो सकता । धार्मिक विकास के लिए स्वातन्त्र्य अनिवार्य है ।

जैन संस्कृत चम्पू काव्य और दयोदय

डॉ. कपूरचद जैन

संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा में इन्द्रिय ग्राह्यता के आधार पर काव्य के दृश्य और श्रव्य ये दो भेद किये गये हैं। दृश्यकाव्य रंगमच पर अभिनेय होने के कारण दर्शक को पूर्णत रसमग्न करते हैं । इसके रूपक और उपरूपक ये दो भेद हैं । रूपक के 10 तथा उपरूपक के 18 भेद किये हैं ।[1] हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्यकाव्य को पाठ्य तथा गेय इन दो भागो में विभक्त किया है ।[2] आचार्य मम्मट ने अर्थ की रमणीयता के आधार पर काव्य के उत्तम मध्यम और अवर या अधम ये तीन भेद किये हैं ।[3] दण्डी ने शैली के आधार पर काव्य के गद्य पद्य और मिश्र ये तीन भेद किये हैं।[4] छन्दोबद्ध पद पद्य और छन्दविहीन पद गद्य कहा जाता है । गद्य पद्य की मिश्रित शैली में रचा गया काव्य मिश्र काव्य कहलाता है । काव्य में शैली इसलिए अपनाई जाती है ताकि गद्य काव्य के अर्थ गौरव तथा पद्य काव्य की रागमयता का एकत्र ही आनन्द उठाया जा सके ।

मिश्र काव्य को चम्पू करम्भक, विरुद, घोषणा आदि सज्ञाये समीक्षको ने दी हैं । चम्पू के अतिरिक्त इन सभी को मुक्त मिश्रकाव्य कहा जा सकता है । मिश्र काव्य का प्रबन्धात्मक स्वरूप चम्पू काव्य है ।

चम्पू शब्द चुरादिगणीय गत्यर्थक 'चपि' धातु के ऊ प्रत्यय लगाकर बना है । 'चम्पयति इति चम्पू' किन्तु इस व्युत्पत्ति मे मात्र शब्द का स्वरूप उपस्थित होता है । हरिदास भट्टाचार्य के अनुसार - 'चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति इति चम्पू ' चम्पू की परिभाषा है । यह व्युत्पत्ति अधिक उपयुक्त जान पडती है । चम्पूकाव्य चमत्कार प्रधान हुआ करते हैं । चमत्कार से तात्पर्य उक्ति वक्रता एव शाब्दी काट-छाट से है ।

दण्डी ने चम्पू की निम्न परिभाषा दी है-

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तर ।
गद्य पद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यपि विद्यते[5] ।।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है-

गद्यपद्यमयी रचना सोच्छ्वासा चम्पू[6]

विश्वनाथ ने कहा है-

गद्यपद्यमय काव्य चम्पूरित्यभिधीयते[7]

चम्पूकाव्यो की ये सभी परिभाषाये अपूर्ण हैं, सभी उसके बाह्य स्वरूप का ही निर्धारण करती हैं । उसके अन्त विश्लेषण की ओर किसी आचार्य का ध्यान नहीं गया । इसका कारण सम्भवत यह है कि चम्पू काव्य की प्रतिष्ठा परवर्ती काल मे हुई फलत इस पर अधिक विचार नहीं किया गया ।

प्रसिद्ध जैन विद्वान प के भुजबली शास्त्री ने श्री दा रा बेन्द्रे के मत का आधार लेकर चम्पू शब्द को देश्य माना है आर इसे द्रविड भाषा का शब्द स्वीकार किया है ।[8] डॉ ए एन उपाध्ये और डॉ हीरालाल जैन का भी यही मत है कि सम्भव है यह आर्य भाषा का शब्द न होकर द्रविड भाषा का शब्द हो ।[9]

चम्पू काव्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए प्रसिद्ध जैन महाकवि हरिचन्द्र ने लिखा है -

---

1 साहित्य दर्पण 6/3-6 2 काव्यानुशासन 8/2 3 काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास (शब्दचित्रं वाच्यचित्रमं व्य त्ववरं स्मृतम्)
4 काव्यादर्श 1/1 5 वही 1/31 6 काव्यानुशासन 8-9 7 साहित्य दर्पण 6-336
8 मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 279 9 भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित पुरुदेव चम्पू का प्रधान सम्पादकीय

गद्यावली और पद्यावली दोनों मिलकर वैसे ही प्रमोद उत्पन्न करती हैं जैसे बाल्य और तारुण्य अवस्था के बीच कोई कन्या ।[10]

उपलब्ध चम्पू काव्यों मे त्रिविक्रम भट्ट का (समय 915 ई के लगभग) का नलचम्पू प्रथम और प्रधान है। इसके बाद सोमदेव का यशस्तिलक चम्पू आता है । परवर्ती काल मे चम्पू शैली अत्याधिक लोकप्रिय हुई और लगभग 250 चम्पू काव्य सस्कृत भाषा मे लिखे गये ।[11]

जैन संस्कृत चम्पू काव्यो में यशस्तिलक, जीवन्धर, पुरुदेव दयोदय वर्धमान, महावीर तीर्थङ्कर, जैनाचार्य विजय, भरतेश्वरभ्युदय आदि अत्यधिक प्रसिद्ध हैं । इनमें दयोदय चम्पू का स्थान निर्धारित करने से पूर्व इनका सक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक एव अपरिहार्य है ।

यशस्तिलक चम्पू

यशस्तिलक न केवल जैन सस्कृत चम्पू काव्यों अपितु सस्कृत के चम्पूकाव्यो मे अप्रतिम स्थान रखता है । इसके कर्ता आचार्य सोमदेव हैं, जिनका समय दसवीं शती स्वीकार किया गया है । सोमदेव का अन्य ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत है । सोमदेव राजनीति, साहित्य, जैनदर्शन, वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, षड्दर्शन आदि के अशेष ज्ञाता थे । इस बात का निदर्शन उनका यशस्तिलक चम्पू काव्य है । यशस्तिलक की कथावस्तु हिसा और अहिसा के द्वन्द्व की कहानी है। इसके आठ आश्वासो मे जैन कथानको मे अत्यधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय महाराज यशोधर की कथा वर्णित है । अतिम तीन आश्वासो में जैनधर्म के सिद्धान्त का विस्तार मे विवेचन किया गया है । अत इन अध्यायो का नाम उपासकाध्ययन दिया गया है । उपासकाध्ययन की कथावस्तु को 46 कल्पो मे विभक्त किया गया है । इसके माध्यम मे कवि ने बताया है कि जब आटे के मुर्गा की हिसा (का भाव) करने से लगातार छह जन्मो तक पशुयोनि मे भटकना पडा तो साक्षात् पशुहिसा का कितना विषाक्त परिणाम होगा ।

जीवन्धर चम्पू

दूसरा प्रसिद्ध जैन चम्पू काव्य महाकवि हरिचन्द्र की जीवन्धर चम्पू है । इसका समय 11-12 वी शताब्दी माना गया है । हरिचन्द्र कायस्थ थे पर अपने परीक्षा प्रधान गुण के कारण जैन हो गये थे । कदाचित् इसी कारण उन्होंने अपनी अन्य कृति 'धर्मशर्माभ्युदय' के चतुर्थ सर्ग मे सुसीमा नगरी के जैन राजा दशरथ और चार्वाक् मत्री सुमन्त्र के बीच हुए वार्तालाप के माध्यम से यह दिखाया कि कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्म को मानने मे स्वतन्त्र है ।[12]

जीवन्धर चम्पू के 11 लम्बो मे नामानुसार जैन पुराणो में प्रसिद्ध जीवन्धर की कथा वर्णित है ।

पुरुदेव चम्पू

13-14वीं शती के महाकवि अर्हद्दास का पुरुदेव चम्पू प्रसिद्ध संस्कृत चम्पू काव्य है । अर्हद्दास की अन्य रचनाए 'मुनिसुव्रत काव्य' और 'भव्यजन कण्ठाभरण' हैं । इसके 10 स्तबकों मे भगवान् ऋषभदेव की कथा विस्तार से वर्णित है ।

कुछ चम्पू काव्य उपलब्ध नहीं हैं । इनकी चर्चा हम बाद मे करेगे । उपलब्ध चम्पूकाव्यो से यह ज्ञात होता है कि 13-14वीं शती के बाद जैसा कि अन्य सस्कृत रचनाओ के सन्दर्भ मे कहा जाता है कि 'इनकी रचना अवरुद्ध

---

10 जीवन्धर चम्पू 1/9

11 विस्तृत विवेचन के लिए देखें-चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक परिशीलन - डॉ छविनाथ त्रिपाठी

12 धर्मशर्माभ्युदय की प्रशस्ति एवं-'महाकवि हरिचन्द्र एक अनुशीलन' लेखक- डॉ पन्नालाल सहित्याचार्य, पृष्ठ-10

सी हो गई ।' चम्पू शैली भी इसका अपवाद नहीं । 14 वीं शती के बाद बीसवीं सदी में आचार्य ज्ञानसागर महाराज का दयोदय चम्पू उपलब्ध होता है, इसकी विस्तृत चर्चा आगे करेंगे ही । बीसवीं शती के अन्य चम्पू काव्य हैं ।

महावीर तीर्थङ्कर चम्पू[13]

इसके रचियता परमानद वैद्य रत्न (पाण्डेय) हैं । भगवान् महावीर के 2500 में निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में इसका प्रकाशन हुआ था । परम्परा और नामानुरूप मूल लक्ष्य में हटकर लेखक ने इस चम्पू के लगभग 1/3 भाग में जैन धर्म और उसके विभिन्न सिद्धान्तों का विवेचन कर 24 तीर्थङ्करों का वर्णन किया है । आगे लगभग 1/3 भाग में महावीर स्वामी का विवेचन और उससे आगे लगभग 1/3 भाग में मुनि विद्यानन्द, ब्र कु कौशल, मुनि श्री सुशीलकुमार आदि का सचित्र परिचय दिया है । इस प्रकार लगभग 1/3 भाग में ही भगवान् महावीर का चरित्र चित्रित है ।

वर्धमान चम्पू[14]

वर्धमान चम्पू के रचियता स्व श्री मूलचन्द्र शास्त्री हैं जिनका जन्म मालथौन, जिला सागर (म प्र) मे हुआ था । आपके पिता का नाम सटोले एव माता का नाम सल्लो था ।[15] आपकी अन्य कृतियों मे 'वचनदूतम्,' 'दूतकाव्य एव लोकशाह' महाकाव्य अति प्रसिद्ध हैं ।

वर्धमान चम्पू मे तीर्थङ्कर महावीर के पाच कल्याणको का चम्पू शैली मे सुन्दर विवेचन किया गया है। रचना सरस और सरल है ।

पुण्याश्रव चम्पू

इसके रचियता श्री नागराज हैं, जिन्होने शक स 1253 में इसकी रचना की थी । श्री जुगल किशोर मुख्तार ने इसका उल्लेख किया है ।[16] पर आज तक अप्राप्त है । इसमें नामानुरूप पुण्य का महत्त्व बताने वाली कोई कथा होनी चाहिए ।

भारतचम्पू

भारत चम्पू का उल्लेख भी श्री मुख्तार जी ने किया है । यह दसवीं शती का चम्पू है, इसके रचियता आदि पम्प हैं ।[17]

भरतेश्वराभ्युदय चम्पू

इसके रचियता 13 वीं शती के प्रसिद्ध जैन विद्वान पं आशाधरजी हैं । श्री नाथूराम प्रेमी ने इसकी प्रति सोनागिर में होने का उल्लेख किया है ।[18] पर यह वहा नहीं मिली । नामानुरूप इसमे भरत की दिग्विजय (अभ्युदय) का वर्णन होना चाहिए ।

जैनाचार्य विजय चम्पू

इसके लेखक अज्ञात है । डॉ छविनाथ त्रिपाठी ने गवर्नमेन्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी मद्रास में इसकी प्रति होने का उल्लेख किया है ।[19] नामानुरूप इसमें जैनाचार्यों की विद्वत्ता एव अन्य सम्प्रदायों पर उनकी विजयो का वर्णन होना चाहिए।

---

13 प्रकाशक - राजेशकुमार पाण्डेय, जयकृष्ण कुटी, 1701 चादनी चौक, दिल्ली 1976

14 प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी (राजस्थान) ,1990

15 वचनदूतम् प्रशस्ति । 16 जैन साहित्य और इतिहास पर बृहद्प्रकाश, पृष्ठ 193/17 वही, पृष्ठ 489

चम्पू काव्यों की इस परम्परा में दयोदय चम्पू का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है । स्वय आचार्य श्री ने इसे चम्पू कहा है[20] । इस चम्पू की रचना आचार्य ज्ञानसागर जी ने की हैं । इसमें अहिसा व्रत का माहात्म्य बताने के लिए मृगसेन धीवर की कथा चम्पू शैली में वर्णित है ।

जैनाचार्य विजय, भरतेश्वराभ्युदय, भारत, पुण्यास्त्रव आदि चम्पू तो उपलब्ध नहीं है । महावीर तीर्थङ्कर चम्पू भाषा, शैली विषयवस्तु आदि किसी भी दृष्टि से दयोदय की समानता नहीं रखता । पुरुदेव आर जीवन्धर के कथानक क्रमश भगवान् ऋषभदेव ओर जीवन्धर की कथा से सम्बद्ध है, पूज्यता की दृष्टि से इनके कथानक अतिपूज्य हैं पर साधारण जनता में उतनी सरसता नही रखते जो दयोदय का कथानक रखता है । मृगमेन धीवर की कथा मृगसेन धीवर की ही नहीं अपितु हमारे समाज के आस-पास रहने वाले उन सभी की कथा है, जो हिसा के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं । ऐसे पात्र आपके आमपाम के परिवेश मे एक नहीं अनेक मिल जायेगे । यही कारण है कि जब पाठक दयोदय पढना प्रारम्भ करता है तो उमे पूरा पढकर ही दम लेता है । 'अग्रे कि भविष्यति, अग्रे कि भविष्यति' इस प्रकार उसकी निरन्तर जिज्ञासा बनी रहती हे। यशस्तिलक की कथावस्तु दयोदय जैसी ही है, अहिसा व्रत का माहात्म्य बताना उसका उद्देश्य है । एक आटे के मुर्गे की बलि देने (हिमा) मे किस प्रकार अनेक जन्मो तक पशुयोनियो में भटकना पडता है, यह इस कथा मे ज्ञात होता हे पर उसमे विस्तार इतना अधिक है कि अनेक स्थानो पर कथा का प्रवाह अवरुद्ध सा हो गया हे । विशेषकर बाद के 3 आश्वामो जिन्हें उपासकाध्ययन नाम दिया गया हो, मानों वह किसी कथाग्रन्थ को नहीं किसी धर्मग्रन्थ को पढ रहा हे ।

भाषा की दृष्टि मे विचार करे तो दयोदय की भाषा मे जो सरलता है वह अन्य चम्पुओ की भाषा मे नहीं। उनकी भाषा मे या तो समास नहीं हे या अत्यन्त कम शब्दो वाले समामो का प्रयोग हुआ है, जिसके कारण भाषा बोझिल नहीं होने पाई है । यशस्तिलक, पुरुदेव और जीवन्धर मे लम्बे-लम्बे ममासो ने भाषा को बोझिल सा बना दिया ह । भाषा के सरलता के कारण साधारण सस्कृत को जानने वाला व्यक्ति भी दयोदय के हार्द को भली भाति समझने मे सक्षम हो जाता है। इसका भी एक कारण हे कि आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने दयोदय की रचना सस्कृत भाषा का अल्पज्ञान रखने वालो के लिए की हे । 8-1-95 को परमपूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के शिष्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने दयोदय पर चर्चा के दोरान कहा था कि गुरुजी ने दयोदय की रचना प्रथमा के विद्यार्थियों के लिए सुदर्शनोदय मध्यमा के वीरोदय शास्त्री के और जयोदय आचार्य कक्षाओ के विद्यार्थियो हेतु लिखे हैं ।

शली की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण चम्पूकाव्य ह इसकी शैली मरल, सरस, और हृदयग्राही है ।

इम चम्पू की विशिष्टता का एक आर महत्त्वपूर्ण कारण इसमे उल्लिखित सूक्तिया हे । आचार्य श्री ने ऐसी सूक्तिया का प्रयोग किया हैं जिनका दैनिक जीवन मे भी प्रयोग होता हे ।अन्य चम्पुओ की उपेक्षा इसमें सूक्तियो का बाहुल्य भी हे । कुछ सूक्तिया द्रष्टव्य है ।

'अहिसा भूताना जगति विदित ब्रह्म परमम् ।'
'दुर्जनाना वच स्वादु हृदि हालाहल यथा ।
फणाया फणितो रत्न दष्ट्राया गरल महत् ।।'
'वाचयेत् स्वयमेवादौ लिखित्वा पत्रमात्मवान् ।
प्रेषयेत् पुनरन्यत्र परथाऽनर्थ उद्भवेत् ।।
'स्वगुण परदोष च गृहच्छिद्राणि चात्मन ।
वञ्चन चापमान च मतिमान्न प्रकाशयेत् ।।

इसी प्रकार का पृष्ठ 11,13, 82 पर भी सूक्तियां देखी जा सकती हैं । आचार्य श्री का ज्ञान अप्रतिम था । दयोदय में प्राचीन संस्कृत साहित्य में जैन धर्म विषयक उद्धरणों को कथा के माध्यम से जनमानस को बताकर आचार्य श्री ने अनूठा कार्य किया है । उन्होनें ऋग्वेद यजुर्वेद, अथर्ववेद, जाबालोपनिषद्, नारद परिव्राजकोपनिषद्, मैत्रेयोपनिषद् तुरीयोपनिषद्, सन्यासोपनिषद्, पद्म, पुराण स्कन्द पुराण, श्रीमद्भागवत आदि के जो उद्धरण दिये हैं, वे उनके अप्रतिम वैदिक ज्ञान को प्रकट करते हैं ।

जैन मुनि का जो स्वरूप उन्होनें एक श्लोक में दे दिया है वह अन्यत्र दुर्लभ है यथा-

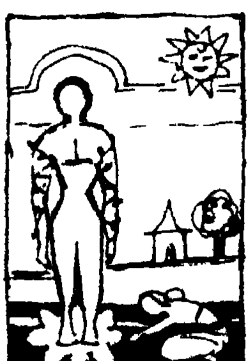
'पुष्पैर्नरोऽर्चा विदधातु कोऽपि कण्ठे कृपाणं प्रकरोतु कोऽपि ।
निहन्तु काम खलु सामधाम मनो मनोज्ञस्य तयोर्ललाम ॥ दयोदय 2/12

इस प्रकार भाषा की सरलता, कथानक की लोकप्रियता, सूक्ति प्रयोगकी चतुरता, रसो की सरसता आदि के आधार पर कहा जा सकता है कि दयोदय चम्पू उक्त गुणो के आधार पर क्वचित् - क्वचित् जैन सस्कृत चम्पूओ मे सर्वोच्च है ।

डॉ. कपूरचद जैन
अध्यक्ष सस्कृत विभाग
श्री कुन्दकुन्द जैन महाविद्यालय,
खतौली 251201 (उ प्र)

❑ ❑ ❑

18 जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ 137
19 चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक परिशीलन, पृष्ठ -247
20 दयोदय प्रथम लम्ब की प्रशस्ति



गुण / गुणी

* स्वभाव कठिनाई से छूटता/बदलता है ।
* कलहंस पक्षी और बगुले का स्वभाव एकसा नही होता ।
* गुणज्ञता संसार में पूज्य है और गुणी का सब जगह सम्मान होता है ।
* गुणों से सभी वशीभूत हो जाते हैं ।

समुद्रदत्त चरित्र में मौलिक तत्त्व विवेचन

मूलचन्द लुहाड़िया

महामनीषी महाकवि वाणीभूषण ब्र प भूरामलजी द्वारा विरचित काव्य ग्रंथ अनेक दृष्टियो से अद्वितीय है । उन्होंने शब्द, छंद व अलंकारों का अनूठे ढग से अपने ग्रथो में प्रयोग किया है । अनेक स्थलो पर न केवल हिंदी के तत्सम शब्दो का बल्कि उर्दू के शब्दो का भी प्रयोग कर उनका सस्कृतीकरण किया गया है । हिन्दी के छदो के साथ-साथ कव्वाली मे भी सस्कृत पद्यो की रचना महाकवि की अद्वितीयता सिद्ध करती है।

महाकवि प भूरामल जी का तत्त्व विवेचन भी मौलिक एव विशिष्ट रहा है । सुप्रसिद्ध अध्यात्मग्रथ समयसार व प्रवचनसार की टीकाओं मे उनके तत्त्व चितन की विशिष्टता का दर्शन होता है । अपने मौलिक ग्रथ सम्यक्त्वसार शतक में लेखक ने सम्यग्दर्शन विषयक अनेक विशिष्ट किन्तु प्रामाणिक अवधारणाए पाठको को प्रदान की है, जिन्हें वे मूल्यवान तात्त्विक सम्पत्ति के रूप मे पाते है । बहुमुखी प्रतिभा के धनी ब्र भूरामलजी ने व्यक्तिगत जीवन एव सामाजिक व्यवस्था में आई बुराइया, कुरीतियो एवं अधविश्वासो पर भी मर्म भेदी चोटे की हैं और एक क्रान्तद्रष्टा लेखक के रूप में सामने आए हैं । इस प्रकार उनके साहित्य में काव्य रचना, तत्त्व विवेचन सामाजिक मूल्यो की स्थापना अनेक सभी क्षेत्रो मे मौलिकता उनकी जीवत विशिष्टता रही ह । उन्होने मानो लीक से हटकर ही सोचा है और लीक से हटकर ही लिखा है । लीक से हटने से मेरा तात्पर्य ह कि उन्होने परम्परागत लीको के बीच ही अपनी विशिष्ट लीको का निर्माण किया है । अत वे लीका से नहीं हटते हुए, लीको के बीच मे चलते हुए भी लीका से हटकर चलते दिखाई पडते हैं । उनके साहित्य मे उनका यह वैशिष्ट्य सर्वत्र परिलक्षित होता ह ।

समुद्रदत्त चरित्र यद्यपि एक कथा काव्य ग्रथ हे किन्तु लेखक ने उसमे पाठको के लिए यथास्थान मौलिक तत्त्व चिंतन एवं मंथन से सृत विशिष्ट तत्त्व विवेचन रूप नवनीत प्रस्तुत कर अपने चरित्रगत वैशिष्ट्य का परिचय दिया हे । इस प्रसग मे कतिपय स्थल, जहाँ लेखक ने मौलिक तत्त्व विवेचन जो अन्यत्र देखने मे नहीं आया किया हे प्रस्तुत है ।

चतुर्थ सर्ग मे पृ 49 मे लेखक ने तीनो लिगो मे उत्पत्ति के कारण दिए हैं । पुरुष स्त्री एव नपुसक वेद के उदय मे होने वाले परिणामो का तो वर्णन मिलता है किन्तु इन तीन लिगो के प्राप्त करने के कारणो का ऐसा वर्णन मौलिक है यथा

यह जीव स्वल्प काम वासना से पुरुष शरीर धारी बनता हे । उत्कृष्ट काम वासना मे स्त्री बनता है। घोर विपरीता काम वासना मे नपुसकपन को प्राप्त होता है । (4/30) लेखक का उक्त चितन मौलिक ह ।

अष्टम सर्ग में मुनिराज के द्वारा दिखाए उपदेश का वर्णन है । प्रारभ ही मे द्रव्यो का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

उन द्रव्यो मे से आकाश द्रव्य तो रङ्गभूमि का काम करता है और काम द्रव्य नाना प्रकार की चेष्टा कराने वाला है । अधर्म द्रव्य पुन क्रिया शुरू करने वाला ह तथा समयसार नाटक मे समयसार कलशो की उत्थानिका तथा रग भूमि मे विभिन्न पात्रो द्वारा अभिनय के रूपक का वर्णन आया है । किन्तु वहा यह वर्णन सात तत्वो को पात्र बना कर किया गया है जबकि यहा लेखक ने छ द्रव्यो को रगभूमि व पात्र बनाए हैं । यह लेखक की अभिनव कल्पना है । आगे का वर्णन देखिए कितना सटीक है ।

जीव और पुद्गल ये दोनो आपस मे मिलकर एक दूसरे के रूप को बदलकर स्वागधर करके नाटक खेलने वाले हैं इसी का नाम जगत् या ससार है । जीव पुद्गल का तथा पुद्गल जीव का स्वाग भरकर इस प्रकार आपस मे रूप बदलकर खेले जा रहे नाटक का ही नाम ससार है ।

जिस प्रकार हल्दी और चूना दोनो मिलकर रोजी एक तीसरी वस्तु बन जाती है वैसे ही चेतन जीव और अचेतन पुद्गल ये दोनों मिलकर एक अलग ही सृष्टि बन जाती है । इन दोनो की बनावटी चेष्टाओं से मनुष्य, नारकी देव और पशु इस तरह चार भेदवाली सृष्टि बनी हुई है ।

जीव एवं पुद्गल के संयोग से उत्पन्न विभिन्न नर नारकादि पर्यायों एव उन पर्यायो मे उस सयोगी द्रव्य द्वारा किए जा रहे अभिनय का ही नाम ससार है ।

आगे जीव के साथ अहकारादि के कारण कर्म बध की चर्चा करते हुए लेखक ने यह शंका उठाई है कि जीव जिस कर्म को बांधता है वह अचेतन होते हुए जीव को अपना फल कसे देता ह । इसके समाधान मे कहा हे -

जिस प्रकार किया हुआ भोजन ठीक समय पर परिपाक होकर नियत काल तक फल देता है वैसे ही अचेतन कर्म भी चेतन जीव को अपना फल देता है, कर्म फल के लिए भाजन का उदाहरण ठीक प्रकार से लागू होता है। जेमे तीव्र मद मध्यम जठराग्नि उचित मात्रा मे वह भोजन को पचाती है और वह भोजन रस रक्तादि रूप से यथोचित मात्रा में विभक्त होकर हमे फल देता हे । इमी प्रकार जिस तीव्र मद या मध्यम कषाय भाव से यह जीव कर्म वर्ग या समूह को ग्रहण करता है वह यथोचित रूप से ज्ञानावरणादि रूप से विभक्त होकर यथोचित काल तक यथोचित मात्रा मे आत्मा पर अपना प्रभाव डालता हे । इस प्रकार कर्म बध एव कर्म फल की प्रक्रिया भोजन के उदाहरण से सटीक वर्णन ह ।

आगे लेखक सत्तागत कर्म मे उत्कर्षण अपकर्षण सक्रमणादि रूप परिवर्तन का वर्णन करते हुए लिखते हैं -

हे गुणो के भण्डार ! यह भी याद रक्खो कि किसी ने गुस्से मे आकर विष खाया और बाद मे उसका विचार बदल गया तो भार से उसके प्रतिकार की दवा खाकर उसके असर को न कुछ सरीखा बहुत ही कम कर सकता है। प्रत्युत गुस्से मे भर जाय ता दुगुना विष खाकर उसे जोरदार भी बना सकता हे । अथवा मन्त्रित जलादि पीकर उस जहर का अमृत भी कर सकता ह । इसी प्रकार कर्मों का भी हाल है । मान लो एक आदमी ने कुटिल परिणाम करके पाप बन्ध किया परन्तु अनन्तर ही परिणाम ठीक हो गए तो पश्चात्तापादि करके उसके असर को भी कम कर सकता है । ओर अगर उसी कुटिलता का समर्थन करता रहा तो उसे ओर भी जोरदार बना सकता है । अगर प्रायश्चित करके उसके ऊपर जम जाय तो उसे पुण्य रूप मे भी बदला जा सकता हे । कम असर कर देने का नाम अपकर्षण बढा देने का नाम उत्कर्षण एव असर को बदल डालने का नाम सक्रमण हैं । जीव के बान्धे हुए सत्तागत कर्म में ये सब दशाए परिणामो के अनुसार होती रहती है । जिससे कि कर्मो का कभी तीव्र और कभी मन्द उदय होता हे ।

विष भक्षण एव उसके प्रभाव मे तीव्रता मदता तथा औषधि के द्वारा बदलाव का दृष्टात कर्मों की परिणामो के आधार पर उत्कर्षण अपकर्षण एव सक्रमण अवस्थाओ का ठीक प्रकार दिग्दर्शन करता ह । लेखक का यह वर्णन मौलिक है एव अत्यत सटीक हे ।

कर्मों के उदय को व्यर्थ करने के लिए जीव क्या पुरुषार्थ करे इसका बताते हुए लेखक कहते हे -

भात बनकर इधर तैयार हुआ कि खाने वाला उसे खाने लगता ह । भात उसे कहता नहीं कि तू मुझे खाले परन्तु ऐसा ही निमित्त सबध है । हाँ, जो व्रती होता ह जिसने कि भोजन का त्याग कर दिया ह और जो अपने सकल्प पर दृढ है, वह भोजन होने पर भी और भूख होने पर भी भोजन के लिए प्रवृत्त नही होता, अपने उपयोग को नही बिगाडता । ज्ञान तो कर्मों का भी ससारी आत्मा के प्रति ऐसा ही हिसाब है । कर्म का उदय होता ह और मनचला अधीर जीव उसके अनुसार होकर स्वयं वैसी ही चेष्टा करने लगता ह । हा जो दृढ मन वाला होता हे वह उसे धीरता से सहन कर जाता है । यही प्रयत्न का अर्थ है । समता पूर्वक कर्म फल भोगते हुए आकुलित नहीं होने वाले जीव को कर्म बिना फल दिए ही निर्जरित हो जाता है । अविपाक निर्जरा के इस सिद्धान्त को समझाने के लिए भात का

उदाहरण लेखक की अपनी मौलिक सूझ है । उदाहरण इतना जीवत है कि पाठक को अविपाक निर्जरा का सिद्धात ठीक तरह से समझ में आजाता है ।

जैन आगम में सर्वत्र उपयोग के तीन भेद अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का वर्णन है । लेखक ने इस ग्रंथ में उपयोग के चार भेदों का वर्णन अपने मौलिक चिंतन के आधार पर किया है । ये चार उपयोग हैं अशुभोपयोग, शुभोपयोग, शुद्धोपयोग और परमोपयोग । चार उपयोगो के स्वामियो के रूप में जीवों के तीन के स्थान पर चार भेद किए है ।

छहढालाकार ने जीव तीन प्रकार के बताए हैं बहिरात्मा, अंतरात्मा, व परमात्मा । इनकी कथचित क्रमश तीन उपयोगो का स्वामी माना जाता है ।

अशुभोपयोग	-	बहिरात्मा
शुभोपयोग	-	अन्तरात्मा
शुद्धोपयोग	-	परमात्मा

लेखक के अनुसार उपयोग के चार भेद और उनके स्वामी निम्न है -

अशुभोपयोग		बहिरात्मा
शुभोपयाग		अन्तरात्मा
शुद्धोपयोग	-	महात्मा
परमोपयाग	-	परमात्मा

लेखक ने शुद्धोपयोग के ही दो भेद किए है ।

शुद्धोपयोग एव परमोपयोग और शुद्धोपयाग के स्वामी को महात्मा व परमोपयोग के स्वामी का नाम परमात्मा बताया है । उपयाग के एव जीवो के लेखक के द्वारा वर्णित चार भेद वस्तुत अधिक उपयुक्त लगते है । छहढाला कार ने अतरात्मा के उत्तम मध्यम जघन्य तीन भेद किए है । इनमे मध्यम व जघन्य अतरात्मा शुभोपयोग के स्वामी है और उत्कृष्ट अतरात्मा को लेखक ने महात्मा कहा है । शुद्धोपयोग अतरात्मा दशा मे ही प्राप्त हो जाता है अत लेखक ने परमात्मा के उपयाग को परमोपयाग की सज्ञा दी है । गहराई से चितन करने पर हमे लगता है कि लेखक द्वारा किए गए उपयाग के एव जीवो के चार भेद अधिक युक्तियुक्त एव समाधान परक है । लेखक का यह मौलिक चितन उनके बृहत् आगमाभ्यास एव गहन चितनाभ्यास पर प्रकाश डालता है ।

आगे लेखक ने अपने चितन की मथनी से मथ कर निकाले गए नवनीत के समान उपयोग के साथ शुभ एव अशुभयोगो की व्यवस्था दी है । यद्यपि तत्वार्थसूत्र कार ने भी मन वचन काय की शुभ प्रवृत्ति को शुभयोग एव अशुभप्रवृत्ति को अशुभयोग बताते हुए उनको क्रमश पुण्य व पाप बध का कारण बताया है । तथापि लेखक ने उन शुभ और अशुभयोगो के साथ शुभोपयोगो व अशुभोपयोग के सबध की ऐसी मौलिक व्यवस्था दी है जो स्वाध्यायी बधुओं की अनेक शकाओ का निवारण कर देती है । देहात्म बुद्धि पाप एव विषयो की प्रवृत्ति के परिणामो को अशुभोपयोग तथा सच्चे देव शास्त्र गुरु की भक्ति एव वैराग्य व व्रत रूप परिणामो को शुभोपयोग कहा जाता है । यहा यह शका होती है कि जिस समय शुभोपयोगी सम्यग् दृष्टि जीव इन्द्रिय विषयो मे प्रवृत्ति करता है क्योंकि वह उस समय शुभोपयोगी नहीं रहकर अशुभोपयोगी बन जाता है और इसी प्रकार जब कभी अशुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि जीव देव शास्त्र गुरु की भक्ति मे लगा हो तो क्या वह उस समय अशुभोपयोगी न रहकर शुभोपयोगी बन जाता है ।

शुभोपयोग के साथ साथ शुभयोग भी हो तो उससे हर समय प्रशस्त पुण्य का बध होता है । जिसके उदय मे इस जीव को इन्द्रादि पद की प्राप्ति हुआ करती है । अशुभोपयोग वाला जीव यदि शुभ योग करता है तो उससे जो पुण्य बध होता है उसके द्वारा वह भोगो को अवश्य प्राप्त करता है परन्तु अपनी दुराशा के वश मे होकर उनमे लीन होता हुआ वह आगे के लिए पाप का उपार्जन करके बुरी तरह से अध, पतन को प्राप्त होता है । परन्तु जब

अशुभोपयोग के साथ अशुभयोग होता है तो उसमे घोर पाप कर्म का बंध पडता है । जिसके उदय में इस जीव को दु ख के ऊपर दु ख भोगना पड़ता है तथा बहुत काल तक भी उससे छुटकारा नहीं हो जाता है । शुभोपयोगी की बुद्धि प्रथम तो अशुभयोग जाती ही नहीं । यदि कभी चली भी गई तो उससे जो पाप कर्म बधता है वह थोड़े समय दुख देकर शीघ्र निकल जाता है । अन्त में सुख ही होता है । इस प्रकार योग के साथ उपयोग के सम्बन्ध से जीव की निम्न स्थितियाँ बनती है ।

शुभोपयोग के साथ शुभयोग
शुभोपयोग के साथ अशुभयोग
अशुभोपयोग के साथ अशुभयोग
अशुभोपयोग के साथ शुभ योग

आगे लेखक ने ध्यान का वर्णन करते हुए उपयोग के साथ होने वाले ध्यान के बारे मे एक मौलिक व्यवस्था दी है ।

जहां शुभोपयोग के साथ साथ शुभयोग का भी मेल हो अर्थात् इस शरीर मे अपनी आत्मा को भिन्न मानते हुए यह जीव लोगो का भला करने में तत्पर हो उसका नाम धर्म्य ध्यान है । परन्तु अशुभोपयोग के साथ जो इन्द्रिय दमनादि रूप ध्यान मे जो मन लगाया जाता है वह धर्म्य ध्यान सा प्रतीत होता है तो भी वह धर्म्य ध्यान नहीं होता, क्योंकि जो शरीर को ही आत्मा मान रहा है, उसका इन्द्रियो का दमन करना आत्मघात रूप ठहरता है और आत्मघात घोर रौद्र ध्यान होता है -

शुक्ल ध्यान की प्राप्ति के उपायो का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं -

इस शुक्ल ध्यान की प्राप्ति के लिए दृढ संहनन के धारक मनुष्य को निम्न बातो की आवश्यकता है ।
१ वह और सभी प्रकार के विकल्पो का त्याग कर दे ।
२ अपने आपके अतिरिक्त सभी बाहरी वस्तुओ का छोड दे ।
३ नींद भूख आदि को जीत लेना ।
४ एकात मे दृढ लेना
५ साम्य भाव को प्राप्त करना ।

आगे लेखक शुक्ल ध्यान के पाप का बताते हुए लिखते है ।

हे भैय्या, सुनो इस शुक्ल ध्यान रूप अग्नि का बिना इस आत्मा की वह राग द्वेष रूप चिकनाई नष्ट होकर इसकी कर्म रूप कालिमा और किस प्रकार दूर हो सकती है । अग्नि के द्वारा धातु की चिकनाई व कालिमा दूर हो जाती है उसी प्रकार ध्यान के द्वारा राग द्वेष रूप चिकनाई व कर्म कालिमा दूर हो जाती है । लेखक ने यह अभिनव उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

लेखक की मौलिक सूझ देखिए कि उन्होंने त्याग के सात्विक राजस व तामस ये तीन भेद करते जो वर्णन किया है वह युक्तियुक्त है । वर्णन इस प्रकार है -

चूहो को सहज रूप से पकडने के लिए जैसे बिलाव मान बैठा रहता है वैसे ही मन मे छल कपट रख कर जो सिर्फ ऊपर से त्याग किया जाता है वह तामस त्याग होता है । यह तामस त्याग घोर दु ख देने वाला है ।

एक त्याग वह होता है जोकि अपने आपको उन्नत समझते हुए बडप्पन के लिए किया जाता है । उसे राजस त्याग कहते हैं । यह त्याग बुरी वासना लिए हुए नहीं होने के कारण निष्पाप होता है किन्तु केवल पुण्य बध का कारण है मुक्ति का नहीं ।

यथैव तन्वा वचनेन चेतस्कारेण चेत्स्वीक्रियते तथेत· ।
स सात्विको भूवलयेऽनपाय, पूर्तिंगत· सिद्धिसमागमाय ॥ (स. 8/47)

किन्तु जो त्याग शरीर वचन और मन को सरल करके किसी भी प्रकार की भावना रहित सच्चे विचार से स्वीकार किया जाता है, वह सात्विक होता है, जो कि इस भूतव पर निर्दोष रूप से अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचने की सिद्धि देने वाला है ।

सात्त्विक त्याग के प्रसग मे ममकार को चार भेदो का वर्णन लेखक के मौलिक चिंतन का एक ओर उदाहरण है । पहला ममकार वह ह जिससे जीव अन्याय का पक्ष लेकर अभक्ष्य भक्षण मे प्रवृत्त हो । दूसरा वह है जिससे बुरे कामो की आर मन का जाना रूक जाए और अच्छे कार्यो मे मन सलग्न रहे । तीसरे ममकार के कारण सत्प्रवृत्ति की व्यग्रता बनी रहती है जिससे स्वरूप (आत्मावलम्बी) नहीं बन सकता । चौथे ममकार के कारण वह आत्मा व लम्बी होकर भी उस पर दृढता के साथ नहीं रह सकता । आगे उक्त चारो ममकारो के उदाहरण भी दिए हैं जो अत्यंत सटीक एव हृदय ग्राही है । जेसे एक आदमी मिट्टी खाने मे लगा होने से पाडुरोग से ग्रसित होकर अशक्त हो गया किन्तु फिर भी मिट्टी खाना नहीं छोडता है । फिर किसी वैद्य के कहने से मिट्टी खाना तो छोड देता है, परन्तु अब उसके बदले मडर आदि औषधि खाना चाहता है । ओषधि लेना भी बद कर दिय फिर भी अभी पहले सरीखी शक्ति न होने से अपने कारोबार को सभाल नहीं पाता हे ओर आरम्भ करना चाहता हे । अब कुछ दिन बाद थोडी शक्ति आने पर अपना काम भी करने लग गया किन्तु बीच-बीच मे कुछ थकान का अनुभव होने पर ओर बातो मे मन लगाने लगता है । इस प्रकार उक्त चारों बातो में मन लगाने लगाता है । इस प्रकार उक्त चारो ममकारो का क्रमश स्पष्टीकरण किया गया है । जब चारो ही प्रकार के ममकार से रहित होकर पूर्ण स्वस्थ एव कृतकृत्य हो जाता ह तो दिव्यज्ञान को प्राप्त करते हुए अखड सतोष को प्राप्त कर लेता है । पाठक देखेगे कि यह ममकार का वर्णन कितना अनूठा और मौलिक है । तत्त्व विवेचन के क्षेत्र मे जो मौलिकता एव अनूठापन ब्र भूरामल जी के साहित्य मे मिलता हे । वह उनके गहन चितन एव तत्त्वालोकन का ही प्रतिफल है । ऐसे महा मनीषी प्रतिभावान् साहित्यकार के प्रति हम सब श्रद्धापूर्वक नमन करते हे ।

मूलचन्द लुहाडिया
मदनगज - किशनगढ (राज)

❑ ❑ ❑

सुदर्शनोदय में वर्णित ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप

क्षुल्लक- श्री गम्भीरसागर जी

जैन दर्शनानुसार इस सृष्टि के मानवो का दो रूप में विभाजित किया गया है । एक म्लेच्छ, दूसरे आर्य । इन दोनो के क्षेत्र, जाति एव गुणो के अपेक्षा तीन भेद हैं । इस लेख मे आर्यों को प्रासंगिक किया जा रहा है । उनमें भी गुणार्य का प्रसग यहाँ वर्णित है । गुणार्य के भी दो भेद हैं । एक अवरति दूसरा विरति । विरति के भी दो भेद -एक सकल विरति (महाव्रत रूप मुनिदशा) दूसरी - विकल विरति (एक देश रूप) इन दोनो विरति मे से भी हमारे लेख का विषय देशाव्रती का है । अत उसी के भेद प्रभेदो का विश्लेषण, महाकवि भूरामल द्वारा रचित सुदर्शनोदय महाकाव्य मे जिस प्रकार से वर्णित है उसी का यथाक्रम यहाँ लिपिबद्ध किया जा रहा है । प्रस्तुत विषय की न तो समीक्षा कर रहा हूँ । न तुलनात्मक रूप दे रहा हूँ - यह कार्य तो विद्वान लोग करेगे ।

सुदर्शनोदय महाकाव्य मे एक वेश्या द्वारा स्वकल्याण का मार्ग पूछे जाने पर सुदर्शन मुनि द्वारा उपदेश के रूप मे विरति श्रावक के ग्यारह रूप अर्थात श्रावक की ग्यारह श्रेणियाँ बताई है । श्रेणियो का नाम लेखक ने इसमे नही दिया है -लेकिन इनके स्वरूप का कथन जब आगम मे देखते है तो यह ग्यारह प्रतिमा का स्वरूप प्रतीत होता है। महाकवि ने ग्यारह प्रतिमाओ का स्वरूप निम्न प्रकार व्यक्त किया है ।

१ दर्शन प्रतिमा (प्रथम सीढ़ी)

मास, अचार, नवनीत बिना छना जल, वर्षा ऋतु मे शाक पत्र, बड, पीपल, गूलर, अजीर, पिलरवन, रात्रि भोजन, चमडे मे रखे हुए तेल घृतादि, रसद्विदल (चना मूग उडदादि दो दलवाले अनाज) कच्चे दूध, दही, और छाछ के साथ,मद्य, मधु भाग-तमाकू सुलफा, गाजा आदि अभक्ष्य वस्तु सर्वथा जीवन पर्यन्त के लिये त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि इनमे त्रस एव स्थावर जीवो का बाहुल्य पाया जाता है । इनका सेवन करने मे उनकी विराधना निश्चित रूप से होती है । ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा है -उनकी आज्ञा मानकर इन्हें त्याग करने पर प्रथम सीढी वाला श्रावक माना जाता है । (सर्ग2, श्लोक 55 से 59)

२ व्रत प्रतिमा

गुणानुराग पर्वक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अतिथि को शुद्ध भोजन कराकर स्वय भोजन करे, तथा स्वपर का हृदय से विचार करना दूसरी सीढी कही गई है ।

यहाँ पर हिन्दी भावार्थ मे लेखक ने अतिथि सविभाग को अन्त दीपक मानकर इसके पूर्व ग्यारह व्रतो को पालन करने का निर्देश दिया है - (सर्ग 1 श्लोक 60)

इस भावार्थ से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक आगम वर्णित व्रत प्रतिमा बारह व्रत रूप से परिचित था लेकिन लेखक ने कवि होने के नाते-अन्त दीपक रूप में एक व्रत ग्रहण करने से शेषव्रतो को ग्रहण करने का सकेत कविता की विधानुसार दे दिया है ।

३ सामयिक प्रतिमा

दिन की तीनों संध्याओं में अर्थात् प्रात काल दिन के मध्य भाग मे, एव साय काल में परमात्मा का स्मरण करें, क्योंकि परमात्मा के गुणो का स्मरण ही जीव के लिए वास्तविक रूप से मगलकारी है । इस स्मरण को तीनो सध्याओ में नियम रूप से जीवन पर्यन्त करने वाले को तीसरी सीढी वाला कहा है ।

४ प्रोषधोपवास प्रतिमा

जो पर्व के दिनों में (अष्टमी चतुर्दशी) अपनी इन्द्रियों को जीतते हुए प्रशम भाव धारण कर तथा मन को अयोग्य स्थान में विचरण से रोककर उपवास (चारों प्रकार के आहार का त्याग) करे, उसे चौथी सीढी वाला कहते है - (सर्ग 9, श्लोक 62)

५ सचित्त त्याग प्रतिमा

जा जीवन निर्वाह हेतु फल और पत्रादि वनस्पतियों को अग्नि पक्व ही खायेगा । उसे पाँचवी सीढी वाला कहा है ।

६ रात्रिभुक्ति त्याग

जो दिन मे दो बार से अधिक भाजन न करें उसमें भी एक बार भोजन करने का अभ्यास करे तथा रात्रि भोजन का त्याग करे अथात् निशाचरता का त्याग करे - (सर्ग9, श्लोक-64) इसे छठी सीढी वाला श्रावक कहा हे ।

७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा

आत्मा में मन को स्थिर करने के लिए सर्व प्रकार के सेवन का त्याग करे - क्योंकि काम सेवन से मन एव इन्द्रियाँ स्वच्छद प्रवृत्ति हो जाती है । अर्थात् सर्व प्रकार से काम रूप क्रियाओ को त्याग कने वालो को सातवी सीढी वाला कहते हैं (सर्ग9, श्लेक 65)

८ आरम्भ त्याग प्रतिमा

जितेन्द्रिय व्यक्ति को बाह्य वस्तुओं का सचय करने के लिए खेती व्यापार आदि को आरम्भ त्यागकर आत्मिक गुणों को प्राप्त करने के उद्योग में तत्पर रहने वाले को आठवी सीढी होती हे । (सर्ग 9, श्लोक 66)

९ परिग्रह त्याग प्रतिमा

जब मेरे इस शरीर में भी मेरी आत्मा का कुछ तत्त्व नहीं है तब बाहरी धनादिक पदार्थों से मेरा क्या प्रयोजन ऐसा विचार कर पूर्वोपार्जित धनादिक मे विरक्ति भाव धारण कर त्याग देना चाहिए, यह श्रावक की नवमी सीढी है (सर्ग 9, श्लोक 67)

१० अनुमति त्याग प्रतिमा

जिसका मन ससार के कार्यों मे कदाचित् भी नहीं लग रहा हे, वह दूसरो को सासारिक कार्यों के करने मे अपनी अनुमति नहीं देता है, अपना सारा समय परमात्मा में लगाकर परम तत्व का चिन्तवन करता है । वह दसवी सीढी वाला है (सर्ग 9, श्लोक 68)

११ उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा

जो यावज्जीवन अनुद्दिष्ट भोजन को ग्रहण करता हे अर्थात् अपने लिए बनाये गये भाजन को लेने त्यागी बन जाता हे और अपने आचार की सिद्धि के लिए अपने चित्त को लोकमार्ग मे नहीं लगाता, तब उसे उद्दिष्ट त्याग रूप ग्यारहवी सीढी पर अवस्थित जानना चाहिए ।

इस प्रकार से श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन सुदर्शनादय महाकाव्य मे जेसा किया गया वेसा ही यहाँ यथावत् प्रस्तुत किया गया ।

पू. क्षु श्री गम्भीरसागरजी महाराज

सुदर्शनोदय में काव्यगत वैशिष्ट्य

डॉ शिवसागर त्रिपाठी

प्रास्ताविक

भारत का गौरवमय इतिहास कृषि असि-मसि की समृद्ध धाराओ से ओतप्रोत है । इस कृषिप्रधान देश के कृषक जन जन का भरण करते है, वीर योद्धा इस मातृभूमि के कण कण की एव मनीषी विद्वान् अपना क्षण-क्षण साहित्यसेवा में व्यतीत करते हैं । तभी तो यह दिव्य देश प्रत्येक क्षेत्र में प्राचीन काल से ही विश्व का अग्रणी रहा है -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा . ॥

भारतीय मानचित्र मे राजस्थान होने के कारण यह राजस्थान कृषि मे भले ही कुछ पीछे हो, पर दुर्दान्त तर्जना एव कोमलकान्त सर्जना मे किसी से कम नहीं है । यद्यपि जैन धर्म के प्रचारार्थ जनभाषान्त की अपेक्षा मे प्राकृत अपभ्रंशादि का आश्रय लिया गया, पर साहित्यिक भाषा के रूप में सस्कृत की प्रतिष्ठा मे जैन विद्वान आकर्षित हुए और स्वय भी प्रतिष्ठित हुए ।आदिकवि रविषेण हरिभद्रसूरि, सिद्धर्षि सूरि, अमृतचन्द सूरि, आचार्य राममेन, प आशाधर , सोमप्रभाचार्य, जिनप्रभसूरि सकल कीर्ति, शुभचन्द्र, सोमकीर्ति, वादिराज आदि की परम्परा मे, वर्तमान शताब्दी के आचार्य ज्ञानसागर का नाम उल्लेखनीय है, जो जयपुर मण्डलान्तर्गत राणौली ग्राम के बाल ब्रह्मचारी भूरामल शास्त्री खण्डेलवाल से अभिन्न है। स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के इस स्नातक की क्षुल्लक दीक्षा आचार्य शिवसागर के सान्निध्य मे सम्पन्न हुई। आपकी बहु आयामी प्रतिभा ने सस्कृत और हिन्दी मे प्रचुर रचनाए लिखी । सस्कृत रचनाओ मे जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय महाकाव्य, दयादय चम्पू, भद्रोदय या समुद्रदत्त चरित, मुनिमनारञ्जनाशीति तथा दर्शन ग्रन्थ प्रवचनसार और सम्यक्त्वसार शतक सुप्रसिद्ध है जो जीवन के अमूल्य साधनामय क्षणों का प्रतिफलन है ।

भूयोविद्यता

भूयोविद्य आचार्य श्री के वेदोपनिषद्, पुराण व्याकरण ज्योतिष, स्वास्थ्य विज्ञान, राजनीति, मनोविज्ञान आदि विविध विषयो का ज्ञान था । उपर्युक्त रचनाओ मे कवि का यह शास्त्रीय पाण्डित्य बुद्धिचातुर्य, प्रातिभज्ञान, गहन अध्ययन, सतत स्वाध्याय और मौलिक सर्जन झलकता है और छलकता भी है ।

कथावस्तु

विवेच्य महाकाव्य, सुदर्शनोदय मे चम्पापुर नगरस्थ सेठ सुदर्शन का कौतुकपूर्ण आख्यान चरित काव्य के सूत्र में चित्रित है । इसके प्रथम सर्ग में जम्बूद्वीपवर्ती अगदेश की चम्पापुरी के राजा धात्रीवाहन का वर्णन है । द्वितीय मे तत्रत्य सेठ वृषभदास की पत्नी जिनमति द्वारा पाच स्वप्न देखने और उनके फलो का वर्णन है । तृतीय में पुत्र सुदर्शन का जन्म, कौमार्य और सागर दत्त की पुत्री मनोरमा से विवाह का वर्णन है । पञ्चम मे कपिला (ब्राह्मणी) द्वारा सुदर्शन के प्रति किये गए छल कपट का वर्णन है । षष्ठ में सुदर्शन के लिए रानी अभयमती के चित्त मे काम विकारोत्पत्ति का वर्णन है । अपने प्रयत्न मे असफल होने पर 'त्रियाचरित' वश सुदर्शन को पकड़वाने और राजा द्वारा उसे मारने के आदेश दिये जाने का वर्णन है । अष्टम में सुदर्शन और मनोरमा की दीक्षा का वर्णन है । अन्तिम नवम सर्ग मे वेश्या द्वारा सुदर्शन पर जाल फैलाना, असफल होने पर सुदर्शन का सम्बोधित करना, वेश्या का आर्यिका बनना, यक्षी के घोर उपसर्गों के मध्य मुनिराज सुदर्शन केकैवल्य या मोक्षलक्ष्मी प्राप्ति का वर्णन है ।

स्रोत एव वैशिष्ट्य

प्राय काव्यों के उपजीव्य इतिहास पुराण ग्रन्थ रहे हैं । इस आख्यान का स्रोत भी हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश का सुभगगोपाल आख्यान है । इस आख्यान का वैशिष्ट्य बताते हुए आचार्य नयनन्दि ने लिखा है कि रामकथा मे सीता का वियोग है । महाभारत मे पाण्डव-कौरव युद्ध है तथा अन्य काव्यों में जार, चार भील आदि का वर्णन होता है पर सुदर्शन चरित्र निर्दुष्ट है । (सुद प्रस्तावना पृष्ठ 31)

आचार्य जी ने इस आख्यान मे आवश्यक परिवर्तन - परिवर्धन भी प्रस्तुत किये है । अत इसे शतप्रतिशत शुद्ध सत्काव्य कहा गया है ।

इस दृष्टि से ऋषभदास सेठ जी को मुनिराज का धर्मोपदेश सुदर्शन गृहस्थ धर्मनिरूपण मुनिराज सुदर्शन द्वारा मुनिधर्म के आदर्शों का चित्रण तथा वेश्या को लक्ष्य कर श्रावक धर्मोपदेश तथा नवम सर्ग मे अक्ष्याभक्ष्य निर्देश आदि उदाहरणीय है । इस प्रकार जहा जैन आचार और दर्शन जैसे नीरस और गूढ विषय का कान्तासम्मित शैली मे प्रतिपादन किया गया है । शास्त्र और काव्य का यह समन्वय प्रशस्य है । वक्रोक्तिजीवितकार ने शास्त्र और काव्य के विषय मे लिखा है -

कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम् ।
आह्लादामृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ।।

अत्रत्य प्रतिपादित ज्ञानोपदेश क्रियानुमत है, क्योंकि 'ज्ञान भार क्रिया विना । वस्तुत यह एक ऐसे मनीषी की रचना है, जिसने गृहदशा मे गार्हस्थ्य का मुनिदशा में मुनित्व का तथा आचार्य स्थिति मे आचार्यत्व एव सल्लेखनाविधि समग्र मुनि चर्या का पालन किया था ।

महाकाव्य लक्षण एव संघटन

आचार्य ज्ञानसागर की रचनाओ मे महाकाव्य का अभिधान मात्र 'जयोदय' को दिया गया है, क्योंकि उससे 28 सर्ग है । अन्य दो महाकाव्य वीरोदय तथा सुदर्शनोदय को मात्र काव्य लिखा गया है । इनमें क्रमश 22 तथा 9 सर्ग है । काव्य शास्त्रियो ने अष्ट सर्गों तक के काव्य को महाकाव्य कहा है पर महाकाव्यत्व के लिए अन्य लक्षण भी विचारणीय होते हैं । साहित्य दर्पण मे आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य सज्जन प्रशसा, दुर्जननिन्दा का यथावत् उपनिबन्धन देशविशेष या प्रख्यातवश के राजा के रूप मे धीरोदात्तनायकत्व शृङ्गार वीर, शान्त रसो मे से अन्यतम का प्रामुख्य, नाटकीय सन्धियो का समन्वय, पुरुषार्थ चतुष्टय का निरूपण प्रत्येक सर्ग में एक छन्द और सर्गान्त मे छन्दो वैभिन्न्य और अग्रिसर्ग के कथा की सूचना चन्द्र, प्रदोष, अन्धकार, प्रभात मध्याह्न, सन्ध्या दिन, रात्रि, पर्वत, ऋतु वन, नदी, समुद्र, सयोग, वियोग, यज्ञ, विवाह सग्राम, यात्रा, पुत्र जलक्रीडा, आदि का चित्रण होना चाहिए ।

आलोच्य काव्य मे उपर्युक्त लक्षण न्यूनाधिक रूप मे घटित होते हैं । यह नवसर्गो मे विभक्त है । काव्य के प्राम्भिक मङ्गल श्लोक मे वीर प्रभु को स्मरण किया गया है कि वह अपनी सुबुद्धि रूप नाव के द्वारा ससार के समस्त प्राणियो को भवसागर से पार उतारे -

यहा 'वीर' शब्द अभिप्राय है । अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के लिए आया है और अपने विभिन्न निर्वचनो' के आश्रय से शूरत्व, अभयत्व, परमेश्वरत्व सर्वसमर्थत्व, वीतरागित्व, सर्वज्ञत्व और हितोपदेशित्व आदि भावो को व्यक्त करता है । यहाँ 'सुधीवर' पद भी सभग श्लेष द्वारा ज्ञानियो (सुधी+वर) तथा मृगसेन धीवर (सु+धीवर) का द्योतक है । द्वितीय श्लोक मे वाक् की वन्दना की गई है । तृतीय श्लोक मे भवकूप से उद्धार करने वाले गुरुदेव का स्मरण रूपक आश्रय लेकर किया गया है ।

इसके बाद कवि ने अपनी लघुता को व्यक्त करते हुए सुदर्शनोपाख्यान के चित्रण मे अपने को बालक बताया है ।

सज्जन प्रशंसा के अनेक सन्दर्भ मिलते है क्योंकि बताया यह विषय जैन धर्माचार के अनुकूल है । सत्पुरुषो की सन्तति को श्लिष्ट शैली में शरद् ऋतु के समान सुहावनी बताया है । जैसे शरद् ऋतु अनेक प्रकार के धान्यों को उत्पन्न करती है और मार्गों का कीचड़ सुखाकर गमनागमन योग्य बनाती है, उसी प्रकार सज्जनो की सति अनेक प्रकार के उपकार करने में तत्पर रहती है । इस ऋतु में मानसरोवर आदि का जल निर्मल लहरों से उल्लसित रहता है, उसी प्रकार सज्जन सन्तति का मनोमन्दिर उल्लास युक्त रहता है । शरद् ऋतु उदार और मेघ समूह का नाश करने वाली होती है, उसी प्रकार सत्पुरुषो की सन्तति भी उदार और लोगों के पापों का नाश करने वाली होती है । सज्जनों के साथ दुर्जनों के समागम को भी श्रेष्ठ बताया है । सुकवि की वाणी रूप गाय को जीवित रखने के लिए सज्जनों की दया-दूर्वा और खल (दुष्ट पुरुष-खली) का समागम आवश्यक है । तभी तो गाय निर्दुष्ट और दुधारू होती है और कवि की वाणी निर्दुष्ट और आनन्दवर्धक सज्जन और दुर्जन की स्वभावगत भिन्नता बताते हुए कहते हैं कि सुकवि की वाणी चन्द्र किरणो की भांति अन्धकार को मिटाने वाली और अमृतवर्षी होती है, फिर भी चकवा पक्षी के समय कुछ दुर्जन लोग उससे अप्रसन्न रहते है । दुर्जन इक्षु-दण्ड की भाति गाँठ वाले सदा उन्नत शिर सबके साथ, वैरभाव धारण (वैरस्य=नीरसता) करने वाले होते हैं ।

काव्य मे अन्य भी ऐसे उल्लेख प्राप्त होते हैं, जैसे सज्जनो की प्रवृत्ति को, रात-दिन के बीच एक सी लालिमा धारण करने वाली सन्ध्या के समान, सम्पत्ति और विपत्ति में समान भाव धारण करने वाली बताया है । सज्जनों की अभोष्ट सिद्धि स्वत हो जाती है - फलतीष्ट सदारुचि लौकिक उदाहरणों से यही भाव अन्यत्र भी व्यक्त किया गया है -

महाकाव्य मे चरित्रा उच्चकोटिक है । मुख्य पात्र वैश्य दम्पती वृषभदास एवं जिनमती के पुत्र सेठ सुदर्शन है, जिनके भील के भव से लेकर उत्तरोत्तर धर्मोन्नति के प्राशस्त्य का चित्रण है, इस धीरोदत्त नायक की श्री सम्पन्नता, जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य, शीलव्रत, उदात्तता, वीतरागिता, धर्मपरायणता, धर्मच्युत और पथभ्रष्ट करने के षड्यन्त्रों से बचने का सामर्थ्य, रागद्वेषहीनता, केवलज्ञान की प्राप्ति कर्मक्षय और निर्वाणप्राप्ति विवेचित है । सर्वत्र उसका वीरत्व प्रबल है। उसके समक्ष तीन बार विपत्ति आती हे, पर कभी भी वह विचलित नहीं होता । ठीक ही है, "विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतासि त एव धीरा ।" अन्य गौण पात्र है, पर यथास्थान अपने नैसर्गिक गुणों को प्रकट करते है । दम्पती वृषभदास और सेठानी का प्रेमभाव कपिला की छल कपटमय दुष्टता रानी अभयमती की आसक्ति और 'त्रियाचरित', वेश्या की कामुक क्रियाए और अन्तत आर्यिकात्व स्वीकरण स्पष्टत चित्रित है ।

रसयोजना

आचार्य भरत ने लिखा है - "न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते" और आचार्य विश्वनाथ ने काव्य में रसात्मकता पर बल दिया है - 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' । काव्य में स्वस्थ रस संस्थिति उसे सजीव बनाती है । प्रस्तुत महाकाव्य में गर्भवती के चित्रण मे शृगार सुदर्शन के जन्म और बाल क्रीडाओं में वात्सल्य तथा वैराग्योत्पादक घृणित शरीरांगो के चित्रण के बीभत्स आदि रसों का समावेश है । पर प्राधान्य इनके अन्य महाकाव्यों की भाँति शान्त रस का है । जिसका उपक्रम प्रथम सर्ग में ही है और परिपाक अन्तिम सर्ग में । यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने इसकी गणना रसो में नहीं की है, क्योंकि यह क्रिया को नहीं निवृत्ति को जन्म देता है, जो दृश्यकाव्य के सर्वथा अनुपयुक्त है । श्रव्य में अवश्य निवृत्ति की स्थिति का चित्रण किया जा सकता है । आगे चलकर रस सिद्धान्त के दृश्य-श्रव्य उभयाश्रित हो जाने पर और श्रमण परम्परा मे शान्त रस प्रधान काव्यों की सतत सर्जना होने पर शान्त रस को पूर्ण मान्यता मिल गई। फिर जैन मान्यता में कारूणिकत्व और वैराग्य अभिन्न है - "कारूणिकत्वं वैराग्याद् न विद्यते" ।

अलोच्य महाकाव्य में विशेषत. नवम सर्ग के प्रारम्भिक श्लोकों में तथा पक्षी (देवी) कृत उपसर्ग के बाद सुदर्शन के रागादिक भाव, भावमल का नाश तथा केवलज्ञान की प्राप्ति से सम्बद्ध श्लोको में निर्वेद या सम संज्ञक स्थायिभाव के प्राय सभी भेदों का प्रयोग प्राप्त होता है । वृत्त्यनुपास और अन्त्यनुप्रास का उदाहरण द्रष्टव्य है -

हे नाथ में नाथ मनाविकार· चेतस्युतैकान्त विचारः ।
शत्रुश्च मित्रं न च कोऽपि लोके हृष्यज्जनोऽज्ञोनिपतेच्च शो।

अर्थात् हे, स्वामिन् इस घटना से मेरे मन मे जरा भी विचार नहीं है (कि आपने ऐसा क्यों किया ?) मैं तो सदा एकत्र रूप से विचार करता रहता हूं कि इस लोक में न कोई किसी का स्थायी शत्रु है और न मित्र ही अज्ञानी मनुष्य व्यर्थ ही किसी को मित्र मानकर कभी हर्षित होता है और कभी किसी को शत्रु मानकर शोक में डूबता है । शान्त रस मे परिणमित हुआ हे ।

वस्तुत रसध्वनि के प्राबल्य के कारण ही यह उत्तमकोटिक काव्य है । इसके विना अलङ्कार मृतक स्त्री के अलङ्कार की भाति व्यर्थ सिद्ध होते हैं ।

रसध्वनिर्न यत्रास्ति तत्र वन्ध्य विभूषणम् ।
मृताया मृगशावाक्ष्या· कि फल हारसम्पदा ।।[6]

अलङ्कार योजना

काव्य शात्रियो ने काव्य मे रस के बाद अलङ्कारो का सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया है । आचार्य भामह ने कहा है कि अलङ्कारो के अभाव मे न कविता शोभित होती है और न वनिता - 'न कान्तमपि निर्भूष विभाति वनिताननम्। आचार्य वामन ने काव्यालङ्कार सूत्र में लिखा है - 'काव्य ग्राह्यमलङ्कारात्' और सौन्दर्यमलङ्कार अर्थात् उन्होंने अलङ्कारों से ही काव्य की ग्राह्यता स्वीकार की है । काव्य को शोभादायी तत्त्व अलङ्कार ही है - 'काव्य शोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते । वस्तुत रस भाव ध्वनि रीति वक्रोक्ति आदि काव्य शास्त्रीय अङ्गो को भी ये उत्तजित करते हैं । इसीलिए स्वय महाराज श्री ने लिखा है - 'अलङ्कारपूर्ण कवितेव सिद्धा' अत अर्थालङ्कार दोनों के प्रचुर उदाहरण मिलते है । शब्दों की विचित्र रचना वश चित्रालङ्कार बनते हैं । यद्यपि उन्हें अधम काव्य माना गया है, पर इनका प्रयोग प्रतिभाशाली व्याकरणवेत्ता मनीषी विद्वान् ही कर सकता है । प्रस्तुत काव्य मे कलश बन्ध और हारबन्ध चित्रालङ्कार की विचित्रता दृष्टिगत होती है । अनुप्रास यमक के आद्य मुख पद्य युग्म ओर पुच्छ आदि अनेक भेद है । पुच्छ यमक का एक उदाहरण है -

तमन्य चेतस्कमवेत्य तस्य सकल्पतोऽन्यमना वयस्य. ।
समाह सद्य· कपिलक्षणेन समाह सद्य· कपिल क्षणेनः ॥ सुद 1/39

सुदर्शन बाला - (वाऽऽलापि बाला आदि) सम्बन्धी बाल सुनकर कपिल नामक प्रधान मित्र उसके हृदय की बात ताड गया और बन्दर के समान चपलता के साथ मुसकराता हुआ बोला । अन्त्यानुप्रास में कवि सिद्धहस्त है। इसकी प्रयुक्ति उनके प्रत्येक काव्य मे उपलब्ध है । इसकी तुकान्तता आर सगीतात्मकता अत्यन्त आकर्षक है -

जिनालया पर्वततुल्यगाथा समग्रभूसम्भवदेणनाथा ।
शृङ्गाग्रसलग्नपयोदखण्डा श्रीरोदसी दर्शितमानदण्डा. ।।

— इस तुकान्तता के मोह मे यत्रतत्र कठिन, अप्रसिद्ध ओर ग्राह्य शब्दो का भी प्रयोग कर डाला हे, जो परम्परागत पण्डितों को यथा 'गण्ड' के साथ नपुंसकार्थ पण्ड और सुतरामनुल्य के साथ 'तल्प' का प्रयोग । यद्यपि दोनों कोश से प्रमाणित है, जिसका उल्लेख एक स्थल पर स्वय काव्यकार ने किया है -

वणिक्पथ श्रीधरसन्निवेश. सविश्वतो लोचननाम देश· ।
यास्मिञ्जन· सांस्क्रियतां च तूर्णं योऽब्दनेकार्थतया प्रपूर्ण ।।

यद्यपि अथानुरोध से यमक श्लोक विरोधादि में रल-डल-वब का ऐक्य ग्राह्य है - यमकादौ भवेदैक्यं डलो-रलो ववोस्तथा किन्तु मुनिश्री ने अपने काव्य मे अर्थ वैचित्र्य के लिए इनका खुलकर प्रयोग किया है और पाठकों के समक्ष मुन्दल-उत्तल-मधुल-सहेर-जडाशय जैसे शब्द भी आ जाते हैं ।

काव्य में शाब्दी छटा के प्रतिपादक श्लेष और यमक अलङ्कारो का अनेकत्र प्रयोग हुआ है । श्लेष में श्लिष्ट पदों के द्वारा दो या अनेक अर्थों का प्रस्फुटन होता है । यथा -

मदुक्तिरेषा भवतोः सुवस्तु समस्तु किन्नो वृषवृद्धिरस्तु ।
अनेकधान्यार्थमुपायकर्त्रोर्महत्सु शीरोचितधामभर्त्रो· ।।

यहां 'वृषवृद्धि' (धर्मवृद्धि - बैलों की वृद्धि), 'अनेकधान्यार्थ' 'शीरोचित धाम भर्त्रो· (सूर्य के समान ज्ञान रूप प्रकाश के भरने वाले - हल चलाकर अपनी आजीविका करने वाले) ये श्लिष्ट पद विशेषत ध्येय है । पृथक् पृथक् अर्थवाले सार्थक या निरर्थक स्वरव्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति को यमक कहते हैं' -

पुरुषोत्तमस्य हि न मानवता केनानुनीयतां मानवता ।

यहा मानवता पद सार्थक है - 1 मनस्विता और मनुष्यता ।

उपमा - प्रस्फुट रूप मे सुन्दर साम्य को उपमा कहते हैं । यथा-

कभी-कभी श्लेष का आश्रय लेकर उपमा को और गौरवान्वित बना दिया गया है -

उद्योतवन्तोऽपि पगर्थमन्तर्घोषा बहुव्रीहिमया लसन्त ।

यतित्वमञ्चन्त्य विकल्प भावान्नृपा इवामी महिषीश्वरा इव ।।

गुवाले राजाओ के समान महिषीश्वर (भैंरू-रानी) थे । इस दृष्टि से बहुव्रीहि (समास- बहुधान्य) अविकल्पभावात (सकल्प विकल्प भाव - अवि अर्थात् भेडो के समूह वाले) आदि पद ध्येय है ।

उत्प्रेक्षा - उपमेय की उपमान के रूप मे सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं । यथा

कृशोदरी गर्भवती मेठानी के उदर से वलिया गायब हो रही थी । कृश का तन बलशालियो पर विजय पर उत्प्रेक्षा है कि मानो गर्भस्थ बलशाली पुत्र का ही प्रभाव था । यहा कृश पर बली की विजय मे 'विरोध' तया बलि और बलिन् मे 'यमक' छटा भी दशनीय है ।

रूपक - उपमान आर उपमेय मे यहा अभेद होता है, वहा रूपक अलङ्कार होता है । धर्म-वृक्ष का यह साङ्ग रूपक देखिये -

अहिसन मूलमहो वृषस्य साम्य पुन स्कध भवेमि तस्य ।
सुदक्तिमस्तेयममैथुनञ्चापरिग्रहत्व विटपप्रपञ्चा ।।
सदा षडावश्यक कौतुकस्य शीलानि पत्रत्वमुशान्ति यस्य ।
धर्माख्यकल्प द्रुवरोऽभ्युदार श्रीमान् स जीयात्समिति प्रसार ।।

निदर्शना - जहा दो वाक्यार्थों का सम्बन्ध उत्पन्न न होता हुआ उपमा श्रीकल्पक (आक्षेपक) होता है, वहा निदर्शना हाता ह ।

भाग्यस्तमधीमानो विषयानुनयाति य ।
चिन्तामणि क्षिपत्येष काकोड्डायन हेतवे ।।

अर्थात् भाग्य से अतिदुर्लभ मनुष्य का जन्म पाकर जो विषयों के पीछे दौड़ता है वह उस पुरुष के सदृश हे जो अति दुर्लभ चिन्तामणि रत्न को पाकर उसे काक उड़ाने के लिए फेंक देता हे ।

अर्थान्तरन्यास

इसमें साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा सामान्या विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाता है । यथा -

इहोदयोभूदुदरस्य सावत् स्तानने श्यामलताऽपि तावत् ।
स्वभावतो ये कठिना सहेर कुत परस्याभ्युदयं सहेरन् ॥

दृष्टान्त - पारस्परिक समान धर्म रखने वाले विषयों का बिम्बप्रतिबिम्ब होने पर दृष्टान्त अलकार होता है । यथा-

भोगोपभोगतो वाञ्छा भवेत प्रत्युत दारुणा ।

उपभोग रूप विषयों के सेवन से इच्छा रूप ज्वाला करूण रूप से प्रज्वलित होती है । आगे में क्षेपण की गई लकडियों से क्या कभी अग्नि शक्ति को प्राप्त होता है । यहां करुणा पद के यमक द्रष्टव्य है ।

परिसंख्या - जहाँ पृछी गई या न पूछी गई वस्तु कही जाकर अपने जैसी किसी अन्य वस्तु के व्यवच्छेद या निराकरण मे पर्यवसित हो जाती है वहा परिसख्या होती है । यथा -

पलाशिता किंशुक एवं यत्र द्विरेफ वर्गे मधुपत्वमत्र ।
विरोधिता पञ्जर एवं भातु निरौष्ठ्य काव्येष्पपवादिता तु ॥

अर्थात् पलाश शब्द का व्यवहार किशुक (ढ़ाक) वृक्ष मे था, मनुष्य पल अर्थात् मास भक्षी न थे । मधुप शब्द का व्यवहार भ्रमर के लिए ही था, कोई व्यक्ति मद्यपायी न था । वि-पक्षी का अवरोध पिजरे में था, किसी पुरुष में विरोधभाव न था । विशिष्ट काव्य मे ही ओष्ठ्य प फ आदि वर्णों का अभाव पाया जाता था अन्यत्र कहीं अपवाद न था ।

विरोधाभास - यहा विरोध प्रतिभासित होता है पर वास्तव में विरोध नहीं होता । यथा -

द्विजिह्व - सर्पों का स्वामी शेषनाग अपरिमित गुणो का धारक होकर भी अहीन = सर्प है पर सेठ वृषभदास चुगुलखोरी के दुर्गुण से तथा हीनता से रहित या उत्तम था । वह आनक = नगाडा भी था और प्रवीण = प्रकृष्ट वीणा स्वरूप था । विरोध-परिहार यह है कि वह मेठ पापो से रहित था और चतुर था । वि=पक्षियो के प्रचार से युक्त था, और पक्षियो मे रहित आजीविका वाला था । विरोध परिहार यह है कि वह अतिविचार शील था और न्याययुक्त आजीविका वाला था । वह मद से रहित था और मदमय प्रवृत्तिवाला था । परिहार यह है कि वह मद से रहित था और मदमय प्रवृत्तिवाला था । परिहार यह है कि वह सेठ मदो से रहित था और दान देने की प्रवृत्ति वाला था ।

स्वाभावोक्ति - जैसी वस्तु है, उसका, वैसा ही सुन्दर वर्णन स्वभावोक्ति है ।

खेलते-खेलते जब बालक (सुदर्शन) रोने लगता, तो माँ भूखा समझकर उसे शीघ्र स्तनो से दूध पिलाने लगती, पीते-पीते जब वह अर्धनिद्रित-सा हो जाता, तो माँ धीरे से उसे पालने में सुलाने के लिए ज्यो ही उद्यत होती, त्यों ही वह फिर जाग जाता और सुलाने पर भी नहीं सोता था ।

काव्यलिङ्ग - इसमे वाक्यार्थ या पदार्थ का हेतु रूप मे कथित किया जाता है । यथा -

परमागम के पारगामी इस सुदर्शन के द्वारा कदाचित् मैं पराजित न हो जाऊ, ऐसे विचार से ही सरस्वती देवी विशेष अध्ययन के लिए पुस्तक को सदा हाथ में धारण करती हुई चली आ रही है । यहां सरस्वती के हाथ में पुस्तक धारण का कारण शास्त्रपारङ्गत सुदर्शन से पराजय की आशङ्का है ।

यथासंख्य - जहा किसी क्रम से कहे गए पदार्थों का उसी करम से अन्वय किया जाता है । यथा

रानी अभयमती की नदी के समान सरसता देखकर (धात्रीवाहन) राजा मीन के समान, बिजली सी चपलता देखकर बालक के समान और शारीरिक कान्ति देखकर शलभ (पतगा) के समान (अत्यन्त आनन्द को प्राप्त) होता था ।

छन्दोयोजना - आचार्य ज्ञानसागर छन्द प्रयोग मे सिद्ध हस्त थे । इसमें अनुष्टुप् इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा उपजाति, वसन्त तिलका द्रुत-विलम्बित, शार्दूल विक्रीडित, वियोगिनी, वैताली, भुजङ्गप्रयात आदि संस्कृत के परम्परागत छन्दों का प्रयोग किया गया है । कतिपय सर्गों में विविध छन्द के अतिरिक्त भी छन्द परिवर्तन किया गया है । कतिपय हिन्दी छन्दो का प्रयोग भी प्राप्त होता है । चौपाई का प्रयोग बड़ी कुशलता है किया है ।

गीतयोजना - संस्कृत को लोकप्रिय सरल और अतिगेय बनाने के लिए मुनि श्री ने अपने काव्यों में गीतो की संयोजना की है, जिसमें उनकी संगीत प्रियता व्यक्त होती है । जयोदय के 23वें सर्ग में चार और 25वें में एक गीत है । दयोदय चम्पू के सप्तम लम्ब में एक गीत तथा विवेच्य काव्य में पञ्चम में आठ, षष्ठ में नव, सप्तम में अष्ट अष्टम और नवम में तीन-तीन तथा अन्त मे एक मगलकामना गीत है । ये गीत प्रभाती-राग भैरवी में दो, होलिका काफी राग में ग्यारह, सौराष्ट्रीय राग मे दो, श्याम कल्याणराग में मारगराग में एक, रसिकराग में एक, चाल छन्द में छः, कव्वाली में दो और अनाम एक, कुल 32 है । रागादि का संकेत कवि के सगीत-ज्ञान को स्पष्ट करता है। यहा प्रभाती या भैरव राग का एक उदाहरण प्रस्तुत है । इसमें राग भैरव, थार भेरव, जाति सम्पूर्ण वादी धेवत, सवादी ऋषभ, स्वर रे-धौ कोमला तथा अन्यशुद्ध होते हैं । इसका समय प्रभात होता है -

अहो प्रभातो जातो भ्रातो भवभय हर जिनभास्करत ॥स्थायी॥
पापप्राया निशा पलाया मास शुभायाद्भूतलत ।
नक्षत्रता दृष्टिमपि नाञ्चति सितद्युते र्निर्गमनमत ॥ अहोप्रभातो

इन गीतियों में प्रवाहात्मकता सरसता, सरलता, भावुकता आध्यात्मिकता और आचारदृष्टि अनुस्यूत है प्रभात, वसन्त श्री जिनदर्शन जिनपूजन प्राणायाम, उपकार, पुण्य, सर्वसुखता, माया जितेन्द्रियत्व आदि विषयो का सरस पर्यवेक्षण करके आचार्य श्री ने महान् उपकार किया हे । क्योंकि सगीत मय ये गीतिया गेय और सस्मरणीय है । उन्होने परम्परया इनमें अपना लघुनाम 'भूरा' दिया हे । अब अस्वाभाविक मानकर प्राय इस प्रथा का अवलम्बन नहीं किया जा रहा है ।

पुरुषार्थ चतुष्टय - आचार्य भामह ने साधुकाव्य के निबन्धन का उद्देश्य कलाओ ओर पुरुषार्थों मे विचक्षणता, यश और प्रीति को माना हे । इस दृष्टि से विवेच्य महाकाव्य यशस्कर आर प्रीतिकर है । कला चर्चा ऊपर की जा चुकी हे । पुरुषार्थ चतुष्टय के चित्रण की पालना हुई है । मुनि श्री ने धर्म का निर्वचनार्थ किया है, कि जो विश्व को धारण करे अर्थात् सारे जगत् की पालना करे । धर्मात्मा पुरुष परहित के लिए शरीरार्पण भी कर देता हे, पर जीव-जन्तु को कष्ट नहीं पहुचाता -

अन्यत्र जीव के तामस भाव को अधर्म ओर सात्त्विक भाव को धर्म कहा गया है, जो मुक्तिदायक है । वैदिकी परम्परा म 'धर्मादर्थश्च कामश्च' हे, जब कि जैनधर्म की मान्यता है कि अर्थ ओर काम के त्याग से धर्म की अनुपालना ओर सिद्धि करनी चाहिए । यहा मुख्यत अहिसा, सयम ओर तप को धर्म बताकर धर्म और मोक्ष के बीच के मार्ग की दूरी कम कर दी हे । प्रस्तुत महाकाव्य मे सेठ सुदशन के आख्यान मे अर्थोपेक्षा कामक्षय तथा धर्मप्राबल्य चित्रित करके मुनिचर्या के द्वारा मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है ।

प्रकृति योजना - महाकाव्य के प्रकृति परक कार्य विषयो का प्राय आलङ्कारिक प्रयोग है और प्रतीको तथा उपमानो के रूप में इनका प्रचुर प्रयोग है । प्रथम सर्ग में जम्बूद्वीप, भारत, आर्यावर्त अङ्गदेश चम्पापुरी आदि का वर्णन है । पर्वतो मे सुमेरू विन्ध्याचल मलयागिरि आदि का उल्लेख आया हे । इसके अतिरिक्त काव्य मे समुद्र, वाणी, मानसरोवर, वन, वृक्ष, लता पलाश इक्षु कमलनाल शैवाल, मकरन्द, पुष्प, पक्षी सर्प, भ्रमर, चातक शलभ, मयूर, हाथी, शशक, सिह सूर्य, चन्द्र, पवन, ऋतु आदि भी यथावसर प्रयुक्त हुए हे । पञ्चम सर्ग मे प्रभात वर्णन षष्ठ मे वसन्त वर्णन उल्लेखनीय है । अत्यन्त वर्षा ओर शरद् के भी सन्दर्भ आए हे । नवम सर्ग मे अभक्ष्यो में पत्रवाले शाक, बड, पीपल, गूलर अञ्जीर आदि का परिगणन किया गया है ।

भाषा शैली - श्री हर्ष से प्रभावित होते हुए भी आचार्य ज्ञानसागर ने अपने काव्यों मे विशेष क्लिष्टता नहीं आने दी है । जो कृत्रिमता भारवि माघ और श्रीहर्ष के काव्य मे है, वह भी यहा अल्पमात्रा मे हे । यहा स्वाभाविक चित्रण को प्राथमिकता दी गई है । सहज और अल्प समासो वाली लालित्यमयी भाषा गम्भीरतम भावो को वहन करने मे समर्थ है । उदाहरणार्थ सेठ सुदर्शन का मन मनोरमा मे आसक्त था, पर इस ससार से विरक्त था । इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण तदनुरूप शब्दावली में किया गया है -

सुदर्शन राजा से कहता है कि हे स्वामिन इस घटना से मेरे मन में जरा सा भी विकार नहीं है कि आपने ऐसा क्यों किया ? मैं तो सदा एकान्त रूप से यह विचार करता हूं कि इस लोक में न कोई किसी का स्थायी शत्रु है और न मित्र ही । अज्ञानी मनुष्य व्यर्थ ही किसी को मित्र मानकर कभी हर्षित होता है और कभी किसी को शत्रु मानकर शोक में गिरता है । संसार में लोग स्वार्थ साधन के भाव से मित्र अन्यथा शत्रु बन जाते हैं । यदि मेरी माता (महारानी) और पिता (महाराज) मेरे ऊपर रुष्ट होते है तो इसमें मेरे पूर्वोपार्जित पापकर्म का उदय ही प्रकिलता का कारण है[5]।

महाराज श्री ने लौकिक सस्कृत में स्वारस्य लाने के लिए कुछ विशेष प्रयोग किये है । जैसे अन्त्यानुप्रास, अन्यभाषओं के शब्दो का सस्कृतीकरण अथवा यथावत् प्रयोग विश्वलोचन कोश के प्रमाण से अप्रचलित शब्दो और अर्थों का संम्प्रेषण, संस्कृतेतर अथवा संस्कृत भिन्नार्थक शब्द प्रयोग यथा ठकत्व (ठगना) पुनीत जानु=वेश्या, पण्ड=नपुसक, भुण्ड, रूख आदि। इसी प्रकार भाषा मे प्रभावात्मकता लाने के लिए आभाणको, लोकोक्तियो मुहावरो का यथावत् अथवा सस्कृतीकृत रूप मे प्रयुक्त किया ह मा हिम्यात सर्वभूतानि जैसे उद्धरणो को श्लोकबद्ध किया है । सोने में सुगन्ध कहावत का सस्कृतीकरण किया है - 'सुगन्ध युक्तापि सुवर्णमूर्ति ' । वस्तु स्वभाव और जीवन जगत् से सम्बद्ध अनुभूत शाश्वत तथ्यों को अभिव्यक्त करने वाली सूक्तिया काव्य का प्राण होती है । यह प्राणता सप्रमाणता, नीति, आचार, धर्म, दर्शन आदि के रूप में हुआ है यथा -

अविवाहिता स्त्री के प्रति सहज आकर्षण होता है - करोत्यनूढा स्मय कौतुक न[11] पति के बिना पत्नी आकुलता व्यक्त करती है यह सूक्ति 'ततो मनोरमाप्यासीत् लतेव तरुणो-जिता- आत्मा वै जायते पुत्र की भावभूमि पर पुत्र रूप-रग पिता के अनुरूप होता है - किमु बीज व्यभिचरत्यङ्कुर । स्याद्वाद से सम्बद्ध सूक्ति है -

जिनधर्मो हि कथञ्चिदित्यत । आचारपरक सूक्ति ह - तिष्ठेत्सदाचार पर सदार्य । एक सूक्ति में जननान्तर सौहृद को स्पष्ट किया गया है 'प्राय प्राग्भवभाविन्यो प्रीत्यप्रीती च देहिनाम् 'न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति इस गीतोक्ति को इस प्रकार समझाया गया है - 'वह्नि कि शान्तिमायाति क्षिप्यमाणेन दारूणा'[16] ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि कवि का व्याकरण ज्ञान समद्ध था । प्रत्येक सर्ग के अन्त में दिये अपने परिचयात्मक श्लोक में अपने को 'वाणी भूषण' कहा है । इस ज्ञान की झलक सम्पूर्ण काव्य में विशेषत श्लेषादि अलङ्कारो के प्रयोग में अथवा शाब्दिक सौन्दर्यमय स्थलो मे दृष्टिगत होती है ।

भयाढ्य पद का अर्थ भयभीत के साथ भा-कान्ति तया आढ्य = कान्तियुक्त एक वैयाकरण ही कर सकता है । शय्यावाची तल्प कहीं उत्पत्ति स्थान के रूप में 'चतुर्वर्गनिसर्गतल्प , कहीं स्त्री-पुरुषवाची अर्थों में प्रयुक्त किया गया है । इनकी सङ्गति लक्ष्यार्थ से बैठ सकती है, भले ही विश्वलोचन कोश मे इसे स्त्रीवाची कहा गया है। अप्रयुक्तत्व दोषवश लिङ्गस्खलन भी हुआ है, जेसे 'स्वप्न' शब्द की नपुसकता (भो -भो विभो कौतुकपूर्णपञ्च स्वप्नान्यपश्यं निशि मानसञ्च) और प्रभात शब्द की पुल्लिङ्गता (अहो प्रभातो जातो भ्रातो) । यदि इन्हें स्खलन न माने तो यही कहा जा सकता है कि कवि संस्कृत के जनभाषात्व एवं सरलीकरण की धुन मे लिङ्ग पर अङ्कुश नहीं लगाना चाहता, पर सर्वत्र ऐसा नहीं है, अत चिन्त्य है । काव्य की चारुता के लिए उन्होने कहीं-कहीं सन्धि करना आवश्यक नहीं माना है, यथा संयमि अशनाति । विसर्ग लोप सर्वत्र नहीं किया है और छन्दोऽनुरोध से गुरु वर्ण की आवश्यकता पर सयुक्त वर्णों का विन्यास किया है । वाग्भट्ट ने अपने अलङ्कार ग्रन्थ में इन उपायों की ओर संकेत भी किया है ।

सस्कृत पण्डितो में मूलार्थ को व्यक्त करने के लिए यास्क की परम्परा में निर्वचन देने की परिपाटी रही है । कवि श्री इसके अपवाद नहीं है । सभी रचनाओ में ऐसे आर्थी निर्वचन प्राप्त होते हैं । यथा -

सुदर्शन - सुतदर्शनत पुराऽसकौ जिनदेवस्य ययौ सुदर्शनम् ।
इति चकार तस्य सुन्दर सुतरां नाम सदा सुदर्शनम् ॥
धर्म - धर्मस्तु धारयन् तस्य सुन्दर सुतरा नाम तदा सुदर्शनम्
विन्दन् भद्रतयाऽन्यार्थं विसृजेद् देहमात्मन ॥

प्रस्तुत महाकाव्य में विषय वस्तु और प्रतिपाद्य की दृष्टि से ओजो गुण के विशेष अवसर नहीं है, पर शृंगार, वात्सल्य और शान्त रसों के निष्पादन में तथा नवम सर्ग में माधुर्य और प्रसाद गुण तथा सानुप्रास, समासरहित और योग वृत्तिपूर्ण वैदर्भी रीति[5] का समायोजन हुआ है । पूरे महाकाव्य में यत्र तत्र अल्पसमास, ईषदनुप्रास और शिष्टवाक् शर्मा वैदर्भी का ही प्रयोग रूप वचन विन्यासक्रम है । ध्वनिगत वैचित्र्य भी प्रशंस्य है । यह सब सद्यः काव्यार्थ प्रतीति का साधक बनकर सहृदय संवेद्य बनता है ।

इस प्रकार यह महाकाव्य आख्यान धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र, और सर्वोपरि कवित्त्व की दृष्टि से उत्तमोत्तम है । इसमें साहित्य संगीत और कला की त्रिवेणी प्रवाहित है, जिसमें अवगाहन करते हुए सहृदय पाठक सम्यग् जीवन के दर्शन करता है । यह रचना भावपक्ष और कलापक्ष दोनो दृष्टियो से समृद्ध है । यह काव्य रोचक भी है और पोषक भी है और प्रेरक भी । अत पाठक इससे काव्यानन्द प्राप्त करते हैं और सदाचारी ब्रह्मचर्यव्रती और शीलवान बनने का उपक्रम भी करते हैं । वस्तुत· वर्तमान उद्दण्ड अनाचारी और उग्रवादी परिवेश में ऐसे काव्यों की महती आवश्यकता है । नैतिक शिक्षा के रूप मे वर्तमान शिक्षा पद्धति मे इनका अनुशीलन और अभ्यसन किया जाना चाहिए । सभी दृष्टियों से श्लाघ्य और हृदय इस रचना के रचयिता आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज हमारे श्रद्धेय है और प्रणम्य है । अन्त में मात्र यही निवेद्य है -

सुदर्शनोदये काव्येऽनुस्यूत धर्मदर्शनम् ।
जिनसम्मतकैवल्य चारित्र्य मानुषं तथा ॥
कलासाहित्यसङ्गीता विक्षेत्रेष्वपकारका ।
साधुवादै. सभाज्यन्ते मुनि श्री ज्ञानसागर ॥

डॉ. शिवसागर त्रिपाठी
अध्यक्षचर सस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय ए 65, जनता कॉलोनी, जयपुर - 4

❑ ❑ ❑

Brief life sketch of Late Bal Brahmchari Pt. Shri Bhuramal ji Shastri (The Acharya Gyan Sagar Ji Maharaj)

Born of Pious father Shri Chaturbhujji and holy mother Shrimati Ghritvari Devi Chhabra at Ranoli in Sikar District-Rajasthan in the year 1891 A D

Suffered in-numerable sufferings due to the sad demise of his father in his early age, he joined Syadwad Mahavidyalaya in Varanasi for his early education Studied here upto "Shastri"

Initial hardships did not deter from achieving highest goal of Jainism Studied various Philosophies and experienced in Jainism Composed epics-Champoo Kavya and many other books in Prose and verse inumerating the philosophical doctrines and principles Wrote simple commentaries as a Lamp-Post for the prosperity

Adopted "Brahmcharyahood" a difficult cult in 1947 and practised it throughout Underwent many hard practices and penances and attained the higher stage of "Kshullakji" and was given the name of "Gyan Bhushanji" in 1955 A D continued to tread the divine path and reached the next stage of 'Shri Ailakji" in 1957

Acharya Shri Shiva Sagarji adopted him as his favourite disciple in 1959 at village Khaniyan ji in Jaipur and was pleased to confer on him the highest title "Digamber jain Muni' Here new name "Gyan Sagarji" was given to him

Rose to Acharyahood in 1969 at Nasirabad and was given the title of "Chantra Chakravarti" on October 20 1972 in Nasirabad (Ajmer) In his own lifetime transferred his divine energy and his Acharyahood to his ablest disciple Shri Vidhya Sagarji on November 22, 1972 in Nasirabad Thereafter asked Vidhya Sagar to tie him to "Fast-Unto-Death' i e 'Sallekhana' to which all the Acharyas took to Thus the great sage embraced the final reality Death/ Deliberately and willingly with a smile The fast lasted for six months and ten days at the end of which the soul submerged into the super soul on June 1 1973 at 10 50a m in Nasirabad (Ajmer-Rajasthan)

This monument is erected and submitted to the holy memory of Acharya Shri Gyan Sagarji who followed the great traditions of Janism-Kund Kund- a great sage Philosopher guide and teacher

We all submit ourselves to the feet of Acharya Shri Gyan Sagarji

HIS SUPREME LITERARY WORKS

SANSKRIT LITERATURE Jayodaya Veerodaya Sudarshnyodaya Bhadrodaya, Dayodaya

JAINISM IN SANSKRIT Samyaktvasar Shatkam Muni Manoranjanasheeti Hit Sampadak, Bhakti Sangrah

HINDI LITERATURE Bhagya Pariksha Guna Sunder Vrittant Pavitra Manav Jeevan Rishabha Chantra Kartavya Path Pradarshan, Sachitta Vivechan Sachitta Vichar Saral Jain Vivah Vidhi, Kund Kund and Sanatan Jain Dhama

COMMENTARIES & CRITICISM

Samayasar Ratnakarand Shravakachar Vivekodaya Tatvarthsutra Pravachansar Shanti Nath Pujan Vidhan

SALLEKHNA From 22 Nov to 1st June 1973 an towards the last four days his holiness gave up all types of food

SAMADHI Ist June, 1973, at Nasirabad

ब्यावर का गौरव

प्रस्तुति -

श्री दिगम्बर जैन समाज

ब्यावर (राज)

ब्यावर का गौरव

श्री कैलाशचन्द सोगानी

अरावली की श्रृंखलाओ से घिरा राजस्थान के मध्य मे स्थित ब्यावर - जिसे नवाशहर भी कहते हैं - इतिहास के पन्नो पर अंकित एक ऐसे नगर का नाम है, जिसे सहेज कर स्वयं 'इतिहास गौरवान्वित हो रखा है', यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । रग-बिरंगी सांस्कृतिक धरोहर तथा रणबाँकुटो की गौरव गाथा से समृद्ध राजस्थान का ब्यावर एक ऐसा नगर है जो कभी भी किसी रियासत के अधीन नहीं रहा । यही वह नगर है जिसने जगतगुरु शकराचार्य (श्री निरजन देव) की जन्मस्थली, राव गोपालसिंह खरवा, अरविन्द घोष, स्वामी कुमारानन्द व विजयसिंह पथिक जैसे क्रान्तिवीरों की कर्मस्थली, सेठ दामोदरदास राठी व सेठ घूसीलाल जाजोदिया जैसे स्वाधीनता सग्राम के भामाशाहो की मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य रचती रही । अपनी धार्मिक, शैक्षणिक, व्यापारिक एव सास्कृतिक उपलब्धियो के अलावा श्रमिक आन्दोलनों की सुदृढ पहचान के लिए यह नगर प्रदेश का गौरव है ।

एक लाख दस हजार की आबादी के लिहाज से यह नगर आज तो राज्य के ग्यारहवें स्थान पर आता है । प्रदेश का सबसे बडा उपखण्ड होने के अलावा इसमे दो पचायत समितियाँ ही नहीं वरन् एक मात्र ऐसा उपखण्ड है जिसमे दो विधान सभा क्षेत्र हे - ब्यावर व मसूदा हे । लेकिन जिस समय इस नगर की स्थापना की गई, यह मात्र चालीस टेन्टो मे लगी एक छोटी सी बस्ती थी, जो फोजी छावनी को रसद सप्लाई का काम करती थी । इसकी स्थापना तत्कालीन मेरवाडा क्षेत्र के दूसेर अधीक्षक कर्नल चार्ल्स जार्ज डिक्सन द्वारा 1836 मे अजमेरी गेट (वर्तमान) के निकट नींव का पत्थर रखकर की गई । उस समय यह क्षेत्र यहाँ का आदिवासी जाति (मेर) का आश्रय स्थल था जो इन बियावान जगलो मे जयपुर व जोधपुर आने जाने वालों को (राहगिरो को) लूटने, ठगने व डकैती के लिए विख्यात था । इस भयाक्रान्त जनजाति से मुक्ति दिलाने तथा मेरो को सभ्य बनाकर क्षेत्र को विकसित करने के उद्देश्य से कर्नल डिक्सन ने इसे बसाया । यह राज्य का एकमात्र ऐसा नगर था जिसकी सुरक्षा हेतु चारो तरफ कोलो व बुर्जो के शिल्प पर आधारित परकोटा किसी अग्रेज शासन ने बनवाया जिसमे चार प्रमुख दरवाजें थे ।

ब्यावर वह ऐतिहासिक नगर है जिसमे राजस्थान की सबसे पहली नगरपालिका 1 मई, 1867 को गठित की गई । यही वह नगर हे जहाँ ईसाई मिशनरी ने सर्वप्रथम आकर अपने धर्म प्रचार के लिए डेरा डाला तथा प्रथम प्रेसबिटेरियन चर्च का निर्माण 1972 मे किया गया ।

देश के स्वाधीनता आन्दालन में ब्यावर एक प्रमुख केन्द्र के रूप मे कार्यरत था । इसकी एक खास वजह यह भी थी कि अपने धर्म प्रसार के लिए मिशनरी ने यहाँ फरवरी 1864 मे एक छापाखाना स्कॉटलैण्ड से मँगाकर लगाया। 1869 मे 'राजपूताना आफिसियल गजट' का यहाँ से प्रकाशन होता था । यही छापाखाना कई गोपनीय पोस्टरो को छापने में भी काम आता था । यह कार्य इसमे कार्यरत क्रान्तिकारियो द्वारा गुप्त रीति से किया जाता रहा । अजमेर के राजस्वमण्डल, पश्चिमी रेल्वे के लोको शेड तथा राजपूताना की भारी सामग्री वही छपती रही है ।

स्वाधीनता की मशाल को प्रज्वलित रखने मे यहाँ के दानवीरो का पुष्ठपोषण भी काफी उल्लेखनीय रहा । सेठ दामोदरदास राठी ने अरविन्द घोष को आर्थिक सहायता पहुँचाकर अग्रणी भूमिका निभायी । ब्यावर की धरती वह है जिसने एम एन राय, चन्द्रशेखर आजाद तथा शोकत् उस्मानी जैसे क्रान्तिकारियो को अपने आचल की छाँव मे बिठाया।

1919 में यहाँ काग्रेस की स्थापना का झण्डा सेठ घीसूलाल जाजोदिया ने फहराया तथा महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन को यहाँ सक्रिय किया । 1920 में स्वामी कुमारानन्द ने बंगाल से आकर इस नगर को अपनी गतिविधियो का प्रमुख केन्द्र बनाया । यही वह नगर है जिसे प्रजामण्डल आन्दोलन का मुख्यालय भी बनाया गया था । राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास ने इसे अपनी राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया ।

औद्योगिक मानचित्र में ब्यावर सदैव से ऊन, कपास व मिर्च की प्रसिद्ध मण्डी के रूप में जाना जाता रहा। यहाँ राज्य की प्रथम सूती कपडा मिल - दी कृष्णा मिल्स लिमिटेड (1889) स्थापना हुई, जो उस समय भारत के प्रथम दस मिलो मे से एक गिनी जाती थी। तदनन्तर 1906 में एडवर्ड व 1922 मे महालक्ष्मी मिल्स की स्थापना के साथ ही यह सूती कपडो के उत्पादन का ही नहीं वरन् श्रमिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गया। जब तक राजस्थान के अन्य स्थानों पर टेक्सटाईल मिल्स की स्थापनायें नहीं हुई तब तक ब्यावर को प्रदेश का मेनचेस्टर कहे जाने का गौरव भी प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे यह शहर बीडी उत्पादन, एस्बेस्टोज, सीमेन्ट पाईप निर्माण, रंगाई व छपाई उद्योग के लिए भी जाना जाने लगा। वर्तमान में यहाँ की खानो मे निकले उत्कृष्ट फेल्सपार, क्वार्ट्ज, लाइमस्टोन आदि के कारण मिनरल व ग्राइडिंग की यूनिटे राज्य में सर्वाधिक यही है। यही कारण है यूनिटें राज्य मे सर्वाधिक यही है। यही कारण है कि यहाँ 'श्री सीमेन्ट' जेसे एशिया के बड़े सीमेन्ट उत्पादन सस्थानों की महत्त्वाकांक्षा वाले उद्योगो की स्थापना हुई। अब यहाँ डी एल एफ सीमेन्ट तथा लार्सन एण्ड टूब्रो जेसे विशालकाय सीमेन्ट प्लाण्ट भी तेजी से स्थापित होने की ओर अग्रसर है।

शैक्षणिक जगत् मे ब्यावर का नाम अग्रज पक्ति मे आता है। 1904 मे सनातन धर्म सभा द्वारा संचालित एक सस्कृत विद्यालय से प्रारम्भ इकाई ने 1931 मे महाविद्यालय का रूप ग्रहण कर लिया, जहाँ स्नातकोत्तर पर अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र वाणिज्य अग्रेजी व हिन्दी विषयों के कारण देश के विभिन्न प्रान्तो के विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे। यहाँ का पुस्तकालाय समृद्ध एव विशाल है। उपखण्ड की दृष्टि से देखा जाये तो प्रदेश के अन्य उपखण्डो की तुलना में ब्यावर मे सर्वाधिक उच्च एव उच्चतम विद्यालय यहाँ कार्यरत है। दो बडे महाविद्यालयो के अतिरिक्त नारी शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु एक आर महाविद्यालय शीघ्र ही प्रारम्भ होने जा रहा है।

ब्यावर के अपनी एक अनाखी सास्कृतिक छवि है। जिसके तहत् यहाँ मेलो व लोक उत्सवो के रग आपसी सौहार्द व एकता को प्रकट करते हैं। 9 सितम्बर 1881 को स्वामी दयानन्द सरस्वती पहली बार ब्यावर आये तथा आर्य समाज के सिद्धान्तो पर एक पखवाडे तक व्याख्यान दिये। धीरे-धीरे ब्यावर आर्य समाज के समर्थको का केन्द्र बनता गया। राष्ट्र भाषा आन्दालन, अर्न्तजातीय विवाह प्रोत्साहन तथा शारीरिक सोष्ठव के लिहाज से यहाँ अखाडे चलाये जाने लगे। प्रदेश के पूर्व मुख्यमत्री मोहनलाल सुखाडिया का इन्दुबाला के साथ विवाह भी ब्यावर आर्य समाज के अर्न्तजातीय विवाह का एक ऐतिहासिक उदाहरण है।

यहाँ वीर तेजाजी की शौर्यगाथा को लोक देवता के रूप मे पूजने की परम्परा रही है। गणगौर की सवारी तथा बादशाह का मेला अपनो अनुपम छटा के लिए प्रसिद्ध है। सिन्धी समाज द्वारा चेटीचण्ड पर मेला व झाकियाँ मोहर्रम पर ताजिये, गुरुगोविन्द जयन्ती पर ज्योति जलूस व नवरात्रि के दिनो में माताजी की डूँगरी का मेला लोक - महत्त्व सास्कृतिक मूल्य एव साम्प्रदायिक सद्भाव को यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

जनधर्मावलम्बियो की तथा उनके धार्मिक कार्यकलापो की दृष्टि से भी ब्यावर का राजस्थान मे एक विशिष्ट स्थान है। यहाँ पर दिगम्बर जेन समाज के करीब 250 परिवार है एव श्वेताम्बर समाज के भी लगभग 1800 परिवार है।

दिगम्बर आम्नाय की दृष्टि से ब्यावर मे सेठजी की नसियाँ का विशेष महत्त्व है। नसियाँजी में एक विशाल जैन मन्दिर ह, उसमे मूलनायक प्रतिमा भगवान् नेमिनाथ की है, जो पद्मासन मे काले पाषाण से निर्मित मनोज्ञ जिसकी प्रतिष्ठा सवत् 1948 में हुई थी। मन्दिरजी में ही एक ओर चैत्यालय है जिसमें पन्ना, सोना, व स्फटिक की अत्यन्त आकषक और दुर्लभ मूर्तियाँ है।

इस नसियाँ में साधु सन्तों का सदा पदार्पण होता रहा है। सन् 1933 में परम् पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री शान्ति सागरजी महाराज (दक्षिण) एव परम् पूज्य 108 श्री शान्ति सागरजी महाराज (दाछाणी) का सम्मिलित

चातुर्मास हुआ था । भारत वर्ष के इतिहास में यह एक अपूर्व संयोग था - जिसको आचार्य श्री ने जीवनी में लिखा था कि ब्यावर का यह चातुर्मास स्वर्ण अक्षरो में लिखने लायक है । इस चातुर्मास के पश्चात् तो पू सा 108 श्री शिवसागरजी महाराज, पू आचार्य विद्यासागरजी महाराज तथा अन्य मुनिराजों का चातुर्मास होता रहा । इसके अतिरिक्त युग के महान् शिक्षाप्रसारक परम पूज्य आचार्य समन्तभद्रजी महाराज, जिनकी 'जन्मशताब्दी' राष्ट्रसन्त पूज्य आचार्य विद्यानन्द जी महाराज की सत्प्रेरणा से पूरे भारतवर्ष मे जोर-शोर से मनायी गयी थी, परम् पू आचार्य 108 श्री विद्यानन्द जी महाराज दो बार 1979 व 1988 में ब्यावर पधारे और नसियाँ जी में स्थित "श्री ऐ पन्नालाल दि जैन सरस्वती भवन" मे ही विराजे। वर्तमान में परम् पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज भी इसी सरस्वती भवन मे विराज रहे है । नसियाँजी में स्थित 'सरस्वती भवन' प्राच्य विद्या की दुर्लभ पाण्डुलिपियों/ग्रन्थो के लिए भारत वर्ष में एक अनूठा स्थान रखता है । जैन धर्म-दर्शन-सस्कृति आदिनाथ के प्राचीनतम ग्रन्थों के अलावा यहाँ आयुर्वेद व्याकरण ज्योतिष, न्याय, वेद इतिहास, काव्य पुराणादि विषयक विशाल भारतीय वाड्मय का यहाँ अपार सग्रह है । इसके सचालन भार युवा प अरुण कुमार जी शास्त्री के कन्धों पर है, जिनकी विद्वत्ता को ध्यान में रखकर ही पूज्य मुनिवर श्री की सत्प्रेरणा से श्रीज्ञानसागर वागर्थ-विमर्श केन्द्र की स्थापना भी इसी सरस्वती भवन मे की गई है ।

ब्यावर में एक विशाल पचायती नसियाँ भी है, जिसका उपयोग भी समाज को बडा लाभप्रद है । इस नसियाँ में ऐलक पन्नालाल दि जैन उच्च प्राथमिक विद्यालय चल रहा है, जो आज अजमेर जिले में प्रथम श्रेणी के विद्यालयो मे से एक गिना जाता है ।

ब्यावर को अग्रेजी में Beawar लिखा जाता है - जिसे कभी-कभी ब्यावर की महत्ता को ध्यान में रखकर ' BEAWARE के रूप मे भी देखा जाता है ।

ज्ञान प्रकाश के स्तम्भ
(पं. श्री प्रकाशचन्द्र जैन)

प्रस्तुति - शान्तिलाल गदिया

समाज में दो प्रकार के लोग होते हैं, एक वे जो समाज को देते अधिक है और समाज से लेते बहुत कम हैं तथा दूसरे वे जो समाज को देते कम है और बदले में उससे बहुत अधिक लेते हैं । इनमें से प्रथम कोटि के पुरुष महापुरुष कहलाते हैं, ओर समाज श्रद्धा, विनय और समर्पण के साथ ऐसे महापुरुषों के चरणों मे आपना मस्तक झुका देता है । उदारमन से दोनो हाथो से ही नहीं अपने मन-वचन कर्म से जो समाजोत्थान हेतु अपने सर्वस्व समर्पण के लिये समुद्यत रहते हैं, ऐसे महापुरुषों के लिये देश समाज एवम् उसके कर्णधार - शिक्षार्थी ही उनका परिवार बन जाता है । हम यहा ऐसे ही एक महापुरुष का सश्रद्ध स्मरण करना चाहते हैं, जिसने जीवन-भर समाज मे शिक्षा संस्कार का दान तो किया ही, साथ ही मृत्यूपरान्त भी समाज में शिक्षा के प्रचार (अज्ञानतम के प्रसार को रोकने के लिए) एव कोई रोगी विपन्नता के कारण चिकित्सा के अभाव मे त्रस्त/पीडित/ आकुलित परिणामो को प्राप्त न हो, ऐसी भावना से जिस नररत्न अपने गाढे पसीने की समस्त कमाई का जीते जी शिक्षा एवम् चिकित्सा कार्यों के लिये एक ट्रस्ट बनाकर समर्पित करने दिया हो, ऐसे पुरुषश्रेष्ठ को जगत् 'प प्रकाशचन्द्र जैन' के नाम से जानता है । पण्डित जी-सा ने तन, मन जीवन दान दिया और ब्यावर के महापुरुषों की पक्ति में कनिष्ठिकाधिष्ठित हो गये ।

पण्डित जी सा अपने गृहनगर मेरठ से ब्यावर में अपनी पत्नी की दिवंगत होने बाद ब्यावर में बस गये और शिक्षा दान के संकल्प को पूरा करने के लिये भरी जवानी में उन्होंने आजीवन विवाह नहीं करने की प्रतिज्ञा कर ली। और ब्यावर के श्री ए पन्नालाल दिगम्बर जैन प्राथमिक विद्यालय से अपना नाता जोड़ लिया, जिस तरह एक गृहस्थ अपने कुटुम्ब से सम्बन्ध जोडकर कुटुम्ब के स्थिति पालन के साथ स्थयित्व की कामना से उसको चारों ओर से पुष्ट

करता है, उसी प्रकार उन्होंने विद्यालय का स्थिति पालन, सम्पोषण संवर्द्धन एवं स्थायित्व को आधार को सुदृढ़ किया उनकी सेवा समर्पणपूर्ण त्याग एवम् दूरदर्शी गहन दृष्टि के परिणाम से ही प्राथमिक विद्यालय ने न केवल माध्यमिक विद्यालय तक की अपनी विकास यात्रा पूरी की बल्कि शैक्षिक उपलब्धि के क्षेत्र राजस्थान के उच्च परिणाम वाले विद्यालयों में 1994 में 13वाँ स्थान अर्जित कर कीर्तिमान स्थापित किया है ।

उन्हीं महान् सरस्वती पुत्र प प्रकाशचन्द्र जन ने स्वल्प वेतन से प्राप्त आय का जीवनभोग मे न लगा कर पुण्य पूंजी को ट्रस्ट पूंजी का संचय किया और आज वाणी-विशेषक यह लघुत्रयी मन्थन प्रकाशित हो रहा है ।

मैं ट्रस्ट की ओर से व सकल दि जैन समाज की ओर से महान् प्रज्ञाधिकारी की स्वर्गस्थ आत्मा के प्रति अपने सादर नमन/वन्दन कर सकल्प करता हूँ दिवगत आत्मा की भावनाओं को साकार बनाने के लिये तन-मन-धनसे सदा समर्पित रहूँगा ।

सेठ चम्पालाल रामस्वरूपजी की नसियाँ

प्रस्तुति - कमल राँवका

यह नसियाँ नगर के अजमेरी गेट के बाहर स्थित है, बस स्टेण्ड भी यहाँ से नजदीक ही है इस विशाल नशियाँ का निर्माण वि स 1948 (ई स 1892) मे चम्पालाल जी रानीवाला व उनके पाँच भाईया ने कराया था, जिसमें मूलनायक भगवान् नेमिनाथ की अतिशयकारी चमत्कारी मनोहारी प्रतिमा विराजमान है । यह मन्दिर सगमरमर से निर्मित है।

नसियाँ के मुख्य द्वार मे प्रवेश करते ही भव्य मानस स्तम्भ के दर्शन होते हैं । मानस स्तम्भ का निर्माण सन् 1985 में श्रेष्ठी हीरालालजी देवेन्द्रकुमारजी रानीवाला ने करवाया । इसके ऊपर चारो दिशाओ मे नेमीनाथ भगवान् की प्रतिमा है । मान स्तम्भ के नीचे चारो तरफ नेमिनाथ के ही वैराग्यमयी चित्र सगमरमर के पत्थर पर ही खुदे हुए हैं।

मदिर मे प्रवेश करते ही सीढियो में ही एक शिलालेख खुदा हुआ है जिसमे मन्दिर के पचकल्याणक मे एक लाख श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओ के सम्मिलित होने का तथा तेरहपन्थ आम्नाय सुरक्षित रखने का उल्लेख है ।

सगमरमर के पत्थर की मदिर की 18 सीढियाँ हे । मंदिर के मुख्य द्वार की लम्बाई 81 इच व चौडाई 46 इच है । मुख्य दरवाजा बहुत ही सुन्दर कलाकृति मे लकडी का बना हुआ है । मूलनायक वेदी के सामने एक बडा दरवाजा एव दो छोटे दरवाजे ह । चौक के बाहर दायी ओर छोटा दरवाजा एव उत्तर की ओर बड़ा दरवाजा है । चौक के बाहर बाइ ओर छोटा दरवाजा एव उत्तर की ओर बडा दरवाजा है । वेदी के पीछे दीवार मे दायी ओर एव बायी ओर शास्त्र भडार हेतु फुल साइज की एक अलमारी है । पश्चिम की ओर दो बडे-बडे लकडी के ग्लास युक्त आलमारियाँ हैं।

मूलनायक वेदी के ऊपर विशाल गुम्बज हे । फर्श पर इटेलियन टाइल्स का उपयोग हुआ है, जो टेबल यहा पर पडी है, जो उत्कृष्ट पुरातत्व का नमूना है ।

मुख्य वेदी के बाहर जो चौक है, उसमें सबसे बडी विशेषता इस बात मे है कि वह 16 खम्भो पर आधारित है जो कि षोडश कारण भावना का द्योतक है ।

चौक की लम्बाई 213 फीट व चौडाई भी 213 फीट है, आयत आकार मे बना हुआ है । वेदी के बाहर चौक के तीनों तरफ बरामदे हे चौक के आगे बरामदा और मदिर का मुख्य दरवाजा है ।

बरामदे के अन्दर दाई ओर ऊपर छत पर जाने का दरवाजा है । लम्बाई 460 फीट व चौडाई 138 फीट । मुख्य चौक मे सोने के काम की काँच की जडाई सहित है । चित्रकारी मे मुख्य रूप मे अष्ट प्रतिहार्य के चिन्हो को दर्शाया गया हे । चारो तरफ चित्रकारी में "जय-जय" लिखे हुए हैं एव सुन्दर बनी है । वेदी के पूरे परकोटे की चौडाई 460 फीट है व लम्बाई 191 फीट है ।

मन्दिरजी में 3 वेदियाँ तथा एक पृथक् कक्ष में तिजोरी की वेदी है, जिसमें उत्कृष्ट पाषाण की प्रतिमायें हैं।

नशियाँजी विशाल भूभाग में स्थित वें है, जिसमें त्यागी, आश्रम, साधु-आवास स्थल है। इस नशियाँजी में पहिले भारत विख्यात भारतवर्षीय दि जैन संस्कृत महाविद्यालय चलता था, जहाँ से अनेक विद्वान् उत्पन्न हुए। तथा सुप्रसिद्ध ऐ पन्नालाल दि जैन विद्यालय संचालित होता था। इसके अतिरिक्त इसी नशियाँजी में प्राचीन पाण्डुलिपियों दुर्लभ ग्रन्थों के संग्रह के लिये विख्यात पुस्तकालय श्री ऐ पन्नालाल दि जैन सरस्वती भवन, का प्रधान कार्यालय है। नशियाँ जी में प्रवचनादि के लिये कई विशाल प्रांगण है।

पूज्य मुनिश्री के इसी नशियाँ जी मे विराजमान होने मे यहाँ पर पू मुनिश्री के आशीष से "सर्वोदय विद्या-सुधा शिक्षण केन्द्र" एवम् जन विद्या पर शोधानुसन्धान की गतिविधियों को अग्रसर करने "आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ-विमर्श केन्द्र" की स्थापना की गयी है, जिसके लिये रानीवाला परिवार साधुवाद का पात्र है।

पंचायती नसियाँ

प्रस्तुति - घेवरचन्द छाबड़ा

मूरजपोल गेट बाहर पचायती नसियाँ हैं, जिसमे मूलनायक भगवान् महावीर की भव्य प्रतिमा है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा वि म 1981 (1924) फाल्गुन शुक्ला 5 को हुई थी। इस मन्दिर मे काँच के जडाऊ चित्र तथा तीर्थकरों से सम्बन्धित भित्ति चित्र विशेष दर्शनीय है।

विभिन्न वेदियो से सम्बन्धित प्रतिमाओ के आकार-प्रकार निम्न प्रकार से हैं इस नसियाँ में विशाल मैदान है। पाडुक शिला भी पक्की मुन्दर बनी हुई है। समाज की सुविधा हेतु एक बड़ा सभा कक्ष "जैना भवन" बना हुआ ह जो श्री गुमानमलजी बाकलीवाल ने अपनी धर्मपत्नी की स्मृति में बनवाकर समाज को भेंट किया। स्कूल भवन को कासलीवाल श्रीमती सायर कँवर परिवार ने बनाकर भेंट किया। छात्रावास भवन हीरालालजी रानीवाला द्वारा बनवाया गया है। पूरी नसियाँ तत्कालीन फर्म सेठ छोगालाल मोतीलाल कासलीवाल द्वारा समाज को भेंट की गई। ऐलक पन्नालालजी की स्मृति स्वरूप शानदार नक्काशीदार सगमरमर की छत्री बनी हुई है, नसियाँ के द्वार मे प्रवेश करते ही बुहत बड़े भूभाग पर धर्मशाला दृष्टिगोचर होती है। जिसमें स्व बाबू मानममलजी बाकलीवाल का विशेष योगदान रहा है। सेठजी की नशियाँ में पूर्वत सन्चालित श्री ऐ पन्नालाल दि जैन माध्यमिक विद्यालय के भवन का निर्माण श्रीमती सायर कंवर कासलीवाल द्वारा किया जाकर विद्यालय इसी नशियाँ जी में स्थानान्तरित हो गया है।

नशियाँ जी मे पूज्य मुनिवर श्री सुधासागर जी महाराज के मगल आशीष से महाकवि ब्र भूरामल शास्त्री (आ ज्ञानसागर जी महाराज) की महाकवि रूप ब्रह्मचारी अवस्था की सुन्दर स्टेच्यू का निर्माण श्री शान्तिलालजी गदिया एवम् श्री राजकुमार पहाडिया द्वारा किया जा चुका है तथा दो वेदियों का निर्माण प्रगति पर है।

दिगम्बर जैन मंदिर, छावनी

प्रस्तुति - सन्तोष कासलीवाल

जैन धर्मावलम्बी विशेष रूप से धार्मिक भावना के लिए प्रसिद्ध है। देव-दर्शन, पूजन, शास्त्र श्रवण एवं व्रत अनुष्ठान इनकी दैनिक जीवन-चर्या का एक अग रहता है। इसी कारण ब्यावर की स्थापना 1836 के बाद ही 1848 के आस-पास सर्वप्रथम छावनी का दिगम्बर जैन मन्दिर निर्मित किया गया। 40' × 60' के एक ही भवन में भगवान् महावीर की मूलनायक प्रतिमा विराजमान है। 1941 में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया। सम्पूर्ण मन्दिर में काच की चित्रकारी है जो सगमरमर के साथ एक अनूठी शोभा प्रदान करती है। वेदी का नव निर्माण कुन्दनमल हीरालाल काला द्वारा कराया गया।

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, सरावगी मौहल्ला

सरावगी मौहल्ला स्थित पंचायती मन्दिर 130 वर्ष पूर्व निर्मित हुआ। इस मन्दिर में 500 वर्ष करीब पुरानी मूर्तियाँ विराजमान हैं, जिसमें से एक मूर्ति करीब 1500 वर्ष पूर्व की भी है, जो अन्यत्र से लाकर विराजमान की गई है।

मन्दिर में कुल मिलाकर 7 वेदियाँ हैं। मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही एक अच्छा सा चौकनुमा दरवाजा है, सामने ही मुख्य वेदी में भगवान् नेमिनाथ की अति मनोहर काले पाषाण की मूलनायक प्रतिमा है। इस वेदी का निर्माण भादवा बदी 13 सं 1999 में सुगनचन्द जी पाटनी की धर्मपत्नि ने करवाया। इसके अतिरिक्त 6 पाषाण तथा 2 अष्ट धातु की प्रतिमा एवं 2 यंत्रजी हैं।

मुख्य वेदी के दायी ओर पार्श्वनाथ भगवान् की वेदी है। मूलनायक प्रतिमा फण सहित चौबीसी की है इस वेदी का निर्माण गुलाबचन्द बाकलीवाल की मातेश्वरी ने फागुन शुक्ला 3 सं 1998 मे करवाया इसके अतिरिक्त 10 पाषाण की एक अष्ट धातु की प्रतिमा एव 4 यंत्र की विराजमान है। तृतीय वेदी सफेद पाषाण की पार्श्वनाथ भगवान की है। मूल नायक प्रतिमा स 1548 की है। इसके अतिरिक्त 7 पाषाण प्रतिमाये एव एक अष्ट धातु की एवं तीन यंत्र जी है।

चतुर्थ वेदी काले पाषाण की पार्श्वनाथ भगवान् की है। इसके अतिरिक्त दो प्रतिमाये बाँयी तरफ महावीर स्वामी एवं दांये तरफ शान्तिनाथजी एव एक यत्रजी है।

इस वेदी का निर्माण स 2041 में राजकुमार जी गगवाल की मातेश्वरी केसरदेवी ने करवाया एवं प्रतिष्ठा ब्र सूरजमलजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई वेदियो के सामने बडे हॉल मे सुन्दर भित्ति चित्र बने हुए हैं।

मुख्य वेदी के बांयी ओर मुनिसुव्रत भगवान् की काले पाषाण की प्रतिमा है। इस वेदी के अन्दर बाये सफेद पाषाण की भगवान् महावीर की एव दाये शान्तिनाथ भगवान् की प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त अष्ट धातु की 4 बडी प्रतिमाये है। इस वेदी का निर्माण कवरी देवी धर्मपत्नी मूलचन्द पहाडिया ने स 2041 में करवाया। द्वितीय मजिल पर चार वेदियाँ हैं।

प्रथम वेदी भगवान् महावीर की है, जिसे झमकू बाई धर्मपत्नि चम्पालाल पाण्ड्या की ओर से बनवाई गई, इसका निर्माण स 1998 में प्रतिष्ठाचार्य प झम्मनलालजी तर्क तीर्थ ने करवाया, इस वेदी में दो पाषाण की एव एक अष्ट धातु की एवं एक यत्र जी विराजमान है। द्वितीय वेदी भगवान् अजितनाथ की है। इस वेदी का मण्डप विशाल कॉंच जड़ित अजितनाथ की है। इस वेदी का मण्डप विशाल कॉंच जड़ित सोने के कार्य युक्त है। इस वेदी में पाँच मूर्तियाँ पाषाण की एव 7 अष्ट धातु की है। अष्ट धातु की एक छोटी पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति स 1599 की है।

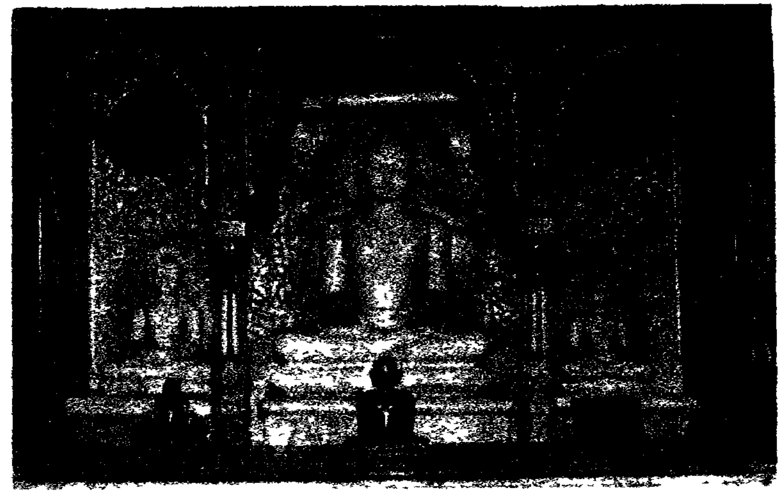
दिगम्बर जैन चैत्यालय

प्रस्तुति - सुनील बड़जात्या

दिगम्बर जैन चैत्यालय सरावगी मौहल्ला मे अवस्थित है। यहाँ पर मूलनायक प्रतिमा पदम् प्रभु भगवान् की है। यह प्रतिमा बहुत ही प्राचीन वि स 1411 की है। दो प्रतिमायें, एक काले पाषाण की भगवान् नेमिनाथ की एवं एक मूगिया रंग की सुपार्श्वनाथ भगवान् की है अष्ट धातु की तीन प्रतिमायें एक चौबीसी, एक सिद्ध भगवान् एवं शान्तिनाथ भगवान् की है। मदिर के ऊपर विशाल गुम्बज वेदी सगमरमर की है। इसका निर्माण श्री छगनमलजी मानमलजी लुहाड़िया ने कराया था। इसकी प्रतिष्ठा वि म 1980 में हुई थी। दूसरी वेदी में चन्द्रप्रभु भगवान् की चाँदी की प्रतिमा अष्ट धातु की भगवान् महावीर की प्रतिमा एव एक कलश चाँहित चाँदी की छोटी प्रतिमा है।



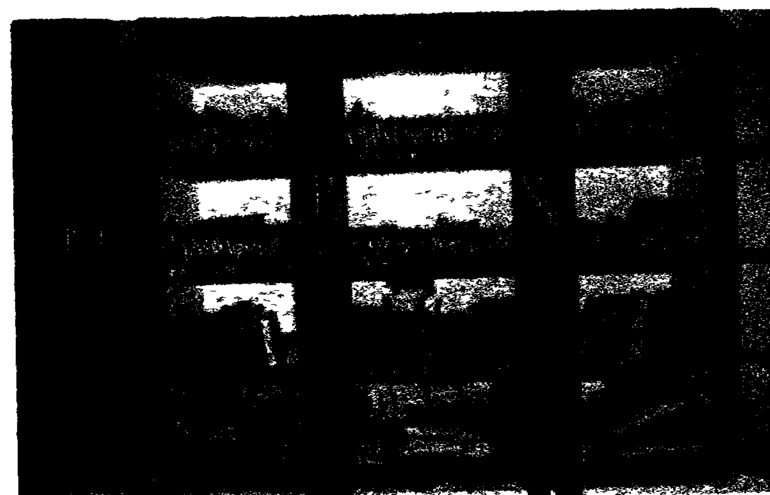
मूलनायक नेमिनाथ (पचायती मदिर)



मूलनायक भगवान महावीर स्वामी (दि जैन मंदिर, छावणी)



सरस्वती भवन में पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ग्रन्थो का अवलोकन करते हुए



भारत विख्यात श्री ऐलक पन्नालाल दि जैन सरस्वती भवन

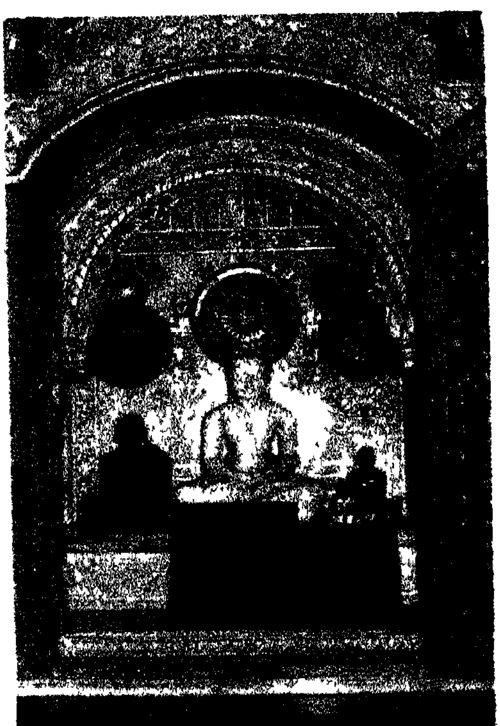
(लगभग 10000 ग्रन्थो का सग्रह)



मूलनायक नेमिनाथ (सेठ चम्पालाल रामस्वरूपजी की नसियाँ)



पञ्चायती नसीयाँजी



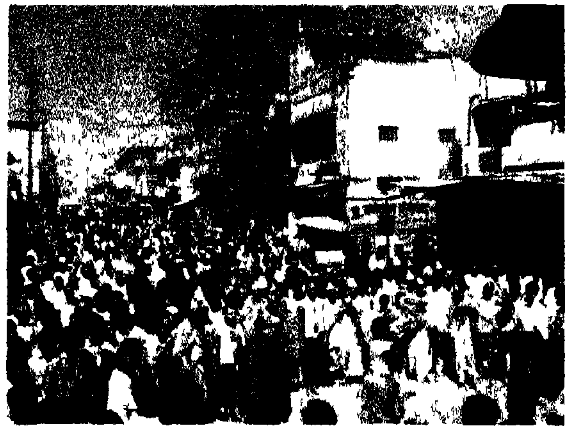
चैत्यालय मूलनायक



सरस्वती भवन में विराजित षट्खण्डागम की दुर्लभ पाण्डुलिपिया



पूजन विधान मे शास्त्राकार प्रदर्शनी हेतु आशीर्वाद प्राप्त करते हुए
यज्ञनायक श्री शान्तिलालजी प्रकाशचन्द्रजी गदिया



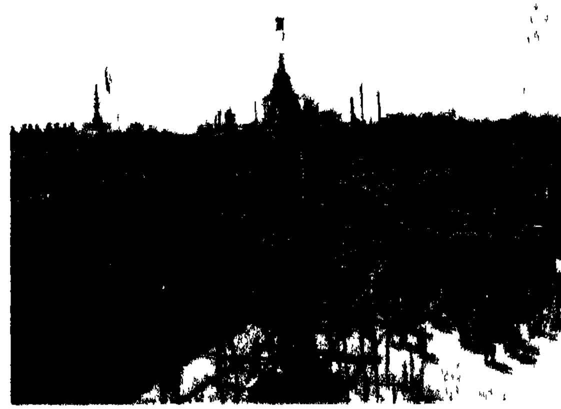
पूजन विधान के समापन पर रथयात्रा के साथ विशाल जनसमूह



सागानेर चित्र प्रदर्शनी पर प्रथम दृष्टिपात पू. मुनि श्री सुधासागरजी महाराज



दिगम्बर जैन समाज ब्यावर द्वारा पण्डित श्री अरुणकुमारजी शास्त्री का सम्मान



मानस्तम्भ (सेठ जी की नसीयाँ) के दशाब्दी महाभिषेक का विहगम दृश्य



ब्यावर में स्थापित महाकवि ब्र भूरामल शास्त्री (आ ज्ञानसागरजी) की स्टेच्यू



श्री दिगम्बर जैन समिति, ब्यावर पदाधिकारी एवम् सदस्य

श्री ऐ. पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन

प्रस्तुति - सुनीलकुमार जैन, एडवोकेट

अपने देश की समृद्ध सस्कृति एवम गौरवपूर्व अतीत की परम्पराओ को सुरक्षित रखने हेतु विश्व के सभी देशो व समाजो द्वारा अति प्राचीन काल से ही पुस्तकालयो, पोथी खानो की स्थापना की जाती रही है । ब्रिटिश म्यूजियम, पुस्तकालय, इण्डिया ऑफिस लायब्रेरी, लण्डन इसके उदाहरण हैं ।

विभिन्न दार्शनिको, राजनीतिको, समाजशास्त्रियो वैज्ञानिको और धर्मप्रतिपादको के चिन्तन को सुरक्षित रखने के लिये, ताकि आगामी पीढ़ी पूर्ववर्तियो के अनुभव/चिन्तन से लाभान्वित होकर अपना मार्ग प्रशस्त कर सके, जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य धारण कर उनसे मुकाबला करने की शक्ति प्राप्त करने के लिये, ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं के विस्तार के लिये साहित्य और सस्कृति के सरक्षण के लिये पुस्तकालय की स्थापना अति आवश्यक उपक्रम है । ग्रन्थ मन्दिरो की स्थापना देव मन्दिरो की स्थापना के समान पुण्य वर्द्धक होता है । अत भारत मे भी प्राचीन काल से ही विशाल पुस्तकालयो की स्थापना के प्रमाण मिलते हैं ।

इस सदी के प्रारम्भ मे जब कि पाश्चात्य लोग भारत की प्राच्य ग्रन्थ सम्पदा को खोज-खोज कर अपने-अपने देश मे स्थानान्तरित कर रहे थे । जब लोग ग्रन्थ सुरक्षा की अपनी प्राचीन परिपाटी मे विस्मृत होकर ग्रन्थ रत्नो का निरादर कर रहे थे तथा इस कारण अनेक देवालयो अथवा निजी घरो में भी ग्रन्थ उपेक्षा बुद्धि के शिकार होकर काल के गाल मे निरन्तर समा रहे थे तब आवश्यकता थी एक महान् सरस्वती पुत्र की, जो अपनी माँ (जिनवाणी माँ) को उसकी दुदशा मे त्राणि दिला सके । ठीक ऐसे समय एक महान् ज्ञानाराधक सन्त पू ऐलक पन्नालाल जी महाराज का अभ्युदय हुआ और उन्होंने अनेको विद्यालयो की स्थापना के साथ एक पुस्तकालय श्री ऐलक पन्नालाल दि जैन सरस्वती भवन की स्थापना झालरापाटन मे की । सस्था के सुप्रबन्ध के लिये उन्होंने एक ट्रस्ट की स्थापना भी की । एव पूरे देश मे यत्र तत्र बिखरे पुराने ग्रन्थो की व्यापक खोज-बीन कर सग्रह करना आरम्भ किया तथा अल्पकाल में हो संस्था मे बडी सख्या मे ग्रन्थो का एकत्रित कर उन्हे सुरक्षित किया । ग्रन्थो खोज का कार्य जब अधिक आगे बढा तब आपने बम्बई स्थित सुखानन्द धर्मशाला मे सस्था की द्वितीय शाखा की स्थापना की । सम्प्रति बम्बई शाखा फ्रीगज स्थित पार्श्वनाथ दि जैन मन्दिरजी उज्जैन में स्थानान्तरित होकर कार्यशील है । पू ऐलक महाराज भ्रमण करते-करते ब्यावर पधारे और यहाँ पर रा ब से चम्पालाल रामस्वरूप की नशियाँ मे विराजे तब उक्त सरस्वती भवन की तृतीय शाखा की स्थापना हेतु राय सा श्रीमान् मोतीलाल जी रानीवाला ने पूज्य ऐलक श्री की भावनानुसार अपनी नशियाँ मे सुन्दर आलमारियों की व्यवस्था के साथ एक विशाल हाल एवम् दो बडे कमरा का (पुस्तकालय के अनुरूप) भव्य निर्माण कराया और पूज्य ऐलक श्री महाराज के सान्निध्य मे श्रुतपञ्चमी 1935 को ब्यावर सरस्वती भवन की स्थापना को गयी । पूज्य श्री ने यहाँ दीघकाल तक प्रवास करते हुए भवन मे ग्रन्थो की वृद्धि की ।

ब्यावर के इस भवन मे आज दर्शनशास्त्र, काव्य, ज्योति, आयुर्वेद, सिद्धान्त, आगम, व्याकरण, नीतिशास्त्र, आदि विविध प्राच्यविद्या के विषयो पर लगभग दस हजार से अधिक ग्रन्थ हैं, जिनमे 2000 प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भी हैं, 22 पाण्डुलिपियाँ ताडपत्र पर अकित है । इस भवन की व्यवस्था अति उत्तम है ।

ब्यावर भवन में निरन्तर ग्रन्थ सामग्री का अवलोकन करने शोधार्थी विद्वानो, पू सन्तों, समाज सेवियो का पदार्पण होता रहता है ।

जिनमे प्रमुख है - प पू आचार्य धर्मसागरजी महाराज, पू आचार्य विद्यासागरजी महाराज, पू आ विद्यानन्द जी महाराज, पू मुनि पुगव सुधासागरजो महाराज श्वे जैन साध्वी उमराव कुँअरजी, प लाल बहादुर शास्त्री, प डॉ पन्नालालजी साहित्याचार्य प्रो खुशालचन्द गोरावाला, प्रो जयकुमार जैन मुजफ्फर नगर, डॉ कपूरचन्द जैन खतौली, श्री तिलोकचन्द कोठारी, श्री निर्मलकुमार सेठी इन्होंने विजिटर्स बुक मे सस्था के सग्रह एवम् सुव्यवस्था की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

इस सस्था के तीनो भवन (ब्यावर, उज्जेन एवम् झालरापाटन) एक ही ट्रस्ट के अधीन सचालित है । ऐलकजी ने प्रधान कार्यालय ब्यावर मे बनाया । वर्तमान मे ट्रस्ट के अध्यक्ष सेठ श्री भूपेन्द्र कुमारजी सेठी उज्जैन ट्रस्ट मन्त्री श्री ललित कुमार जन उज्जन तथा ब्यावर भवन के सचालन ट्रस्टी सेठ श्री सजनकुमारजी रानीवाला है ।

भवन मे भक्तामर स्तोत्र की एक अतिप्राचीन पाण्डुलिपि है जिसमें स्तोत्र के भावो को अभिव्यक्त करने वाले नयनभिराम चित्र है, जिन्हे दर्शक देखते-देखते छकता नहीं है । अन्य भी महत्त्वपूर्ण एव अतिदुर्लभ पाण्डलिपियो का सग्रह भवन का गोरव है यह भवन ब्यावर नगर ही नहीं, देश की शान है ।

डॉ बमल का मकान लालान गली, ब्यावर

श्री दिगम्बर जैन समिति, ब्यावर

कार्यकारणी के सदस्यों की सूची

1	श्री सज्जनकुमारजी रानीवाला	अध्यक्ष
2	श्री शान्तिलालजी कासलीवाल	उपाध्यक्ष
3	श्री ताराचन्दजी बडजात्या	उपाध्यक्ष
4	श्री कैलाशचन्दजी बडजात्या	महामन्त्री
5	श्री कमलकुमारजी रावका	मन्त्री
6	श्री रतनलालजी गगवाल	कोषाध्यक्ष
7	श्री महावीरप्रसादजी गदिया	वित्त सयोजक
8	श्री धर्मचन्दजी मोदी	सदस्य
9	श्री रतनलालजी कटारिया	सदस्य
10	श्री घीसूलालजी कासलीवाल	सदस्य
11	श्री जयकुमारजी बडजात्या	सदस्य

दातारों की नामावली

श्री कमलकुमार जी धगडा	5001 00
श्री महेन्द्रकुमारजी कासलीवाल	5001 00
श्री अशोककुमारजी पहाडिया	5001 00
श्री प्रीतम कुमारजी फागीवाल	5001 00
श्री डॉ दीपचन्दजी सोगानी	5001 00
श्री वीरकुमारजी कमलकुमारजी रावका	5001 00
श्री जीवनप्रकाशजी पहाडिया	5001 00
श्री श्रीपालजी अजमेरा	5001 00
श्री अमरचन्दजी रावका	5001 00
श्री चान्दमलजी सिघवी	5001 00
श्री कैलाशचन्दजी गगवाल	5001 00
श्रीमती रतनदेवी दोसी	6001 00
श्री नगजीरामजी जैन	2101 00

श्री विजयकुमारजी फागीवाल	2101 00
श्री महेन्द्रकुमारजी पहाडिया	2101 00
श्री पदमचन्दजी कासलीवाल	2102 00
श्री कैलाशचन्दजी बडजात्या	1501 00
श्री पन्नालालजी पाटनी	1501 00

मंगल कलश स्थापना

श्री मूलचन्दजी राजेन्द्रकुमारजी पहाडिया	21001 00
श्री रतनलालजी कटारिया	7101 00

दीप प्रज्वलन

श्री ताराचन्दजी बडजात्या	11151 00
श्री धर्मचन्दजी मोदी	11111 00
श्री कैलाशचन्दजी मोगानी	11101 00
श्री चिरंजीलालजी राजकुमारजी पहाडिया	11001 00
श्री बंशीलालजी झाझरी	11111 00
श्री माणकचन्दजी प्रकाशचन्दजी काला	7171 00
श्री महावीरप्रशादजी गदिया रेड वाले	7101 00
श्री नेमीचन्दजी गवका	6101 00
श्री अशोककुमारजी बाकलीवाल	5101 00
श्री सुशीलकुमारजी बाकलीवाल	5001 00
श्री रतनलालजी कटारिया	5001 00
श्री रतनलालजी गंगवाल	5101 00
श्री माणकचन्दजी गंगवाल, जेठाना वाले	1501 00
श्री सोहनलालजी जैन	1101 00
श्री महावीरप्रसादजी गदिया	1101 00
श्री जम्बूकुमारजी फागीवाल	1101 00
श्री माणकचन्दजी गंगवाल	1001 00
श्री नेमीचन्दजी सोगानी	1001 00
श्री मगनमलजी जैन	1001 00
श्री प्रकाशचन्दजी बाकलीवाल	1001 00
श्री अमरचन्दजी फागीवाल	1001 00
श्री महावीरप्रसादजी फागीवाल	1001 00
श्री भागचन्दजी कासलीवाल	1001 00
श्री गुप्त	1101 00
श्री गुप्त	1101 00
श्री अरुणकुमारजी कासलीवाल	1001 00
श्री राजकुमारजी सोहनलालजी गंगवाल	2001

सेठ जी नसियाँ

प्रस्तुति - ☆ दीपक जैन ☆ जितेन्द्र गगवाल

क्रम 1	वेदी की साईज एव आकार 2	भगवान् का नाम 3	चिह्न 4	प्रतिष्ठा तिथि 5	प्रतिष्ठा स्थान प्रतिष्ठाचार्य 6	सस्थापक (दातार) 7	प्रतिमा का आसन एव लं चौ पद्मासन 8	प्रतिमा/पाषाण 9	श्रीजी एव वेदी की मुख्य दिशा 10
	ल चौ ऊँ								
1	40 30 40 फी फी फी	अजितनाथ	हाथी	स 1957 तिथि मगसर सुदी 7	अपठित	-	20 × 16''	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
2	40 30 40 फी फी फी	महावीर	शेर	वि स 1981 फाल्गुन सुदी 5 शुक्रवार	नवानगर	-	7 × 5 7''	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
3	40 30 40 फी फी फी	महावीर	शेर	वीर निर्वाण स 2504 वेशाख सुदी 11	भिडर ब्र सूरजमल	हीरालाल रानीवाला	4 7 × 3 7''	अष्ट धातु/सफेद	उत्तर दिशा
4	40 30 40 फी फी फी	अजितनाथ	हाथी	स 1957	अपठित	-	20 × 16''	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा

मूलनायक वेदी

क्रम 1	वेदी की साईज एव आकार 2	भगवान् का नाम 3	चिह्न 4	प्रतिष्ठा तिथि 5	प्रतिष्ठा स्थान प्रतिष्ठाचार्य 6	सस्थापक (दातार) 7	प्रतिमा का आसन एव लं चौ पद्मासन 8	प्रतिमा/पाषाण 9	श्रीजी एव वेदी की मुख्य दिशा 10
1	73 49 30	नेमीनाथ	शेर	चैत्र शुक्ल 5 सवत् 1948	अग्रवाल गर्ग गोत्रे अमोलकचन्द अनतराम फूलचन्द, चम्पालाल अमृतलाल भूरालाल	- -	पद्मासन 29 5'' × 40''	पाषाण/कृष्ण वर्ण	उत्तर दिशा
2	73 49 30	नेमीनाथ	शेर	चैत्र शुक्ल 5 सवत 1948	अग्रवाल गर्ग गोत्रे अमोलकचन्द अनतराम फूलचन्द चम्पालाल अमृतलाल भूरालाल	- -	पद्मासन 17'' × 21''	पाषाण/कृष्ण वर्ण	उत्तर दिशा

3	73 49 30	नेमीनाथ	शेर	चैत्र शुल्क 5 सवत् 1948	अग्रवाल गग गोत्रे अमोलकचन्द अनतगम फूलचन्द चम्पालाल अमृतलाल, भूगलाल	- -	पद्मासन 19'' × 24.5''	पाषाण/कृष्ण वर्ण	उत्तर दिशा
4	73 49 30	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	चैत्र शुल्क 5 सवत् 1948	अग्रवाल गग गोत्रे अमोलकचन्द अनतगम फूलचन्द चम्पालाल अमृतलाल भूगलाल	-	पद्मासन 17'' × 13''	सफेद/पाषाण	उत्तर दिशा
5	73 49 30	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	वीर सवत् 2510 माह सुदी 13 बुधवार	हीरालालजी रानीवाला	सूरजमल	7'' × 9''	सफेद/पाषाण	उत्तर दिशा
6	73 49 30	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	मूलनायक वाला आलेख	मूलनायक वाला	सूरजमल	7'' × 9''	सफेद/पाषाण	उत्तर दिशा
7	73 49 30	महावीर	शेर	मूलनायक वाला आलेख	मूलनायक वाला	-	8'' × 10.7''	अष्ट धातु	उत्तर दिशा
8	73 49 30	महावीर	शेर	मूलनायक वाला आलेख	मूलनायक वाला	-	7'' × 9''	सफेद/पाषाण	उत्तर दिशा
9	73 49 30	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	मूलनायक वाला आलेख	मूलनायक वाला		7'' × 9''	अष्ट धातु	उत्तर दिशा
10	73 49 30	महावीर	सिंह	सवत 1973 फाल्गुन सुदी 3	अस्पष्ट	-	7.5'' × 9.5''	अष्ट धातु	उत्तर दिशा
11	73 49 30	सिद्धपरमेष्ठी	सिंह	स 1948 चैत्र शुल्का 15	नवानगर		खड्गासन	अष्ट धातु	उत्तर दिशा
12	73 49 30	चतुर्मुखी	सिंह	वीर निर्वाण सवत् 2504 2504 वैशाख शुक्ला	भिंडर ब्र सूरजमल	-	8'' × 3'	अष्ट धातु	उत्तर दिशा
13	73 49 30	मुनिव्रत	सिंह	वीर निर्वाण सवत् 2504 2504 वैशाख शुक्ला	भिंडर ब्र सूरजमल	भिंडार	5.5'' × 2''	अष्ट धातु	उत्तर दिशा

मूलनायक दाएँ तरफ

क्र सं	वेदी की साईज एव आकार	भगवान् का नाम	चिह्न	प्रतिष्ठा तिथि	प्रतिष्ठा स्थान प्रतिष्ठाचार्य	सस्थापक (दातार)	प्रतिमा का आसन एव ल चौ पद्मासन	प्रतिमा/पाषाण	श्रीजी एव वेदी की मुख्य दिशा
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1	40 30 40	पद्मप्रभु भगवान्		स 1807 तिथि मगसिर सुदी 7	अपठित	भिंडार	पद्मासन 20'' × 16''	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
2	40 30 40	महावीर स्वामी						अष्ट धातु	उत्तर दिशा

पंचायती नसियाँ

प्रस्तुति - ☆ घनश्याम जैन ☆ पद्मचन्द्र गंगवाल

क्र स 1	वेदी की साईज एवं आकार 2	भगवान् का नाम 3	चिह्न 4	प्रतिष्ठा तिथि 5	प्रतिष्ठा स्थान प्रतिष्ठाचार्य 6	सम्थापक (दातार) 7	प्रतिमा का आसन एव लं चौ पद्मासन 8	प्रतिमा/पाषाण 9	श्रीजी एवं वेदी की मुख्य दिशा 10
1	ल चौ ऊ 74 28 53.5 फी फी फी	भगवान महावीर (मूलन नायक)	शेर	विक्रम भ 1981 फाल्गुन सुदी पचमी	नवानगर	-	पद्मासन ल ऊ 28 36 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
2	74 28 53 5 फी फी फी	भगवान् नेमिनाथ	शेर	विक्रम म 1981 फाल्गुन सुदी पचमी	नवानगर	-	पद्मासन ल ऊ 16 20 5 फी फी	पाषाण/काला	उत्तर दिशा
3	74 28 53 5 फी फी फी	भगवान् नेमिनाथ	शेर	विक्रम म 1981 फाल्गुन सुदी पचमी	नवानगर		पद्मासन ल ऊ 16 20 5 फी फी	पाषाण/काला	उत्तर दिशा
4	74 28 53 5 फी फी फी	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	विक्रम स 1981 फाल्गुन सुदी पञ्चमी	नवानगर		पद्मासन ल ऊ 8 10 5 फी फी	पाषाण/काला	उत्तर दिशा
5	74 28 53 5 फी फी फी	शान्तिनाथ	हिरन	विक्रम म 1981 फाल्गुन सुदी पचमी	नवानगर		पद्मासन ल ऊ 7 9 फी फी	अष्ट धातु	उत्तर दिशा
6	74 28 53 5 फी फी फी	पार्श्वनाथ	सप	विक्रम म 2049 गुरुवार फाल्गुन सुदी पचमी 11 फरवरी 93	दि जैन मन्दिर पदमपुरा मुनि कनकनदी	प्रेमचन्द अजमेर	पद्मासन ल ऊ 5 8 5 फी फी	अष्ट धातु	उत्तर दिशा

7	34 5 42 फी फी फी	आदिनाथ (बायीं ओर)	बैल	वि स 1981 फाल्गुन मुदी पचमी	नवानगर	-	पद्मासन ल ऊ 17 4 21 5 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
8	34 5 42 फी फी फी	शीतलनाथ (दायीं ओर)	कल्पवृक्ष	वि स 1981 फाल्गुन सुदी पचमी	नवानगर	-	पद्मासन ल ऊ 17 4 21 5 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
इनके ऊपर विशाल गुम्बज है									
9	92 52 31 5 फी फी फी	पार्श्वनाथ	सर्प	वि स 1964	नवानगर	-	पद्मासन ल ऊ 21 32 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
10	92 52 31 5 फी फी फी	महावीर	सिंह	वि स 1981 फाल्गुन सुदी पचमी	नवानगर		पद्मासन ल ऊ 7.5 9 फी फी	अष्ट धातु	उत्तर दिशा
11	92 52 31 5 फी फी फी	सभवनाथ	घोडा	अपठित	नवानगर		पद्मासन ल ऊ 17 5 24 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
12	92 52 31 5 फी फी फी	आदिनाथ	बैल	वि स 1783 बुधवार	मानसिंह, जयसिंह कच्छावा भट्टारकजी		पद्मासन ल ऊ 21 29 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
13	92 52 31 5 फी फी फी	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	वि स 1746	श्रीदेवेन्द्रकीर्तिजी गजाजी किशोरसिराव	-	पद्मासन ल ऊ 16.5 22 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा

14	92 52 31 5 फी फी फी	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	अपठित	-	-	पद्मासन ल ऊ 22 28 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
15	92 52 31 5 फी फी फी	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	वि स 2008 वैशाख वैशाख सुदी पचमी	फुलेरा मुलचन्द भवरलाल पाटनी प जम्मननलालजी	कुन्दमल हीरालाल हीरालाल ब्यावर	पद्मासन ल ऊ 30 24 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
16	92 52 31 5 फी फी फी	शीतलनाथ	कल्पवृक्ष	वि स 2008 वैशाख वैशाख सुदी पचमी	फुलेरा मुलचन्द भवरलाल पाटनी प जम्मननलालजी	कुन्दमल हीरालाल हीरालाल ब्यावर	पद्मासन ल ऊ 18 5 23 5 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
17	92 52 31 5 फी फी फी	शान्तिनाथ	हिरन	वि स 2008 वैशाख वैशाख सुदी पचमी	फुलेरा मुलचन्द भवरलाल पाटनी प जम्मननलालजी	कुन्दनमल हीरालाल हीरालाल ब्यावर	पद्मासन ल ऊ 16 5 22 5 फी फी	पाषाण/सफेद	उत्तर दिशा
18	92 52 31 5 फी फी फी	महावीर	सिंह	अपठित वैशाख सुदी पचमी	फुलेरा मूलचन्द भवरलाल पाटनी प जम्मननलालजी	भवरलाल कवरलाल मोनी ब्यावर	पद्मासन ल ऊ 9 5 12 फी फी	काला पाषाण	उत्तर दिशा
19	92 52 31 5 फी फी फी	चन्द्रप्रभु	चन्द्रमा	वि स 2041 वैशाख सुदी 11	त्र मृगजमल किशनगढ	मानीबाई धमपत्नी गुलाबचन्द ब्यावर	पद्मासन ल ऊ 7 8 5 फी फी	अष्ट धातु	उत्तर दिशा